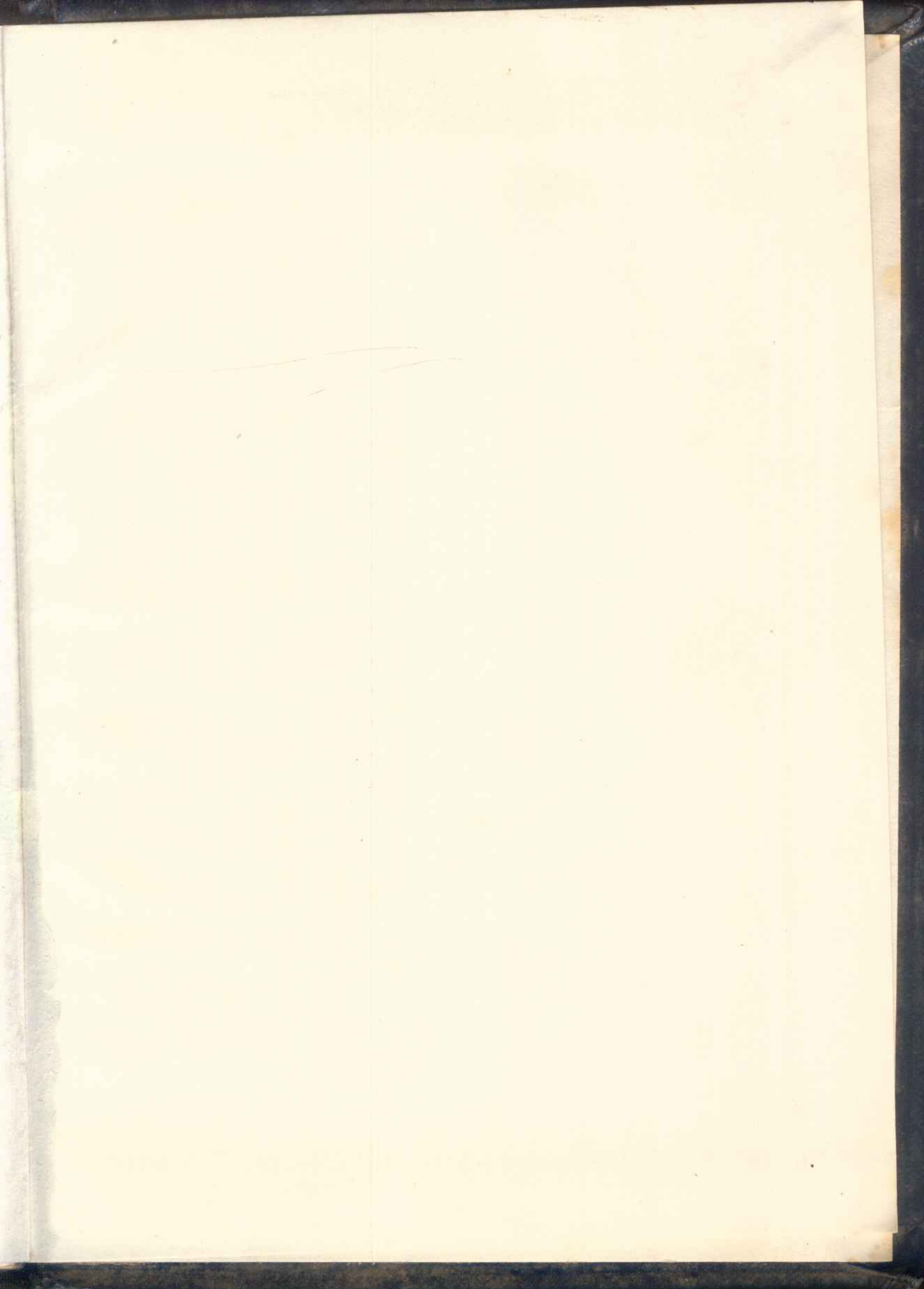
श्रीत्रिमल्लभट्टवैद्यराजविरचिता

योगतरंगिणी

(हिन्दी टीका सहिता)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४.



श्रीत्रिमल्लभट्टवैद्यराजविरचिता

योगतरंगिणी

माथुरपंडित श्रीकन्हैयालाल पाठकात्मज

श्रीदत्तराम माथुर विरचित

(हिन्दी टीका सहिता)

*****

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४.

संस्करण : जनवरी २००६, संवत् २०६२

मूल्य : १५० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,TM
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

प्रस्तावना

भ्रान्ता वेदान्तिनः किं पठय शठतयाद्यापि चाद्वैतविद्यां
पृथ्वीतत्त्वे लुठन्तो विमृशथ सततं कर्कशास्तार्किकाः किम्॥
वेदैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदयं श्रोत्रियाः श्रोत्रशूलै-
र्वैद्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं प्राणसंजीवनाय॥१॥

इस भरतखंड में प्राचीन शास्त्रों में अग्रगण्य एक वेदान्तशास्त्र और दूसरा वैद्यकशास्त्र ये दो शास्त्र ही मुख्य है। कारण संपूर्ण संसार का सार इन दोनों से ही लभ्य है, वेदान्तशास्त्र में जीवात्मविषयक विचार होने से यह अध्यात्मशास्त्र कहलाता है और वैद्यकशास्त्र में जीवात्मासंबद्ध शरीरविषयक विचार होने से शारीरिक शास्त्र कहलाता है। तात्पर्य यह कि दोनों शास्त्रों के मुख्यत्व कल्पना में अन्य सभी एकांशप्रतिपादक इनकी अपेक्षा गौण है। मुख्य इस जगत् में जबतक शरीरात्मसंयोग होता है, तबतक ही सारे प्रपंच का व्यवहार चल रहा है, इसवास्ते सबसे प्रथम शरीरस्वस्थ होवे, तब आध्यात्मविचार हो सकता है। अब वह शरीरस्वस्थ शारीरिक शास्त्रोक्त विधि से ही हो सकता है, इस हेतु से शारीरिकशास्त्र **'वैद्यक'** शास्त्र है, उसका ही आश्रय करना मुख्य उद्देश्य सिद्ध हुआ। आजतक कितनेक दिनों में वैद्यकशास्त्र के अनेकानेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हो गये हैं। उन ग्रन्थों के प्रसिद्ध होने से इस भरतखण्ड में वैद्यकविद्या का प्रसार होने लगा है, जिससे अनपढ़े अनाड़ी वैद्य बने हुए लोगों से रोगियों का बचाव होने लगा है। और सामान्यतः ग्रन्थ पढ़े हुए वैद्य लोगों का जो पहले अतिदौर्लभ्य था, सो अब दूर होने लगा है। यह उपकार प्रसिद्ध किये हुए ग्रन्थों के द्वारा ग्रन्थप्रकाशकों का है।

यह विचार करके हमने जैसे आजतक कई एक अन्य अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ सरल सुबोध भाषांतरों के साथ अलंकृत करके अपने मुद्रणालय में मुद्रित करके प्रकाशित किये हैं, वैसे ही इस अनुपम परोपकारी वैद्यकशास्त्र के ग्रन्थ भी सरल सुबोध भाषांतर के साथ प्रकाशित किये हैं।

ऐसे ही क्रमशः ग्रन्थप्रकाशन सदुद्योग में हमने सकल जगदुपकारक यह **त्रिमल्लभट्ट** विरचित **"योगतरंगिणी"** नामक ग्रन्थ सर्व वैद्यक संहिताओं का सारसंग्रहरूप है, ऐसा विचार करके इसे आयुर्वेदोद्धारक मथुरा निवासी **पंडित श्रीदत्तरामजी चौबे** से सरल सुबोध हिन्दी भाषा टीका निर्माण कराके परम उत्साह से स्वकीय मुद्रणालय में मुद्रित करके प्रकाशित किया है।

सविनय प्रार्थना है कि समस्त विद्वज्जन इस अनुपम ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करके वैद्यक विज्ञानभण्डार का लाभ उठावेंगे।

आपका कृपाभिलाषी-
खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस, बम्बई

श्रीः ।

अथ योगतरङ्गिणीस्थविषयानुक्रमणिका प्रारभ्यते ।



अष्टादशस्तरंगः १८

विषयाः	पृष्ठम्.

विषयाः	पृष्ठम्.
कुटजपुटपाक	१२०
श्रीपर्ण्यादिपुटपाक	”
वृद्धबालातिसापर यत्न	”
दुर्बलपर यत्न	”
कुटजावलेह	”
लघुकुटजावलेह	१२१
कपित्थाष्टक	”
अतिसारमें जल	”
लाईचूर्ण	१२२
द्वितीय लाईचूर्ण	”
बृहल्लाईचूर्ण	”
अतिसारमें त्याज्य	”

द्वाविंशस्तरंगः २२.

त्रयोविंशस्तरंगः २३.

चतुर्विंशस्तरङ्गः २४.

पंचविंशस्तरंगः २५.

षड्विंशस्तरंगः २६.

सप्तविंशस्तरंगः २७.

द्विसप्ततितमस्तरंगः ७२.

त्रिसप्ततितमस्तरंगः ७४.

षट्सप्ततितमस्तरंगः ७६.

सप्तसप्ततितमस्तरंगः ७७.

अष्टसप्ततितमस्तरंगः ७८.

एकोनाशीतितमस्तरंगः ७९.

अशीतितमस्तरंगः ८०.

एकाशीतितमस्तरंगः ८१.

इति योगतरंगिण्याः संपूर्णाऽनुक्रमणिका.

इति योगतरंगिणीभाषाटीकानुक्रमणिका समाप्ता.

ॐ श्रीशं वंदे ।

॥ श्रीऋद्धिसिद्धीश्वराय नमः ॥



अथ योगतरंगिणी ।

भाषाटीकासमेता ।



धन्वंतरिं नमस्कृत्य दत्तरामस्तु माथुरः ।
वृत्तिं योगतरंगिण्याः करोति शिशुरंजनीम् ॥ १ ॥

कपोलविगलल्लोलदानपानीयपिच्छिलम् ।
भ्रमद्भ्रमरझंकारंवन्देहंद्विरदाननम् ॥ १ ॥

अर्थ-कपोलोंसे विखरे हुए चंचल दानपानीयकरके पिच्छल (चिकना) और मँडरातेहुए भौरोंके गुंजारकरके युक्त ऐसे श्रीगणपतिको हम वंदना करते हैं ।

ग्रंथकर्त्ताकी वंशपरंपरा ।

आपस्तंवस्यारवेल्लोपनाम्नो
धाम्नोभासांकोडपल्लीभवस्य ।
तैलंगस्यप्रीतिभाजोगिरीशे
काशीवासं कुर्वतोभूरिकीर्तेः ॥ २ ॥
राज्ञांमान्यस्यात्रासिंगण्णभट्ट-
स्यासीत्पुत्रोवल्लभोवेदविद्यः ।
तस्यासीरन्सूनवोऽमीत्रिमल्लो
रामो गोपश्चेतिनाम्नात्रयोऽपि ॥ ३ ॥

अर्थ-आपस्तंबी आरवेल्ल उपनाम तेजके स्थान तथा तैलंगदेशके कोडपल्ली ग्राममें उत्पन्न श्रीशिवके परमभक्त और बडीकीर्तिवाले श्रीकाशीपुरीमें वास करते और राजाओंकरके पूजनीय ऐसे सिंगण्णभट्टके वेदविद्याका ज्ञाता वल्लभनामक पुत्र हुआ उसके त्रिमल्लभट्ट रामभट्ट और गोपभट्ट ये तीन पुत्र हुए ।

त्रिमल्लभट्टकरके योगतरंगिणीका निर्माणकथन ।

तेषुत्रिमल्लभट्टेन नाम्ना योगतरंगिणी ।
चिकित्सालिख्यतेभूरिग्रंथेभ्यःस्वपरार्थिना-

अर्थ-पूर्वोक्त वल्लभके तीन पुत्रोंमें स्वार्थी और परमार्थी ऐसे त्रिमल्लभट्टने योगतरंगिणी नामक अनेक ग्रंथोंसे चिकित्सा लिखी है ।

चिकित्साका मुख्यत्व ।

देहादुत्पद्यतेपुंसःपुरुषार्थचतुष्टयम् । ननीरोगःसकुत्रापितच्छान्तिस्तुचिकित्सया ॥ ५ ॥

अर्थ-पुरुषके देहसे पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त होते हैं परंतु वह देह कहीं भी आरोग्य नहीं अर्थात् रोगयुक्त है उस रोगयुक्त देहकी चिकित्साकरके शांति है अतएव चिकित्सा सबमें मुख्य है ।

चिकित्साका अनिष्फलत्व।

क्वचिद्धर्मःक्वचिन्मैत्रीक्वचिदर्थःक्वचिद्यशः। कर्माभ्यासः क्वचिच्चेतिचिकित्सानास्तिनिष्फला ॥ ६ ॥

अर्थ-कहीं धर्म, कहीं मित्रता, कहीं धनकी प्राप्ति, कहीं यश और कहीं कर्मकाही अभ्यास (महावरा) होताहै; अतएव चिकित्सा किसी प्रकारसे निष्फल नहीं है किंतु सफलही है । जैसे अनाथोंकी चिकित्सासे धर्म, यारदोस्तोंकी चिकित्सासे मित्रता, बडे सेठ साहूकारोंकी चिकित्सासे धनप्राप्ति, बांधवोंकी चिकित्सासे यश, और साधारण मनुष्योंकी चिकित्साद्वारा कर्माभ्यास बढताहै ।

उक्त हेतुद्वारा ग्रंथका श्रेष्ठत्व ।

अतोममश्रमस्तोमश्चिकित्सायांजयत्ययम्। संक्षिप्तारसयुक्तेयंसंहिताभुविजृंभताम् ॥७॥

अर्थ-इसीसे यह घोर मेरा परिश्रम चिकित्सामें सर्वोत्कृष्टता करके है सो यह रसयुक्त और छोटीसी योगतरंगिणी नामक संहिता पृथ्वीमें गर्जना करे ।

रोगीके यत्न करनेका फल ।

रोगपंकार्णवेमग्नंयःसमुद्धरतेनरम् । कस्तेननकृतोधर्मःकांचपूजांनसोर्हति ॥ ८ ॥

अर्थ-जो वैद्य रोगरूप कीचडके समुद्रसे इस प्राणीको निकालता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया और किस पूजाके योग्य नहीं है अर्थात् वह सब धर्म करचुका और सर्व सत्कारके योग्य है ।

रोगशांतिका यत्न ।

जन्मान्तरकृतंपापंव्याधिरूपेणबाधते । तच्छांतिरौषधैर्दानर्जपहोमसुरार्चनैः ॥९ ॥

अर्थ-पूर्वजन्मका कराहुआ पाप इस प्राणीके इस जन्ममें व्याधिरूप होकर बाधा करताहै उसकी शांति औषधसेवन, दान देना, जप करना, हवन करना और देवपूजन करनेसे होती है ।

चिकित्साके आठ अंग ।

शल्यंशालाक्यमगदंकुमारभरणंतथा । कायभूतक्रियावाजीकरणंचरसायनम्। अष्टावंगानि तस्याहुश्चिकित्सा यत्र संस्थिता ॥ १० ॥

अर्थ-१शल्यचिकित्सा, २शालाक्यचिकित्सा, ३ अगदचिकित्सा, ४ कुमारभरणचिकित्सा, ५ कायचिकित्सा, ६ भूतक्रिया, ७ वाजीकरणचिकित्सा और ८ रसायनतंत्र, ये चिकित्साके आठ अंग हैं जिन आठोंमें चिकित्सा विद्यमान है ।

चिकित्साके पाद ।

वैद्योव्याध्युपसृष्टश्चभेषजंपरिचारकाः । एतेपादाश्चिकित्सायाःकर्मसाधनहेतवः ११

अर्थ-वैद्य, रोगी, औषध, और रोगीका सेवक ये चार चिकित्साके पाद (पैर) चिकित्साकर्म साधनके कारण हैं । अर्थात् इनके विना चिकित्सा नहीं चलसकती ।

तहां वैद्य ।

ज्ञातशास्त्रःशुचिःशूरोलघुहस्तःकृतोद्यमः ।
दृष्टकर्माकृतीधर्मीसभिषक्पादउच्यते॥१२॥

अर्थ–शास्त्रज्ञाता, बाहर भीतरसे पवित्र, घोर रोगसेभी न डरनेवाला, हलके हाथका, उद्यमी, प्राचीनवैद्योंके छेदनभेदनादि कर्म जिसके देखे हुएहों और इन कर्मोंका जाननेवाला और धर्मात्मा ऐसा वैद्य उत्तम कहा है यह वैद्यपाद कहा।

रोगी ।

आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो दक्षिणो ज्ञापको रुजाम्। असर्वलक्षणः पथ्यशीलपादोऽपरो मतः॥ १३ ॥

अर्थ–द्रव्यवान्, वैद्यके वशीभूत, चतुर, अपने रोगोंको यथार्थ बतानेवाला, और जिसमें रोगके संपूर्ण लक्षण न घटतेहों, तथा पथ्यसे चलनेवाला, चिकित्साका दूसरा पैर अर्थात् ऐसा रोगी उत्तम जानना ।

औषध ।

दोषकालवयोदेशमात्राप्रकृतिरेतसाम् ।
सात्म्यंयद्भेषजंतत्स्यात्परःपादश्चिकित्सिते॥

अर्थ–दोष, काल, अवस्था, देश, मात्रा, प्रकृति और रेत इनको सात्म्य (हितकारी) हो वह चिकित्साका तीसरा पैर है अर्थात् ऐसी औषधि उत्तम होती है ।

परिचारक ।

अबह्वाशीजितस्वप्नोहितोधर्मार्थकोविदः ।
बहुदर्शीकर्मदक्षःपादःस्यात्परिचारकः॥१५।

अर्थ–जो थोडा भोजनी, जितनिद्र, हितकारी, धर्म अर्थके जाननेमें चतुर, दूरदर्शी, कर्म करनेमें चतुर, ऐसा सेवक चिकित्साका चतुर्थ पाद कहा है ।

दोष और उनके कर्म ।

वातःपित्तंकफश्चेतित्रयोदोषाःसमासतः ।
घ्नंतिदेहंविकृतास्तेविकृतावर्धयंतिच॥१६॥

अर्थ–वात, पित्त और कफ ये संक्षेपसे तीन दोष हैं [और विस्तारसे स्थान, संश्रय और प्रसरादि भेदोंसे अनेक भेद होतेहैं] यदि विकृत (कुपित) होवे तो देहको नाश करे, और अविकृत (यथाप्रकृतिस्थित) हो तो देहको बढातेहैं अर्थात् देहका पालन पोषण करतेहैं ।

वातादि दोषोंका चय कोप और उपशम ।

चयप्रकोपोपशमावायोर्ग्रीष्मादिषुत्रिषु।
वर्षादिषुचपित्तस्यश्लेष्मणःशिशिरादषु१७॥

अर्थ–वात, ग्रीष्मादि तीन ऋतुओंमें क्रमसे चय, प्रकोप और उपशम होतीहै अर्थात् ग्रीष्ममें वादीका संचय, वर्षामें प्रकोप और शरदृतुमें शमन होताहै। उसी प्रकार वर्षाऋतुमें पित्तका संचय, शरदृतुमें प्रकोप और शिशिरऋतुमें शमन होताहै। तथा शिशिरऋतुमें कफका संचय वसंतऋतुमें कफका प्रकोप और ग्रीष्मऋतुमें कफकी शांति होतीहै ।

दोषोंके स्थानादि ।

तेव्यापिनोपिहृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंस्थिताः
वयोहोरात्रिभुक्तानामंतमध्यादिगाःक्रमात्॥

अर्थ–ये वातादि दोष यद्यपि हृदय और नाभिके नीचे मध्यमें और ऊपर स्थित होकरभी अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन इनके अंत मध्य और आदिमें क्रमसे कोप होनेका समय जानना। जैसे अवस्थाके आदिमें कफका, मध्यमें पित्तका और वृद्धावस्था वातके कुपित होनेका

समय है । इसी प्रकार दिनके आदिमें कफका, मध्याह्नमें पित्तका और सायंकालमें वातका,इसीप्रकार रात्रि और भोजन आदिके उदाहरण जानने।

भूदेश ।

जांगलंवातभूयिष्ठमनूपंचकफोन्नतम् ।
साधारणंसममलंत्रिधाभूदेशमादिशेत् १९॥

अर्थ–वातप्रबल जांगलदेश, और कफप्रबल अनूपदेश, एवं साधारण देशमें दोष समान रहतेहैं । इस प्रकार तीन प्रकारका भूदेश कहा है।

मात्रा ।

मात्राचतुर्विधाज्ञेयासमामंदाचतीक्ष्णका ।
विषमाचेतिसंप्रोक्तातत्तद्दार्ढ्यविशेषतः॥२०॥

अर्थ–सममात्रा, मंदमात्रा, तीक्ष्णमात्रा और विषम इस प्रकार मात्रा चार प्रकारकी है उसी प्रकार जठराग्निभी सम, मंद, तीक्ष्ण और विषमके भेदसे चार प्रकारकी है ।

तीन प्रकृति ।

शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौविषेणैवविषक्रमे ।
तैःस्युःप्रकृतयस्तिस्रोहीनमध्योत्तमाःपृथक्।

अर्थ–जन्मके समय शुक्र और आर्तवमें स्थितदोष जैसे विषका कीडा विषमें नहीं मरे इस प्रकार उन दोषोंकरके इस प्राणीकी तीन प्रकृति होतीहैं । अर्थात् वातप्रकृति, पित्तप्रकृति और कफप्रकृति, तहां वातसे हीन प्रकृति, पित्तसे मध्यम प्रकृति और कफसे उत्तमप्रकृति जाननी।

मल और वीर्यके रक्षणपूर्वक चिकित्साकी आज्ञा ।

मलायत्तंबलंपुंसांशुक्रायत्तंतुजीवितम् ।
अतश्चिकित्सितंकार्यंसंरक्ष्यमलरेतसी॥२२।

अर्थ–पुरुषोंका बल मल (वात पित्त कफ) को अधीन है और जीवन शुक्र (वीर्य) के अधीन है । अतएव वैद्यको उचित है कि मल और वीर्यके संरक्षणपूर्वक रोगीकी चिकित्सा करे ।

अल्परोगकी उपेक्षा करनेका निषेध ।

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तुनोपेक्ष्योल्पतयागदः।
वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यःस्वल्पोपिविकरोत्ययम्॥

अर्थ–उत्पन्न होतेही रोगकी चिकित्सा करनी किंतु यह रोग थोडा है स्वयं अपने आप अच्छा हो जावेगा इस प्रकार उपेक्षा न करे । क्योंकि वह थोडाभी रोग अग्निकी चिनगारी और शस्त्रकी छोटीसी अनी तथा विषकी अल्पमात्राके समान घोर विकार करताहै । अतएव रोग होतेही रोगका यत्न करे ।

मरणासन्नकीभी चिकित्सा करनेकी आज्ञा ।

यावज्जीवंचिकित्स्यस्तुनोपेक्ष्योभिषजागदी।
कदाचिद्दैवयोगेनदृष्टारिष्टोऽपिजीवति॥२४॥

अर्थ–जबतक इस प्राणीके देहमें जीव है तबतक चिकित्सा करनी किंतु रोगीको घोररोगग्रस्त देखकर वैद्य रोगीकी उपेक्षा न कर देवे । क्योंकि कदाचित् परमात्माकी इच्छासे निश्चय मरनेवालाभी जी उठता है ।

रोगरहित होनेपर वैद्य पूजन न करनेका दोष ।

चिकित्सितंशरीरंयोननिष्क्रीणातिदुर्मतिः ।
सयत्करोतिसुकृतंतत्सर्वंभिषगश्नुते ॥ २५॥

अर्थ–जो दुर्बुद्धि रोगी, चिकित्सा करेहुए देहको वैद्यसे उऋण नहीं करता अर्थात् वैद्यको धनादि देकर संतोषित नहीं करे, वह जो कुछ सुकृत (पुण्य) करताहै वह वैद्यको प्राप्त होताहै।

लोभरहित होकर चिकित्सा करनेकी आज्ञा ।

नैवकुर्वीतलोभेनचिकित्सापण्यविक्रयम् ।
ईश्वराणांवसुमतांलिप्सेतार्थंतुवृत्तये ॥ २६॥

अर्थ-लोभी होकर चिकित्साकी दुकानदारी न करे, तथा जो ऐश्वर्यसंपन्न और धनाढ्य हैं उनसे अपनी वृत्ति (जीविका) के लियेभी अपेक्षा करना चाहिये ।

रोगपरीक्षानंतर चिकित्साकी आज्ञा ।

रोगमादौपरीक्षेतततोऽनन्तरमौषधम् ।ततः
कर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वंसमाचरेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-वैद्यको उचित है कि प्रथम रोगकी परीक्षा करे, फिर औषधकी परीक्षा करे जब रोग और औषध दोनोंकी परीक्षा करचुके तब यथाज्ञान चिकित्साको करे ।

व्याधियोंके भेद ।

कर्मप्रकोपजाःकेचित्केचिद्दोषप्रकोपजाः ।
कर्मदोषोद्भवाःकेचिन्मनःकायस्थितागदाः॥

अर्थ-कोई व्याधि कर्मोंके कोपसे होती है । और कोई दोषोंके कुपित होनेसे होतीहै । एवं कोई व्याधि कर्मज और दोषज होतीहै । ये व्याधि देह और मनमें स्थित रहतीहैं अर्थात् कोई व्याधि (ज्वरादिक) देहमें होतीहैं, और कोई (अपस्मारादिक) मनमें होतीहैं ।

कर्मज दोषज और कर्मदोषजोंकी शांति ।

कर्मक्षयात्कर्मकृतादोषजास्त्वयमौषधैः ।
कर्मदोषोद्भवायांतिकर्मदोषक्षयात्क्षयम्२९॥

अर्थ-पूर्वजन्मके दुष्ट कर्मसे होनेवाली व्याधि कर्मके क्षीण होनेसे नष्ट होतीहै । एवं दोषजन्य व्याधि अपनी २ औषध करनेसे नष्ट होती हैं । और कर्मदोषोंसे होनेवाली व्याधि कर्म और दोषोंके क्षीण होनेसे क्षय होतीहैं ।

कर्मज व्याधि ।

यथाशास्त्रंतुनिर्णीतो यथाव्याधिश्चिकि
त्सितःनशमंयातियोव्याधिः सज्ञेयः
कर्मजो बुधैः ॥ ३० ॥

अर्थ-जिसका यथाशास्त्रानुसार निदानादि करके निर्णय करा, तथा यथा व्याधिके अनुसार चिकित्सा करनेपरभी जो रोग नष्ट न होय उसको पंडित कर्मजन्य जाने ।

कर्मदोषज ।

पुण्यैश्चभेषजैःशांतास्तेज्ञेयाःकर्मदोषजाः ।
विज्ञेयादोषजास्त्वन्येकेवलावाथसंकराः ३१

अर्थ-जो व्याधि पुण्य और औषधोंकरके शांत हों वह कर्मदोषज जानना, अन्य व्याधियोंको दोषज जानना वा संकरव्याधि जाननी ।

रोगके भेद ।

रोगस्तुदोषवैषम्यंदोषसाम्यमरोगता ।
निजागंतुविभेदेनतेचरोगाद्विधामताः॥३२॥

अर्थ-दोषोंकी विषमावस्थाको रोग कहते हैं । और उनही दोषोंकी समानावस्थाको आरोग्य ऐसा कहते हैं । तहां निज और आगंतु इन भेदों करके रोग दो प्रकारके हैं ।

चिकित्साके लक्षण ।

याभिःक्रियाभिर्जायंतेशरीरेधातवःसमाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां
मतम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-जिन क्रियाओंकरके शरीरमें रसरक्तादि धातु समान होवे वह विकारोंकी चिकित्सा है और वही वैद्योंका कर्म है ।

स्वहेतूपचितादोषाःसामारसपथानुगाः ।
रसमामंपाचयित्वाकुर्युर्दोषान्पृथक्पृथक्३४

अर्थ-अपने हेतुओंकरके संचित दोष आमसहित रस वहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्त हो रस और आमको पचायके दोषोंको पृथक् २ करे हैं ।

पाचन औषधी ।

सएवपाचनोज्ञेयोनचदोषान्विपाचयेत् । दोषपाकाद्धातुपाकान्मरणंसर्वथानृणाम् ३५

अर्थ-जो दोषोंको पाचन न करे उसको पाचन औषधी कहते हैं, क्योंकि दोषपाक और धातुपाक होनेसे मनुष्योंका सर्वथा मरण होताहै । परंतु ज्वरादि रोगोंमें दूषित दोषोंका पाचन होनाही ठीक है ।

विकारके नाम न जाननेमें आज्ञा ।

विकारनामाकुशलोनजिह्रीयात्कदाचन । नहिसर्वविकाराणांनामतोऽस्तिध्रुवास्थितिः॥

अर्थ-विकार (रोग) के नाम जाननेमें चतुर न होवे तो भी वैद्य अपने मनमें कदाचित् लज्जा न करे क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी नामकरके प्रसिद्धि प्रायः नहीं है ।

व्याधिज्ञानके त्रिविध उपाय ।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधेर्ज्ञानंत्रिधामतम् । आयुरादिदृशास्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतोऽपरम्॥

अर्थ-दर्शन (देखना) स्पर्शन (छूना) और प्रश्न (पूँछना) यह रोग जाननेका उपाय तीन प्रकारका है, तहां आयुआदि देखनेसे, शीतलादिक स्पर्शसे, और गुप्तरोगादिकोंका ज्ञान प्रश्न करनेसे निश्चय होता है ।

साध्यासाध्य और याप्य व्याधि ।

स्वभावाद्व्याधयःसाध्याः केचिद्याप्याउपेक्षिताः । साध्यायाप्यत्वमायांतियाप्याश्चासाध्यतांतथा ॥ ३८ ॥

अर्थ-कोई व्याधि स्वभावसेही साध्य होती है. कोई उपेक्षा करनेसे याप्य होती है, साध्य व्याधि याप्यत्वको प्राप्त होती है और याप्य व्याधिके यत्न न करनेसे असाध्य हो जाती है ।

अपथ्य करनेसे फिर रोग ।

निवृत्तोपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना । दोषैर्मार्गीकृतेदेहेखेषुसूक्ष्मइवानलः ॥ ३९ ॥

अर्थ-दोषोंके देहमें मार्ग करनेसे दूर होने परभी व्याधि थोडेसे कुपथ्य करनेसे फिर लौटकर आय जाती है जैसे इन्द्रियोंमें सूक्ष्म पवन ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानंवेदनायाश्चनिग्रहः । एतद्वैद्यस्यवैद्यत्वंनवैद्यःप्रभुरायुषः ॥ ४० ॥

अर्थ-व्याधिका परिज्ञान और उस व्याधिजन्य पीडाका शमन (शांति) करना यही वैद्यका वैद्यत्वहै। किन्तु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है। भावप्रकाशमें दूसरा अर्थ कराहै उसमें वैद्यको आयुषका मालिक लिखा है ।

अनुक्तदोषोंके यत्न करनेकी आज्ञा ।

नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः । अनुक्तमपिदोषाणालिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ४१

अर्थ-विना वातादिदोषोंके रोग नहीं होता (यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध) है, अतएव बुद्धिमान् वैद्य-जिन रोगोंके लक्षण नाम नहीं कहे उनको भी उन्हीं २ दोषोंके चिह्नोंसे निश्चय करके रोगका यत्न करे ।

वातादि दोषोंके लक्षण जाननेकी आवश्यकता ।

वातस्यपित्तस्यकफस्यचापि विकारिणः कायवतांहिकाये । प्रकोपहेतुःकुपितस्य लिंगं चिकित्सितंचेतिनिरूपणीयम्॥४२॥

अर्थ-वात पित्त और कफ विकारवालोंके देहमें वातादि दोषोंके प्रकोपका हेतु (कारण)

और कुपित दोषोंके लक्षण तथा उन दोषोंकी चिकित्सा कहनी चाहिये, इसी कारण अब आगे प्रत्येक दोषके कोप होनेके कारण लक्षण और चिकित्सा हम लिखते हैं।

वातकोपके कारण ।

रूक्षैस्तिक्तैः कषायैः कटुभिरनशनवेंगसंधारणैश्च व्यायामैश्च व्यवायैःप्रतरणबलवद्विग्रहैर्जागरैश्च । श्यामानीवारकंगुप्रभृतिभिरशनैरुल्लसाद्भिःपयोदैरन्नेजीर्णेचजंतोरितिभवतितनौमारुतस्यप्रकोपः॥४३॥

अर्थ-रूखे कडुए कषेले चरपरे रसोंके सेवन करनेसे, लंघन करना, मलमूत्रादि उपस्थित वेगोंके रोकनेसे, दंडकसरत और मैथुन करनेसे, नदी आदिके तैरनेसे, बलवान्‌के साथ लडाई लडनेसे, जागरणसे, तथा सामखिया, नीवार, कांगनी आदि वातकारी अन्नकेभोजनसे,बद्दलोंके होनेसे अर्थात् वर्षाऋतुमें, अन्नके पचनेके उपरांत, इस प्राणीके देहमें वादीका कोप होताहै।

पित्तकोपके कारण ।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसंपर्कतिलातसीदधिसुरासुक्तारनालादिभिः । भुक्तेजीर्यतिभोजने चशरदिग्रीष्मेसति प्राणिनां मध्याह्नेचतथार्धरात्रसमयेपित्तप्रकोपोभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ-चरपरे खट्टे गरम दाहकारी तीक्ष्ण और निमकके पदार्थ सेवनसे, क्रोध करना, उपवास (व्रत) तप और स्त्रीसंग इनके करनेसे, तिल अलसी दही मद्य सिरका कांजीके सेवन करनेसे, भोजनके पचनेके समय, और भोजनके समय तथा शरदृतु, ग्रीष्मऋतु, मध्याह्न, और अर्धरात्रिके समय मनुष्योंके पित्तका कोप होता है।

कफकोपके कारण ।

गुरुमधुरातिशीतदधिदुग्धनवान्नपयास्तिलविकृतीक्षुभक्षणातिदिवाशयनैः । समविषमाशनाध्यशनपायसपिष्टकृतैरपि च कफःप्रकुप्यतिमधौचदिनादिषुच ॥४५॥

अर्थ-भारी, मधुर, अत्यंत शीतल, दही, दूध, नवीन अन्न, जल, तिलके पदार्थ, ईखके पदार्थ (खांड गुड) इनके सेवन करनेसे तथा दिनमें सोना, भोजनके समय, तथा विषमभोजन और भोजनके ऊपर भोजन करना, एवं पायस (खीर) और पिष्ट (चून, मैदा, पिट्ठीके) पदार्थ इनके सेवनसे कफ कुपित होताहै, तथा चैत्र वैशाखमें और प्रातःकाल कफका कोप होता है।

इतिप्रकोपकारणैःप्रकोपमेत्यसर्वगाः । समीरणादयस्तनौरुजःसृजंतिजंतुषु ॥४६॥

अर्थ-इस प्रकार अपने २ प्रकोप कारणोंकरके सर्वत्र गमन करनेवाले वातादिक दोष कुपित होकर प्राणियोंके देहमें रोग उत्पन्न करते हैं।

वातपित्तकफकोपलक्षणं
सूचितंयदिहसूत्रसंग्रहे ।
प्रोच्यतेतदिहसांप्रतंमया
रुक्परीक्षणमनेनकारयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-कुपित वात पित्त और कफके जो लक्षण इस ग्रंथमें कहे हैं, उनको मैं इस स्थलमें कहताहूं वैद्योंको उचित है कि इन कोपलक्षणोंकरके रोगकी परीक्षा करे अर्थात् रोगमात्रमें इनही तीनों दोषोंके कोई न कोई चिह्न अवश्य होते हैं।

कुपितवातके लक्षण ।

हृशि शिरसि च शंखश्रोत्रनेत्रांतरेषु
भुविहदिहनुमन्यास्कंधमूर्धोर्ध्वसंधौ ।
रुगतिनिशिदिवाल्पास्यादकस्मात्प्रशांता

भवतिहिभुजजंघास्तब्धसंकोचताच ॥४८॥
कटिविटपयकृत्सुक्लोम्निचप्लीह्निपृष्ठे
जठरवृषणवक्षःकुक्षिकक्षांतरेषु ।
प्रसरतिगुरुशूलंनाभिवस्तिस्तनेषु
त्रिकगुदवलिगुह्योपांतपक्षद्वयेषु ॥ ४९ ॥

वदनविरसतास्याद्वर्चसःकर्कशत्वं
भवतिवपुषिकार्श्यंरात्रिनिद्रानिवृत्तिः ।
त्वचिचपरुषतास्यात्स्याच्चवैषम्यमग्ने-
रितिपवनविकारेलक्षणंप्रोक्तमेतत् ॥ ५० ॥

अर्थ-नेत्र, शिर, कनपटी, कान, नेत्रोंके भीतर, हृदय, ठोडी, गरदन, कंधे, मस्तकके ऊपरकी संधी, इनमें दिनरात्र मंद २ पीडा होवे, और अकस्मात् शांति होजावे, तथा भुजा (हाथ) जंघा (पींडरी) इनका रह जाना, तथा इनका संकोच होना, कमर, हाथपैर आदि अंग, यकृत् क्लोम (पिपासास्थान), प्लीहा, पीठ, पेट, अंडकोश, वक्षस्थल, कूख, काँख, नाभि (टूडी), बस्ति (मूत्राशय), स्तन, त्रिक, गुदाकी वली, गुह्य (लिंग) के समीपभागोंमें और दोनों बगलके पांसुओंमें घोर पीडा होवे; मल गाढा उतरे, देह कृश होजावे, रात्रिमें नींदका न आना, देहकी चमडी खरदरी होजावे, जठराग्निकी विषमता अर्थात् कभी भूख अधिक लगे और कभी क्षुधा मंद लगे, ये संपूर्ण लक्षण वादीके विकारमें अर्थात् जब वात कुपित होता है तब होते हैं ।

कुपित पित्तके लक्षण ।

भ्रममदमुखशोषस्वेदसंतापमूर्च्छा
मुखनयननखत्वङ्मूत्रविट्पीतताच ।
प्रलपनमतिसारश्चारुचिश्चज्वरश्च
तुडतिशिशिरतेच्छापित्तरोगस्यलिङ्गं॥५१॥

अर्थ-भ्रम (भौर) मद (मस्तपना), मुखका सूखना, पसीनोंका आना, संताप, मूर्च्छा (बेहोशी) मुख, नेत्र, नख (नाखून), देहकी त्वचा, मूत्र और मल इनका पीला होना, प्रलाप (बकवाद करना), अतिसार (दस्तोंका होना), अरुचि, ज्वर, तृषा (प्यास) शीतलताकी इच्छा होना ये संपूर्ण लक्षण पित्तरोगके जानने ।

कुपित कफके लक्षण ।

अंगस्यगौरवमपाटवमान्तराग्ने-
रुत्क्लेशताचहृदयस्यमुखप्रसेकः ।
आलस्यमास्यमधुरत्वमकांडकंडू-
रापांडुतानयनयोरतिरोमहर्षः ॥ ५२ ॥
प्रज्ञाप्लुतिर्वमथुपीनसकासनिद्रा
तंद्रादयश्चुलचुलायनमुल्बणंच ।
स्यादोष्ठकंठरसनारदमूलतालु
घ्राणेक्षणश्रवणशष्कुलिकान्तरेषु ॥ ५३ ॥
श्लेष्मोद्भवेभवतिलिंगमिदंविकारे
संसर्गजेषुचगदेषुभवेद्द्विदोषम् ।
जंतोरिदंपवनपित्तकफप्रकोप-
लिंगंत्रिदोषजरुजिप्रविभज्ययोज्यम् ।५४॥

अर्थ-अंगोंका भारी होना, जठराग्निका मंद होना हृदयका उत्क्लेश (रद्द होनेकी इच्छासी प्रतीत होना), मुखसे पानीका गिरना, आलस, मुखका मीठा होना, अनायास, खुजलीका चलना, नेत्रोंका कुछ २ पीला होना, अत्यंत रोमांचोंका होना, प्रज्ञा (संज्ञाका) नाश, सरेकमां, पीनस, खाँसी, निद्रा, तन्द्रा (आदिशब्दसे संन्यासादिक) तथा होठ, कंठ, जीभ, दाँतोंकी जड (मसूढे) तालुआ, नासिका, नेत्र, कान और शष्कुली (काँख) इनका अत्यंत स्फुरण ये लक्षण कफजन्य विकारमें होते हैं और जो दोषसंसर्गज (मिले हुए) हैं अर्थात् द्विदोषज हैं उनमें जो जो

लक्षण वात पित्तादिके कहे हैं वे दो २ दोषोंके मिलेहुए होते हैं जैसे वात पित्तके रोगमें वात पित्तके मिले हुए चिह्न होतेहैं इसी प्रकार वात कफ और कफ पित्त इनमें भी जानना । और त्रिदोष (वात पित्त कफ) के रोगमें इस प्राणीकी देहमें तीनों दोषोंके चिह्न मिश्रित होते हैं । उनको बुद्धिमान् वैद्य पृथक् पृथक् करके योजना करे ।

कफवातौवातकफौवातःपित्तंचवृद्धिसमौ ।
त्रिभिराद्यैस्त्रिभिरंत्यौस्त्रिभिराद्यपरैस्तदन्यैश्च ।

अर्थ–इस संसारमें छः रस हैं १ मधुर (मीठा) २ अम्ल (खट्टा) ३ लवण (निमकीन) ४ कटु (चरपरा) ५ तिक्त (कडुआ) और ६ कषाय (कषेला) तहाँ आदिके (मधुर अम्ल और लवण) रसोंसे कफ बढताहै और बादी शमन होती है। इसी प्रकार अंत्यके (कटु तिक्त और कषेले) रसोंसे वात बढाताहै और कफ शमन कहिये नाश होताहै इसी प्रकार (आद्यपरैः) तहाँ आद्य (मधुर) रससे परे जो अम्ल लवण और कटु रस इनसे पित्त बढताहै और (तदन्य) कहिये मधुर तिक्त और कषेले रसोंकरके पित्त शमन होता है ।

अंत्याद्यावाद्यमाद्यांत्यावंत्यंकोपसमौमलम् ।
मध्यमध्येतरौमध्यंप्रयोगान्नयतस्त्रिकौ५६ ॥

अर्थ–अंत्यत्रिक (कटु तिक्त और कषाय) तथा आद्यत्रिक (मधुर अम्ल और लवण) ये दोनों त्रिक आद्यमल (वात) को कोप और शमन करे है, अर्थात् अंत्यत्रिक (कटु तिक्त कषाय) रसोंसे वादीका कोप होता है । आद्यत्रिक (मधुर अम्ल और लवण रसों) से वादीका शमन होता है ।उसी प्रकार आद्यत्रिक (मधुराम्ल-लवण) से अंत्यमल (कफ) का कोप होताहै, और अंत्यत्रिक (कटुतिक्तकषाय) से कफ शांत होताहै । एवं मध्य (अम्ल रस) और मध्यौ कहिये (लवण और कटुरस) तथा इन अम्ल लवण और कटुरससे अन्य कहिये मधुर तिक्त और कषाय रस ये क्रमसे मध्यमल (पित्त) को कोप और शमन करते हैं, अर्थात् अम्ल लवण कटु रससे पित्त कुपित होता है और मधुर तिक्त कषाय रसोंसे पित्तकी शांति होतीहै ।

आद्यमध्यंनयत्यंतंमधुराद्याःशमेतरौ ।
आद्यंमध्यांत्यमाद्यंमध्यांतिमम्
तिमम् ॥ ५७ ॥ आद्यमध्यं मध्यमांत्यमाद्यं
मध्यांतिमंक्रमात् । आद्यंदोषंरसाःप्रायः
प्रयोगपरिशीलिताः ॥ ५८ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ–मधुरादिक छः रस हैं, तिनमें आद्यरस (मधुर) आद्यदोष (वादी) और मध्यदोष (पित्त) को शमन करता है, एवं अंत्यदोष (कफ) को बढाता है उसीप्रकार अम्लरस वादीको शमन करे है और पित्तकफको कुपित करे है. लवण रस वादीको शमन करे और पित्तकफको कुपित करता है। उसी प्रकार कटुरस अंत्यदोष (कफ) को शमन करे और वातपित्तको बढावे तिक्तरस पित्तकफको शमन करे और आद्यदोष (वादी) को कुपित करता है । तथा कषेला रस पित्तकफको शमन करे और वादीको कुपित करे है । परन्तु इससे विपरीतभी दीखता है जैसे मधुर और शीतल उष्णवान् जीवंती (डोडी) कफको शमन करे है। मिष्ट रसवाले जब वादीको शमन करते हैं। उसी प्रकार अम्ल तिक्तादि रसोंमें विपरीतता है यह वस्तुका प्रभावही कारण है क्योंकि प्रभावको मुख्यता है ।

रात्र्याह्नोरादिमध्यान्ते पुनश्चांत्याद्यमध्यमे मध्ये चान्ते तथादौ च दोषैर्नाल्पातिशूलरुक् ॥ ५९ ॥

अर्थ–रात्रि और दिन इनके आदि मध्य और अंत्य भागमें वादीसे पीडा नहीं हो मध्यम और अत्यंत होतीहै, अर्थात् दिनरात्रिके आदिमें वादीकी पीडा नहीं हो, तथा दिनरात्रिके मध्यमें अल्प पीडा होतीहै, और दिनरात्रिके अंत्यभागमें अत्यंत पीडा होतीहै, एवं रात्रिदिनके आदिमें पित्तजन्य पीडा नहीं होती । अंत्यभागमें अल्प पीडा और मध्यभागमें अत्यंत पीडा होतीहै । इसी प्रकार दिनरात्रिके मध्यभागमें कफजन्य पीडा नहीं हो अंत्यभागमें न्यून पीडा होतीहै । और आदिभागमें कफकी अधिक पीडा होतीहै ।

भुक्तेजीर्यतिजीर्णेन्नेजीर्णेऽभुक्तेच जीर्यति । जीर्णे जीर्यति भुक्ते च दोषैर्नाल्पातिशूलरुक् ॥ ६० ॥

अर्थ–अन्नके भोजन करनेपर वादीकी पीडा अर्थात् वादीका शूल नहीं हो, पचनेके समय थोडा २ होताहै, और जब अन्न परिपाक हो जाता है तब वादीका (दर्द) अधिक होताहै । एवं पित्तका शूल अन्न पचनेपर नहींहो, भोजनके समय थोडा २ होने लगेहै, और जब अन्नके पचनेका समय होताहै तब अत्यंत होताहै । उसी प्रकार कफका शूलरोग अन्न पचनेके पश्चात् नहीं हो । और पचनेके समय थोडा २ होता है, एवं भोजन करनेके समय कफका शूल अत्यंत होताहै ।

कफपित्तानिलाःपूर्वमध्यान्तेष्वव्यवस्थिताः ॥ देहाहोरात्रिवयसांसंधिष्वपिकफानिलौ६१॥

अर्थ–कफ पित्त और वादी ये देह, दिन, रात्रि, और अवस्था इनके पूर्व मध्य और अंतमें यथाक्रमसे रहतेहैं । जैसे देहके पूर्वभाग (शिरसे लेकर वक्षस्थलपर्यंत) में कफ रहताहै । देहके मध्यभाग (आमाशयसे लेकर नाभिपर्यंत) में पित्त रहताहै, तथा देहके अंतभाग (अर्थात् नाभीसे नीचेके भाग) में वादी रहतीहै । इसी प्रकार दिनके पूर्वभागमें कफ, मध्यभागमें पित्त और दिनके अंतभागमें वादी रहती है । इसी प्रकार रात्रिके पूर्वभागमें कफ मध्यभागमें पित्त और अंतके भागमें वादी रहती है । अवस्थाके पूर्वभागमें कफ, तरुणावस्थामें पित्त और पक्वावस्थामें वादी रहती है । इसी प्रकार देह दिन रात्रि और अवस्था इनकी संधिमें कफ वादी रहते हैं । जैसे देहके पूर्वभाग और मध्यभागकी संधिमें अर्थात् उर (छाती) में कफ, मध्यभाग अंत्यभागकी संधि (पक्वाशय) में वादी रहतीहै। दिनरात्रिकी संधि अर्थात् सायंकालके प्रदोषमें कफ और रात्रिदिनकी संधिमें (प्रातःकालमें) वादी रहतीहै । बाल्य और तरुणताकी संधि (कुमारावस्थामें) कफ, और तरुणवृद्धावस्थाकी संधिमें वादी रहतीहै ।

आदावन्तेचदौर्बल्यंविसर्गादानयोर्नृणाम् । मध्येमध्यंबलंत्वन्तेश्रेष्ठमादौचनिर्दिशेत् ६२

अर्थ–विसर्गकाल (वर्षादिऋतुत्रय दक्षिणायन) और आदानकाल (शिशिरादिऋतुत्रय

---

१. विसर्ग नाम त्यागनेका है अर्थात् इस ऋतुमें चन्द्रमा प्राणियोंके बलको त्याग करता है इसीसे विसर्गकाल कहाताहै । २ आदान नाम ग्रहणका है अर्थात् इस ऋतुमें सूर्य प्राणियोंके बलको ग्रहण करता है इसीसे आदानकाल कहाताहै ।

उत्तरायण) इन दोनों कालोंमें यथाक्रम आदि अंतमें मनुष्योंके बलकी हानी जाननी, अर्थात् वर्षादित्रयऋतुओंके आदिमें क्रमसे बल क्षीण होता है–जैसे वर्षाऋतुमें बल क्षीण अधिक होता है, प्रावृट्ऋतुमें मध्यम और शरदृतुके आदिमें अत्यंत अल्पबल क्षीण होता है । उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुत्रयके अंतमें बल क्रमसे क्षीण होताहै जैसे शिशिरऋतुके अंतमें न्यून, वसंतऋतुके अंतमें मध्यम, और ग्रीष्मऋतुके अंतमें अत्यंत बल क्षीण होता है । उसी प्रकार विसर्ग और आदानकालके मध्यमें प्राणियोंके मध्यबल जानना यह प्रथमही हम स्पष्ट दिखाय आये हैं एवं आदानकालके आदिमें अर्थात् शिशिरऋतुमें और विसर्गकालके अंतमें (हेमंतऋतुमें) प्राणियोंमें अधिक बल होता है । इस श्लोकका तात्पर्यार्थ यह है कि विसर्गकालमें क्रमसे बल बढे है, और आदानमें यथोत्तर बल क्षीण होताहै जैसे विसर्गकालके प्रथमदिनमें जितना बल होताहै, आदानकालके अंतके दिनमें उतनाही बल होताहै । उसी प्रकार विसर्गकालके दूसरे दिन बल बढता है, विसर्गकालके अंत्यके पूर्व जो दिन है उसमें उतनाही बल घटता है इसी प्रकार सब ऋतुओंमें जानना चाहिये ।

निदानके पश्चात् कर्षण बृंहण चिकित्साकी आज्ञा ।

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् । चिकित्सितंकर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीतवैद्योविधिवत्सुयोगैः ॥

अर्थ–प्रथम वैद्य–हेतु[1], आदिरूप[2], आकृति[3] सात्म्य[4], और जाति[5], इन भेदोंसे रोगीके संपूर्ण रोगोंको निश्चय कर फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रयोगोंसे कर्षण[6] और बृहंणरूप[7] द्विविध चिकित्सा यथाक्रम करे ।

औषधकी उत्कृष्ट शक्तिवर्णन ।

दिव्यौषधीनांबहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिवविस्फुरन्ति । ज्ञात्वेतिसन्देहमपास्य धीरैःसंभावनीयाविविधप्रभावाः ॥

अर्थ–देवताओंके समान दिव्यौषधोंके अनेक भेद अनंतशक्ति प्रगट हैं, इस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य जान संदेहको दूर कर औषधोंको अनेक प्रभाववाली माने ।

चतुर्विध रोगोंके चिकित्साकी आज्ञा ।

स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा रोगा भवेयुःकिलकर्मदोषजाः । तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ।

अर्थ–स्वाभाविक, आगंतुक, कायिक और आंतरिक, ऐसे चार प्रकारके कर्मज और दोषज रोगोंके नाशके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप उत्तम योगोंकी योजना वैद्य करे ।

वातकी चिकित्सा ।

तत्रतावदनिलः शममेतिस्नेहबस्तिपरिषे-

१ हेतुनाम जो रोग होनेका कारण है उसे कहते हैं । २ आदिरूप पूर्वरूपको कहते हैं । ३ आकृति अर्थात् रूप साक्षात् रोगको कहतेहैं । ४ सात्म्यनाम हितकारी आहारविहार औषधके सेवनको कहते हैं । ५ जातिनाम रोगके भेदोंके जाननेको कहते हैं । ६ कर्षणनाम दोषोंको सुखाकर निकालना । ७ बृंहणनाम दोषोंके बढाने तथा देह पुष्ट करनेको कहते हैं ।

कनिरूहैः ॥ भुक्तमात्रबलदेननराणामोद-नेनमृदुमांसरसेन ॥

अर्थ–तहां स्नेहबस्ति, परिषेक (तरडा देना) निरूहण करना तथा भोजन करतेही मनुष्योंके बल करे ऐसा भात और नरम २ मांसरसकरके वादी शमन होतीहै ।

पित्तकी चिकित्सा ।

द्राक्षयात्रिफलयात्रिवृताच स्रंसनेनरुधिर-स्रुतिभिश्च । सर्पिषाचसितयापयसाच स्वादुनाभवतिपित्तनिवृत्तिः ॥

अर्थ–दाख, त्रिफला, निसोथ, दस्तोंका कराना, रुधिरका निकालना, घी, खांड, दूध और स्वादिष्ठपदार्थोंके सेवन करनेसे पित्तकी निवृत्ति होती है ।

कफकी चिकित्सा ।

लंघनेन वमनेन यवान्नप्राशनेनशिरसश्च विरेकैः । कटूफलादिकवलैरहिमाभि-श्चाद्भिरत्रशममेतिकफश्च ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां ग्रंथावतारिका-वर्णनं नाम प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥

अर्थ–लंघन करना, वमन करना, जौका भोजन, नस्यकर्म, विरेक (जुल्लाब), कटूफलादि कवलोंकरके तथा गरमागरम जल पीनेसे कफ शमन (शांत) होता है । यह चिकित्साकालिका ग्रंथमें लिखी है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां ग्रंथावतारिकावर्णनं नाम प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥

द्वितीयस्तरंगः ।

परिभाषा ।

नमानेनविनायुक्तिर्द्रव्याणांजायतेक्वचित् ॥ अतःप्रयोगकार्यार्थमानमत्रोच्यतेमया ॥१॥

अर्थ–विना प्रमाणके द्रव्योंकी युक्ति कहीं नहीं होसक्ती, अतएव प्रयोगोंके कार्यके वास्ते अब इस जगह हम मान (तौल) को कहते हैं ।

मानंचद्विविधंप्रोक्तंकालिङ्गंमागधंतथा ॥ कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमितिमानविदोविदुः २

अर्थ–मान–कलिंग और मागधके भेदसे दो प्रकारका है, परंतु कलिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठहै इस प्रकार मानके ज्ञाताओंने कहाहै । कालिंग देश (जगन्नाथजीसे पूरव और कृष्णानदीके किनारेपर्यंत) अर्थात् उडियादेशमें जो तोल वर्त्ती जाताथा उसका नाम कालिंगमान होगया । और जो तोलगयाप्रान्तमें वर्त्ता जाताथा इसीसे उसको मागधपरिभाषा कहा, परंतु कोई कोई आचार्य गौडमान अर्थात् बंगाल देशका मान तीसरा बतलाते हैं सो इसी कलिंगमानके अंतर्गत जानना । इनमें सुश्रुत कलिंगमानको कहताहै और चरक मागधमानको कहेहैं ।

त्रसरेणु और वंशी ।

त्रसरेणुर्बुधैःप्रोक्तस्त्रिंशतापरमाणुभिः ॥ त्रसरेणोस्तुपर्यायोनाम्नावंशीनिगद्यते ॥३॥

अर्थ–३० परमाणुका १ त्रसरेणु होताहै, और उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक नाम वंशी है।

मरीची और राई ।

जालांतरगतैःसूयकरैर्वंशीविलोक्यते ॥ षडंशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःषड्भिश्चरा-जिका ॥ ४ ॥

अर्थ– मकानकी जाली झरोखोंमें सूर्यकी किरण पडतीहैं, उन किरणोंसे जो धूलके कण

१ हमारे महर्षियोंने परमाणु उसको मानाहै कि जिससे बारीक और दूसरी वस्तु नहीं है अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म टुकडेको परमाणु कहाहै ।

उडते दीखतेहैं, उन कणोंकी वंशी संज्ञा है, ६ वंशीकी मरीची, और ६ मरीचीकी १ राई होती है।

तिसृभीराजिकाभिश्चसर्षपःप्रोच्यतेबुधैः ॥ यवोष्टसर्षपैःप्रोक्तोगुञ्जास्यात्तच्चतुष्टयम्॥५॥

अर्थ-तीन राईकी १ सरसों, आठ सरसोंका १ यव (जौ), चार जौकी १ रत्ती (घूंघची) होती है।

षड्भिस्तुरक्तिकाभिःस्यान्माषकोहेमधानकौ ॥ माषैश्चतुर्भिःशाणःस्याद्धरणःसनिगद्यते ॥ ६ ॥ टंकःस एवकथितः

अर्थ-छः रत्तीका एक मासा इस मासेको हेम और धान्यकभी कहतेहैं। चार मासेका १ शाण होताहै; इस शाणको धरण और टंकभी कहते हैं।

तद्द्वयंकोलउच्यते ॥ क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रक्ष्णःसनिगद्यते ॥ ७ ॥

अर्थ-दो शाणका १ कोल होताहै, उसे क्षुद्रभ वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं।

कोलद्वयंचकर्षः स्यात्साप्रोक्तापाणिमानिका ॥ अक्षःपिचुःपाणितलंकिंचित्पाणिश्चतिंदुकम्॥८॥बिडालपदकंचैवतथा षोडशिकामता ॥ करमध्येहंसपदंसुवर्ण कवलग्रहः ॥ ९ ॥ उदुंबरंचपर्यायैःकर्ष एवनिगद्यते ॥ १० ॥

अर्थ-दो कोलका १ कर्ष होताहै. इस कर्षको पाणिमानिक, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबरभी कहतेहैं, अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं। कर्षको लौकिकमें तोला कहते हैं।

स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ॥ ११ ॥ शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयंमुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥ प्रकुञ्चःषोडशीबिल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥

अर्थ-दो कर्षका १ अर्धपल जिसको शुक्ति (सीप) अष्टमिकाभी कहते हैं, दो शुक्तिका १ पल होताहै। उसको मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और विल्वभी कहते हैं।

पलाभ्यांप्रसृतिर्ज्ञेयाप्रसृतंचनिगद्यते ॥ प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥ १३ ॥ अर्धमानंचसज्ञेयःकुडवाभ्यां चमाणिका ॥ शरावोष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १४ ॥

अर्थ-दो पलकी १ प्रसृति इसे प्रसृतभी कहते हैं, दो प्रसृतिकी १ अंजलि, इसको कुडव अर्धशरावक और अष्टमानभी कहते हैं, दो कुडवकी मानिका होतीहै उसे शराव और अष्टपलभी कहते हैं।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ॥ भाजनंकांस्यपात्रंचचतुःषष्टिपलश्चसः ॥ १५ ॥

अर्थ-दो शरावका १ प्रस्थ अर्थात् शेर होताहै, और चार प्रस्थका १ आढक, आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहते हैं, इसके ६४ पल और २५६ तोले होते हैं।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणःकलशोनल्वणोमतः ॥ उन्मानंचघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकः ॥ द्रोणाभ्यांशूर्पकुंभौचचतुःषष्टिशरावकः १६॥

अर्थ-चार आढकका १ द्रोण होताहै उसको कलश, नल्वण, उन्मन, उन्मान, घट और राशि कहते हैं। दो द्रोणका एक शूर्प

और कुंभ होताहै उस शूर्पके ६४ शराव अथात् ५१२ पल और १०४८ तोले होते हैं ।

शूर्पाभ्यांचभवेद्द्रोणी बाहुगोणीचसा स्मृता ॥ द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ १७ ॥ चतुःसहस्रपलिकाषण्णवत्यधिकाचसा ॥ पलानां द्विसहस्रंचभारएकःप्रकीर्तितः ॥ १८ ॥

अर्थ-दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है, उसे बाहुगोणीभी कहते हैं, चार द्रोणीकी १ खारी होती है, उस खारीके ४०८६ पल और १६ ३४४ तोले होतेहैं दोहजार पलका १ भार होताहै।

तुलापलशतंज्ञेयासर्वत्रैषविनिश्चयः ॥

अर्थ-सौ पलकी एक तुला होती है, यह निश्चय सर्व परिभाषाओंमें जानना ।

माषटंकाक्षबिल्वानिकुडवःप्रस्थमाढकम् । राशिर्गोणीखारिकेतियथोत्तरचतुर्गुणाः १९

अर्थ-माष, टंक, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी और खारी, ये प्रत्येक तोल एकसे दूसरी चतुर्गुण अर्थात् चौगुनी है ।

गुंजादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणांतावन्मानंसमंमतम् २०

अर्थ-रत्तीसे लेकर कुडवपर्यंतकी तोल पतली गीली और सूखी द्रव्योंकी कहे प्रमाणही लेनी चाहिये । अर्थात् न्यूनाधिक न करे ।

प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणंतद्द्रवार्द्रयोः ॥ मानंतथातुलायास्तुद्विगुणंनक्वचित्स्मृतम् २१

अर्थ-तथा जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध ये लेनी होय तो प्रस्थपर्यंत दूनी लेवे, तथा प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत जो द्रव्य है वह दूनी लेवे ऐसा कहीं नहीं लिखा, अतएव इनका मान सूखी औषधके समानही लेना चाहिये

मृद्वृक्षवेणुलोहाद्यैर्भाण्डंयच्चतुरंगुलम् । विस्तीर्णंचतथोच्चंचतन्मानंकुडवंवदेत् ॥२२॥

अर्थ-दूध आदि पतली वस्तुके नापनेकी युक्ति कहते हैं । मिट्टी, दरखत, बांस, लोह आदिका चौखूटा बरतन लंबा व चौडाई और ऊंचाई नीचाईमें चारही अंगुलका हो उसकी कुडवसंज्ञा है इसके द्वारा घी, दूध, तेल आदि पतली वस्तु नापी जाती है ।

यदौषधंतुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ॥ तन्नाम्नैवसयोगोहिकथ्यतेक्वचिदन्यथा ॥२३॥

अर्थ-जिस योगमें जो औषध प्रथम कही जावे, वह योग उसी औषधके नामसे विख्यात होता है । जैसे अमृतादिक्काथ पिप्पल्यादि चूर्ण हैं ।

इति मागधपरिभाषा ।

अथ कलिंगपरिभाषा ।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैःप्रोच्यतेबुधैः ॥ यवद्वयेनगुंजास्यात्त्रिगुञ्जोवल्लउच्यते ॥२४॥ माषोगुंजाभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवेत्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैःशाणःसनिष्कष्टङ्कएवच २५॥ गद्याणोमाषकैःषड्भिःकर्षःस्याद्दशमाषकः। चतुःकर्षैःपलंप्रोक्तंदशशाणमितंबुधैः ॥२६॥ चतुःपलैश्चकुडवंप्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः ॥

अर्थ-बारह सफेद सरसोंका १ यव होताहै । दो जौकी १ गुजा (रत्ती) होतीहै, तीन रत्तीका १ वल्ल होताहै । आठ रत्तीका, मासा होताहै । कहीं २ सात रत्तीकाभी मासा होताहै । चार मासेका १ शाण होताहै, उसको निष्क-टंकभी कहतेहैं; छः मासेका एक गद्याण होताहै और दश मासेका एक कर्ष होताहै ४ कर्षका एक पल होताहै, वह दशशाणके बराबर होताहै । चार

पलका एक कुडव होताहै, और प्रस्थादिक जो शेष तोल है वह मागधपरिभाषाके समान जान लेना चाहिये ।

त्रुटिःस्यादणुभिःषड्भिस्तावल्लिक्षासमीरिता।
ताभिःषड्भिर्भवेद्यूकाषड्यूकाभीरजोमतम्।
जालांतरगतैःसूर्यकरैर्वशीविलोक्यते ॥२८॥
तस्यानामान्तरंज्ञेयंत्रसरेणूरजस्तथा ॥

अर्थ–छः अणुकी १ त्रुटि संज्ञा होती है, और छः त्रुटिकी १ लिक्षा संज्ञा है, छः लिक्षाकी यूका संज्ञा है। और छः यूकाकी रज संज्ञा है। जालांतरगत सूर्यकी किरणोंमें जो रज उडती दीखती है उसको वंशी कहते हैं, उसी वंशीका दूसरा नामांतर त्रसरेणु और रज है।

कृष्णात्रेयात् ।

रजांसित्रीणिसिकताताभिःषोडशभिस्तथा ।
सर्षपश्चभवेद्गौरस्तेचाष्टौतण्डुलंविदुः ॥
तद्वयंधान्यकंमाषंतद्वयंरक्तिका मता ॥३०॥
रक्तिकाद्वितयेनापिवल्लःप्रोक्तोविशारदैः ॥
चतुर्भिश्चण्डिकातैःस्यादेवंमानपरंपरा ॥ ३१
इति श्रीयोगतरंगिण्यां परिभाषावर्णनं नाम द्वितीयस्तरंगः ॥ २ ॥

अर्थ– तीन रजकी सिकता संज्ञा है, उन सोलह सिकताओंकी १ एक सपेद सरसों होतीहै, आठ सपेद सरसोंका एक तंडुल होता है, उन २ तंडुलका धान्यमाषक कहलाता है, दो धान्य माषककी १ रत्ती होती। पंडितोंने दो रत्तीकीभी वल्ल संज्ञा मानी है। चार वल्लकी चंडिका संज्ञा है। इस प्रकार मानपरंपरा जाननी।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां परिभाषावर्णनं नाम द्वितीयस्तरंगः ।

तृतीयस्तरंगः ।

युक्तायुक्तकथनम् ।

नवान्येवहियोज्यानिद्रव्याण्यखिलकर्मसु ।
विनाविडंगकृष्णाभ्यांगुडधान्याज्यमाक्षिकैः

अर्थ–संपूर्ण औषधके प्रकरणमें नवीन औषधी लेनी चाहिये, परंतु वायविडंग, पीपल, गुड, धनिया, घी और सहतके विना अर्थात् वायविडंगादिक वस्तु पुरानी लेनाही उचित है।

गुडूचीकुटजावासाकूष्माण्डश्चशतावरी ॥
अश्वगंधासहचरौशतपुष्पाप्रसारिणी ॥ २ ॥
प्रयोज्याचसदैवार्द्राद्विगुणांनैवकारयेत् ॥

अर्थ–गिलोय, कूडा, अडूसा, पेठा, शतावर, असगंध, पियावाँसा, सौंफ और प्रसारणी ये औषध सदैव प्रयोगमें गीली डाले, परन्तु इनको दूनी न डाले, जितनी लिखी होय उतनी डाले।

शुष्कंनवीनंयद्द्रव्यंयोज्यंसकलकर्मसु ॥ ३ ॥
आर्द्रंचद्विगुणंयोज्यमेषसर्वत्रनिश्चयः॥

अर्थ–सर्व कर्ममें सूखी और नवीन औषध लेवे, यदि वह औषध गीली होवे तो दूनी लेय यह सर्वत्र निश्चय है ।

कालेऽनुक्तेप्रभातंस्यादंगेऽनुक्तेजटाभवेत् ४॥
भागेऽनुक्तेहिसाम्यंस्यात्पात्रेनुक्तेतुमृन्मयम्।

अर्थ–जहां औषध लेनेका काल नहीं कहा तहां प्रभात जानना। जहां औषधीका अंग नहीं कहां तहां जड लेनी। जहां भाग नहीं कहा तहां समान लेवे। जहां पात्रका नाम नहीं कहा तहां मिट्टीका पात्र लेवे ।

एकमप्यौषधंयोगेयस्मिन्यत्पुनरुच्यते ॥५॥
मानतोद्विगुणंप्रोक्तंतद्द्रव्यंतत्त्वदर्शिभिः ॥

अर्थ-जिस औषधीको एक योगमें दो वार कही हो उसको तोलमें दूनी लेनी चाहिये ऐसा औषधतत्त्वके ज्ञाताओंने कहा है ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वंतद्रूपमौषधम् ॥ ६ ॥
मासद्वयात्तथाचूर्णंहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ।
हीनत्वंगुटिकालेहौलभेतेवत्सरात्परम् ॥७॥
हीनाःस्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात्तथा ।
औषध्योलघुपाकाःस्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परम् ।
पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ताआसवाधातवोरसाः ॥

अर्थ-उत्तम औषध वर्ष दिनके पश्चात् गुणहीन होतीहै । चूर्ण दो महीनेके पश्चात् हीनवीर्य होजाता है । गुटिका (गोली) और अवलेह एक वर्षके अनंतर हीनवीर्य हो जाते हैं । तथा घृत तैलादिक चार महीनेके उपरांत हीनवीर्य हो जाते हैं । हलके पाकवाली औषध एक वर्षके पश्चात् हीनवीर्य हो जाती है । तथा आसव (द्राक्षासव, कुमार्यासवादिक), धातु (हरताल, अभ्रक, सुवर्ण और चांदी आदिकी भस्म), रस (चंद्रोदयादिक) ये जितने पुराने होते हैं उतनेही गुणवान् अधिक होते हैं ।

व्याधेरयुक्तंयद्द्रव्यंगणोक्तमपितत्त्यजेत् ।
अनुक्तमपियद्युक्तंयोजयेत्तत्रतद्बुधः ॥९॥

अर्थ-व्याधिको अहितकारी औषधी गणमें कही हुईकोभी त्याग देवे, और जो औषध व्याधिको हित करनेवाली है परंतु उसका गणमें पाठ लिखा भी न होय तथापि वैद्य स्वयं योजना कर देवे ।

वज्राभावेतुवैक्रान्तंस्वर्णाभावे तु माक्षिकम् ॥ हेममाक्षिकजंसत्त्वंमतंहेमसमं गुणैः ॥ १० ॥ विमलामाक्षिकंज्ञेयंध्रुवंरजतवद्गुणैः ॥ मुक्ताभावेक्षिपेन्नूनंमुक्ताशुक्तिंचतद्गुणाम् ॥ ११ ॥ अभावे भ्रकसत्त्वस्यकान्तलोहंप्रयोजयेत् ॥ कांताभावेतीक्ष्णलोहमित्युक्तंरसदर्पणे ॥१२॥

अर्थ-हीराके अभावमें वैक्रांतमणि (कांसुला) लेना चाहिये । सुवर्णके अभावमें सुवर्णमाक्षिककी भस्म लेवे । जहां चांदी न मिलती होवै वहां रूपामक्खीका सत्त्व डाले, रूपामक्खी चांदीके समान है । जहां मोती न मिलते हों वहांपर मोतीकी सीप लेवे । अभ्रकसत्त्वके अभावमें कांतलोह लेना चाहिये कांतलोहके अभावमें तीक्ष्ण (खेडी) लोह लेना चाहिये । यह रसदर्पण ग्रंथमें लिखा है ।

अभावेमधुनोयोज्योगुडोजीर्णश्चतद्गुणः॥ सिताभावेभवेत्खण्डंशाल्यभावेचषष्टिकाः ॥ १३ ॥ असंभवेतुद्राक्षायाःप्रदेयंकाश्मरीफलम् ॥ वृक्षाम्लंनभवेत्तत्रदाडिमाम्लंप्रयोजयेत् ॥ १४ ॥ वेतसाम्लस्य चाभावेहरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥ अभावे चन्दनस्यापिमेलयेद्रक्तचन्दनम् ॥ १५॥ तुगाभावेप्रदातव्यात्वक्क्षीरीतद्गुणाबुधैः ॥ अभावेसतिपत्राणां रसादेर्भावनाविधौ ॥ विषमुष्टिकषायेणषड्गुणाभावनाभवेत् ॥ १६ ॥ मेदाजीवककाकोलीद्वन्द्वाऽभावेप्रयोजयेत् ॥ यष्टीविदार्यश्वगंधाबलावाराहिकाथवा ॥ १७॥

अर्थ-सहतके अभावमें पुराना गुड डाले । मिश्रीके अभावमें खांड डालनी । शाली चावलोंके अभावमें साठी चावल लेने चाहिये । दाखके अभावमें कंभारीका फल डाले । जहां तंतडीककी खटाई न मिले तहां अनारदानेकी खटाई मिलावे । अमलवेतके अभावमें चनाखारकी खटाई डाले । सपेद चंदनके अभावमें लाल चंदन

मिलावे । तवाखीरके अभावमें वंशलोचन मिलावे। जहां रसादिभावनाओंमें पित्तादिक अर्थात् मोर मछली आदि पित्तोंकी भावना देनी लिखी है । यदि वहां पर पित्ते न मिले तो कुचलाकी छः गुनी भावना देनी चाहिये । यह गोरखनाथका मत है। मेदा महामेदाके अभावमें मुलहटी लेवे । जीवक ऋषभकके अभावमें विदारीकंद लेय । काकोली और क्षीरकाकोलीके अभावमें असगंध डाले । अथवा मेदा जीवक और काकोलीके अभावमें बला और बाराहीकंद लेवे । यह वैद्यालंकार ग्रंथमें कहा है ।

फलमाममपुष्टंचत्यजेद्बिल्वादृतेसदा ॥ द्राक्षाबिल्वशिवादीनांफलंशुष्कंगुणोत्तरम्१८

अर्थ-बेलफलको त्यागके जितने फल हैं, वे कच्चे और अपुष्ट सदैव त्याज्य हैं, परंतु बेलफल कच्चा और अपुष्ट ग्राह्य है । दाख, बेल, आमला आदि फल सूखेहुए अधिक गुणवान् होते हैं । आदिशब्दसे बहेडे और फालसे आदिका ग्रहण है अर्थात् येभी सूखे उत्तम होतेहैं यह गोरखसिद्धका मत है ।

अंतःसंमार्जनेमोदास्थानेयोज्याजवानिका॥ बहिःसंमार्जनेमोदाह्यजमोदैवगृह्यते ॥ १९॥ अंतःसंमार्जनेयोज्यंवचास्थानेकुलिञ्जनम् ॥ बहिःसंमार्जनेसैवप्रयोक्तव्यामनीषिभिः२०॥

अर्थ-अंतःसंमार्जन अर्थात् पचाव आदिके वास्ते जो औषध पेटमें खाई जावे, उस जगह अजमोदाके स्थानमें अजमायन लेनी और बहिःसंमार्जन अर्थात् देहके ऊपर मालिस आदि करनी होवे तो अजमोदके स्थानमें अजमोदही लेना चाहिये । अंतःसंमार्जनमें वचके स्थानमें कुलंजन डाले, और बहिःसंमार्जनमें वचके स्थानमें वचही डालनी चाहिये ।

कृष्णजीरकयोगेनकर्तव्येभक्ष्यभेषजे ॥ तस्यस्थानेप्रदातव्योजीरकःकुशलैःसदा ॥ २१ ॥ सारश्चखदिरादीनांनिंबादीनां त्वचः स्मृतः ॥ फलंचदाडिमादीनांपटो लादेर्दलंमतम् ॥ २२ ॥

अर्थ-जहां काले जीरेके योगसे भक्ष्य औषध बनाना लिखा है, वहांपर काले जीरेके स्थानमें कुशल वैद्य सपेद जीरा मिलावे । खदिर आदि औषधोंका सार लेना, नीम आदि वृक्षोंकी छाल लेनी, अनार आदिका फल लेना, और पटोल आदि वेलके पत्ते लेने उचित हैं । यह वृद्धशौनकने कहाहै ।

क्वचित्पत्रंक्वचिन्मूलंक्वचित्पुष्पंक्वचित्फलम् ॥ क्वचिद्बीजंक्वचित्क्काथंक्वचिद्वल्कं क्वचिज्जलम्॥२३॥क्वचिन्नालंयोजनीयंक्षीरं क्षारंक्वचित्क्वचित् ॥ एकैकस्यौषधस्यैवयथायोगंप्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ-एक एकही औषधका यथा प्रयोगानुसार कहीं पत्ता, कहीं जड, कहीं फूल, कहीं फल, कहीं बीज, कहीं काढा, कहीं वक्कल कहीं रस, कहीं नाल, कहीं दूध, और कहीं क्षार मिलाना चाहिये ।

अर्धंसिद्धरसस्यतैलघृतयोर्लेहस्यभागोऽष्टमः संसिद्धाखिललोहचूर्णगुटिकादीनांतथासप्तमः॥ योदीयेताभिषग्वरायसरुजानिर्दिश्यधन्वन्तरिंदेहारोग्यसुखाप्तयेनिगदितोभागःसधान्वंतरः ॥ २५ ॥

अर्थ-सिद्धरस (पारदकी भस्म चंद्रोदयादिक) में वैद्यका आधा भाग, तेल, घृत और

अवलेह इनमें आठवां भाग, तथा संपूर्ण लोहोंकी भस्म (सुवर्णसे लेकर लोहपर्यंतकी भस्म) चूर्ण, गोली, आदिशब्दसे पाक अवलेह इत्यादिकमें सप्तम भाग, जो रोगी धन्वतंरिके उद्देशकरके वैद्यको देताहै उसकी देहमें आरोग्य और सुखकी प्राप्ति होतीहै । ये भाग धन्वंतरिका कहलाताहै, इस वास्ते अवश्य देना चाहिये ।

क्रीतद्रव्यस्यभैषज्यभागश्चैकाद शोहियः ॥ वणिग्भ्योगृह्यतेवैद्यैरुद्रभागःसकथ्यते॥२६॥

अर्थ- खरीदी हुई औषधमें ग्यारहवां भाग जो दूकानदारसे वैद्य लेताहै वह रुद्रभाग कहलाताहै, तात्पर्य यह है कि बिकी औषधमें वैद्य रोगीसे कुछ न लेवे, किंतु बेचनेवालेने जितनी औषध बेची उसमें ग्यारहवां भाग वैद्यको लेना चाहिये । यह उसका भाग है ।

गृहीत्वाधिकमीशांशाद्योऽसमीचीनमौषधम् ॥ दापयेल्लुब्धवद्वैद्यःसस्याद्विश्वासघातकः ॥ २७ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां युक्तायुक्तकथनं नाम तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

अर्थ-जो वैद्य रुद्रभागसे अधिक लेताहै, अथवा उस बेचनेवालेसे मिलकर आप कुछ अपने लिये द्रव्य लेना करके बिकवावे, वह लोभी वैद्य विश्वासघाती जानना, उसका न इस संसारमें भला होवे, न परलोकमें यह भी वैद्यालंकार ग्रंथमें लिखाहै ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां युक्तायुक्तकथनं नाम तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

चतुर्थस्तरंगः ।

स्नेहाद्या अथ कथ्यन्ते योगा रोगोपघातकाः । स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥ १ ॥ मज्जाचतंपिबेन्मर्त्यः किंचिदभ्युदितेरवौ ॥

अर्थ-अब रोगोंके नाशक स्नेहादिक कहते हैं । स्नेह चार प्रकारका है, जैसे घृत, तेल, वसा और मज्जा ये चार स्नेह कुछ सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ।

स्थावरोजंगमश्चेतिद्वियोनिःस्नेहउच्यते ॥ तिलतैलंस्थावरेषुजंगमेषुघृतंवरम् ॥ २ ॥ द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान्। पिबेत्र्यहंचतुरहंपञ्चाहंषडहंतथा ॥ ३ ॥ सप्तरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥ दोषकालाग्निवयसांबलंदृष्ट्वाप्रयोजयेत् ॥४॥

अर्थ-वह स्नेह दो प्रकारका है १ स्थावर और दूसरा जंगम, तिनमें स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं, उनमें तिलका तेल श्रेष्ठ है । और जंगम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उनमें घी श्रेष्ठ है । घी और तेल दोनोंके एकत्र होनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी तेल और वसा (मांसका तेल) ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहतेहैं । एक घी तेल वसा और मज्जा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं । इस प्रकार स्नेहके तीन भेद हैं । घी तीन दिन, तेल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और मज्जा (हड्डीका तेल) छः दिन पीवे यह घृतादिस्नेहोंके पीनेका क्रम है । सात दिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य होजाताहै, फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता । वाता-

दिक दोष, काल, अग्नि, अवस्था, इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा देनी चाहिये।

हीनां च मध्यमां ज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥५॥ अमात्रयातथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः ॥ स्नेहः करोति शोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञताः ॥ ६ ॥ देयादीप्ताग्नयेमात्रा स्नेहस्य पलसंमिता ॥ मध्यमाथ त्रिकर्षा स्याज्जघन्याचद्विकार्षिकी ॥ ७ ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन (दो कर्षकी) मध्यम (तीन कर्षकी) और श्रेष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य विचारके बुद्धिमान् वैद्य योजना करे। स्नेहादिक–स्नेह पीनेके कहे प्रमाणको त्यागके न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पीनेके कालको त्यागके प्रथम या पश्चात् पीवे, अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्या आहार विहार करे तो सूजन, बवासीर, तंद्रा, निद्रा और संज्ञा नाश करे; इस वास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे। दीप्ताग्निवाले मनुष्यको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे। जिसकी मध्यमाग्नि है उसको तीन कर्ष और जिसकी मंदाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्षके प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये।

केवलंपैत्तिकेसर्पिर्वातिकेसैंधवान्वितम् ॥ पेयंबहुकफेचापिव्योषक्षारसमन्वितम् ॥८॥ रूक्षक्षतविषार्तानांवातपित्तविकारिणाम् ॥ हीनमेधास्मृतीनांचसर्पिःपानेप्रशस्यते ॥९॥ कृमिकोपानिलाविष्टाःप्रवृद्धकफमेदसः ॥ पिबेयुस्तैलसात्म्याय तैलं दाढर्यार्थिनश्च ये॥ १० ॥ व्यायामकर्षिताः शुष्का रेतोरिक्तामहारुजः ॥ मन्दाग्निमारुतप्राणा वसायोग्यानरामताः ॥ ११ ॥ क्रूराशयाःक्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ॥ मज्जानमापिबेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥ १२ ॥

अर्थ–पित्तके रोगमें केवल घृत पीवे, वातके रोगमें सेंधानिमक मिलाके घृत पीवे। अत्यंत कफकी वृद्धिमें त्रिकुटा और जवाखार आदि मिलायके घी पीना चाहिये। अब घृत पीने योग्य प्राणियोंको कहते हैं–रूक्ष, उरःक्षत, तथा विषदोष इनकरके पीडित देहवाले प्राणियोंको, तथा जिनके वातपित्तका विकार है उनको, एवं हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहाहै। जिनके उदरमें कृमिविकार है, वादीकरके व्याप्त है शरीर जिन्होंका, अत्यंत बढा हुआहै कफ और भेद जिन्हेंके, ऐसे मनुष्योंको तैल पिलावे, एवं जिनकी प्रकृतिको तेल रुचे अर्थात् झिलताहो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये। मल्लादि युद्ध (दंड कसरत) तथा धनुषआदिका खींचना इनकरके पीडित है शरीर जिन्होंका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, घोर है पीडा देहमें जिनके, तथा अग्नि और वायु ये प्रबल हैं जिनके, ऐसे मनुष्य वसा पीनेके योग्य जानना। दुष्ट है कोष्ट जिन्होंका, दुःख सहनेवाला, वातसे पीडित, एवं दीप्त है अग्नि जिनकी ऐसे मनुष्येंको मज्जा पीना अथवा घी पीना हितकारी है।

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि॥ वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा॥ १३ ॥ नस्याऽभ्यंजनगंडूषैर्भूर्द्धकर्णाक्षितर्पणैः ॥ तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ १४ ॥ घृते कोष्णं

जलंपेयंतैलेयूषःप्रशस्यते ॥ वसामज्जाविधौमंडमनुपानंसुखावहम् ॥ १५॥

अर्थ–शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे, गरमीकी ऋतुमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और वादी जिनके प्रबल होवे वह घृतादि स्नेह दिनमेंही पीवे. इस प्रकार स्नेहपानका क्रम जानना । नस्य, अभ्यंजन, गंडूष (कुरले करना) तथा मस्तक, कर्ण और नेत्रोंके तर्पणमें वातादि दोषोंका बलाबल विचार तेल अथवा घी इनकी योजना वैद्य करे । घी पीकर उसपर गरम जल पीवे, तथा तेल पीकर उसके ऊपर यूष पीवे । मांसस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मंड पीवे तो सुखकारी होय । इस प्रकार स्नेहोंके अनुपान जानना ।

वृद्धबालकृशारूक्षाःक्षीणास्राःक्षीणरेतसः ॥ वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥ १६ ॥ रूक्षस्यस्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ॥ १७ ॥

अर्थ–वृद्ध, बाल, कृश, रूक्ष, जिनका रुधिर क्षीण होगयाहो, एवं हीनवीर्यवाले, वादीसे पीडित और तिमिरसे पीडित, ऐसे मनुष्योंको स्नेहन करना उत्तम है । जो रूक्ष हैं उनको स्नेहोंकरके स्नेहन करे, और जो अतिस्नेहयुक्त हैं उनको रूक्षण करना चाहिये ।

अतिस्निग्धके लक्षण ।

भक्तद्वेषोमुखस्रावोगुदेदाहःप्रवाहिका ॥ तंद्रातीसारपांडुत्वं भृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यने घृतादिक स्नेह बहुत पियेहों उसके लक्षण–भोजनमें अप्रीति, मुखसे लार गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पडजावे ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने ।

श्यामाकचणकाद्यैश्च भक्तपिण्याकसक्तुभिः ॥ रूक्षणं कारयेदेतैर्यथादोषं बलाबलम् ॥ १९ ॥

अर्थ–जिस रोगीको अत्यंत स्निग्ध जाने उसको सामखिया और चने आदि रूखे अन्न, तथा भात खल और सत्तू इत्यादि वस्तुओं करके रोगीके दोष और बलानुसार रूक्षण करे ।

स्नेहव्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥ दिवास्वप्नमभिष्यंदिरूक्षान्नंचविवर्जयेत् २०॥

अर्थ–स्नेहका सेवन करनेवाला दंडकसरत, शीतलवस्तुका सेवन, मलमूत्रादि वेगोंका धारण करना, रात्रिमें जागना, दिनमें सोना, अभिष्यंदि (दही आदि) पदार्थोंका सेवन, तथा रूक्ष अन्नका सेवन करना त्यागदेवे ।

अथ स्नेहपाकविधिः ।

विघ्नेशक्षेत्रपालौबटुकमपि शुभे वासरेपूजयित्वातैलस्याज्यस्यकिंवारचयतिनिपुणःसंस्कृतिंसंप्रदायात् ॥ आदौवह्निंप्रदद्याद्यदवधिशनकैः शब्दफेनव्ययः स्यात्पश्चान्मृत्पिंडकैस्तद्दशभिरलघुभिर्नातिपीनैर्विशोध्यम् ॥२१॥ एकंसंस्थाप्यघस्रं विधिवदथपचेद्धासरादग्निमांद्यंकाथैःकल्कैश्चदुर्गंधैस्तदनुसुरभिभिः शोधयेत्तौर्विशोध्यम् ॥ कस्तूरी चंदनं ग्लौर्जलजलदशठीरक्तपाटीरकुष्ठत्वङ्मंजिष्ठातुरुष्कागुरुनखरदलश्वेतकाकोलमुख्यैः ॥ २२ ॥

अर्थ–गणपति, क्षेत्रपाल और बटुक इनका शुभदिनमें पूजन कर, फिर तेल अथवा घीकी विधिको कुशल वैद्य गुरुसंप्रदायानुसार प्रारंभ

करे। प्रथम तेल अथवा घीको लोहेके कढावमें भर चूल्हेपर रखके मंदमंद अग्नि देवे, कि–जबतक तेलमें झाग न आवे, और घीमें शब्द न होवे। फिर क्रमसे अग्निको बढावे, पश्चात् मिट्टीके दश गोले कि जो न बहुत बडे हों, न बहुत छोटे हों, उनसे तेल अथवा घृतका शोधन करे। इस प्रकार एक दिन उस तैलको स्थापन करके फिर दूसरे दिन मंदाग्निसे पचावे। तथा क्काथ है, कल्क है, दूध है, एवं सुगंधित वस्तुओंसे उस तेलका शोधन करे, फिर कस्तूरी, सपेदचंदन, कपूर, नेत्रवाला, नागरमोथा, लालचंदन, कूठ, दालचीनी, मजीठ, तुरुष्क (शिल्हक), अगर, नखद्रव्य, तगर, सपेदकाकोली इत्यादिक सुगंधित औषधोंसे तैलका शोधन करे। यह सारसंग्रहमें लिखाहै।

"तैलंकृत्वाकटाहेविमलदृढतरेमंदमंदानिलैस्तत्पक्वंनिष्फेनभावंव्रजतिकिलयदाशैत्यभावंततस्तु ॥ मंजिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनालिकैःसामलैःसाक्षपथ्यैःसूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितस्तैलगंधंजहाति ॥"

अर्थ–अब तैलमूर्च्छाके नियम कहते हैं– लोहेके दृढ कढावमें मंद २ अग्निसे तेल पाक करे, जब तेल झागरहित हो जावे, तब चूल्हेसे उतारके कुछ शीतल होनेपर पिसी मजीठको जलमें घोरके क्रमसे धीरे २ उस तेलमें छिडकता जावे, और तेलको पचाता जाय, उसी प्रकार पिसी हुई हलदीको जलमें घोरके धीरे २ क्रमसे डाले, फिर लोध, नागरमोथा, नलिका, आंवला, बहेडा, हरड, केतकीकी जड, वडकी कोंपल और नेत्रवाला इन सबको पीस जलमें घोरके न्यारी २ तेलमें छिडके और उस तेलको अग्निपर चलाता जाय। तथा इस तेलमें चौगुना जल मिलायके पाक करे, जब कुछ जल शेष रहे तब उतारके ७ दिन धरा रहने देवे तो तेलकी दुर्गंध दूर होवे। इसी हलदी और मजीठ आदिको मूर्च्छाद्रव्य कहते हैं।

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौयेचान्येत्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः॥ सूचीपुष्पवटावरोहनलिकातस्याश्च पादांशकादुर्गंधंविनिहत्यतैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥

अर्थ–अब इन उक्त औषधोंके डालनेके परिमाणका नियम कहतेहैं कि–जितना तेल होवे उसका षोडशांश मजीठ लेवे, और बाकी सब द्रव्य मजीठकी चतुर्थांश लेनी (जैसे १६ सेर तेल है तो मजीठ १ सेर लेवे) एवं त्रिफला, नागरमोथा, हलदी, नेत्रवाला, लोध इत्यादि सब द्रव्य पाव २ भर लेवे। तैलको मूर्च्छित करनेसे तैलकी दुर्गंध दूर होकर उत्तम सुगंध आने लगतीहै तथा उस तेलका लाल वर्ण उत्पन्न होताहै।

"आम्रजंबूकपित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः॥ शोधनंतिलतैलस्यपल्लवानांतुपंचकम्॥"

अर्थ–आम, जामन, कैथ, बिजौरा और बेल इन पांचोंके पत्तोंको पल्लवपंचक कहतेहैं। यह तिलतेलके शोधनके वास्ते हैं।

जलस्नेहौषधीनाचप्रमाणंयत्रनोदितम् ॥ तत्रस्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्काथश्चतुर्गुणः ॥ २३ ॥ स्नेहाच्चतुर्गुणंकाथ्यंसदाच स्नेहसंविधौ ॥ चतुर्गुणंजलंदत्वाक्काथःकाथ्यसमोमतः ॥ २४ ॥

अर्थ-जहांपर जल स्नेह और औषधोंके लेनेका प्रमाण नहीं कहा, तहां औषधसे चौगुना स्नेह और स्नेहसे चौगुना क्वाथ लेना चाहिये । स्नेहसे चौगुनी औषध सदैव स्नेहसाधनमें लेनी, तथा चौगुना जल डाले तो क्वाथ तैलके बराबर मिलावे । यह चरकमें लिखाहै ।

स्नेहमें जलका प्रमाण ।

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्क्वाथ्यं चतुर्गुणम् ॥ क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारिक्वाथः क्वाथ्यसमोमतः ॥ २५ ॥ मृदौ चतुर्गुणंदेयं कठिनेष्टगुणंजलम् ॥ कठिनात्कठिने द्रव्येवारिषोडशभागकम् ॥ २६ ॥

अर्थ-कल्कसे चौगुना स्नेह, स्नेहसे चौगुना औषध, और औषधसे चौगुना जल, तथा औषधके समान क्वाथ लेना चाहिये । जब स्नेहसाधन करे, यदि मृदु औषध होय तो जल चौगुना डाले, यदि औषधि कठिन होय तो अठगुना जल और कठिनसेभी कठिन अर्थात् बहुत कठोर द्रव्यका साधन करना होय तो उसमें सोलहगुना जल डाले ।

सिद्धस्नेहके लक्षण ।

स्नेहकल्कोयदांगुल्यावर्तितोवर्तिवद्भवेत् । वह्नौक्षिप्तेचनोशब्दस्तदासिद्धंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-स्नेहका कल्क उंगलियोंमें लेकर मीडनेसे बत्तीसी बटजावे; और उसको अग्निमें गेरनेसे चटचटाहट शब्द न करे, तब जाने कि स्नेह सिद्ध होगया ।

शब्दव्युपरमेप्राप्तेफेनस्योपशमेतथा ॥ गंधवर्णरसादीनां संपत्तौसिद्धिमादिशेत् ॥२८॥घृतस्यैवंविपक्वस्यसंसिद्धिकुशलोभिषक् ॥ फेनोद्गमेचतैलस्यशेषं घृतवदादिशेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-जिस समय घृतमें शब्द होना जाता रहे, और झागोंका आना शांति होजावे, तथा गंध वर्ण और रसकी उत्पत्ति होय तब घृत सिद्ध हुआ जानना, इस प्रकार कुशल वैद्य घृतसिद्धिके लक्षणोंको जाने । परंतु तेलमें झाग आनेलगे तब जाने कि तेल सिद्ध होगया । शेष लक्षण सब घृतके समान जानने । यह वैद्यालंकार ग्रंथमें लिखा है ।

अकल्कयोग्यद्रव्याणां कठिनानां विचारतः ॥ क्वाथो विधीयतेऽन्येषां कल्क एव भिषङ्मतः ॥ ३० ॥

अर्थ-जो द्रव्य कठिन होनेके कारण कल्क नहीं हो सकेहैं उनका काढा करके स्नेहमें मिलावे और नम्र तथा जिनका कल्क हो सकता हो उनका तो वैद्य कल्कही करके डाले । यह वैद्यालंकारमें लिखा है ।

आदौसंचारयेत्क्वाथंपश्चात्कल्कंततःपयः ॥ ततोन्यत्सुरभिद्रव्यमेषस्नेहविधौक्रमः ॥३१॥

अर्थ-अब स्नेहसाधनमें क्रम कहतेहैं, कि; प्रथम स्नेहमें क्वाथ डालके पक्व करे । फिर कल्क, फिर दूध, दूधके पश्चात् अन्यसुगंधित द्रव्य मिलावे । यह स्नेहसाधनमें क्रम जानना ।

क्षीरंस्नेहसमंदद्यादनुक्तेस्नेहसंविधौ ॥ शकृद्रसंमांसरसंमूत्रंसौवीरकादिकम् ३२॥ स्नेहादष्टगुणंदेयंजलंचद्विगुणंक्षिपेत् ॥ अधावशिष्टः कर्तव्यः पाकोगंधांबुकं ततः॥ ३३ ॥ चन्द्रकस्तूरिकादीनांसहःस्रांशंप्रयोजयेत् ॥ पुष्पाणिगन्धनिर्यासंसिद्धंशीतेवतारिते ॥ ३४ ॥

अर्थ-जहां स्नेह साधनमें किसी वस्तुका प्रमाण न कहा वहां स्नेहके समान दूध डाले,

तथा गोबरका रस, मांसरस, गोमूत्रादिमूत्र, कांजी आदि ये स्नेहसे आठगुने मिलावे, तथा जल दूना डाले । इनको मिलायके अग्निपर रख आधा शेष रक्खे फिर सुगंधितजल डालके पाक करे । एवं कपूर कस्तूरी आदि स्नेहके हजारवें भाग मिलावे तथा फूल गंधकी निर्यास ये जब स्नेह सिद्ध होकर शीतल होजावे तब उतारके मिलावे । यह चरकमें लिखाहै ।

दृषत्पिष्टोभवेत्कल्कःक्काथोग्निक्कथितोमतः॥

अर्थ–सिलपर पीसके चटनीके समान लुगदी करनेको कल्क कहतेहैं और जो औषधमें चौगुना जल डालके चतुर्थांश शेष अग्निपर करा जावे उसको क्काथ कहतेहैं ।

त्रिविधस्नेहपाक और उसके गुण ।

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा । ईषत्सरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥ मध्यपाकस्यसंसिद्धिःकल्केनीरसकोमले ॥ ३६ ॥ ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको भवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वंदग्धपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ ३७ ॥ अतिपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमांद्यकरश्चसः ॥ नस्यार्थेस्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ ॥ ३८ ॥ अभ्यंगार्थेखरःप्रोक्तोयुंज्यादेवं यथोचितम् ॥

अर्थ–स्नेहपाक तीन प्रकारका है–१ मृदु, २ मध्य, ३ खर, तहां कल्क द्रव्यका कुछ थोडासा रसका अंश शेष रहनेसे मृदुपाक कहाताहै, और जो कोमल हो तथा कल्क रसके रहित हो उसको मध्यपाक कहते हैं, एवं कुछ थोडा कठिन होनेसे खरपाक कहलाता है । इसके पश्चात् अधिक पाक होनेसे दग्धपाक कहलाता है । ये दग्धपाकवाला स्नेह कार्यसाधक नहीं होता है । किंतु यह दाहको प्रगट करेहै । तथा अत्यंत पाक हुआ स्नेह निर्वीर्य और मंदाग्निकारक जानना । कहीं "आमपक्वश्च निर्वीर्यो वह्निमांद्यकरो गुरुः" ऐसा पाठ है इसका यह अर्थ है कि कच्चा हुआ पाक जिसका ऐसा स्नेह निर्वीर्य और मंदाग्नि करे तथा भारी है । नस्यके वास्ते मृदुपाक, और सर्वकर्ममें मध्यपाकवाला स्नेह लेवे तथा मालिस करनेमें खरपाकवाला स्नेह लेवे, इस प्रकार यथोचित स्नेह होना चाहिये ।

घृततैलगुडादींस्तुसाधयेन्नैकवासरे ॥ प्रकुर्वन्त्युषिताह्येतेविशेषाद्गुणसंचयम् ३९॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां स्नेहपाकविधिर्नाम चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

अर्थ–घृत, तेल और गुडादिकोंको यदि बनाना होय तो एक दिनमेंही न बनावे, किंतु धीरे २ बनावे । इसमें यह कारण है कि–ये घृत तैलादिक जितने दिन वासित करे जाते हैं उतने ही अधिक गुणोंको करेहैं ।

इति श्रीयोगतरंणीभाषाटीकायां स्नेहपाकविधिर्नाम चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

पंचमस्तरंगः ।

पंचकर्मोमें प्रथम स्वेदनविधि ।

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसंज्ञकौ। उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्तिहारिणः ॥ स्वेदौतापोष्मजौप्रायःश्लेष्मघ्नौसमुदीरितौ।उपनाहस्तुवातघ्नःपित्तसंज्ञोद्रवोहितः ॥ २ ॥ महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदो महान्मतः ॥ दुर्बलेदुर्बलःस्वेदोमध्यमे मध्यमोमतः ॥ ३ ॥

अर्थ-पसीने निकालना चार प्रकारका है, उनके नाम जैसे ताप, उष्म, उपनाह और द्रव ये चार प्रकारके पसीने वादीकी पीडा दूर करते है । तहां ताप और उष्म ये दो प्रकारके स्वेद कफनाशक हैं । उपनाहसंज्ञक स्वेद वातनाशक है । और पित्ताधिक्यमें द्रवसंज्ञक स्वेद हितकारि है । बलवान्के महाव्याधिमें और शीतमें महान् स्वेद अर्थात् अधिक पसीने निकालने, एवं दुर्बलके दुर्बल स्वेद, तथा मध्यम बलवाले पुरुषके मध्यम पसीने निकालने चाहिये ।

"येषांनस्यंप्रदातव्यंबस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ॥ शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वस्वेद्याश्चतेमताः ॥"

अर्थ-जिन प्राणियोंको नस्य देना है, तथा बस्तिकर्म करना है, एवं जिनको वमन विरेचन द्वारा शोधन करनाहै उन सबको प्रथम स्वेदनकर्म करना चाहिये ।

स्वेद्याऊर्ध्वंत्रयोपीहभगंदर्यर्शसस्तथा ॥ अश्मर्याचातुरोजंतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ४ ॥ पश्चात्स्वेद्योहृतेशल्येमूढगर्भगदेतथा ॥ कालेप्रसूताऽकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंबिनी ॥ ५ ॥

अर्थ-भगंदर, बवासीर और पथरी रोगवाले मनुष्योंके प्रथम पसीने निकाल फिर शस्त्रकर्म कर वैद्य रोगको शमन करे । जिस स्त्रीके पेटमें गर्भका शल होवे, उसके निकलनेके पश्चात् तथा नौ महीनेके पश्चात् अथवा नौ महीनेके प्रथम प्रसूत होनेसे उसके देहके पसीने निकाले ।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् । स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैःस्पृशेत् ॥ ६ ॥ स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ-संपूर्ण स्वेद निकालने हो तो निर्वात (जहां हवा न आती हो वहांपर) तथा भोजन पचजानेके पश्चात् निकाले, और जिसके पसीने निकाले हो उस प्राणीके हृदयको शीतल वस्तुओंकरके स्पर्श करे । स्नेहकी मालिसवाले मनुष्यके नेत्रोंको कमलदलादि शीतल वस्तुसे आच्छादन करे ।

वर्जित स्वेद ।

अजीर्णीदुर्बलोमेहीक्षतक्षीणः पिपासितः ॥ ७ ॥ अतीसारीरक्तपित्तीपांडुरोगी तथोदरी ॥ मदार्तोगर्भिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ॥ ८ ॥ एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥ मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ ९ ॥ अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः॥ पित्तासृक्पिडिकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥ १० ॥ तेषुतापाभिधःस्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ॥

अर्थ-अजीर्णवाला, दुर्बल, प्रमेहरोगी, क्षतक्षीण (उरःक्षतसे क्षीण हुआ), प्यासयुक्त, अतीसारी, रक्तपित्ती, पांडुरोगी, उदररोगी, मदकरके पीडित और गर्भिणीस्त्री इनका वैद्य स्वेदन कर्म न करे । परंतु इनमेंभी जो स्वेदन करनेसेही अच्छे होते दीखे उनके मृदु स्वेदकी योजना करे, तथा मृदु स्वेद, हृदय, अंडकोश और दृष्टि इनमें करे । अत्यंतस्वेदके करनेसे संधियोंमें पीडा, दाह, प्यास, क्लम, भ्रम, रक्तपित्त, पिडिका ओंका कोप ये रोग होतेहैं इनके शांति करनेको शीतल कर्म करे । तथा पूर्वोक्त चार प्रकारके स्वेदोंमें तापाभिध दो स्वेद हैं वह वालुका, कपडा और हाथोंसे करा जाता है ।

अथ उष्मस्वेद ।

प्रस्तरैरम्लसिक्तैश्चकायेरल्लकवेष्टिते॥११॥ अथवावातनिर्णाशिद्रवक्काथरसादिभिः ॥ उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वेछिद्रं विधाय च ॥ १२ ॥ विमुद्र्यास्यंत्रिखंडांचधातुजां काष्ठजामथ ॥ षडंगुलास्यांगोपुच्छांना-डींयुंज्याद्विहस्तिकाम्॥१३॥सुखोपाविष्ट-मभ्यक्तंगुरुप्रावरणावृतम् ॥ हस्तिशुंडि-कयानाडयास्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १४ ॥

अर्थ–देहको कपडोंसे ढकके खटाईमें बुझेहुए पत्थरोंसे, अथवा वादीके नाशकर्त्ता द्रवपदार्थ क्वाथरसादिक गरम २ से घडेको भरके और उसके एक बाजूमें छिद्र करके तथा उसका मुख बंद कर तीन टुकडेकी एक धातु (लोह पीतल आदि) की अथवा लकडीकी छः अंगुलका जिसका मुख हो और गोपुच्छके आकारवाली ऐसी दो हाथकी नली उस छिद्रमें लगावे । फिर सुखपूर्वक बैठा तैलकी मालिस करचुका हो और भारी सोड रिजाई आदि ओढ रहा हो ऐसे वातरोगीको उस हस्तिशुंडिक नलीसे स्वेदन करे।

दूसरा उष्मस्वेद ।

पुरुषायामभात्रंवाभूमिमुत्कीर्यखादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्यम्लवारिभिः ॥१५ ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्यशयानं स्वेदयेन्नरम्एवंमाषादिभिःस्विन्नैःशयानंस्वेदमाचरेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–प्रथम एक पुरुष नीचा और चौडा गड्ढा खोदे, फिर उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे, जब कोला हो जावे तब दूध, धनिया, और खटाईका जल इनसे बुझायदे–फिर उसके कोले दूर कर अंडके पत्ते बिछाय देवे, उसपर रोगीको सुलायकर स्वेदन करे।इसीप्रकार माषादि (उडद आदिको) औटायकर प्राणीको सुलायकर स्वेदनकर्म करे।

उपनाहस्वेद ।

तथोपनाहस्वेदंचकुर्याद्वातहरौषधैः । प्रदिग्धदेहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः । ॥ १७ ॥ अम्लपिष्टैःसलवणैःसुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः॥ उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनी-यगणेन च ॥ १८॥ दधिसौवीरकक्षीरै-र्वीरतर्वादिनातथा ॥कुलत्थमाषगोधूमैर-तर्सातिलसर्षपैः ॥ १९ ॥शतपुष्पादेव-दारुशेफालीस्थूलजीरकैः॥ एरंडमूलबी-जैश्चरास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २० ॥ मिसिकृष्णाकुठेरैश्चलवणैरम्लसंयुतैः ॥ प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यांवलयादशमूलकैः ॥ ॥ २१ ॥ गुडूच्यावानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः ॥ क्षुण्णैःस्विन्नैश्चवस्त्रेणबद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ २२ ॥ महाशाल्वणसं-ज्ञोयंयोगःसर्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ–अब उपनाह स्वेदकी विधि कहते हैं। वैद्य वातहरण करनेवाली औषधोंसे स्वेदन करे। मालिस करेहुए वादीसे पीडित मनुष्यको क्षीर मांसरसकरके युक्त तथा खट्टे पिसेहुए और निमक मिले स्नेहयुक्त सुखोष्ण पदार्थोंसे तथा ग्राम और अनूप (जलसमीप) संचारी जीवोंके मांस करके तथा जीवनीयगणकरके तथा दही, कांजी दूध और वीरतर्वादिगणकरके, तथा कुलथी, उडद, गेहूं, अलसी, तिल, सरसों इन करके, सौंफ, देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अंडकी जड, अंडी, रास्ना, मूली, और सहजनेसे, तथा सोवा,पीपल, कुठेर और खटाईयुक्त निमक इनसे,

तथा प्रसारणी, असगंध, खरेटी और दशमूल इनसे, तथा गिलोय, कौंचके बीज, इनमें जो जो औषध मिले उन सबको यथालाभ लेकर एकत्र करे, फिर इनको कूट और उबालकर कपडेमें बांध प्राणीको स्वेदन करे। यह महाशाल्वणसंज्ञक योग संपूर्ण वादीकी पीडाओंको दूर करेहै।

द्रवस्वेद ।

द्रवस्वेदस्तुवातघ्नद्रव्यक्काथेनपूरितम् ॥ कटाहंकोष्णकंचापिसूपविष्टोऽवगाहयेत् २३

अर्थ-वातहरण करता औषधोंके काढेसे कढावको भरके उस गरम २ काढेमें वातरोगी सुखपूर्वक बैठे। यह द्रवस्वेद कहाताहै।

द्रवस्वेदका विधान ।

नाभेःषडंगुलंयावन्मग्नःक्काथस्यधारया । ॥ २४ ॥ कोष्णया स्कंधयोः सिक्तःस्निग्धैःस्निग्धतनुर्नरः॥ एवं तैलेनदुग्धेनसर्पिषास्वेदयेन्नरम् ॥ २५ ॥ एकांतरेद्व्यंतरेवास्नेहोयुक्तोवगाहने॥ शिरामुखैर्लोमकूपैर्धमनीभिश्चतर्पयेत् ॥२६॥ शरीरे बलमाधत्तेयुक्तंस्नेहोवगाहने ॥ जलसिक्तस्यवर्धंतेयथामूलेंऽकुरास्तरोः॥ २७ ॥ तथाधातुविवृद्धिर्हिस्नेहासिक्तस्यजायते ॥ नातःपरतरःकश्चिदुपायोवातनाशनः॥२८॥

अर्थ-प्राणीको कढावमें बैठाकर उसकी नाभिपर्यंत काढेकी धारासे उस कढावको भरे, तथा स्निग्ध देहवाले मनुष्यके स्निग्ध गरमगरम पदार्थोंकी धार उसके कंधोंपर डाले, इसी प्रकार तेल, दूध और घीसे इस प्राणीको स्वेदन करे, एक २ दिनके दो दो दिनके अंतरसे स्नेहयुक्त स्वेदन करना। यह स्नेहयुक्त स्वेदन शिराओंके मुखमें होकर तथा लोमकूपकरके धमनी नाडियोंकरके शरीरको तृप्त करता है, तथा देहमें बलको बढावे है। यह विधिपूर्वक स्नेह स्वेदनके गुण हैं। जैसे जल सींचनेसे वृक्षकी जड अंकुर बढे हैं, उसी प्रकारका स्नेह (चिकनाई) से देहको सेकनेसे देहधातुओंकी वृद्धि होतीहै। इससे परे वातनाशक अन्य उपाय नहीं है।

व्रीहिजन्यस्वेद ।

कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैर्माषातसीषष्टिकामुद्गैरण्डपुनर्नवायुगलकैर्धान्याम्लसिक्तैःसमैः ॥ स्वेदोव्रीहिभवोबुधैर्निगदितोवातामयानांहितोहन्यात्पृष्ठगतांरुजं त्रिकगतांपार्श्वांघ्रिकट्यूरुगाम् ॥ २९ ॥

अर्थ-बिनोले, कुलथी, तिल, जौ, उडद, अलसी, सांठीचावल, मूंग, अंडकी जड, सांठकी जड, सपेदसांठकी जड, धनियां इनको खट्टी कांजीमें उबालकर स्वेदन करे यह व्रीहिजन्य स्वेद पंडितोंने वातरोगियोंको हितकारी कहाहै। यह पीठकी, त्रिकगत, पसवाडेकी, पैरोंकी, कमर और ऊरु (जांघों) की पीडाको नष्ट करै है।

स्वेदकी समाप्ति ।

शीतशूलव्युपरमेस्तंभगौरवनिग्रहे ॥ दीप्ते- ग्नौमार्दवेजातेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३० ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां स्वेदविधिकथनं नाम पञ्चमस्तरंगः ॥ ५ ॥

अर्थ-जिस समय इस प्राणीका शीत और शूल (दर्द) होना बंद होजावे, तथा स्तंभ (जिकडना) और भारीपना चलाजाय, जठराग्नि दीप्त होजावे, तथा देह नम्र होजाय उस समय स्वेदकर्मको त्याग देवे।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां स्वेदविधिकथनं नाम पञ्चमस्तरंगः ॥ ५ ॥

षष्ठस्तरंगः ।

वमनविधि ।

शरत्कालेवसंतेचप्रावृट्कालेचदेहिनाम् ॥
वमनंरेचनंचैवकारयेत्कुशलोभिषक् ॥ १ ॥

अर्थ-कुशलवैद्य मनुष्योंको शरदृतु, वसंतऋतु, और प्रावृट् (वर्षा) ऋतुमें वमन (रद्द) और विरेचन (जुल्लाब) करावे ।

वमनयोग्य प्राणी ।

बलवंतंकफव्याप्तंहल्लासादिनिपीडितम् ॥
तथावमनसात्म्यंचधीरचित्तंचवामयेत् ॥२॥

अर्थ-बलवान्, कफसे व्याप्त, हल्लासादिसे पीडित, तथा जिसको वमन करना हित होता होवे और जो धीर चित्तवाले हो । उनको वमन करना चाहिये, ये वमनके अधिकारी हैं ।

विषदोषेस्तन्यरोगेमंदाग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ॥
हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषुच ॥
॥ ३ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ॥ अपस्मारेज्वरोन्मादेतथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेचकर्णस्रावेद्विजिह्वके ॥ गलशुंड्यामतीसारेपित्तश्लेष्मगदेतथा ॥ ५ ॥
मदोगदेऽरुचौचैववमनंकारयेद्भिषक् ॥

अर्थ-विषजन्यरोग, स्तनके रोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रमरोग, विदारिका, अपची, खांसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, मृगी, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासा, तालुआ, होठ इनके पाकमें कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडी, अतिसार, पित्तकफके रोग, मेदरोग और अरुचि इतने रोगोंमें वैद्य रोगीको वमन करावे ।

वमनअयोग्य रोगी ।

नवामनीयास्तिमिरिनगुल्मीनोदरीकृशः ॥
॥ ६ ॥ नातिवृद्धोगर्भिणी च नस्थूलो नक्षतातुरः ॥ मदार्तोबालकोरूक्षःक्षुधितश्चनिरूहितः ॥ ७ ॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्तीचदुश्छर्द्यःकेवलानिली ॥

अर्थ-तिमिररोगी, गोलेका रोगवाला, उदररोगवाला, कृशदेह (निर्बल), अत्यंतवृद्ध, गार्भिणीस्त्री, जो अत्यंत स्थूल (मोटा) है, घावसे पीडित मदार्त, बालक, रूक्ष पुरुष, भूंखा, निरूहित बस्तिवाला, उदावर्त्तरोगी, ऊर्ध्वरक्तपित्तवाला और जिसके केवल वादीका रोग होवे, ये सब दुश्छर्द्य अर्थात् वमन कराने योग्य नहीं है ।

पांडुरोगीकृमिव्याप्तःपठनात्स्वरघातकः
॥ ८ ॥ एतेप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्चतेवाम्यामधूकक्काथपानतः ॥ ९ ॥

अर्थ-पांडुरोगी, कृमियोंकरके व्याप्त, जिसका बहुत पढनेसे कंठ बैठगयाहो और जो अजीर्णसे व्यथित है, तथा जो विषपीडित है वह अवश्य वमन करानेके योग्य है । और जो कफसे घिररहे हैं उनको मुलहठीके काढेको पिलायकर वमन करानी चाहिये ।

सुकुमारंकृशंबालंवृद्धंभीरुंनवामयेत् ॥

अर्थ-सुकुमार, कृश (जईफ), बालक, बुड्ढा और डरपोक इनको वैद्य कदाचित् वमन न करावे ।

वमन करनेकी विधि ।

पीत्वायवागूमाकंठंक्षीरतक्रदधीनिच ॥१०॥
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनः ॥ स्निग्धस्विन्नायवमनंदत्तंसम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ–यवागूको कंठपर्यंत पीकर अथवा दूध, छाछ, दही इनको कंठपर्यंत पीकर, तथा उस प्राणीको अप्रिय भोजन तथा कफकारी भोजन कराय दोषोंको उत्क्लेशित कर और जिसको स्नेहन स्वेदन करचुके हैं ऐसे मनुष्यको वमन करावे तो वमन उत्तम प्रकारसे होय ।

**वमनेषुचसर्वेषुसैंधवंमधुनाहितम् ॥
बीभत्संवमनंदद्याद्विपरीतंविरेचनम् १२**

अर्थ–संपूर्ण वमनोंमें सेंधानिमक सहतके साथ देना हितकारी कहाहै; बीभत्स (घिन आनेवाला) वमन देवे और (घिनरहित) विरेचन देना चाहिये ।

वमनमें काथचूर्णका प्रमाण और मात्रा ।

**क्राथद्रव्यस्यकुडवंस्थापयित्वाजलाढकम् ॥
अर्धभागावशिष्टंचवमनेष्वपिचारयेत् ॥१३
क्राथपानेनवप्रस्थाश्रेष्ठामात्राप्रकीर्तिता ॥
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था चकनीयसी ॥ १४ ॥ कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ॥ मध्यमंद्विपलंविंद्यात्कनीयस्तुपलंभवेत् ॥ १५ ॥**

अर्थ–एक कुडव (पावसेर) औषधको एक आढक (चार सेर) जलमें औटावे; जब आधा बाकी रहे तब उतारके छानलेवे और वमन करानेके वास्ते रोगीको पिलावे । वमन करनेमें क्राथ पीनेकी उत्तम मात्रा नौ प्रस्थ अर्थात् नौसेरकी है । छः प्रस्थकी मध्य और तीन प्रस्थकी अधममात्रा कही है । कल्क, चूर्ण और अवलेह सेवन करने हों तो इनकी उत्तम मात्रा तीन पल (१२ तोले) की है और दो पलकी मध्यम, एवं १ पल अर्थात् चार तोलेकी मात्रा अधम कहातीहै।

**वमनेचापिवेगाःस्युरष्टौपित्तांतउत्तमाः ॥
षड्वेगामध्यवेगाश्चचत्वारस्त्ववरामताः१६ ॥**

अर्थ–वमनमें आठ वेग होनेके उपरांत पित्त निकले तो उत्तम है, छः वेगके उपरांत पित्त निकले तो मध्यम है, एवं चार वेग होकर पित्त निकलने लगे वह वमन अधम कहाहै ।

नौ प्रस्थ जल किस प्रकार पिया जायगा ? इसवास्ते यहां प्रस्थका प्रमाण कहते हैं ।

**वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ॥
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः १७॥**

अर्थ–वमन और विरेक (जुल्लाब) में तथा रुधिर निकालनेमें बुद्धिमान् वैद्य १३॥ साडे तेरह पलका प्रस्थ (सेर) मानतेहैं, जिसके ५४ तोले हुए ।

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैःपित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ॥ सुस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टं वायुनाकफम् ॥ १८ ॥

अर्थ–कडुए, चरपरे और गरम पदार्थोंसे कफको जीते । मिष्ट और शीतल पदार्थोंकरके पित्तको, तथा स्वादुपदार्थ, लवणके, खट्टे और गरम पदार्थोंकरके मिश्रित औषधोंसे वातयुक्त कफको जीते ।

कृष्णाराठफलंसिंधुकफेकोष्णजलैः पिबेत् ॥ पटोलवासानिंबैश्चपित्तेशीतंजलं पिबेत् ॥ १९ ॥ सश्लेष्मवातपीडायांसक्षीरंमदनंपिबेत् ॥ अजीर्णेकोष्णपानीयंसिंधुंपीत्वावमेत्सुधीः ॥ २० ॥ वामनंपाययित्वातुजानुमात्रासनेस्थितम् ॥ कंठमेरंडनालेनस्पृशंतंवामयेद्भिषक् ॥२१॥

अर्थ–पीपल, मैनफल और सेंधानिमक इनके चूर्णको गरम जलके साथ कफके रोगमें पीवे,

परवल, अडूसा और नामी इनको शीतल जलमें पीसके पित्तकी बिमारीमें पीवे । कफपित्तवातकी पीडामें मैनफलको दूधमें मिलायके पीवे, अजीर्णरोगमें गरमजलमें सेंधानिमक डालके पीवे। वमन करानेवाली औषधोंको पीकर घोंटु २ ऊंचे आसनपर बैठकर कंठको अंडकी नरम नालसे स्पर्श करताहुआ भिषक् प्राणीको वमन करावे ।

प्रसेकोहृद्ग्रहःकोठःकंडूदुश्छर्दितेभवेत् ॥ अतिवांते भवेत्तृष्णाहिक्कोद्गारौविसंज्ञता ॥ २२ ॥ जिह्वानिःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावर्तिर्हनुसंहतिः रक्तच्छर्दिःष्ठीवनं च कंठपीडाचजायते ॥ २३ ॥

अर्थ-दुष्ट और अतिवमनके उपद्रव मुखसे पानीका वहना, हृदयका स्तंभ, कोठरोग, खुजली ये दुष्टवमनके होनेसे होतेहैं । अत्यंत वमन होनेसे प्यास, हिचकी, डकार, बेहोशी, जीभका बाहर निकल आना, नेत्रोंका फटेसे होजाना और ठोडीका जिकडजाना, रुधिरकी वमन करना और वारंवार रुधिर थूकना, कंठमें पीडा होना, ये लक्षण होते हैं ।

वमनस्यातियोगेतुमृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥ वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः । ॥ २४ ॥ स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥ फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येग्रतोनराः ॥ २५ ॥ निःसृतां तुतिलैर्द्राक्षाकल्कलिप्तांप्रवेशयेत् ॥ व्यावृतेक्ष्णोर्घृताभ्यक्तेपीडयेच्चशनैःशनैः॥२६॥ हनोर्मोक्षेस्मृतःस्वेदोरक्तेच्छर्दिविधौपुनः ॥ धात्रीरसांजनोशीरलाजचंदनवारिभिः । ॥ २७ ॥ क्काथंकृत्वापाययेच्चसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ शाम्यंत्यनेनतृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २८ ॥

अर्थ-अत्यंत वमन होनेमें साधारण जुल्लाबकी औषध लेवे कि एक दो दस्त होजावे । वमन करते २ यादि जिह्वा भीतर चलीगई होवे तो स्निग्ध, अम्ल, निमकीन और हृदयका प्रिय घृत क्षीर और रसोंसे कवलग्रह करना हितकारी है । उस वमन करनेवालेके आगे बैठकर दो चार मनुष्य नींबू आदि खट्टे फलोंको चूसै और यादि जीभ बाहर निकल आई हो तो तिल-दाखके कल्कसे जीभको लेपकर भीतर प्रवेश करे और नेत्र बाहर निकलपडे हों तो उनको घृत लगायके भीतरको धीरे २ दबावे । ठोडीके जिकडजानेमें स्वेदन करे और यादि रुधिरकी वमन करता हो तो उसको आंवले, रसोत, खस, खील, चंदन और नेत्रवाला इनका काढा करके और उसमें घी सहत और मिश्री डालके पिवावे तो रुधिरकी वमन होना बंद होय । तथा इसी यत्नसे वमन होनेके कारण उत्पन्न हुई तृष्णा आदि पीडा शांत होवे ।

उत्तम वमन होनेके लक्षण.

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम्। कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वांतस्य चेष्टितम् ॥ २९ ॥

अर्थ-हृदय, कंठ और मस्तक ये शुद्ध हो अर्थात् हलके प्रतीत हो, जठराग्नि दीप्त होजावे, देहमें हलकापना, कफ पित्तका विनाश, ये लक्षण जिसको उत्तम वमन होती है उसके हैं ।

उत्तम वमनवालेको पथ्य.

ततोपराह्णेदीप्ताग्निमुद्गषष्टिकशालिभिः ॥ हृद्यैश्चजांगलरसैःकृत्वायूषंचभोजयेत्॥३०॥ तंद्रानिद्रास्यदौर्गंध्यंपांडुश्चग्रहणीगदः । सुवांतस्यनपीडायैभवंत्येतेकदाचन ॥ ३१ ॥

अर्थ–फिर तीसरे प्रहर दीप्ताग्निवाले हृद-यको प्रिय ऐसे मूंग शाली चांवल तथा जंगली जीवोंके मांसरसके यूष बनायके पिवावे, तंद्रा, निद्रा, मुखमें दुर्गंधि, पांडुरोग, संग्रहणी, ये सब रोग जिसको उत्तम प्रकार वांती होगई हो उसको कदाचित् दुःख नहीं देते ।

कुपथ्य ।

अजीर्णशीतपानीयंव्यायाममैथुनंतथा ॥ स्नेहाभ्यंगान्प्रदेहांश्चदिनैकंवर्जयेत्सुधीः३२ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां वमनविधिर्नाम षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

अर्थ–अजीर्णमेंभी भोजन, शीतलजलका पीना, दंडकसरत, स्त्रीसंग, स्नेहन, तेलकी मालिस और प्रदेह ये सब जिसको वमन हुई, उसको एक दिनतक त्याज्य हैं ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां वनमवि-धिर्नाम षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

सप्तमस्तरंगः ।

विरेचन विधि ।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्यदद्यात्सम्यग्विरे-चनम् ॥ अवांतस्यत्वधः स्रस्तोग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ १ ॥ मंदाग्निंगौरवंकु-र्याज्जनयेद्वाप्रवाहिकाम् ॥ अथवापाच-नैरामंबलासंचविपाचयेत् ॥ २ ॥ पि-त्तेविरेचनंयुंज्यादामोद्भूतेगदेतथा ॥ उदरेचतथाध्मानेकोष्ठाशुद्धौविशेषतः॥ ३॥

अर्थ–स्नेहन, स्वेदन और वमन करचुका हो ऐसे प्राणीको वैद्य भले प्रकार विरेचन देवे, विना वमनके विरेचन न देवे, क्योंकि अवां-तको विरेचन देनेसे ऊपरका कफ नीचे जाय-कर ग्रहणी (पाचकाग्नि) को ढक देता है। तथा मंदाग्नि, भारीपना और प्रवाहिकारोगको प्रगट करता है अथवा जो रोगी विरेचन लेने योग्य नहीं है उनकी आम और कफको पाचन औषधोंसे पचावे । पित्तके अर्थात् यावन्मात्र गरमीके रोग हैं तथा जो रोग आमसंबंधी हैं उनमें दस्त करानाही उचित है एवं उदर (जलं-धर) अफरा और कोठेके दूषित होनेमें विशेष करके दस्त करावे ।

दोषाः कदाचित्कुप्यंतिजितालंघनपा-चनैः ॥ येतुसंशोधनैःशुद्धानतेषांपुन-रुद्भवः ॥ ४ ॥

अर्थ–लंघन पाचन औषधोंसे दूर करेहुए दोष फिरभी कभी कुपित होजाते हैं, अर्थात् रोग करते हैं परंतु जो संशोधन (वमन विरेच-नादि पंचकर्म) करके शोधेगये उनकी फिर उत्पत्ति कदाचित् नहीं होनेकी ।

जुलाब देने अयोग्य रोगी ।

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणोःभया-न्वितः ॥ श्रांतस्तृषार्तःस्थूलश्चगर्भिणी चनवज्वरी ॥ ५ ॥नवप्रसूतानारीचमं-दाग्निश्चमदात्ययी ॥ शल्योधृतश्चरूक्षश्च नविरेच्याविजानता ॥ ६ ॥

अर्थ–बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, घावसे क्षीण, जिसको किसी प्रकारका भय लगरहाहो, परिश्रमसे थका, प्यासा, अत्यंत मोटा, गर्भव-तिस्त्री, तत्काल ज्वर आनेवाला रोगी, तत्काल प्रसूत हुई स्त्री, मंदाग्निवाला, मदरोगी, जिसकी देहसे किसी प्रकारका कांटा आदि शल्य निकला हो, और रूखे मनुष्यको कदाचित् जुलाब न करावे ।

विरेचनयोग्य रोगी।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगंदरी । अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ॥७॥ योनिरोगप्रमेहार्तागुल्मप्लीहव्रणार्दिताः । विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ ॥ ८ ॥ कर्णनासाशिरोवक्रगुदमेहामयान्विताः ॥ प्लीहशोफाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥ ९ ॥ शूलिनोमूत्रघातार्ताविरेकार्हानरामताः ॥

अर्थ-पुराने ज्वरवाला, विषरोगी, वातरक्ती, भगंदरवाला, बवासीर, पांडु, उदर, गांठ, हृदयरोगी, अरुचिपीडित, योनिरोग, प्रमेहकरके पीडित, बायगोला, प्लीहरोगी, व्रण (घाव) से पीडित, विद्राधि, वमन, विस्फोट, विषूचिकावाला, कोढी कर्ण-नासा-शिर-मुख-गुदो-वीर्यपतन, प्लीहरोग, सूजन, नेत्ररोगसे पीडित, कृमिरोगी जिसने खार खायाहो, तथा वादीसे पीडित, शूलरोगी, मूत्रघातसे पीडित, इतने रोगी विरेक अर्थात् जुलाबकराने योग्य हैं।

मृदु मध्य और क्रूरकोष्ठ ।

बहुपित्तोमृदुःप्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः ॥ बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यः सकथ्यते ॥ १० ॥

अर्थ-अधिक पित्तवाला मृदुकोष्ठ, बहुत कफवाला मध्यम और जिसके अधिक वादी होवे वो प्राणी क्रूरकोष्ठ है वह दुर्विरेच्य जानना अर्थात् क्रूरकोठेवालेको दस्त नहीं होते ।

मृदुमध्यतीक्ष्णमात्रा ।

मृद्वीमात्रामृदौकोष्ठेमध्यकोष्ठेतुमध्यमा ॥ क्रूरेतीक्ष्णामताद्रव्यैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ ११ ॥

अर्थ-जिसका मृदु कहिये नरम कोठा है उसको नरम द्रव्योंकी मृदुमात्रा देवे, मध्यम कोठेमें मध्यमात्रा और क्रूरकोठेवालेको तीक्ष्ण द्रव्यकी तीक्ष्णमात्रा देनी चाहिये ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चारुतैलैरपि विरिच्यते॥१२॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ क्रूरस्नुक्पयसाहेमक्षीरीदंतीफलादिभिः १३

अर्थ-मृदुकोठेवालेको दाख, दूध और अंडी आदिके तेलसे भी दस्त होते हैं, मध्यमकोठेवालेको निसोथ, कुटकी और अमलतासके पीनेसे विरेचन होवे । और जो क्रूरकोठेवाले हैं उनको थुहरका दूध, चोक, दंतीफल (जमालगोटा) और आदिशब्दसे इन्द्रायन और ब्रह्मलोणी आदिसे दस्त हो तेहैं ।

विरेककी मात्रा ।

मात्रोत्तमाविरेकस्यत्रिंशद्वेगैःकफांतका ॥ वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्तादशवेगकैः ॥ १४ ॥ द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमंतु पलंभवेत् ॥ पलार्धंचकषायाणांकनीयस्तुविरेचनम् ॥ १५ ॥ कल्कमोदकचूर्णानांकर्षमध्वाज्यलेहतः ॥ कर्षद्वयं पलंवापिदेयंरोगाद्यपेक्षया॥ १६ ॥

अर्थ-दस्तोंके ३० वेग होकर फिर आम निकले वह दस्तकी उत्तममात्रा जाननी, बीस दस्त होकर फिर आमनिकले वह दस्तकी मध्यम मात्रा जाननी; जिसमें दशवेग होकरही आम निकलने लगे वह दस्तकी मात्रा हीन कहातीहै । दो पल (८ तोलेकी) मात्रा श्रेष्ठ है, ४ तोलेकी मध्यम और २ तोलेकी जुलाबकी मात्रा हीन कही है । यह क्वाथकी मात्रा कहीहै कल्क, गोली, चूर्ण, नकी१तोलेकी मात्रा सहत घृत और अवलेहके

साथ देवे, तथा दोतोले एवं तीन तोलेकी मात्रा रोगके तारतम्यके अनुसार देवे ।

पित्तोत्तरेत्रिवृच्चूर्णंद्राक्षाक्काथादिभिःपिबेत् । त्रिफलाक्काथगोमूत्रैःपिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥ १७ ॥ त्रिवृत्सैंधवशुंठीनांचूर्णमम्लैःपिबेन्नरः ॥ वातार्दितोविरेकायजांगलानांरसेनवा ॥ १८ ॥ एरंडतैलंत्रिफलक्काथेनद्विगुणेनवा ॥ युक्तंपीतंपयोभिर्वानचिरेणविरिच्यते ॥१९ ॥

अर्थ–पित्ताधिक्यमें निसोथका चूर्ण दाखके काढे आदिके साथ पीवे, कफपीडित प्राणी त्रिफलेका काढा और गोमूत्रके साथ त्रिकुटाके चूर्णको पीवे, वातार्दितमनुष्य निसोथ, सेंधानिमक, और सोंठ इनके चूर्णको नींबू आदिके रससे पीवे अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ दस्त होनेके वास्ते पीवे, अरंडीके तेलको दुगुने त्रिफलाके काढेमें मिलायके युक्तिपूर्वक पीवे । अथवा अंडीके तेलको दूधमें मिलायके पीवे तो बहुत जल्दी दस्त होवे ।

वर्षाकालमें विरेचन ।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ समृद्वीकारसःक्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २० ॥

अर्थ–निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ इनमें दाखका रस और सहत मिलायके वर्षाकालमें विरेचन देवे, यह वर्षाऋतुका जुलाब है ।

शरद्में विरेचन ।

त्रिवृद्दुरालभादोर्च्यशर्करामुस्तचंदनम् ॥ द्राक्षांबुना सयष्ट्याह्वं शीतलं च घनात्यये ॥ २१ ॥

अर्थ–निसोथ, धमासा, नेत्रवाला, मिश्री, नागरमोथा और चंदन इनको मुलहठीके साथ दाखके रसमें मिलायके शीतलही शरदृतुमें विरेचन देवे ।

त्रिवृता जीरकं पाठा अजाजी सरलं वचा ॥ हेमक्षीरी च हेमंते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ॥ २२ ॥

अर्थ–निसोथ, जीरा, पाढ, कालाजीरा, चीढ, वच और चोक इनके चूर्णको गरम जलके साथ हेमंतऋतुमें जुलाब देवे ।

शिशिरवसंतमें विरेचन ।

पिप्पली नागरं सिंधुः श्यामा त्रिवृतया सह ॥ लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम् ॥ २३ ॥

अर्थ–पीपल, सोंठ, सेंधानिमक, विधायरा और निसोथ इनके चूर्णको सहतमें मिलायके शिशिरऋतु और वसंतऋतुमें देवे तो दस्त होगा ।

ग्रीष्मऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम्॥

अर्थ–निसोथके चूर्णमें बराबरकी मिश्री मिलायके ग्रीष्मऋतुमें विरेचन देवे ।

अभयामोदक

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानि च ॥ २४॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक् पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि समभागानि दंती च त्रिगुणा भवेत् ॥ २५ ॥ त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥ मधुना मोदकान्कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः ॥ २६ ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानुपिबेज्जलम्॥ तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेवते ॥ २७ ॥ पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यंत्रणः सदा ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥२८॥

वातामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडभ्रमोदरान् ॥ विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ २९ ॥ वातरोगांस्तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् ॥ पृष्ठपार्श्वरुज जानुजंघोदररुजं जयेत् ॥३०॥ सततं शीलनादेष पलितानि विनाशयेत् ॥ अभयामोदका ह्येते रसायनमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-हरड, काली मिरच, सोंठ, वायाविडंग, आमले, पीपल, पीपलामूल, तज, पत्रज और नागरमोथा ये समान भाग ले और एक औषधसे तिगुनी दंती (जमालगोटेकी जड) लेवे, आठगुनी निसोथ लेवे, और आठगुनी मिश्री मिलावे, सबको कूट पीस कपडछान कर सहतके साथ १ तोलेकी गोली बनावे, एक एक गोली प्रातःकाल खाय ऊपरसे शीतल जल पीवे तो तबतक दस्त होते रहेंगे कि जबतक गरम जल नहीं पीवेगा। इस औषधपर भोजन पान और विहारका पथ्य नहीं है । यह विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगंदर, आमवात, कोढ, गोला, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीहा (तिल्ली), प्रमेह,राजयक्ष्मा(खई), नेत्रके रोग, वादीके रोग, अफरा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, पीठ और पसवाडेका दर्द, एवं घोंटू, जंघा और पेटका दर्द, इन सब रोगोंको दूर करे। निरंतर इसका सेवन किया करे तो सफेद बाल काले होवें, यह अभयामोदक उत्तम रसायन है।

मृद्वीका कटुरोहिणी जलधरः शंपाकमज्जा शिवा कृष्णा मूलपटोलिके त्रिवृदिलावृश्चीयपत्रं समम् ॥ संकाथ्याशु निपीत एष तु गणः संरेचयेदाश्वयं तांबूलाशिनमग्निसेविनमिलागेहस्थितं मानवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-दाख, कुटकी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, हरड, पीपलामूल, पटोलपत्र-निसोथ, बडी इलायची, वृश्चीयपत्र [वा मकई सनाय] ये सब बराबर लेवे इनका काढा करके पीवे ऊपरसे पान चबावे, आगसे तापे, पाखानेसे हवामें निकले नहीं तो यह औषध शीघ्र दस्त करावे ।

विरेचन लेनेके उपरांत नियम ।

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥ सुगंधि किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेद्वरम् ॥ ३३ ॥ निवातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा ॥ शीतांबु न स्पृशेत्क्वाऽपि कोष्णं नीरं पिबेन्मुहुः । ॥ ३४॥ बलासौषधपित्तानि वारि वांते यथा व्रजेत्॥ रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ-विरेचनकारी औषधको पीकर शीतल जल नेत्रोंपर छिडके, अतर आदि सुगंधित पदार्थोंको सूंघे, बीडी चबावे, पवनमें न बैठे दस्तको न रोके और दस्तमें निद्रा अधिक आती है सो सोवै नहीं। शीतल जलको न छूवे, वारंवार गरम जल पिया करे। जैसे वमन लेनेसे कफ जो औषध पीई है वह पित्त और जल ये उलटीमें निकलती हैं, उसी प्रकार दस्तकी औषध लेनेसे मल-पित्त-दस्तकी औषध और आम ये दस्तके द्वारा निकलते हैं।

दुर्विरिक्तके लक्षण ।

दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता ॥ पुरीषवातसंगं च कंडूमण्डल-

गौरवम् ॥ ३६ ॥ विदाहोरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ ३७ ॥

अर्थ–जो दुर्विरिक्त अर्थात् जिनको साफ जुलाब नहीं हुआ ऐसे पुरुषकी नाभि कठोर हो, कूखमें शूल, मल और अधोवायुका रुकना, देहमें खुजली चलने लगे, तथा चकत्ते पडजावें और देह भारी, तथा दाह, अरुचि, अफरा, भ्रम, वमन, ये लक्षण होते हैं।

दुर्विरिक्तका उपचार ।

तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ॥ तेनास्योपद्रवा याति दीप्ताग्नेर्लघुता भवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–उस दुर्विरिक्तको फिर आरग्वधादि क्काथसे पाचन करके स्नेहपानादिकसे आमको पचायकर स्नेहनपूर्वक फिर जुलाबकी औषध देवें, कि जिससे उपद्रव शांत हो और जठराग्नि दीपन हो, तथा देह हलका होवे ।

अतिविरेचनके उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥ ३९ ॥ मेदोनिभं जलामासं रक्तं चापि विरिच्यते ॥ तस्य शीतांबुभिः सिक्त्वा शरीरं तंडुलांबुभिः । ॥ ४० ॥ मधुमिश्रैस्तथोशीरैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ ४१ ॥ सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥ पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्वणम् ॥४२॥

अर्थ–अत्यंत दस्तोंके होनेसे मूर्च्छा, गुदाका भ्रंश (कांछका निकल आना), शूल, आमका अत्यंत निकलना और मांसके धोवनके समान जल निकले, तथा मेदाके समान (सफेद) दस्त हो अथवा जलके समान स्वच्छ पानी निकले तथा रुधिरका दस्त हो । ऐसे रोगीको शीतल जलसे तरडा दे, देहको शीतल करे, फिर चांवलके धोवनमें सहत खस डालके उस रोगीको पिवावे और फिर साधारण वमन करावे । आमकी छालके कल्कको दही अथवा कांजीमें मिलायके नाभिपर लेप करे तो प्रबल अतिसार नष्ट होय ।

अतिविरेकमें पथ्य ।

अजाक्षीरं रसं वापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥ शालीभिः षष्टिभिः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥ ४३ ॥

अर्थ–कोई अतिदस्त होनेमें उसके रोकनेके वास्ते पथ्य कहतेहैं, बकरीका दूध अथवा बकरीका मांसरस और विष्किर (कुक्कुट आदि) तथा हिरणआदिके मांसरसके साथ शालीचांवल अथवा सांठी चांवलोंका भात मिलायके भोजन करे, अथवा मसूरको परिपक्व कर मांसरसके साथ भोजन करे ।

सुविरिक्तके लक्षण ।

लाघवे मनसस्तुष्टावनुलोमं गतेऽनिले ॥ सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

अर्थ–देहमें हलकापना, मनकी प्रसन्नता और अपानवायु अर्थात् अधोवायुके स्वमार्गमें गमन करनेसे उस मनुष्यको उत्तमदस्त हुए ऐसा जानकर रात्रिमें पाचन (अंड, सोंठ, धनिया आदि) पिवावे ।

रेचन सेवनके गुण ।

इंद्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तिता ॥ धातुस्थैर्यं बलस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ-नेत्र आदि इन्द्रियोंका बली होना, बुद्धिका प्रसन्न होना, जठराग्निका दीपन, धातुओंकी स्थिरता और बलकी स्थिरता, इतने गुण रेचन (जुल्लाब) सेवन करनेसे होते हैं ।

विरेचनमें अपथ्य ।

प्रवातसेवां शीतांबु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥ व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥ ४६ ॥

अर्थ-हवामें बैठना, शीतल जलका सेवन, तेलका लगाना, अजीर्णकारक पदार्थोंका सेवन, दंडकसरत और मैथुन इनको जिसने जुलाब लियाहो वह कदाचित् सेवन न करे ।

विरेचनमें पथ्य ।

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥ जंघालविष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥४७ ॥

अर्थ-शालीचावल, सांठीचावल और मूंग आदिसे बनी हुई यवागूका भोजन करे, तथा जंघाल (कुक्कुटादिक) और विष्किर (कबूतर आदि) के मांसरससे शालीचावलोंका भात भोजन करे यह शार्ङ्गधरमें लिखाहै ।

इच्छाभेदी रस ।

शंभोर्बीजं सटंकं बलिमरिचयुतं शृंगवेरं च तुल्यं योज्यं नैकुंभबीजं शिखिगणबलिनं मर्दितं याममेकम् ॥ भुक्तं गुंजाद्विमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्ततप्तत्वमुच्चैरिच्छाभेदी रसोयं प्रबलमलहरः सर्वरोगैकहर्ता ॥ ४८ ॥

अर्थ-पारा, सुहागा, गंधक, कालीमिरच और सोंठ ये बराबर लेवे, और सबकी बराबर शुद्ध करेहुए जमालगोटे लेवे, सबको चित्रकादिक्वाथमें १ प्रहर खरल करे फिर दो दो रत्ती की गोली बनावे एक गोलीको शीतल जलके साथ सेवन करे और गरम जल न पीवे तो यह इच्छाभेदी रस घोर मलको तथा संपूर्ण रोगमात्रोंको हरण करेहैं । यह सारसंग्रह ग्रंथमें लिखा है ।

व्योषवरैलामुस्तविडंगं पत्रमखिलसममत्र लवंगम् ॥ सर्वेभ्यो द्विस्त्रिवृताकंदं प्रबलमलहरमुष्णकबंधम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, इलायची, वायविडंग और पत्रज सब समानभाग लेवे, सबकी बराबर लौंग ले और सबसे दुगुनी निसोथ ले इनका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीवे तो घोर मलको दूर करे ।

शिवाकृष्णामूलं त्रिकटुकमजाजीजलधरस्त्रिवृद्धात्री भूमी तरुपटुविडंगामरसुमम् ॥ दलं कुष्ठं हिंगुर्ज्वलन इति संपिष्य मृदुलं जलैरावेग्युत्यैर्मलहरमिदं सूष्णपयसा ॥ ५० ॥

अर्थ-हरड, पीपलामूल, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, नागरमोथा, निसोथ, आवले, भूयआवला, सेंधानिमक, वायविडंग, लौंग, पत्रज, कूट, हींग और चित्रककी छाल, इन सबको बारीक पीसके चूर्ण करे, इसकी फंकी लेकर ऊपरसे जितने गरम जलके चुल्लू पीवे उतनेही दस्त हों यह मलहरणकर्ता चूर्ण है ।

नाराचरस ।

जैपालेन समं सूतव्योषटंकणगंधकम्॥ नाराचः स्याद्रसो माषमात्रः सर्पिःसितायुतः ॥ ५१ ॥ हंति संग्रहमानाहमामशूलं नवज्वरम् ॥ वेलाज्वरं विरेकेण शीतलांबुनिषेवणात् ॥ ५२ ॥

अर्थ-पारा, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा

और गंधक ये सब समानभाग लेवे । सबकी बराबर शुद्ध जमालगोटेके बीज ले सबको खरलमें पीसलेवे । यह नाराचरस १ मासेको घी और मिश्रीमें मिलायके शीतल जलके साथ सेवन करे तो मलका संग्रह, अफरा, आमशूल, नवीनज्वर, वेलाज्वर इनको दूर करे। यह रसरनप्रदीपमें लिखा है ।

इच्छाविभेदीरस ।

शुंठीतीक्ष्णरसेंद्रटंकणबलिप्रोक्तं समं तत्रिधा कुंभीबीजयुतं विमर्द्य स भवेदिच्छाविभेदी रसः ॥ वल्लः शर्करयाऽधिकूपचुलुकं पुंसः सुखं रेचयेन्निःशेषं मलदोषमेव विनिहंत्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥ ५३ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां विरेचनविधिर्नाम सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥

अर्थ–सोंठ, कालीमिरच, पारा, सुहागा और गंधक ये सब समान लेवे, तथा इनसे तिगुने शुद्धजमालगोटे लेवें, इन सबको खरलमें डालके पीसै तो यह इच्छाविभेदी रस तयार हो इसको ३ रत्ती लेकर मिश्रीमें मिलाके फक्की लेवे ऊपर कूएँके जलके चुल्लू पीवे तो यह इस त्प्राणीको सुखपूर्वक दस्त करावे और संपूर्ण मलके दोषको इस प्रकार नष्ट करे जैसे सिंह मतवारे हाथीको नष्ट करता है ।

इति श्रीयोगतंगिणीभाषाटीकायां विरेचनविधिर्नाम सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥

अष्टमस्तरंगः ।

बस्तिविधि ।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ॥ यःस्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥ १ ॥ कषायक्षीरतैलैर्वा निरूहः स निगद्यते ॥ बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृता ॥ २ ॥ मृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत्॥ मूत्रकोशस्तु बस्तिः स्यादलाभे चान्यचर्मजः ॥ ३ ॥

अर्थ–बस्ती दो प्रकारकी होती है, एक अनुवासन और दूसरी निरूहबस्ती। जो चिकनी वस्तुओंकी दीनी जावे, उसको अनुवासन बस्ती कहते हैं जो क्वाथ दूध तेल आदिसे दीनी जावे उसको निरूहनबस्ती कहतेहैं,अंडकोशादि बस्ती करके जो यह दीनी जाती है इसीसे इसको बस्ती कहते हैं । हिरन, बकरी, सूअर, गौ (बैल) और भैंसे आदिके मूत्रकोशको बस्ती कहते हैं, यदि हिरन आदिकी बस्ती न मिले तो अन्य चमडेकी बस्ती बनावे ।

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुमृद्वृक्षवेणुभिः ॥ नलैर्दंतैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते॥ ४ ॥ आतुरांगुष्ठमानेन मूलं स्थूलं विधीयते ॥ कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम्॥५॥ मुद्गच्छिद्रयुतं वक्रे गोपुच्छसदृशं दृढम्॥ षडंगुलमितं तच्च किं वा स्याद्द्वादशांगुलम्॥ योजयेत्तत्र बस्तिं च बंधद्वयविधानतः॥६॥

अर्थ–नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेके लिये जो नली होती है, वह सुवर्णादि धातुकी अथवा बाँसके अथवा नरसल, वा हाथीदांत, अथवा सींगके अग्रभाग, तथा बिल्लौर, अथवा सूर्यकांतादि (आतसीकांच आदि मणियोंकी) करनी चाहिये । और रोगीके अंगूठेकी बराबर मोटा उस नलीका मूलभाग होना चाहिये ।

और अग्रभागमें कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी करके मुख उसका गोल करे । उसका छिद्र मूंगके दानेके समान चौडा हो, तथा गोपुच्छके समान बीचमें मोटी ओरपास पतली ऐसी हो, वह छः अंगुल अथवा बारह अंगुलकी लंबावमें हो, उस बस्तीके दोनों भाग कर्णिकासे बांध देवे कि जिसमें संधि न रहे, इस प्रकार बस्ती बनायके देवे ।

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ॥ पलेनार्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने ॥ ७ ॥

अर्थ-अनुवासनबस्तीमें छः पलकी मात्रा उत्तम, तीन पलकी मध्यम और आधे पलकी मात्रा अनुवासनमें अधम जाननी ।

भोजयित्वा यथा शास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ॥ ८ ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहबस्तिना ॥ सुप्तस्य वामपार्श्वे वा वामजंघाप्रसारिणः ॥ ९ ॥ प्रकुंचितान्यजंघस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ वामेन पाणिना बस्तिकंठमालंब्य धीरधीः ॥ १० ॥ बस्तिं संपीडयेत्पश्चात्मध्यवेगोऽन्यपाणिना ॥ जृंभाकासक्षयादींश्च बस्तिकाले न कारयेत् ॥ ११ ॥ त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो बस्तेस्तु पीडने ॥ जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जिसको अनुवासनबस्ती देनी होवे उसको प्रथम स्निग्ध पदार्थ भोजन करायकर थोडा इधर उधरको डुलायले, तथा जो मल-मूत्र अधोवायु त्याग चुका हो उसको स्नेहबस्ती देवे, रोगीको बांई करवट सुलाय वामपैरको लंबा पसार दहने पैरको सकोडकर और गुदाको (घीसे) चिकनी करके बस्तीकी नलीको गुदाके ऊपर रख तथा कुशलवैद्य उस नलीको बांये हाथमें ले दहने हाथसे मध्यम वेगकरके दाबे, बस्ती देनेके समय जंभाई लेना, खांसना और छींकना इत्यादि कर्मोंको रोगी न करे । पिचकारी मारनेके समय तीस मात्रापर्यंत पिचकारी दाबनेका काल कहाहै । इस प्रकार जब बस्तीकी विधि होचुके तब रोगी इच्छापूर्वक शयन करे।

सतैलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥ उपद्रवं विना चैव स सम्यगनुवासितः ॥ १३ ॥ अनेन विधिना देयाः सप्त वाष्टौ नवापि वा ॥ अनायते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरत् अतिसंक्षेपतः प्रोक्तो बस्तिरेषाऽनुवासनः ॥ १४ ॥

अर्थ-जिसके गुदामेंसे पिचकारी, तेल और विष्ठाके साथ उपद्रवके विना तत्काल निकलआवे उसको उत्तम अनुवासित जानना । इसी प्रकार सात वा आठ तथा नौ वार पिचकारी गुदामें लगावे, यदि एक दिन और रात्रिमें वह गुदाका तेल बाहर न आवे तो उसको जुल्लाब आदि शोधनद्वारा निकाले, यह मैंने अतिसंक्षेपसे अनुवासनबस्तीकी विधि कही है ।

अथ निरूहबस्ति ।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः । स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ १५ ॥ निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थं पादोत्तरं मतम् ॥ मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनं च कुडवास्त्रयः ॥ १६ ॥ अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ नानुवास्यस्तु कुष्ठी वै मेही स्थूली तथोदरी ॥ १७ ॥ न स्थाप्या

नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः । शोकमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥ १८ ॥ अतिस्निग्धः क्लिष्टदोषः क्षतोरस्कः कृशस्तथा॥ आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः॥१९॥गुदे शोफातिसारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः॥गर्भिणा मधुमेही च नास्थाप्याश्च जलोदरी॥२०॥

अर्थ–निरूहबस्तिका दूसरा नाम पंडितोंने आस्थापन कहाहै। निरूहनबस्तीकी उत्तममात्रा १। प्रस्थकी है, मध्यम १ प्रस्थकी, और तीन कुडवकी मात्रा हीन जाननी।रूक्षमनुष्य, तीक्ष्णाग्निवाला, और जिसके केवल वादीका रोग हो ये सब अनुवासनके अधिकारी हैं। एव कोढी, प्रमेही, स्थूलमनुष्य और उदररोगी इनको अनुवासन न करे। अजीर्णरोगी, उन्मादवाला, तृषारोगी, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वास, खांसी और क्षयरोगी इनको न आस्थापन करे, और न अनुवासन करे। जो अतिस्निग्ध है, दोषोंकी कठोरता, उरःक्षती, कृश, अफरा, छर्दी, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास इन रोगोंसे पीडित, गुदामें सूजन और अतिसारसे पीडित, विषूचिकारोग, कोढी, गर्भिणी, मधुमेही और जलोदररोगी, इनको आस्थापनबस्ती नहीं देनी चाहिये।

वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे ॥ मूर्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥ वृद्ध्यसृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् ॥ २१ ॥

अर्थ–वातव्याधि, उदावर्त, वातरक्त, विषम ज्वर, मूर्च्छा, तृषा, उदर, अफरा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अंडवृद्धि, रक्तोदर, मंदाग्नि और प्रमेहरोग इनमें निरूहणबस्ती देवे।

मगधामधुकाभयबिल्वबचामिसिपुष्करमूलसटीशिखिभिः ॥ मदनामरदारुयुतैर्विपचेत्पयसा गुदबस्तिषु तैलमिदम्२२

अर्थ–पीपल, महुआ, हरड, बेलगिरी, वच, कलौंजी, पुहकरमूल, कचूर, चित्रक, मैनफल और देवदारु इनको समान भाग ले कूटकर क्वाथ करे, इस क्वाथमें तेल डालकर औटावे जब सब जल जरजाय केवल तेलमात्र शेष रहे तब उतारके इससे गुदामें बस्ती देवे यह पिप्पल्यादि तैल है।

गुडातिंतिडिकाकुडवस्तु भवेदपि चात्र मूत्रकुडवद्वितयम् ॥ मिसिरामठराठकसिंधुयुतं नृनिरूहणं हि विहितं मुनिभिः२३

अर्थ–गुड और तिंतडीक (इमलीकी खटाई) ये पाव २ भर, गौका मूत्र २ कुडव, सौंफ हींग, मैनफल और सेंधानिमक ये अनुमान माफक डालके मुनीश्वरोंने निरूहण बस्तीके वास्ते कहाहै। यह दिङ्मात्र उत्तरबस्ती कहीहै।

उत्तरबस्ती।

अतः परं प्रवक्ष्यामि बस्तिमुत्तरसंज्ञितम्। द्वादशांगुलमानेन नेत्रं वा समकर्णिकम्॥ २४ ॥ मालतीपुष्पवृंताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम्॥ पंचविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ २५ ॥ तदूर्ध्वं पलमात्रा हि स्नेहस्यापि भिषग्वरैः ॥ स्थितस्य जानुमात्रे च पीठेऽन्विष्य शलाकया ॥ २६ ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत् ॥ अनुवासक्रमः सर्वोऽप्यन्यो वापि निवेदितः ॥ २७ ॥ स्त्रीणां दशांगुलं नेत्रं स्थूलं प्रोक्तं कनिष्ठया ॥ मुद्गच्छिद्राननं योज्यं योन्यंतश्चतुरंगुलम्॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे तु सूक्ष्मं

नेत्रं नियोजयेत् ॥ मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानामेकमंगुलम् ॥ २८ ॥ योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिका ॥ द्विकार्षिकी च बालानां मूत्रमार्गे निरूपिता ॥ २९ ॥ बस्तौ शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥ हन्यादुत्तरबस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ॥ ३० ॥

अर्थ-अब इसके उपरांत उत्तरसंज्ञक बस्ती कहते हैं, बारह अंगुल लंबी नली, तथा मध्यमें कमलपत्रकी कर्णिकाके समान कर्णिका बनावे, व मालतीपुष्पकी डंडीके समान छोटा छिद्र करे, कि जिसमें सरसों निकल जावे। पच्चीस वर्षकी अवस्थासे न्यून अवस्थावालेको दो कर्षकी और पच्चीस वर्षसे बडी ऊमरवालोंको १ पलकी मात्रा यह स्नेहकी मात्रा कही है। जिसको उत्तरबस्ती देना होय उस मनुष्यको घोटुओंके बल सिंहासन वा कुरसी आदिपर बैठाकर घृतसे चिकनी सलाईकी नलीको लिंगके छिद्रमें प्रवेश करके और सब क्रम अनुवासनबस्तीके समान करे। यदि उत्तरबस्ती स्त्रियोंके देनी होवे तो उस बस्तीकी नली दशअंगुलकीबनावे, और छोटी उंगलीके बराबर मोटी, जिसमें मूंगका दाना चलाजाय इतना चौडा छिद्र करे, योनिमें चार अंगुल प्रवेश करे, और लिंगमें बहुत बारीक नली दो अंगुल प्रवेश करनी चाहिये। और मूत्रकृच्छ्रविकारमें बालकोंके एक अंगुल नली लिंगमें प्रवेश करे, स्त्रियोंकी योनिभागमें स्नेहकी २ पलकी मात्रा है, और बालकोंके मूत्रमार्गमें २ कर्षकी कही है। पुरुषोंके पेडूमें शुक्रकी पिडा और स्त्रियोंके आर्त्तवपीडा इनको उत्तरबस्ती नष्ट करे, परंतु प्रमेहरोगवालोंके उत्तरबस्ती कदाचित् न करे। इति उत्तरबस्तिक्रमः।

नेत्रबस्ति।

नेत्रसंतर्पणार्थं च नेत्रबस्ति प्रकल्पयेत् ॥ वातातपरजोहीनदेशे चोत्तानशायिनः ॥ ३१ ॥ नेत्रक्षेत्रं परित्यज्य सार्धं च द्वयमंगुलम् ॥ सर्वतश्चाप्यथ मर्षी जलं दत्त्वा प्रमर्दयेत् ॥ ३२ ॥ तेन पिंडेनालवालं दृढं संधिविवर्जितम् ॥ कृत्वा नवीनतैलेन शुक्लभागं द्रवेण वै ॥ ३३॥ पूरयेच्च यथा पक्ष्म पूरितं चैव जायते॥ नेत्रे यत्नं प्रकुर्वीत विकाशस्तु तथैव च ॥ ३४ ॥ बस्तौ कफे संधिरोगे मात्रापंचशतं विदुः ॥ कफे वाते कृष्णरोगे मात्रासप्तशतं मतम् ॥ ३५ ॥ दृष्टिरोगे स्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ॥ शुक्लेतिकुटिले ह्रस्वे स्याद्वादशशती मता। ॥ ३६॥ पित्तरोगे नवशतं सहस्रं वातरोगिणाम् ॥ एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेष्यतेऽथवा ॥३७॥ द्रवं चापांगतो नीत्वा नीलद्रव्यं विलोक्य च ॥ सुखं निरीक्षयेत्तावन्नेत्रबस्तिविधिस्त्वयम् ॥ ३८ ॥ निर्वृतिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ सम्यग्योगे सुखं सुप्तिवैशद्यं वर्णपाटवम् ॥ ३९ ॥ शोफाश्रुपातगुरुता मौढ्यं स्याददतितर्पितैः ॥ रूक्षाविलं सरक्तं च नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ रूक्षः स्निग्धः क्रमश्चात्र प्रयोज्यः संप्रदायतः ॥ ४० ॥

अर्थ-नेत्रोंके तृप्त करनेके वास्ते नेत्रबस्तिकी कल्पना करे, जहां पवन, धूप और धूल न आतीहो वे ऐसे भीतरके घरमें रोगीको चित्त लेटा-

षकर २॥ अंगुल नेत्रके क्षेत्रको त्यागकर आगे उडदके चूनको जलमें सानकर गोला बनावे उस गोलेसे नेत्रके ओरपास दृढ छिद्ररहित थामरासा बनावे, फिर उसको नवीन तिलीके तेलसे नेत्रके सपेद्भागको भरदेवे कि जिसमें नेत्रके पलकभी डूबजावें, फिर धीरेधीरे नेत्र खोले,इस प्रकार कफके रोगमें और संधिरोगमें ५०० मात्रा बस्तीकी जाननी, कफवात और नेत्रके काले भागमें ७००, दृष्टिरोगमें ८००, अधिमंथ रोगमें १०००, नेत्रके सपेद और कुटिल तथा लटनेमें १२०० बारहसौ, पित्तके रोगमें ९००, वातरोगमें १००० इस नेत्रतर्पणको एक दिन वा तीन दिन वा पांचादिनपर्यंत करे । द्रव (आँसू तैलआदि) को नेत्रोंके भीतरसे पोछकर नीलरंगकी वस्तुको प्रथम देखे, जबतक ठीक २ न दीखे तबतक उस नीलरंगकोही देखा करे, यह नेत्रबस्तिकी विधि कहीहै इससे व्याधिकी निवृत्ति और शांति, क्रियामें लाघवता, सुखपूर्वक निद्राका आना, नेत्रोंका निर्मलत्व और नेत्रोंका सुंदरवर्ण होना, ये लक्षण उत्तम नेत्रबस्ति होनेसे होतेहैं । नेत्रोंमें सूजन आंसुओंका गिरना, नेत्र भारी और मूढ, ये अतितर्पितनेत्रके लक्षण जानने । तथा रूखे, गदले, लाल, ये हीनतर्पितनेत्रोंके लक्षण हैं। तहां अतितर्पित नेत्रमें रूक्ष कर्म करे और हीनतर्पित नेत्रोंमें स्निग्धकर्म करना चाहिये यह वैद्य अपनी चातुरीसे करे । यह नेत्रबस्तिविधि बृहत् आत्रेयग्रंथमें लिखी है ।

शिरोबस्ति ।

अभ्यंगः परिषेकश्च पिचुबस्तिरितिक्रमात् ॥ तैलं मूर्ध्नि चतुर्धैवं बलवच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४१ ॥ एतेषां च परा मात्रा यावत्स्रावश्च नेत्रयोः ॥ सूचीभिरिव तोदश्च केशभूमिषु जायते ॥ ४२ ॥ स्नेहं पिचुप्लुतं कृत्वा प्रदद्यान्मस्तकोपरि॥ ऊर्ध्वजत्रुविकारे च पिचुतैलं प्रशस्यते ॥ ४३ ॥ शिरोबस्तिचर्मकृतो द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥ शिरःप्रमाणं तं कृत्वा चर्मबंधेन यंत्रयेत् ॥ ४४ ॥ अथवा संधिरोधं च चमसीभिः प्रयोजयेत् ॥ ततस्तैलं न्यसेत्तत्र यावत्संपूर्णता भवेत् ॥ ४५ ॥ तावद्धार्यस्तु यावत्स्यात्कर्णनासामुखस्रुतिः ॥ वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् । ॥ ४६ ॥ विना भोजनमेवात्र शिरोबस्तिर्विधीयते ॥ विमोच्याथ शिरोबस्तिं युगपत्तु विमर्दयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-अभ्यंग, परिषेक, पिचु, और बस्ति, इस प्रकार मस्तकमें तैल डालना चार प्रकारका है ये उत्तरोत्तर प्रबल हैं । जैसे अभ्यंगसे परिषेक, परिषेकसे पिचु, और पिचुसे शिरोबस्ति बलवान् है इनकी परा मात्रा वही है कि नेत्रोंसे जल गिरनेलगे सूईका चबकासा बालोंके स्थानमें होनेलगे ।

रुईके फोहेको तेलमें भिगोकर मस्तकके ऊपर रखे, यह पिचुस्नेह हसलीसे ऊपरके रोगोंपर करे शिरोबस्ति यदि करनी होवे तो चामकी दोमुखवाली बारह अंगुल चौडी जितना बडा मस्तक होय उतनी लंबी टोपी बनावे, और इसको चामकी रस्सीसेही कसदेवे अथवा इसकी संधियोंको उडदके चूनको सानकर बंद करे, फिर इसमें तेल भरदेवे, जबतक पूर्ण न होय, जब कान नाक मुखमेंसे तेल निकलने लगे तब इसको दूर करे अथवा जबतक दर्द दूर न हो तब-

तक धारण करे अथवा हजार मात्रापर्यंत धारण करे। यह शिरोबस्ति विना भोजन करे होतीहै । शिरोबस्तीको त्यागके उसी समय एकसाथ तेलको जहांका तहांही मर्दन करनेलगे ।

मात्राका प्रमाण ।

दक्षजानुकरावर्त छोटिकाच्छोटिकायुतम् ॥ निमेषोन्मेषकालो वा एषा मात्रा कृता बुधैः ॥ ४८ ॥

अर्थ-दहने पैरके घोंटूपर चारों तरफ हाथ फेरके चुटकी बजाना, अथवा पलकोंके खोलने मूंदनेमें जितना समय लगताहै उसको पंडित जन मात्रा कहते हैं ।

बस्तिमें बैठना ।

कटाहे मृन्मये पात्रे कि वा पक्कमूलके ॥ ताम्रादिजेऽथवा पात्रे किं वा पाषाणसंभवे ॥ ४९ ॥ आकंठमग्नो वासेत प्रहरं प्रातरेव वै ॥ रोमांतेष्वनुकूपेषु स्थित्वा मात्राशतत्रयम् ॥ ५० ॥ ततः प्रविशति स्नेहश्चतुर्भिर्गच्छति त्वचम् ॥ पंचभिश्च भजेद्रक्तं षड्भिर्मांसं प्रपद्यते ॥ ५१ ॥ मेदःस्थानं सप्तशतैरष्टभिश्चास्थिषु व्रजेत् ॥ नवभिर्याति मज्जानं ततो मात्रां न कारयेत् ॥ ५२॥ ततस्तु हरते रोगान्वातपित्तकफोद्भवान् ॥ स्रोतसां मार्दवकरः कफवातविनाशनः ॥ ५३ ॥ धातूनां पुष्टिजननो बलवर्णकरः परः ॥ वातरोगानशेषांश्च जयेदेव विशेषतः ॥ ५४ ॥

अर्थ-कढावमें अथवा मिट्टीके पात्रमें वा लकडीके बने पात्रमें अथवा ताम्रादिक धातुके पात्रमें या पत्थरके पात्रमें बैठजावे, उसमें कंठपर्यंत तेल भरदेय । यह प्रातःकालके एक प्रहरतक करे तो ३०० मात्रा रोमांचोंमें ठहरकर फिर चारसौ मात्रामें वह तेल त्वचाके भीतर प्रवेश करेहै । और पांचसौ मात्रामें रुधिरमें जाताहै । और छः सौ मात्रा ठहरनेसे मांसमें, सातसौमें मेदामें, और आठसौमें हड्डियोंमें जाताहै । और ९०० मात्रा रहनेसे वह तेल मज्जामें जाताहै । नौसौ मात्राके उपरांत इसको धारण न करे तो यह वातपित्त और कफके रोगोंको हरण करे, छिद्रोंको नम्र करे, वातकफको नष्ट करे, धातुओंकी पुष्टि करे, बलवर्णकर्त्ता है, विशेषकरके संपूर्ण वातरोगोंको जीतताहै । यह बस्त्यवगाहनविधि वैद्यालंकारग्रंथमें लिखी है ।

कर्णपूरणमात्राकी विधि ।

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥ तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ५५॥ स्वेदयेत्कर्णदेशं तु परिवर्तनशायिनः ॥ मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैः पूरयेच्च ततो भिषक् ॥ ५६ ॥ स्वस्थस्य पूरणे स्नेहैर्मात्राशतमवेदने ॥ शतत्रयं श्रोत्रगदे शिरोरोगे तथैव च ॥ ५७ ॥ कर्ण प्रपूरयेत्सम्यक्स्नेहाद्यैर्मात्रयोक्तया ॥ नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ५८ ॥

अर्थ-यदि कानोंको रस आदिसे पूरण करना होवे तो भोजन करनेसे प्रथम करे, और तेल आदिसे पूरण करना हो तो सूर्यास्त अर्थात् रात्रिमें करे । मनुष्यको एक करवट सुलायकर उसके कानको गरम गरम मूत्रसे स्नेहसे रससे प्रथम स्वेदन करके फिर पूरण करे अर्थात् तेल डाले । निरोगी पुरुषके स्नेह कर्णपूरणकी अवधि १०० मात्राकी है । कानके रोगमें तीनसौ मात्रा, और

तीनसौही मस्तकरोगमें जाननी । स्नेहोक्त मात्रा करके कानको पूरण करे । नित्य कर्णपूरण अर्थात् कानमें तेल डालनेसे ऊंचा सुनना, और बहरापना ये नहीं रहे यह योगपारिजातग्रंथमें कर्ण पूरणकी विधि कहीहै ।

निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः पादरोगहा॥ पादत्वङ्मृदुकर्ता च पादाभ्यंगः प्रशस्यते ॥ ५९ ॥ मृदौ समे सुपर्यंके गतः स्वस्थतमो नरः ॥ उत्तानशायी संभूय तैलाभ्यंगं समाचरेत् ॥ ६० ॥ तपो विद्यां धनं चक्षुरायुः कीर्तिं प्रजां हरेत् ॥ श्रोत्राक्षिबलदं पित्तश्रमतृड्दाहमेहनुत् ॥ ६१ ॥ वाते पित्ते कफे रक्ते सन्निपाते तथैव च ॥ मदमूर्च्छाप्रलापे च तृष्णाजीर्णज्वरेषु च ॥ ६२॥ संतप्ते सतताजीर्णे मार्गश्रांते विशेषतः ॥ बाले वृद्धे च तरुणे तैलाभ्यंगः सदोत्तमः ॥ ६३ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां संक्षेपतो बस्तिविधिरष्टमस्तरंगः ॥ ८ ॥

अर्थ–पादाभ्यंग अर्थात् पैरोंमे तेलकी मालिस करना निद्राकर्त्ता, देहसुखकर्त्ता नेत्रोंको हितकारी, पैरोंका रोग हरण करे, तथा पैरोंकी त्वचाको नरम करेहै सुंदर नरम समान पलंगपर जब प्राणी सुखपूर्वक सोयजावे तब उसके पैरोंमें तेलकी मालिस करे । यदि चित्त लेटकर तेलकी मालिस करावे तो उसके तप, विद्या, धन, नेत्र, आयु, कीर्ति और संतान इनका हरण करे । इसवास्ते चित्त सोयकर मालिस न करे । तेलमालीस–कानोंको और नेत्रोंको बल देवे । पित्त, श्रम, तृषा, दाह और प्रमेह इनको हरणकरे । वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, रुधिर और संनिपात, मद, मूर्च्छा, प्रलाप, प्यास, जीर्णज्वर धूपआदिसे संताप, निरंतर अजीर्ण रोगी, मार्गसे थकाहुआ, बालक, बुड्ढा, तरुण, इन सबको तैलकी मालिस करना सदैव उत्तम है यह कृष्णात्रेयग्रंथमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां संक्षेपतो बस्तिविधिरष्टमस्तरंगः ॥ ८ ॥

नवमस्तरंगः ।

नस्यविधि ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् ॥ नावनं सूक्ष्मकर्मेति नस्यनामद्वयं मतम् ॥ १ ॥ तस्य भेदद्वयं प्रोक्तं रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ २ ॥ कफपित्तानिलध्वंसी पूर्वमध्यापराह्णके ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ३ ॥ नस्यं त्यजेद्भोजनादौ दुर्दिने चापतर्पिते ॥ तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ ४ ॥ अजीर्णी दत्तबस्तिश्च पीतस्नेहोदकासवः ॥ क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ ॥ ५ ॥ वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥ अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ ६ ॥ अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ॥ अथ वै रेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥ तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ॥ नासिकारंध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिंदवः ॥ ८ ॥ प्रत्येकं रेचनं योज्यं मुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥ नस्यकर्माणि दातव्यं

शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥ हिंगु स्याद्यवमात्रंतुमाषैकंसैंधवंमतम् ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् ॥ १० ॥ कार्षिकंमधुरंद्रव्यं नस्यकर्मणियोजयेत् ॥ षडंगुला द्विवक्त्री या नाली चूर्णतयाधमेत् ॥ तीक्ष्णंकोलमितंवक्रवातैःप्रधमनंहितम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जो औषध नासामें ग्रहण करी जाती है उसको नस्य कहतेहैं उस नस्यके दो नाम हैं एक नावन दूसरा सूक्ष्मकर्म । फिर उस नस्यके दो भेद हैं रेचन और स्नेहन। तहां रेचननस्य कर्षण (वात पित्त कफादिकोंको छेदन) करे, और स्नेहन नस्य बृंहण (धातुवृद्धि) करताहै।

प्रातःकाल नस्यकर्म कफको, मध्याह्नमें पित्तको, और सायंकालमें कराहुआ नस्य वादीको दूर करे है । नस्य दिनमें लेवे परंतु यदि घोर व्याधि होय तो रात्रिमेंभी लेनी चाहिये ।

त्याज्यसमय-भोजनके प्रथम, दुर्दिनमें, लंघनमें, नवीन सरेकमामें, गर्भिणीस्त्रीके, विषरोगीके, अजीर्णरोगी, जिसके बस्तीकर्म करा गयाहो, जिसने स्नेहपान कराहो, जल पीयाहो, वा दारू पीया हो, क्रोधी, शोकसे व्याकुल, प्यासा, वृद्ध, बालक, मलमूत्रादिवेगको धारण करता, जिसने तत्काल स्नान कराहो, अथवा जो स्नान करा चाहै, उसको नस्यकर्म करना वर्जित है ।

आठवर्षकी अवस्थाके बालकके नस्यकर्म करे और अस्सी वर्षकी अवस्थाके पश्चात् नस्य न देवे, तीक्ष्ण तैलोंकरके वैरेचन नस्य देवे, अथवा तीक्ष्ण औषधों करके बने ऐसे तेल क्वाथ और रसोंसे नस्य देवे, नाकके छेदमें आठ छः या चार बूंद नस्यकी डालनी चाहिये । तहां आठ बूंदकी मुख्य मात्रा, छः बूंदकी मध्यम और चार बूंदकी अधम मात्रा है। ये प्रत्येक रेचनकी मात्रा हैं।

नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषध १ शाण लेवे, हींग १ जौकी बराबर ले, सैंधानिमक १ मासा, दूध ८ शाण, और जल तीन कर्ष ले, एवं मिष्ट द्रव्य १ कर्ष लेनी चाहिये । नस्य देनेके वास्ते छः अंगुलकी और दो छिद्रवाली ऐसी नलीमें चूर्ण डालके धमावे, अतितीक्ष्ण औषध १ कोल परिमाण ले टेढी नलीसे धमाना हितकारी है ।

वैरेचननस्यके प्रयोग ।

नस्यं स्याद्गुडशुंठीभ्यां पिप्पल्या सैंधवेन वा ॥ जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥ १२ ॥ मन्याहनुगलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥ मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैंधवैः । ॥ १३ ॥ नस्यं कोष्णजलैः पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ अपस्मारे तथोन्मोदे सन्निपातेऽपतंत्रके ॥ १४ ॥ सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥ बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तंद्रानिवारणम् ॥ १५ ॥ रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं मरिचं वचा ॥ कंकोलं चेति चूर्णं हि देयं प्रधमनं बुधैः ॥ १६ ॥

अर्थ-गुड और सोंठकी नस्य देवे, अथवा पीपल और सेंधोनिमकको जलमें पीस नस्य देवे तो नेत्र नाक कान और शिरके रोग तथा मन्यानाडी, ढोडी गलेके रोग और हाथ तथा पीठके रोग दूर हों ।

अथवा—महुएका सत और पीपल इनसे वा वच, कालीमिरच और सेंधानिमक इनको गरम जलमें पीसके देवे तो संज्ञा होजावे । यह मृगीरोग, उन्मादरोग, संनिपात और अपतंत्रकवातरोग इनमें देना चाहिये । सेंधानिमक, धुलीहुई कालीमिरच, सरसों, कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसके नस्य देवे तो तंद्रा दूर हो । अथवा रोहू मछलीके पित्तेकी मिरच वच और कंकोल इनके चूर्णमें भावना देकर तंद्रादि रोगमें नास देवे ।

बृंहणनस्यकी विधि ।

मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताष्टभिः ॥ १७ ॥ मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता मता ॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः ॥ १८ ॥ मर्शस्य द्वित्रिवेलं च दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ एकांतरे द्व्यंतरे वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ १९ ॥ त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं च सुयंत्रितः॥ मर्शः शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥ २० ॥ दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चापि विज्ञेयास्ता यथाक्रमात् ॥ शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्धभेदके ॥ ॥ २१ ॥ दंतरोगे बले हीने मन्याबाहुंसजे गदे ॥ मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥ २२ ॥ अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ॥ युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ २३ ॥

अर्थ—स्नेहन नस्यके दो भेद हैं एक मर्श दूसरा प्रतिमर्श । तहां मर्शनस्यकी तर्पिणी मुख्य मात्रा ८ शाणकी है, ४ शाणकी मध्यम और १ शाणकी अधममात्रा है। वह एक नाकके नथनेमें एक एक मात्रा दो २ वार तीन २ वार दोषोंका बलाबल देखकर देवे । तथा एक २ दिनके दो दो दिनके बीच देकर नस्य देनी चाहिये। अथवा तीन २ पांच २ सात दिनके अंतरसे विधिपूर्वक नस्य देवे। मर्शनस्यके शिरविरेचनमें अनेक प्रकारकी व्यापत्ति (उपद्रव) होते हैं । वे दोषोंके उत्क्लेशसे और दोषोंके क्षीण होनेसे होते हैं उनको यथाक्रमसे जानने ।

शिर, नासिका, नेत्ररोगमें, मन्या, बाहु, कंधेके रोगमें, मुखशोष, कर्णनाद, वातपित्तके रोग, अकालमें सफेद बालोका होना, वलि, ठुड्ढी मूछोंके गिरजानेमें, इन सर्व रोगोंमें स्नेहकरके अथवा मधुर औषधोंके द्रवोंकरके बृंहणनस्य देवे ।

बृंहणनस्यके प्रयोग ।

सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम्॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ॥ २४ ॥ भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकाः ॥ नस्यं स्यात्तिलतैलेन तथा नारायणेन वा ॥ २५ ॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा ॥ २६ ॥ दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥

अर्थ—प्रथम केशरको घीमें भूनके मिश्री मिलेहुए दूधमें पीसकर नस्य देवे तो वातरक्तकी पीडाको तथा मुँहं, कनपटी, नेत्र, शिर, कान, सूर्यावर्त्त और अर्धावभेदक इन रोगोंको दूर करे । तिलीका तेल वा नारायणतैल वा माषादितैल तथा उन्हीं २ भेषजोंसे वनेहुए घृतोंसे नस्य देवे तो उक्तरोग दूर होंय । कफके रोग वा

वातके रोगमें तेलकी नस्य और केवल वातरोगमें वसाकी नस्य देवे और पित्तके रोगमें घृत और मज्जाकी नस्य देवे।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुचकरौहिषैः। कृतोश्वगंधया क्वाथो हिंगुसैंधवसंयुतः॥ २७॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम्॥ जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापबाहुकम्॥ २८॥

अर्थ-उडद, कौंचके बीज, रास्ना, बला, संचरनिमक, रोहिषतृण और असगंध इनका क्वाथ कर उसमें हींग और सेंधानमक डालके गरम २ की नस्य देवे तो पक्षाघात, कंपनवायु, अर्दितवायु मन्यास्तंभ, अपबाहुक इन सब रोगोंको दूर करे।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रिबिंदुमिता मता॥ २९॥ प्रत्येकशो नासिकयोः स्नेहेति विनिश्चितम॥ स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्नं चोन्नतं ततः॥ ३०॥ तज्जन्याश्च स्रवेत्तस्या यः स बिंदुरुदाहृतः॥ एवंविधैरष्टसंख्यैर्बिंदुभिः शाण उच्यते॥ स देयो मर्शनस्ये तु प्रतिमर्शे द्विबिंदुकः॥ ३१॥

अर्थ-प्रतिमर्शनस्यकी मात्रा दो बूंद वा तीन बूंदकी है, प्रत्येक नथनेमें स्नेहकी बूंद डाले। तहां कहते हैं कि रुई आदिकी दो गांठोंको डबोयके उसकी बिंदू नाकमें टपकावे उस टपकानेको बिंदु वा बूंद कहतेहैं। ऐसी आठ २ बूंदोंकी एक शाणसंज्ञा है। यह शाण मर्शसंज्ञक नस्यमें देवे। और प्रतिमर्शमें दो बिंदु और दोनों नथनोंमें एक २ बिंदु देवे।

समया प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश॥ ३२॥ प्रभाते दंतकाष्ठांते गृहान्निर्गमने तथा॥ व्यायामाऽध्वव्यवायांते विण्मूत्रांतेंऽजने कृते॥ ३३॥ कवलांते भोजनांते दिवास्वप्नोत्थिते तथा॥ वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते॥ ३४॥ प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः॥

अर्थ-प्रतिनस्यके १४ समय हैं तहां प्रभातमें, दांतूनके समय, घरसे निकलनेके बखत, दंड कसरतके अंतमें, मार्ग चलनेके पश्चात्, और मैथुनके अंतमें, एवं मलमूत्रके अंतमें, अंजन आंजनेके पश्चात्, कवलके अंतमें, भोजनके अंतमें, दिनमें सोनेके पश्चात्, वमनांतमें, और सायंकालमें प्रतिमर्शनस्य दीनी जातीहै प्रतिमर्श नस्यसे हसलीके ऊपर होनेवाले रोग यावन्मात्र हैं सब नष्ट होवें।

बिभीतनिंबकंभारी शिवा शेलुश्च काकिनी॥ एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम्॥ ३५॥

अर्थ-बहेडेकी मींगी, नीमकी निबोरी, कंभारीबीज, हरड, सहोडा और गोंदी इन प्रत्येकके तैलकी पृथक् २ नस्य लेनेसे सपेद बालोंका होना अवश्य दूर होय।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्॥ एतानि पंचकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः॥ ३६॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां नस्यविधिर्नाम नवमस्तरंगः॥ ९॥

अर्थ-पंचकर्म-वमन, रेचन, नस्य, निरूह और अनुवासन, ये मुनीश्वरोंने पांच कर्म कहे हैं ये पांच कर्म समाप्त हुए।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां नस्यविधिर्नाम नवमस्तरंगः।

दशमस्तरंगः ।

धूमपान विधि ।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तो बृंहणं शमनं तथा ॥ रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणशोधनः ॥ १ ॥ शमनस्य तु पर्यायो मध्यः प्रायोगिकस्तथा ॥ बृंहणस्य तु पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥ रेचनस्य च पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीरुश्च दुःखितः ॥ ३ ॥ दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ४ ॥ शिरोभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥ रूक्षः क्षीणोभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रयुतासवः ॥ भुक्तान्नदाधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६॥ अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥ धूमो द्वादशमाद्वर्षादीयतेऽशीतितो न च ॥ ७ ॥ कासश्वासप्रतिश्यायमन्याहनुशिरोरुजः ॥ वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमस्तु योजितः ॥ ८ ॥ धूमप्रयोगात्पुरुषः प्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः॥ दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगंधिवदनो भवेत् । ॥ ९ ॥ वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः ॥ १० ॥ शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं प्रवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत्॥११॥ एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ ॥ रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकौषणम् ॥ १२ ॥ वामने स्नायुचर्माद्ये दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ व्रणे निंबवचाद्यं च धूमदानं प्रशस्यते । ॥ १३ ॥ अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशांतये ॥

अर्थ–धूमपान छः प्रकारका है बृंहण, शमन, रेचन, कासहा, वामन और व्रणशोधन । तहां शमनधूमके पर्याय शब्द मध्य और प्रायोगिक हैं और बृंहणके पर्याय स्नेहन और मृदु हैं। रेचनके पर्याय शोधन और तीक्ष्ण हैं ।

इतने प्राणियोंको धूमपान वर्जित है जैसे परिश्रमी डरनेवाला, दुःखी जिसको बस्ती अथवा जुलाब दिया हो, रात्रिमें जगा हुआ, प्यासा, दाहपीडित, जिसका तलुआ सूख रहा हो, उदररोगी, शिरकी पीडायुक्त, तिमिररोगवाला, छर्दिरोगी, अफरासे पीडित, उरःक्षतवाला, प्रमेहार्त, पांडुरोगी, गर्भिणी, रूक्ष, क्षीण, दूध, सहत, घी और आसव इनको पी चुका हो, अन्न और दही मछली भोजन करचुका हो, बालक, बुड्ढा, कृश (लटा हुआ) और विना समयके पीया हुआ धूम अनेक उपद्रवोंको करे है।

वाग्हवर्षकी अवस्थासे धूमपान करना और अस्सी वर्षकी अवस्थासे उपरांत धूमपान निषेध है। धूमपान करना खांसी, श्वास, सरेकमा, गरदन, ठोडी, मस्तकपीडा और वातकफके विकार इन सबको दूर करे। धूमपानके करनेसे यह प्राणी प्रसन्न इन्द्री, वाणी और प्रसन्न मन होता है इसके बाल, दांत, मूंछ, ठुड्ढी ये दृढ (पुख्त) होवें सुगंधित मुख हो ।

मुखसे धूआं पीवे और मुखके रास्तेसेही नि-

काल देवे; फिर नासिकासे पीवे और मुखमार्गसे निकाल देवे । शरावसंपुटमें कल्क (हुक्के पीनेका मसाला) रख ऊपर जलते अंगारोंको रखके छिद्रमें नलीको लगायके उसके द्वारा व्रण (घाव) को धूनी देवे। एलादि कल्क शमनके वास्ते स्निग्ध कहा है और रालका रस मृदु धूमपानके वास्ते है । रेचन धूमपानको तीक्ष्ण औषधोंका कल्क ले कासघ्न धूमपानमें कटेरी और मिरच पीपल ले । वमनसंज्ञक धूमपानमें स्नायु अथवा खुरसींग कठोर हड्डी सूखा मांस और कीडे और चाम आदिका कल्क लेके उसका धूमपान करे । व्रणमें नीम और वचादि चूर्णकी धूनी देनी चाहिये । जब महामारी आदि रोग हों अथवा साधारण रोग होवें तो घरकी पवन शुद्ध करनेको राल गंधक आदिकी धूनी देनी चाहिये ।

अपराजिताधूप ।

मयूरपिच्छं निंबस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥ १४ ॥ मरिचं हिंगुभांसी च बीजं कार्पाससंभवम् ॥ छागरोमाणि निर्मोकं विष्ठा बैडालकी तथा॥ १५ ॥ गजदंतस्य चूर्णं हि किंचिद्‌घृतविमिश्रितम् ॥ गृहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्वालग्रहाञ्जयेत् ॥ पिशाचात्राक्षसान्हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–मोरपंख, नीमके पत्ते, कटेरीके फल, काली मिरच, हींग, जटामांसी, कपासके बीज, बकरीके बाल, सांपकी कांचली, बिलाईकी विष्ठा, हाथीदांतका चूरा, इसमें थोडासा घी मिलायके घरमें धूनी देवे तो सब बालग्रहोंको दूर करे । पिशाच, राक्षसोंको नष्ट करे, तथा सर्व ज्वरोंको दूर करे । इसे अपराजिताधूप कहते हैं ।

नली ।

नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशभवान्यपि ॥ १७ ॥ चतुर्विंशत्यंगुलानि खंडानि त्रीणि युक्तितः ॥ योजितानि त्रिखंडेयं नलिका नेत्रसंज्ञिका ॥ १८ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां धूमपानविधिर्नाम दशमस्तरंगः ॥ १० ॥

अर्थ–धूनी देनेकी नली सुवर्ण चांदी आदि धातुकी होवे, अथवा नरसल वा बांसकी हो, २४ अंगुल लंबी और तीन टूककी, इसको युक्तिसे बनावे । यह नेत्रसंज्ञक त्रिखण्डनलिका यथायोग्य कार्यमें योजना करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां धूमपानविधिर्नाम दशमस्तरंगः ।

एकादशस्तरंगः ।

रक्तस्रुतिः ।

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः॥ त्वग्दोषग्रंथिशोफाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ॥ १ ॥ विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥ भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ २ ॥ इंद्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम्॥ अन्यत्सर्वमशुद्धं हि विज्ञेयं रुधिरं नृणाम् ॥ ३ ॥ शोथे दाहेऽगपाके च रक्तवर्णेऽसृजःस्रुतौ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ॥ ४ ॥पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ॥ ५ ॥ विदारीस्तनरोगेषु वपुषश्चापि गौरवे॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्य हेतवे ॥ ६ ॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिंडकोद्गमे ॥ कर्णोष्ठ-

घ्राणवक्राणां पाके दाहे शिरोरुजे॥७॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते । एषु रोगेषु श्रृंगैर्वा जलौकालाबुकैरपि । ॥ ८ ॥ अथवापि शिरावेधे रक्तमोक्षः प्रशस्यते ॥ पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् ॥ ९ ॥ सर्वांगशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम्॥छर्द्यतीसारजुष्टानां पांडूनां स्विन्नदेहिनाम् ॥ १०॥ ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥ आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते ११

अर्थ-शरद्दतुमें स्वभावसे ही इस प्राणिकी रक्तस्रुति करे, क्योंकि रक्तस्रुति (रुधिर निकालने) से इस प्राणीके त्वचाके दोष (कुष्ठ आदि गांठ सूजन आदि रोग) नहीं होते । इस रुधिरमें विस्रता (आमंगध), द्रवत्व, रंग, चलन और विलयन (लीनता) ये पांचगुण पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंके रुधिरमें क्रमसे जानलेने चाहिये। इन्द्रगोप (बीरबहूटी) के समान लाल रुधिरको शुद्ध जानना और सब रुधिर मनुष्योंके अशुद्ध जानने चाहिये ।

सूजन,दाह,अंगोंका पकना, देहका लाल वर्ण होजावे, कान नाक मुखसे रुधिर गिरना वातरक्त, कुष्ठ, पीडायुक्त घोरवातरोग, हाथोंके रोग, श्लीपद, विषकी दुष्टता, रुधिरकी दुष्टता, गांठ, अर्बुद, अपची, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमंथ (नेत्रका रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, देहके भारी होनेमें, रक्ताभिष्यंद, तंद्रा, नाकमें बास आना, यकृत, प्लीह, विसर्प, विद्रधि, पिडिका(फुंसी) होनेमें कान, होठ, नाक, मुख इनके पकनेमें और दाहमें, मस्तकके रोगमें, उपदंश, रक्तपित्त इन सब रोगोंमें रुधिरस्राव करना चाहिये ।

इन रोगोंमें सिंगी, जौंक, तुंबी, अथवा फस्त खोलनेद्वारा रुधिर निकालना चाहिये। जो पांच कर्मोंसे विशुद्ध होगया हो, स्नेहपान करा हा बवासीररोगमें, सर्वांगकी सूजन, उदररोगी, श्वास, खांसीवाला, जो वमन और अतिसारसे युक्त है, पांडुरोगी, स्वेदितदेहवाला, जिसकी सोलह वर्षकी उम्र न हुईहो, और सत्तरवर्षकी अवस्थासे उपरांत, जिसके चोट लगनेसे रुधिर निकलगया हो इन सबकी फस्त नहीं खोलनी चाहिये ।

गृह्णाति शोणितं श्रृंगं दशांगुलमितं बलात् ॥ जलौका हस्तमात्रं तु तुंबं च द्वादशांगुलम् ॥ १२ ॥ पदमंगुलमात्रं तु शिरा सर्वांगशोधिनी ॥ रक्ते दुष्टे च शिष्टेपि व्याधिनव प्रकुप्यति ॥ १३ ॥ अतः स्वास्थ्यं सावशेषं रक्ते नातिक्रमो मतः ॥ आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं च शिरोरुजम् ॥ १४ ॥ पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहंच पांडुताम् ॥ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति हि ॥ १५ ॥ देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्ते नैव धार्यते ॥ बिना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः ॥

अर्थ-सिंगी देहमेंसे दश अंगुलपर्यंतके रुधिरको बलपूर्वक खींचती है, जौंक एक हाथ पर्यंत, और तूंबी बारह अंगुलके रुधिरको, पद (पछना) एक अंगुलके रुधिरको, और फस्त खोलना सर्वांगके रुधिरको खींचे है । थोडासा दुष्ट रुधिर बाकी रहनेसे रोगकारी नहीं होता,इसीसे सावशेष अर्थात् थोडासा बाकी रहने देवे, सर्वथा न निकालडाले । शेष रहाहुआ दूषित रुधिरभी अवगुण नहीं करै ।

रुधिरके अत्यंत निकलनेसे अंधेरा आना, आक्षेप, तृषा, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षाघात, श्वास, खांसी, हिचकी, दाह, पांडुरोग और मरण इनको करेहै । इस देहकी उत्पत्ति रुधिरसे है और इसी रुधिरसे देह धारण कराजाताहै। विना रुधिरके जीव इस देहसे निकल जावे, अतएव बुद्धिमान् प्राणी इस रुधिरकी रक्षा करे ।

शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते। कोष्णेन सर्पिषा शोथं श्वयथुं परिषेचयेत् ॥ १६ ॥ क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिता ॥ १७ ॥ पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयम् ॥ मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते स्रृजि ॥ १८ ॥

अर्थ-जिसका रुधिर निकालाहै उसके यदि शातल उपचार करनेसे वात कुपित हुई हो तो गरम गरम घीसे सोथको सेचन करे । जो रुधिरके निकालनेसे क्षीण होगया हो उसको काले हिरणका, ससेका, मैंढा, हिरन और बकरेके मांसका रस पीनेको देवे। अथवा गरम २ दूध पिवावे, अथवा सांठी चांवलोंका भात भोजनको देय। पीडाकी शांति, हलकापना, व्याधिके बढनेका क्षय होना, मनमें स्वस्थता ये लक्षण उत्तम निकले रुधिरवाले मनुष्यके हैं ।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् । एकाशनं दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम् ॥ शोकं वातमजीर्णं च त्यजेद्यावद्बली भवेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-दंड कसरत, मैथुन, क्रोध, शीत, स्नान करना, अत्यंत पवनमें बैठना, एकवार भोजन, दिनमें सोना, खारी (नोन), खटाई, और चरपरे पदार्थोंका भक्षण, शोक करना, वात और अजीर्ण ये कर्म जबतक रुधिर निकाले हुए प्राणीमें बल न होय तबतक त्याज्य हैं ।

फेनि रूक्षं भवेत्सूचि निस्तोदि पवनादसृक ॥ २० ॥ विसृतापीतमाश्यामं कोष्णं पित्तेन जायते ॥ मंदगं बहुलं स्निग्धं मांसपेशीनिभं कफात् ॥ २१ ॥ द्विदोषदुष्टं संमृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगंधिकम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं कांजिकाभं च जायते ॥ २२ ॥ विषदुष्टं भवेच्छयावं नासिकोन्मार्गगं तथा ॥ दुर्गंधिकांजिसंकाशं सर्वकुष्ठकरं भवेत् ॥ २३ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामेकादशस्तरंगः ११॥

अर्थ-झागदार, रूखा, सूईके समान व्यथासहित, पाक होनेवाला, पीडाकारी ऐसा रुधिर वादीसे होताहै। फैलनेवाला, पीला, कालोंच लिये और गरम ऐसा रुधिर पित्तदूषित जानना । धीरे २ चलनेवाला, बहुतसा, चिकना और मांसपेशीके समान ऐसा रुधिर कफके कोपसे होताहै। और सन्निपातके कारण सर्व दोषोंके लक्षणयुक्त कांजीके समान होताहै । विषयकरके दूषित रुधिर काला और नासिकाके रास्ते होकर निकलताहै । जो रुधिर दुर्गंधयुक्त कांजीके सदृश होय वह संपूर्ण कोढोंको करनेवाला जानना । यह शार्ङ्गधरमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामेकादशस्तरंगः ॥ ११ ॥

द्वादशस्तरंगः ।

नाडीपरीक्षा ।

सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा स्नेहावगाहिनः ॥ क्षुत्तृषार्तस्य सुप्तस्य सम्यङ्नाडी

न बुध्यते ॥ १ ॥ अंगुष्ठमूलमार्गे या धमनी जीवसाक्षिणी ॥ तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पंडितैः ॥ २ ॥ स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते पादे वामे च यत्नतः ॥ शास्त्रेण संप्रदायेन तथा स्वानुभवेन वै ॥ ३ ॥ एकांगुलं परित्यज्य हस्तादंगुष्ठमूलतः ॥ परीक्षेद्रत्नवच्चासावभ्यासादेव जायते ॥ ४ ॥ अग्रे वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला ॥ अंते श्लेष्मविकारेण नाडी ज्ञेया सदा बुधैः ॥ ५ ॥ सर्पजलौकादिगतिं वदंति विबुधाः प्रभंजने नाडीम् ॥ पित्तेन काकलावकमंडूकादेस्तथा चपलाम् । ॥ ६ ॥ राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ॥ कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंगिनी ॥७॥ मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भेकगतिं तथा ॥ वातपित्तसमुद्भूतां तां वदंति विचक्षणाः ॥ ८ ॥ सर्पहंसगतिं तद्वद्वातश्लेष्मगतिं वदेत् ॥ हरिहंसगतिं धत्ते पित्तश्लेष्मान्विता धरा ॥ ९ ॥ काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टते चातिवेगतः ॥ स्थित्वा स्थित्वा तथा नाडी सन्निपाते भवेद्ध्रुवम् ॥ १० ॥

अर्थ–तत्काल न्हाया, भोजन करा, तेल लगाया, भूंखा, प्यासा और सोया हुआ इतने मनुष्योंकी नाडी उत्तम प्रकारसे नहीं जानी जाती। अंगूठेकी जडमें जो धमनीनाडी है वह जीवकी साक्षिणी (गवाही देनेवाली) है, उसीकी चेष्टा करके मनुष्यदेहके सुखदुःखको पंडितजन जानें । स्त्रियोंकी वैद्य वाम हाथ और वाम पैरकी यत्नपूर्वक शास्त्रसंप्रदायसे तथा अपने अनुभवसे एक अंगुलस्थानको त्यागके हाथके अंगुठेकी जडमें जैसे जोंहरी अपने अभ्याससे रत्नोंको परखता है इस प्रकार वैद्य परीक्षा करे । प्रथम उंगलीके नीचे वातकी नाडी है, दूसरीके नीचे पित्तकी और तीसरी उंगलीके नीचे कफकी नाडी जाननी । इस प्रकार सदैव नाडीको बुद्धिमान् जानै ।

पंडितजन सांप जोंक आदिकी टेढी गतिवाली नाडीको वातकी नाडी कहते हैं । पित्तसे कौआ लवा और मेंडकके समान चपल नाडी चलती है । राजहंस (बतक) और मोर तथा कबूतर और पिंडुकिया तथा मुरगा इनके गमनके समान कफकी नाडी चलती है । वारंवार सांपकी और वारंवार मेंडकके समान गमन करे उसे पंडित वैद्य वातपित्तकी नाडी कहते हैं । इसी प्रकार सांप और हंसकीसी चाल चलनेसे नाडीको वातकफकी नाडी जाननी । पित्तकफकी नाडी मेंडक और हंसकीसी चाल चलती है । जैसे लकडीको चीरनेवाला मनुष्य ठहर २ के लकडीको अति वेगसे फाडता है, उसी प्रकार संनिपातमें नाडी ठहर २ के बडे वेगसे चलती है । यह वृद्धहारीतसंहितामें लिखा है ।

स्पंदते चैकमानेन त्रिंशद्वारं यदा धरा ॥ स्वस्थानेन तदा नूनं रोगी जीवति नान्यथा ॥ स्थित्वा स्थित्वा वहति या सा ज्ञेया प्राणघातिनी ॥११॥ जिह्मं जिह्मं कुटिलकुटिलं व्याकुलं व्याकुलं वा स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा ॥ नित्यं कंठे स्फुरति पुनरप्यंगुलीः संस्पृशेद्वा भावैरेवं बहुविधतैः सन्निपातादसाध्या ॥ १२ ॥ पूर्वं पित्तगतिं प्रभंजनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रती स्वस्थानाद्भ्रमणं मुहुर्विदधता

चक्राधिरूढेव या ॥ भीमत्वं दधती कलापिगतिका सूक्ष्मत्वमातन्वती नो साध्यां धमनीं वदंति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥ १३ ॥ गंभीरा या भवेन्नाडी सा भवेन्मांसवाहिनी ॥ ज्वरवेगेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ १४ ॥ कामात्क्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ १५ ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ॥ १६ ॥ चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ शीघ्रा नाडी मलापाते दिनार्द्धेऽग्निसमो ज्वरः॥१७॥ दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये म्रियते भृशम् ॥ मरणे डमरुकस्येव भवेदेकदिनेन च ॥ १८ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां नाडीपरीक्षा नाम द्वादशस्तरंगः ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस प्राणीकी नाडी अपने स्थानपर एकही समय ३० वार खटका देवे, वह रोगी अवश्य जीवे । और जो नाडी ठहर २ के चलतीहै वह प्राणनाशिनी जाननी । कुछ २ टेढी तथा अत्यंत टेढी व्याकुल २ ठहर २ चले और फिर नष्ट होजावे अर्थात् न मालूम पडे अथवा बहुत बारीक हो जावे और नित्य कंठमें चले और फिर उंगलियोंका स्पर्श करे इस प्रकारके अनेक भावोंसे वह सन्निपातकी नाडी असाध्य जाननी । प्रथम तीक्ष्ण पित्तगति फिर वादीसे वक्रगति और फिर कफकी मंदगति नाडी चले, अपने स्थानको त्यागके जैसे चाकपर वस्त फिरै इस प्रकार अन्य स्थानोंमें भ्रमण करे उसको नाडीगतिके ज्ञाता वैद्य साध्य नहीं कहते, अर्थात् वह असाध्य है । मांस वहनेवाली नाडी अतिरगंभीर होती है, ज्वरके वेगसे नाडी गरम और वेगवान् होती है। कामसे क्रोधसे वेगवती होतीहै । और चिंता भय इनसे नाडी मंद चलती है । मंदाग्नि और धातुक्षीण मनुष्यकी नाडी अतिक्षीण होती है । रुधिरसे परिपूर्ण नाडी गरम और उष्ण होती है । तथा आमसहित नाडी भारी होती है । दीप्ताग्निवालेकी नाडी हलकी और वेगवती होती है । भूंखे मनुष्यकी नाडी चपल और भोजन करे हुएकी नाडी स्थिर चले, मल गिरगयाहो, नाडी शीघ्र चले, मध्याह्नके समय अग्निके समान घोर ज्वर हो, वह मनुष्य १ दिन जीवे दूसरे दिन मरजावे। जब एक दिन मरणका रहताहै तब इसकी नाडी डमरूके समान आदि अंतमें तेज और मध्यमें सूक्ष्म हो जाती है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां नाडीपरीक्षा नाम द्वादशस्तरंगः ॥ १२ ॥

त्रयोदशस्तरंगः ।

वस्त्रपरीक्षा ।

ज्वरव्याप्तशरीरस्य ऊष्मा भवति दारुणः ॥ स ऊष्मा बहिराप्नोति वस्त्रे तिष्ठति निश्चितम् ॥ १ ॥ वातपित्तकफानां च द्वित्रिदोषस्य लक्षणम् ॥ परीक्षेज्ज्वरिणो वस्त्रं वैद्यो वै शुद्धवंशजः । ॥ २ ॥ वाते वस्त्रं सौरभं घ्राणतः स्यात् पौष्पं पैत्ते मत्स्यतुल्यं विगंधम् ॥ पाकास्थोणं श्लेष्मणः संप्रकोपाद् द्वंद्वैर्द्वंद्वोत्थुल्वणैरयैकता च ॥ ३ ॥ यदा वस्त्रे भवेद्गंधः सटिताजालकर्दमः ॥

तदा दीर्घो भवेद्रोगो म्रियते शवगंधकः ॥ ४ ॥

अर्थ–ज्वरवाले मनुष्यके देहमें घोर उष्मा (गरमी) रहतीहै, वह गरमी देहसे बाहर निकलकर वस्त्रोंमें रहतीहै शुद्धवंशवाला वैद्य वात पित्त कफके द्विदोष और सान्निपातके लक्षणोंको ज्वरवालेके वस्त्रोंसे परीक्षा करे । वातके रोगमें वस्त्र सूंघनेसे सुगंधित प्रतीत हो, पित्तसे वस्त्रमें फूलकीसी सुगंध आवे, और कफके कोपसे पकी मछलीकी घोर दुष्ट दुर्गंध आवे । दो दोषोंमें दो दोषोंकी मिली और तीन दोषोंमें तीनों दोषोंकी मिली गंध आती है । जिसके वस्त्रमें सडे हुए जाल और कीचकीसी दुर्गंध मारे उसके बहुत दिनका रोग जानना । और जिसके कपडेमें मुर्देकीसी दुर्गंध आवे वह रोगी मरजावे ।

जिह्वापरीक्षा ।

पीता जिह्वा खरस्पर्शा स्फुटिता मारुताधिके ॥ रक्ता श्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छिला ॥ ५ ॥ कृष्णा सकंटका शुष्का सन्निपाताधिके तु सा ॥ मिश्रिते मिश्रता ज्ञेयाऽरिष्टे लक्षणवर्जिता ॥ ६ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां वस्त्रादिपरीक्षा नाम त्रयोदशस्तरंगः ॥ १३ ॥

अर्थ–वातकी अधिकतासे जीभ पीली खरदरी फटी हुई होती है । पित्तसे लाल काली और कफसे जीभ सपेद और गिलगिली होती है और वही जीभ सान्निपातमें काली कांटेदार सूखी होती है । और मिले हुए रोगोंमें जीभकेभी लक्षण मिले हुए होते हैं । तथा अरिष्ट होनेपर जिह्वा लक्षणवर्जित होती है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां वस्त्रादिपरीक्षा नाम त्रयोदशस्तरंगः ॥ १३ ॥

चतुर्दशस्तरंगः ।

छायापुरुषलक्षण ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ॥ येन विज्ञातमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥ १ ॥ कालो दूरस्थितश्चापि येनोपायेन लक्ष्यते ॥ तमहं संप्रवक्ष्यामि यथोद्दिष्टं शिवागमे ॥ २ ॥ एकांते विजने प्रातः कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ॥ निरीक्षते निजां छायां कंठदेशे समाहितः ॥ ३ ॥ ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम् ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः इति मंत्रः ॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम् ॥ ४ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ॥ षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥ ५॥ वर्षद्वयेन हे नाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ॥ तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले । ॥६ ॥ षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥ पीते व्याधिभयं रक्ते नीले हत्यां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥ नानावर्णस्वरूपेऽस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ॥ पादे गुल्फे च जठरे विनष्टे मृत्युमादिशेत् ॥ ८ ॥ अर्द्धवर्षेण वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन च ॥ विनष्टे दक्षिणे बाहौ स्वबंधुर्म्रियते ध्रुवम् ॥ ९ ॥ वामबाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ॥

उरोदक्षिणबाहुभ्यांविनाशे मृत्युमादिशेत् ॥ १० ॥ अशिरोमासमरणं विना जंघे दिनाष्टकम् ॥ अष्टभिः कंधरानाशे छायालोपेन तत्क्षणात् ॥ ११ ॥

अर्थ-अब मैं छायापुरुषके लक्षण कहताहूं, जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ होताहै। दूर रहनेवालाभी काल (मृत्यु) जिस उपायसे जाना जावे उसको जिस प्रकार शिवागमग्रंथमें कहा है मैं इस जगह कहताहूं। यह प्राणी प्रातःकाल एकांत निर्जन वनमें जायके सूर्यको अपने पिछाडी करके अपनी छायाके कंठदेशपर सावधानीके साथ देखे। फिर आकाशकी तरफ देखे तो शंकरका दर्शन हो।' ॐह्रींपरब्रह्मणे नमः' इस मंत्रको १०८ वार जपकर देखे तो शुद्ध स्फटिकमणिके समान गौर अनेक रूपोंके धारणकर्ता शिवके दर्शन करे। इस प्रकार छः महीने अभ्यास करनेसे राजाओंका पति हो और दो वर्षतक अभ्यास करनेसे स्वयं कर्ता हर्त्ता समर्थ हो। यदि छायापुरुष पीला दीखे तो रोगका भय हो, लाल नीला दीखे तो हत्या होय और अनेक प्रकारके रूप दीखनेसे चित्तमें घोर उद्वेग हो। यदि उस छायापुरुषके पैर टकना और पेट न दीखे तो मृत्यु होय, पैर न दीखनेसे छः महीनेमें, टकना न दीखे तो वर्षदिनमें और पेट न दीखे तो दो वर्षमें मृत्यु होय, उसकी दहनी भुजा न दीखनेसे अपना बंधु मरे, वामभुज न दीखनेसे अपनी स्त्री निस्संदेह मरे। उर (छाती) और दहनी भुजाके नाशसे अपनी मृत्यु जाननी। विना मस्तकके दीखे तो १ महीनेमें मरण हो और विना जंघाओंके आठ दिनमें मरे और कंधाओंके नाशसे आठ दिन या आठ महीनेमें मरे और यदि छाया सर्वथा न दीखे तो तत्क्षण मृत्यु हो ॥ इति छायापुरुषपरीक्षा ॥

मूत्रपरीक्षा ।

परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः ॥ तृणेन दत्त्वा तैलस्य बिंदुं तत्रातिलाघवात् ॥ १२ ॥ विकाशि चेत्तैलमथाशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकाशि चेत्तत् ॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगे त्वसाध्यो नागार्जुनेनैव कृता परीक्षा ॥ १३ ॥ नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ॥ स्निग्धं कफात्पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं रुधिरप्रकोपात् ॥ १४ ॥ मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥ प्रपाकरहितानां च मूत्रं चंदनसन्निभम् ॥ १५ ॥ अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंदुलतोयवत् ॥ नवज्वरे धूम्रवर्ण बहुमूत्रं प्रजायते ॥ १६ ॥ पित्तानिले धूम्रजलाभमुष्णं श्वेतं मरुच्छ्लेष्मणि बुद्बुदाभम् ॥ तच्छ्लेष्मपित्ते कलुषं सरक्तं जीर्णज्वरेऽसृक्सदृशं च पीतम् ॥ स्यात्सन्निपातादपि मिश्रवर्णं तूर्णं विधिज्ञेन विचारणीयम् ॥ १७ ॥ पूर्वस्यां वर्धते बिंदुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत् ॥ दक्षिणस्यां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद्भवेत् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यां यदा बिंदोः प्रसरः संप्रजायते ॥ आरोग्यता तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः ॥ १९ ॥ वारुण्यां प्रसरेद्बिंदुः सुखारोग्यं तदा दिशेत्॥ इशान्यां वर्धते बिंदुर्ध्रुवं मासेन नश्यति ॥ २० ॥ आग्नेय्यां तु तथा ज्ञेयं

नैर्ऋत्यां प्रसरेद्यदा ॥ छिद्रितं च भवेत्पश्चात् ध्रुवं मरणमेव च ॥ २१॥वायव्यां प्रसरेद्बिंदुः सुधापोपि विनश्यति॥ विकाशितं मत्स्यकूर्मसौरभाकारसंयुतम् ॥ २२ ॥ करंडमंडलं वापि नरं मूर्धाविवर्जितम् ॥ गात्रखंडं च शस्त्रं च खड्गं मुसलपट्टिशम् ॥ २३ ॥ शरं च लकुटं चैव तथैव त्रिचतुष्पथम् ॥ बिंदुरूपं नरो दृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां क्वचित् ॥२४ ॥ हंसकारंडताडागं कमलं गजचामरम् ॥ छत्रं च तोरणं हर्म्यं संपूर्णं दृश्यते यदि ॥ २५ ॥ अरोगता ध्रुवं ज्ञेया तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ तैलबिंदुर्यदा मूत्रे चालनीसदृशो भवेत् ॥ २६ ॥ कुलदोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥ नराकारं प्रजायेत किं वा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥ भूतदोषं विजानीयाद्भूतविद्यां तदाचरेत् ॥ २७ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मूत्रपरीक्षा नाम चतुर्दशस्तरंगः ॥ १४ ॥

अर्थ–अत्यंत हाथकी कुशलतासे उस मूत्रमें तिनकेसे तेलकी बूंद डालके रोगीके मूत्रकी परीक्षा विधिपूर्वक ठीक ठीक करे। यदि तेलकी बूंद उस मूत्रमें ऊपर तैरा करे तो उस रोगीको साध्य जाने और वह प्रकाशित न होवे तो कष्टसाध्य जानना और यदि तेलकी बूंद उस मूत्रमें नीचे बैठजाय तो असाध्य जानना, यह परीक्षा नागार्जुनने कहीहै। वादीके कोपसे नीला और रूक्ष मूत्र होताहै । पित्तसे पीला लाल और तेलके समान, एवं कफके कोपसे चिकना और पोखरेके जलके तुल्य मूत्र उतरताहै, तथा रुधिरके कोपसे चिकना गरम मूत्र उतरताहै, बिजौरेके रसके समान, कांजीके समान जलके समान और चंदनके समान ऐसा मूत्र पाकरहित मनुष्योंका होताहै । अजीर्णके रोगमें मूत्र चांवलके धोवनसा निकले, नवीन ज्वरमें धूंएके रंगका और बहुतसा उतरताहै । पित्त और वादीसे मूत्र धूआं और जलके समान गरम होताहै। वादी और कफसे सपेद और बबूलेके समान हो, तथा कफपित्तमें कलौं चलिये, लाल और जीर्णज्वरमें रुधिरके समान पीला होताहै। संनिपातसे मिले हुए रंगका,इस प्रकार विधिज्ञ वैद्यको शीघ्र विचार करना चाहिये। यदि मूत्रमें गेरीहुई तेलकी बूंद पूरबकी तरफ फैले तो रोगी जल्दी आराम हो, दक्षिणकी तरफ फैलनेसे ज्वर होय और क्रमसे आरोग्यता होवे। यदि बूंद उत्तरकी तरफ फैले तो निश्चय रोगीको आराम होय। पश्चिम दिशासे फैलनेसे सुख और आरोग्य होवे । ईशानदिशाकी तरफ फैले तो वह रोगी १ महीनेमें निश्चय मरे, उसी प्रकार आग्नेयदिशामें जानना। यदि तेलकी बूंद नैर्ऋत्यकोनकी तरफ फैलके छिद्र होजावे तो उसका मरण होय । वायव्यकोणमें फैले तो अमृत पीनेवाला भी मरजावे । जो तेल फैलकर मछली, कछुआ, बैल, पिटार, मंडल, रुंडके समान, देहके एक खंडके आकार, शस्त्र, खड्ग (तलवार), मूसल, पट्टिश, बाण, लकडी, तथा तिराहा, चौराहा इनके समान हो तो वैद्य उसका यत्न न करे ।

हंस, जलमुरगावी, तालाव, कमल, हाथी, चमर, छत्र, तोरण, महल इनके पूर्ण आकारसे दीखे तो आरोग्यता जानके उसका यत्न करे। यदि तेलकी बूंद मूत्रमें चलनीके समान अनेक छिद्रवाली होजावे तो उसके कुलदोष अथवा

प्रेतका दोष जानना । तेलकी बूंद मनुष्यके आकार अथवा दो मस्तकके तुल्य होजावे तो उसपर भूतबाधा जाने, उस भूतबाधाका नाशक यंत्र मंत्र करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मूत्रपरीक्षा नाम चतुर्दशस्तरंगः ॥ १४ ॥

पंचदशस्तरंगः ।

दूतपरीक्षा ।

सुज्ञानः शुद्धवेषो द्रविणयुतकरः क्षत्रियो ब्राह्मणो वा तांबूलाढ्यः सुशीलः शुभवचनवदः स्यात्प्रशस्तोऽत्र दूतः । शस्ता योषिन्न दूत्ये न च जनयुगलं नांगहीनो न रोगी शोकार्त्तो वा रुदन्वा नतहतपतितो भ्रष्टशब्दान्ब्रुवाणः ॥ १ ॥ आगत्य विश्रमेद्यो बलिमथनदिशं पश्चिमामुत्तरां वा शंभोः काष्ठां स शस्तः परदिशि न तुषांगारभस्मादिसंस्थः ॥ रक्तस्रग्गंधवस्त्रस्तृणलगुडदलच्छेदिनः पंकतैलाभ्यक्ता वक्षोजनासालकनिहितकरा ये च विक्षिप्तकेशाः ॥ २ ॥ दूतो रक्तकषायकृष्णवसनो दंडी जटी मुंडितस्तैलाभ्यक्तवपुर्भयंकरवचा दीनोऽश्रुपूर्णेक्षणः ॥ भस्मांगारकपालपांसुमुसली सूर्येस्तगे व्याकुलो यः शून्यस्वरसंस्थितो गदवतो दूतस्तु कालानलः ॥ ३ ॥

अर्थ–उत्तम जातिका, सुंदरवेष, हाथमें द्रव्य लिये, क्षत्री वा ब्राह्मण, बीडी चवाय रखीहो, सुशील, शुभवाणीका बोलनेवाला ऐसा दूत उत्तम कहाहै। दूतकर्ममें स्त्री उत्तम नहीं है; और दो मनुष्यभी उत्तम नहीं, अंगहीन, रोगी, शोकार्त, रुदनकर्त्ता, दीन, हत, पतित, दुष्टशब्दको कहनेवाला ऐसा दूत उत्तम नहीं है। एवं जो आनकर पूरव पश्चिम उत्तर और ईशानकोणमें बैठा हो वह उत्तम है, परन्तु अन्यादिशामें बैठा उत्तम नहीं । तथा तुष (तूषा) अंगार राख इत्यादिमें आनकर बैठे, लाल माला गंध (चंदन) और लालवस्त्रोंको पहने, तृण, लकडी, पत्तोंको तोडता, कीच और तेल जिसके लगरहाहो तथा छाती, नाक, अलक इनपर हाथ धरेहो और जिसके बाल खुलेहों, ऐसा दूत उत्तम नहीं है यह रसमंजरीमें लिखाहै ।

लाल वस्त्र, काले वस्त्र, दंड हाथमें लिये, जटावाला, मुंडित (मुडेहुए मुडका) जिसके देहमें तेल लगाहो भयंकर बोलनेवाला, दीन, आंसूसें भरेहुए नेत्र, राख, अंगार, खिपडा, धूल और मूसल इनको हाथमें लिये, सूर्यास्तसमय आवे, व्याकुल हो, जो शून्यस्वरसे आकर खडा होजावे और जो रोगी दूत होवे ऐसा दूत कालानलके समान जानना ॥ इति दूतलक्षणम् ॥

अथ मलपरीक्षा ।

त्रुटितं फेनिलं रूक्षं धूमलं वाततो मलम् ॥ हरित्पीतं च दुर्गंधि पित्तादुष्णश्लथं भवेत् ॥ ४ ॥ शीतं शुक्लं मलं सार्द्रं स्निग्धं स्यात्कफकोपतः ॥ वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥५॥ बद्धं संत्रुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ॥ पीतश्यामं श्लेष्मपित्तदोषात्सार्द्रं च पिच्छिलम् ॥ ६ ॥ श्यामं त्रुटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥ दुर्गंधः शिथिलश्चैव विष्ठोत्सर्गो यदा भवेत् ॥ ७ ॥ तदा जीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिगण्यते ॥ कपिलं गुटिकायुक्तं

यदि वर्चोऽवलोक्यते ॥ ८ ॥ प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥ सितं महत्पूतिगंधं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥ ९ ॥ श्यामं क्षये त्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ॥ अतिकृष्णं चातिशुभ्रमतिपीतमथारुणम् । मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥ १० ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मलपरीक्षा नाम पञ्चदशस्तरंगः ॥ १५ ॥

अर्थ-वादीसे मल टूटा हुआ, झागदार, रूखा और धूएके रंगका होताहै । पित्तसे हरा, पीला, दुर्गंधियुक्त, गरम और ढीला होता है. कफके कोपसे शीतल, सपेद, गाढा और चिकना मल होता है । वातकफके विकारसे मल कपिश (बंदरके) रंगका होताहै, वातपित्तसे बंधा कुछ २ त्रुटित पीला और काला ऐसा मल होता है । कफपित्तसे पीला श्याम गाढा और गिलगिला दस्त होता है । एवं त्रिदोषोंसे काला टूटा हुआ पिलाई लिये बंधा हुआ और सपेद दस्त होता है ।

दुर्गंधयुक्त, ढीला ऐसा दस्त दोषज्ञोंने पका हुआ कहा हैं । भूरा, मैंगनीके समान यदि मल उतरे उसे क्षीणमल दोषकरके दूषित जानना । सपेद अत्यंत दुर्गंधयुक्त ऐसा मल जलोदरवालेका होता है । क्षयरोगमें काला, आमवातमें कमरकी पीडायुक्त पीला होता है; जिस रोगीका मल अत्यंतकाला, अतिसपेद, अतिपीडा, अतिलाल और अतिगरम हो वह निश्चय मरे । यह रुद्रतंत्रमें लिखाहै ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मलपरीक्षा नाम पंचदशस्तरंगः ॥ १५ ॥

षोडशस्तरंगः ।

नेत्रपरीक्षा ।

रूक्षा धूम्रा तथा रौद्रा चला चांतर्ज्वलंत्यपि॥ दृष्टिर्यदा तदा वातरोगं रोगविदो विदुः ॥ १ ॥ दीपद्वेषं च संतप्तं पीतं पित्ते च लोचनम् ॥ जलार्द्रं ज्योतिषा हीनं स्निग्धं मंदं कफेन तत् । ॥ २ ॥ द्वंद्वदोषे भवेन्मिश्रवर्णं तूर्णं विलोचनम्॥श्यामवर्णं च निर्मुग्नं तद्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥ रौद्रं च रक्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः ॥ एकं चक्षुर्यदा भीमं द्वितीयं स्तिमितं भवेत् । ॥ ४ ॥ त्रिभिर्दिनैस्तदा रोगी स याति यममंदिरम् ॥ ज्योतिर्विहीनं सहसा रोगिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥ ईषत्कृष्णं स नियतं प्रयाति यमसद्मनि ॥ संरक्तं कृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रक्षेत तथा ॥ ६ ॥ इति लिंगैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः ॥एकदृष्टिरचैतन्यो भ्रमस्फुरिततारकः ॥ एकरात्रेण नियतं परलोकपथं व्रजेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-नेत्र-रूखे, धूएके रंगके, रौद्र (भयंकर), चंचल और भीतरसे प्रज्वलित हों उसको रोगके जाननेवाले वातरोगके कहते हैं । पित्तसे नेत्र दीपकसे द्वेष करता अर्थात् दीपक अच्छा न लगे, गरम और पीले ऐसे होते हैं । कफसे नेत्र जलकरके आर्द्र, ज्योतिहीन, चिकने और चंचलतारहित होतेहैं । दो दोषोंसे मिले रंगके होते हैं, श्यामवर्ण, टेढे तंद्रा-मोहयुक्त भयंकर और लालरंगके त्रिदोषके कोपसे होते हैं । एक नेत्र भयंकर हो और दूसरा चंचलता-

रहित हो वह रोगी तीन दिनमें यममंदिरको पधारे । जिस रोगीके नेत्र अकस्मात् तेजहीन हो जावें और कुछ २ कलौंच आय जावे तो वह निश्चय यमराजके घरको पधारे । लाल काले रंगके, भयंकर नेत्र दीखें तो इस चिह्नसे उस रोगीकी निःसंदेह मृत्यु होवे । जिसकी एक दृष्टि चैतन्यतारहित हो और दूसरी तारा जब-कभी फडक जावे वह निश्चय एक रात्रिमें परलोकको पधारे । यह यमलग्रंथमें लिखाहै ।

शुष्कोष्ठः श्यामकोष्ठोप्यसितरदततिः शीतनासाप्रदेशः शोणाक्षश्चैकनेत्रो लुलितकरपदः श्रोत्रपातित्ययुक्तः ॥ शीतश्वासोऽथवोष्णश्वसनसमुदयः शीतगात्रः सकंपः सोद्वेगो निष्प्रपश्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥ ८ ॥

अर्थ-जिस रोगीके होठ सूख गये हों, दांत काले पडजावें, नाक शीतल हो जावे, एक नेत्र लाल हो जावे, हाथपैरोंको पटके, कान आदि इन्द्रियें शक्तिरहित हों, श्वास शीतल वा गरम हो, श्वासका वेग हो, देह शीतल और कंपयुक्त हो, उद्वगयुक्त बेहोश ऐसे लक्षणयुक्त प्राणी सर्वथा मृत्युके समय होता है ।

शकुन ।

याने मातंगविप्रास्तुरगवृषफलच्छत्रमांसोदकुंभा योषित्पुत्रान्विता वा सुरभिरपि तथा खंजरीटा मयूराः॥वीणाभेरीमृदंगांबुजपटहरवावेदमांगल्यघोषाश्चाषाः सिद्धान्नभूभृत्कुसुमपुरवधूचंदनाद्याःप्रशस्ताः ॥ ९ ॥ एणः काकोपसव्ये शुभ इव कथितःसव्यतःसारमेयश्चक्रीया नाखुबभ्रुःशफरिदधिपयोरूपगोमायुमेषाः । प्रेतो नीरोदनश्च ज्वलदनलशिखाश्वेतवस्त्रो ध्वजो वा चित्ते शस्तेऽत्र सिद्धिः प्रभजति भिषजो नान्यथा किंचिदुक्तैः॥१०

अर्थ-वैद्य जिस समय रोगीके घर जाय उस समय हाथी, ब्राह्मण, घोडा, बैल, फल, छत्र, मांस, जलका भरा कलस, पुत्रसहित स्त्री, बछरा सहित गौ, खंजन, मोर, वीणा, भेरी, मृदंग, कमल, नगाडे इनका शब्द तथा वेद और मांगलिक शब्द, नीलकंठ, सिद्ध अन्न, ब्राह्मण, फूल, पुरवासिनी स्त्री और चंदनादिक ये सन्मुख आवें तो उत्तम हैं । दहनी तरफ काला हिरण और कौएका आना शुभ है । तथा बाईं तरफ कुत्ता, गधा, [चकवा] मूंसा, नौला, मछली, दही, दूध, स्यारिया, मेंढा, रोदनरहित मुरदा, धूमरहित अग्नि, सपेद कपडा, ध्वजा ये शुभ हैं. यह चित्तशुद्धसे अर्थात् मन प्रसन्नतासे वैद्योंको सिद्धि होय अन्यथा सिद्धि नहीं हो ।

अथ स्वप्न ।

स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः। षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके॥ अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलप्रदाः ॥ ११ ॥ आरोहणं गोहयकुंजराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम् ॥ विष्ठानुलेपो रुदितं मृतं च स्वप्नेष्वगम्यागमनं च धन्यम् ॥ १२ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां नेत्रादिपरीक्षा नाम षोडशस्तरंगः ॥ १६ ॥

अर्थ-रात्रिक पहले प्रहरमें देखाहुआ स्वप्न (सपना) एक वर्षमें शुभाशुभ फल देताहै, दूसरे प्रहरमें देखाहुआ छः महीनेमें और तीसरे प्रहरमें जो स्वप्न देखा वह तीन महीनेमें फल

देवे, एवं सूर्योदयके समय सपना देखा गया दश दिनमें अपना शुभाशुभ फल देताहै ।

बैल, घोडा, हाथी, मंदिर, महल, पर्वतका अग्रभाग और बडे २ वृक्षोंपर चढना तथा देहमें विष्ठाका लेप हो, रोवे, मृत्यु देखे और अगम्या स्त्रियोंसे गमन करे ऐसे स्वप्न देखे तो शुभ हैं ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां नेत्रादिपरीक्षा नाम षोडशस्तरंगः ॥ १६ ॥

सप्तदशस्तरंगः ।

धातुशोधन । तहां प्रथम पारदशोधन ।

जयंदेयं संहितयाप्यजेयान्गदान्महापातकजान्क्षणेन ॥ शुद्धस्ततः शोधनमस्य कार्यमार्यैरशुद्धो न सुखाय सूतः ॥ १॥ अंतः सुनीलो बहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ॥ शस्तोऽथ धूम्रः परिपांडुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्ध्यै ॥ २॥ स्वाभाविकाः संत्यगुणा रसेऽस्मिन्नागाग्निवंगादिकनामधेयाः ॥ नागाद्भवेयुर्गलगंडरोगाः कुष्ठं च वंगान्मरणं विषेण ॥३॥ मलेन मूर्च्छा दहनेन दाहो वीर्यच्युतिः स्यादसकृच्चलत्वात् ॥ स्यात्कंचुकाज्जाड्यमथोदराणि ततो विशुद्धोभिमतो रसेंद्रः ॥ ४ ॥

अर्थ-यह शुद्ध पारा महापातकजन्य अजेय रोगोंकोभी क्षणमात्रमें सेवन करनेसे जीतनेवाला, सर्वोपरि है, इसी वास्ते श्रेष्ठजन इसका शोधन करे क्योंकि विना शोधा पारा सुखकर्त्ता नहीं है।

परीक्षा-भीतरसे नीला, ऊपरसे उज्ज्वल, मध्याह्नके सूर्यके समान प्रकाशवाला पारा उत्तम है । और जो धूएंके रंगका, पिलाई लिये, चित्रविचित्ररंगका अशुद्ध होताहै. उसको रसकर्ममें योजना न करे । इस पारेमें नाग, अग्नि, वंग और विषादिक अवगुण स्वाभाविक हैं। तहां शीशेके होनेसे यह गलगंडरोगको करे, वंगसे कोढ करे, विष होनेसे मरण करे, मैलके प्रभावसे मूर्च्छा करे, अग्निके प्रभावसे दाह और चंचलताके कारण पारा वारंवार वीर्यच्युति करे है । कंचुकीके कारण जडता और उदररोग करे है, इसीसे पारा शुद्ध करा ग्रहण करना चाहिये ।

शुभेह्नि ढुंढिं परिचिंत्य सम्यक् कुर्यात्कुमारीबटुकार्चनं च ॥ विधाय रक्षां विधिमंत्रपूतां कर्मारभेदस्य रसस्य तज्ज्ञः ॥ ५ ॥ निशेष्टिकाधूमरजोम्लपिष्टो विकंचुकः स्याद्दिवसेन सोर्णः॥वरारनालानलकन्यकाभिः सत्र्यूषणीभिर्मृदितस्तु पूतः ॥६॥ स्विन्नौ वराद्यैरथ दोलिकायां दिनं मलाद्यैरहितस्त्रिभिः स्यात्॥ तत्र्यंशताम्रेण विमर्द्य सूतं जंबीरनीरेण ततः प्रगाढम् ॥७॥ संरुध्य भांडद्वयगर्भमध्ये पिष्टिं ततः संपुटमव्रणं तत् । निवेश्य चुल्ल्यां तु शनैः प्रदीपप्रमाणमग्निं च तले प्रदध्यात् ॥ ८ ॥ ततः शिरस्यस्य जलार्द्रमेकं वस्त्रं क्षिपेदल्पमनुष्णमेव ॥ वारत्रयेणोरगवंगसंज्ञौ न स्तः प्रदिष्टो ह्ययमूर्ध्वपातः ॥ ९ ॥

अर्थ-तहां शुभ दिनमें गणपति, दुर्गा और बटुक (भैरव) इनका मंत्रोंसे विधिपूर्वक पूजन और अपनी देहरक्षा कर इस कर्मका जाननेवाला पारदका शोधनादि कर्मको प्रारंभ करे ।

शोधन-हलदी, ईंटका कूकुआ, धूमसा और ऊन, इनमें नींबूका रस मिलाय पारेको खरल

करे तो पारा १ दिनमें कंचुकी (कांचली) रहित हो । फिर त्रिफला, कांजी, चित्रक, घीगुवारका रस और त्रिकुटा, इनमें डालके पारेको घोटे तो पारा शुद्ध होय । स्वेदनकर्म करे, तहां दोलायंत्रमें त्रिफलेका काढा डाल एक दिन स्वेदन करनेसे पारा नागादि तीनों दोषोंसे रहित हो । फिर इसमें तृतीयांश ताम्रका बुरादा डालके जंभीरीके रसमें खरल करे, फिर इस पिट्ठीको एक हांडीमें बंद कर ऊपरसे दूसरी हांडी द्वारा मुखसे मुख मिलायके जोडदेवे, और कपडमिट्टी करदेवे कि मुखकी संधि खुले नहीं, फिर इसको चूल्हेपर चढायकर नीचे दीपक अग्नि चार प्रहर देवे, और ऊपरकी हांडीपर भीगा हुआ शीतल कपडा रखे, जब जब वह गरम हो जावे तब २ उसको उतारकर दूसरा शीतल रखदिया करे, इस प्रकार तीन वार पारेको उडावे यह पारेका ऊर्ध्वपातन संस्कार कहाहै इसके करनेसे शीशा और वंगके दोष दूर होतेहैं ।

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात् ॥ बलप्रकर्षाय च दोलिकायां स्वेद्यो जले सैंधवचूर्णगर्भे ॥ १० ॥ वंध्यहिनेत्रांबुजमार्कवानां सतिक्तकानां द्रवसंप्रपक्के ॥ स्विन्नस्थिरत्वं लभतेग्नितोये सकांजिके दीप्तियुतोतितीक्ष्णः ११

अर्थ–इस प्रकार शोधन करनेसे पारेमें नपुंसकत्व प्रगट होताहै, उन नपुंसकत्वके नाश करनेको और पारेमें बल बढानेके लिये इसको दोलायंत्रमें कांजी भर उसमें सेंधानिमक डालकर फिर स्वेदन करे ।

वांझककोडा, सरफोका, कमल, भांगरा और नींब आदिके पत्तोंके रसमें स्वेदन करे तथा कांजी और चित्रकके जलमें स्वेदन करनेसे पारा स्थिरता दीप्तता और तीक्ष्णताको प्राप्त होता है, यह रसशुद्धि रसरत्नप्रदीपमें लिखी है ।

मृत्पाषाणजलाख्याश्च कालिका पालिका तथा ॥ श्यामा कपालिका चेति पारदे सप्त कंचुकाः ॥ १२ ॥ मलदोषो वह्निदोषो भूदोषोन्मत्तदोषकौ ॥ शैलदोषश्च पंचैते दोषाः सूते समीरिताः॥ १३॥ मृद्रूपश्चाश्मरूपश्च जलरूपः पयोनिभः॥ पंचवर्णः कृष्णवर्णस्तैलवर्णश्च कंचुकः ॥ १४ ॥ मृन्मयात्कंचुकात्कुष्ठं जाड्यं पाषाणदोषतः ॥ वलीपलितखालित्यं वारिदोषात्प्रजायते ॥ १५ ॥ दद्रूश्च गजचर्माणि करोत्येव कपालिका ॥ कामलां पांडुरोगं च तथा कुष्ठं जलोदरम् ॥ १६ ॥ प्रमेहं श्वेतकुष्ठं च कुरुते श्यामकंचुकः ॥ मर्मच्छेदं बस्तिशूलं काली कुर्यादसंशयम् ॥ कापाली वीर्यहानिं च कुरुते तांनिवारयेत् १७॥

अर्थ–मिट्टी, पत्थर, जलाख्य, कालिका, पालिका, श्यामा और कपालिका पारेकी सात कांचली है । मलदोष, बह्निदोष, उन्मत्तदोष, और शैलदोष ये पारेमें पांच दोष हैं, मिट्टीके रूप, पाषाणके रूप, जलरूप, पयोनिभ (दुग्धरूप), पंचवर्ण, कृष्णवर्ण और तैलवर्ण ये सात कांचलियोंके वर्ण हैं ।

मृन्मय अर्थात् मिट्टीकी कांचलीसे पारा कुष्ठ करे, पाषाण (पत्थर) के दोषसे जडता करे, जलके दोषसे गुजलट, बालोंका सपेद होना और खालित्यरोग इनको करे है । कपालिका कंचुकी दाद और गजचर्मरोगको करेहै, श्यामा-

काचली, कामला पांडुरोग, कोढ, जलोदर, प्रमेह और सपेदकोढको करे है । और कालीनामक कांचली मर्मोंका छेदन और बस्तिशूल इनको करे है । एवं कपालीकंचुकी वीर्यहानिको करे इसी वास्ते इनका शोधन करके दूर करे ।

मूर्छयेद्वह्निसंयुक्तं मलयुक्तंचतापयेत् ॥ १८॥

अर्थ–अग्निसंयुक्त पारदको मूच्छित करे और मलयुक्तको तपावे तो शुद्ध होय ।

तेजोनाशं च भूदोषोप्युन्मत्तश्चांगभंजनम् ॥ कुर्याज्जाड्यं शैलदोषस्तस्मात्संशोधयेद्रसम्॥ १९ ॥रसश्चतुर्विधो ज्ञेयो ब्रह्मक्षत्रविडंत्यजः ॥ श्वेतो रक्तस्तथा पीतः कृष्णो वर्णाद्विधीयते ॥ २० ॥ ब्राह्मणः कल्पते कल्पे गुटिकायां च बाहुजः ॥ धातुवादे तथा वैश्यः शूद्रश्चेतरकर्मणि ॥ २१ ॥

अर्थ–पृथ्वीके दोषयुक्त पारा देहके तेजका नाश करे है, और पारेका उन्मत्त दोष अंगभंग करताहै। शैल (पर्वत) का दोष जडता करेहै, इसी वास्ते इसका संशोधन करे ।

पारा चार प्रकारका है. ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र, तहां सपेद रंगका ब्राह्मण, लाल रंगका क्षत्री, पीले रंगका वैश्य, और काले रंगका पारा शूद्र है । ब्राह्मण पारेको कल्प (रसायन) में लेवे, और गुटिका बनानेमें क्षत्री लेवे, धातुवादमें वैश्य लेवे, और जो इतरकर्महैं उनमें शूद्रजातिका पारा लेना ।

शोधन ।

सूतः शोध्यो निशायां मरिचनिचयके पिष्टके चेष्टकायांधूमे किंपाकतोये व्यधितुलसिविषे सूरणे शिग्रुपाके ॥ वज्रीदुग्धेऽर्कदुग्धे हुतभुजि लशुने चापि पालाशपंके सोर्ध्वाधः पातने वै लशुनपटुमतिः स्वेदयेत्कांजिके च ॥२२॥ दिनद्वयं दिनद्वयं प्रमर्दयेद्रसाधिपम् ॥ समीरितौषधं प्रति प्रहृष्टमानसो भिषक्॥२३॥ एकेन लशुनेनापि शुद्धो भवति पारदः। तप्तखल्वे मासमेकं पिष्टो लवणसंयुतः ॥२४॥सूते पादमितं सर्वं प्रक्षिपेच्छोधनौषधम् ॥ अष्टमांशं पुनः केऽपि कथयंति मनीषिणः ॥ २५ ॥ सहस्त्रनिंबूफलतोयघृष्टो रसो भवेद्वह्निसमप्रभावः॥ सव्योषराजीलवणः सचित्रः सरामठो विंशतिवासराणि ॥ २६ ॥

अर्थ–पोरेको हल्दी काली मिर्चका चूर्ण ईटका कूकुआ, धूँआँ कांजी, तुलसीका रस, विष, जमिकिंद और सहजनेका रस,थूहरका दूध,आकका दूध, चित्रकका काढा, लहसनका रस और पलासका रस इनमें खरलकर डमरूयंत्रमें डालके पारेको उडायलेवे । फिर लहसन और निमकको डालके कांजीमें स्वेदनकरे। इन कहीहुई एक २ औषधमें पारेको दो दोदिन खरल करके उडायलेवे अथवा पारा एक केवल लहसनके रसमेंभा घोटनेसे शुद्धहोताहै, उसकी यहविधि है कि तप्तखल्वमें[1] लहसनका रस डाल औरथोडासा निमक डालके १ महीने पर्यंत पारेको घोटे तो शुद्ध होय। तहां औषध डालनेका प्रमाण कहते हैं कि पारेसे चौथाई शोधन औषधोंको डाले, और कोई आचार्य कहतेहै कि शोधनऔषध अष्टमांश डालना चाहिये ।

१ तप्तखल्वकी विधि हमारे बनाये रसराजसुंदर ग्रंथके पहले भागमें देखो. तथा और जो जो यंत्र इसमें लिखे हैं वेभी सब उसी ग्रंथमें मिलेंगे।

अथवा-हजार नींबूके रसमें पारदको खरल करनेसे पारा अग्निके समान प्रभाववाला होताहै परंतु इस रसमें सोंठ, मिरच, पीपल, राई, निमक, चित्रक और हींग ये मिलायके बराबर बीस दिन खरल करे। यह रसचिंतामणि ग्रंथमें लिखा है।

गंधकशोधन।

सदुग्धभांडस्थपटस्थितोऽयं शुद्धो भवेत्कूर्मपुटेन गंधः॥ आभ्यां कृता कज्जलिकानुपानैः सर्वामयघ्नी रसगंधकाभ्याम्॥ २७॥

अर्थ-एक पात्रमें दूध भर उसके मुखको कपडेसे बांध देय और उसके ऊपर गंधकके टुकडे २ करके बिछाय देवे, फिर उसके ऊपर तवा रखके आग जलावे तो उस आगकी गरमीसे गंधक पिघलकर दूधमें टपक जावेगी उसको निकाल शुद्धजलसे धोयके सुखाय लेवे, फिर इस गंधक और शुद्ध पारेको मिलायके कजली बनावे, यह पारेगंधककी कजली अनुपानके साथ सेवन करनेसे संपूर्ण रोगोंको दूर करे है। इति गंधकशोधन।

शुद्ध्या विशुद्धोथ सुजीर्णगंधो दीप्तिप्रदः कांचनभुग्गदघ्नः॥ वदंति चैनं त्रिविधं सुबद्धं संमूर्च्छितं चापि मृतं रसेंद्रम्॥२८॥ मूर्छा प्रपन्नो हरते च रोगान्बद्धस्तथा खेचरतां ददाति॥ मृतो मृतिं नाशयति प्रकर्षाज्जीयाद्रसेंद्रोऽगणितप्रभावः॥२९ मूर्छादिकर्मत्रितयं मुखं च सूताद्बलेः षड्गुणजारणं च॥ अजीर्णनाशं च यथातथं च ब्रूमोऽस्य रूपं प्रतिभानुरूपम्॥ ३०॥

अर्थ-जो पारा शुद्धि करनेसे विशुद्ध है और जिसमें षट्गुणगंधक जारणादि कर्म करे गये हैं, वह दीप्ति करे, और जो सुवर्णखादक है वह रोगनाशक जानना, तहां शुद्धपारदके तीन भेद हैं बद्ध मूर्छित और मृत। मूर्च्छित पारा सब रोगोंको हरण करे है, बद्धपारा आकाशमें गमनकी शक्ति देता है, और मृत (मराहुआ) पारा इस प्राणीकी मृत्युको नष्ट करे, ऐसा अमितप्रभाववाला पारा सर्वोपरि है। मूर्च्छादि त्रय (मूर्छन बद्ध और मारण) तथा पारेसे षट्गुणगंधक जारण, तथा पारदका यथायोग्य अजीर्णनाशन, इन सब कर्मोंको मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहताहूं।

सूतप्रमाणं सिकताख्ययंत्रे दत्त्वा बलिं मृद्घटितेऽल्पभांडे॥ तैलावशेषेऽत्र रसं नियुञ्ज्यान्मग्नार्द्धकाय प्रविलोक्य भूयः॥ ३१॥ आषड्गुणं गंधकमल्पमल्पं क्षिपेदसौ जीर्णबलिर्बली स्यात्॥ रसेषु सर्वेषु नियोजनीयमसंशयं हंति गदं जवेन॥ ३२॥

अर्थ-मिट्टीके छोटेसे वालुकायंत्रमें पारेकी बराबर गंधक डालके अग्नि जलावे जब सब गंधक जल जावे तब इसमेंसे फिर थोडी २ गंधक डालके जारण करे, इस प्रकार पारेसे छः गुनी गंधक जारण करे जब इस प्रकार षड्गुणगंधक जारण होचुके तब इस पारेको सब रसोंमें मिलावे तो यह शीघ्रताके साथ निःसंदेह रोगोंको नाश करे।

इति षड्गुणगंधकजारणाविधिः।

दूसरा प्रकार।

विलोलिते स्वर्णजलैर्विशुष्के वस्त्रेऽथ दत्त्वा नवनीतगर्भे॥ चूर्णं शिलागंधकतालकानां सपन्नगानां समभागिकानाम्॥ ३३॥ कर्षप्रमाणं च ततोऽस्य वर्तिं

प्रज्वालयेत्तद्गलितं घृतं स्यात् ॥ अनेन कुर्याद्रसनायकस्य सर्वत्र पिष्टिं बलिजारणाय ॥ ३४ ॥

अर्थ–सपेद कपडेको धतूरेके रसमें भिगोयके सुखायले फिर मनसिल, गंधक, हरताल और शीशा समान भाग ले. इनको मक्खनमें खरल कर उस कपडेपर लपेट देवे, फिर इस कपडेकी बत्ती बनायके एक कर्ष घीमें डबोय लेवे और इस बत्तीमें आग लगायके कांसेके पात्रमें चीमटीसे पकडकर उलटी लटकावे, ऐसा करनेसे उस बत्तीमेंसे घी टपक २ कर उस कांसेके पात्रमें गिरेगा यह गंधक जारणके वास्ते पिट्टी कही है । इति पिष्टीकरणम् ।

रसभस्मप्रकार ।

भागो रसस्य त्रय एव भागा गंधस्य भागः पवनाशनस्य ॥ संमर्द्य गाढं सुकलं सुभांडे तां कज्जलीं काचकृते निदध्यात् ॥ ३५ ॥ संरुध्य मृत्कर्पटकैर्घटीं तां मुखे सचूर्णां गुटिकां च दत्त्वा ॥ क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा तां वालुकायंत्रगतां ततः स्यात् ॥ ३६ ॥ बंधूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ॥ निजानुपानैर्मरणं जरां च हंत्यस्य वै वल्लकसेवनेन ॥ ३७ ॥ निखिलक्षयभक्षणदक्षतरं व्रणकुष्ठभगंदरमेहहरम्॥ बलधीधृतिशुक्रसमृद्धिकरं रसभस्म समस्तगदापहरम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा ४ तोले, गंधक १२ तोले शीशेका चूर्ण ४ तोले ले सबको खरलमें डालके बारीक खरल करे, फिर इस कज्जलीको कांचकी आतसी शीशीमें भरके गुड चूनेसे मुख बंद करे और ऊपरसे कपडमिट्टी करके सुखाय लेवे, फिर इसको वालुकायंत्रमें रखकर क्रमसे मंद मध्य तेज तीन दिन रात्रि अग्नि देवे तो गुडहर पुष्पके समान लाल पारेकी भस्म होय, इसको सर्व रोगोंमें देवे । इसको पृथक् रोगके अनुपानोंके साथ ३ रत्तीकी मात्रा देवे तो मरण (अकालमृत्यु) और बुढापेको दूर करे । यह संपूर्ण क्षयोंके नष्ट करनेमें चतुर, व्रण, कोढ, भगंदर, प्रमेह इनको हरण करे, तथा बल, बुद्धि, धृति और शुक्रको बढावे, यह पारेकी भस्म सर्व रोग हरण करे है ।

रसमूर्च्छन ।

इष्टकायां सुपक्कायां सुखातं चतुरंगुलम् । कृत्वा काचेन सँल्लितं तस्यांतः पिष्टिकां क्षिपेत् ॥३९॥ निंबूद्रवार्दो गंधोस्य देयो मूर्ध्नि द्विकार्षिकः ॥ मुखं संरुध्य शुष्केथ दद्याल्लावपुटं ततः ॥ ४० ॥ शीते तस्योपरि पुनः पुटं देयं ततोऽधिकम्॥एवं द्वित्रिश्चतुःकार्या यावज्जीर्यति गंधकः ॥ ४१ ॥ जीर्णे पुनस्तथा देयो यावज्जीर्यति षड्गुणः ॥ मूर्च्छितो विधिनानेन भवत्येव रसेश्वरः ॥ ४२ ॥

अर्थ–पकी हुई पजावेकी ईंटमें चार अंगुलका गड्ढा करे, फिर उसको शीशेसे लेपकर उसमें पारे गंधककी पिट्टी डालके दो कर्ष नींबूके रसमें घुटीहुई गंधक इसके ऊपर डालके इसके मुखको बंद कर लाव संपुटमें रखके फूंक देवे, जब शीतल होजावे तब फिर इसी प्रकार दो कर्ष गंधक ऊपर डालके वडे संपुटमें फूंके जब जीर्ण होजावे तब फिर गंधक डाले, इस प्रकार दो तीन वार करे, कि जैसे षड्गुणगंधक जारण होवे इस विधिसे पारा मूर्च्छित होताहै ।

हिंगलूसे पारा निकालना ।

जंबीरनिंबुनीरेण मर्दितो हिंगुलुर्दिनम् ॥ ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ॥ ४३ ॥ कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्वि- मुक्तो रसकर्मणि ॥ योज्यः सांबुपुटः स्विन्नः पूर्वाभावे भिषग्वरैः ॥ ४४॥

अर्थ-हींगलूको एक दिन जंभीरी या नींबूके रसमें खरल करे, फिर डमरूयंत्रमें डालके पारेको उडायलेवे । यह कांचली नाग और वंग आदिके दोषोंसे रहित है । इसको रसकर्ममें डाले, यदि ऐसा न होवे तो पारेको जलयंत्रमें स्वेदन करके ग्रहण करे ।

रसबंधन ।

बलाब्दरवभूधात्री सस्यघ्नी जिह्वकां- बुभिः ॥ मर्दितस्तुर्यभागेन गंधकेन समन्वितः ॥ ४५ ॥ वेष्टितो हिंगुना फल्गुक्षीराक्तेन दधित्थजे ॥ चूर्णगर्भे प्रदेयोऽप्यमंतर्लवणमीशजः ॥ ४६ ॥ प्रध्मातः शनकैर्बद्धो रसो भवति नान्य- था ॥ वक्त्रस्थो वपुषः स्थैर्य करोत्यखि- लरोगजित् ॥ ४७ ॥

अर्थ-पारेका चतुर्थ भाग गंधक डालके बला (खिरेटी), चौलाई, भूंयआवला और गोभी इनके रसमें खरल करे, फिर हींगको कठू- मरके दूधमें खरल कर मूषा बनावे उसमें उस घुटे हुए पारेकी पिट्ठीको रख इस मूषको कैथके फलमें रखदेवे, फिर इस कैथको एक हांडीमें निमक बिछायके बीचमें रखदेय और ऊपर नीचे चूना भरदेवे, फिर इसको अग्निमें रखके धौंके तो पारा बद्ध होय; इस बद्ध पारेको मुखमें रखे तो देहकी स्थिरता और संपूर्ण रोगोंको दूर करे ।

दूसरा प्रकार ।

राजिकाफलिनीकंदतुलसीरक्तचित्रकैः॥ मूषालेपस्तु कर्तव्यः क्षणार्धे बद्धसू- तकः ॥ ४८ ॥

अर्थ-राई, प्रियंगुका कंद, तुलसी, लाल चित्रक इनको मूषामें लेप करके धमावे तो आधे क्षणमें पारा बद्ध होजावे ।

मुखकरण ।

सास्योरसःस्यात्पटुशिग्रुतुत्थैःसराजिकैः सोषणकैस्त्रिरात्रम् ॥ पिष्टस्तथा स्विन्न- तनुः सुवर्णमुखानयं खादति सर्व- धातून् ॥ ४९ ॥

अर्थ-सेंधानिमक, सहजना, लीलाथोथा, राई, सोंठ, मिरच और पीपल इनमें तीन रात्रि पारेको खरल करै । फिर दोलायंत्रमें स्वेदन करे तो पारेके मुख होय । यह सुवर्णादि संपूर्ण धातुओंको खाता है ।

अजीर्णनाशन ।

अजीर्णनाशाय सुभूर्जपत्रे स्वेद्यस्त्रिरात्रं पटुकांजिकेऽथ ॥ मात्राधिकश्चेत्समता- मुपैति यावन्न तावद्ग्रसनाधिकारी॥५०॥

अर्थ-पारेको भोजपत्रमें बांधके कांजीमें निमक डालके स्वेदन करे तो सुवर्णादि धातुओंके अजीर्णको दूर करे । जबतक अजीर्ण दूर नहीं हो तबतक पारा ग्रसनेका अधिकारी नहीं है ।

सुवर्णजारण ।

सच्छिद्रं सलिलापूर्णभांडं वक्त्रे शरा- वकम् ॥ दत्त्वा छिद्रे पक्वमूषा देया नीरा वियोगिनी ॥ ५१ ॥ तस्यां विडावृतः सूतो देयो लोहावृते मुखे ॥ शनैर्ध्मातो ग्रसत्येष कांचनं सूक्ष्मतां

गतम् ॥ ५२ ॥ स्वल्पं सपित्ततापात्कं शनैर्देयं समावधि ॥ देहार्थं धातुवादार्थं प्रयच्छंत्यल्पबुद्धयः ॥ ५३ ॥

अर्थ–छिद्रयुक्त जलसे परिपूर्ण पात्रके मुखपर सराव धरके फिर उस छिद्र और जलमें लगी रहे ऐसी पक्की मूषा स्थापन करे, फिर उसमें बिडयुक्त पारा रक्खे और ऊपरसे मुखको लोहके पात्रसे ढकदेवे, फिर ऊपर जल भरके नीचे अग्नि धमावे तो यह पारा सुवर्णको खा जाता है, यदि कुछ थोडासा शेष रहगया होय तो फिर उसके पाकार्थ बिड देंके पकावे जैसे पारा तोलमें बराबर होजावे, इस सुवर्णजारित पारेको अल्प बुद्धिवाले देहकी सिद्धिको और धातुवाद (सुवर्ण बनाने) के वास्ते देते हैं ।

लवणभेदी सुधानिधि रस ।

पिष्टं पांशु पटु प्रगाढममलं वस्त्रांबुना चैकशः सूतं धातुयुतं पटीकवलितं तं संपुटे रोधयेत् ॥ अंतःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं हठाद् घस्रं ग्राह्यमथेंदुकुंदधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥ ५४ ॥ तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः प्रभुक्तं च यैरूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृत्पेयं जलं शीतलम् ॥ एतद्धंति च वत्सरावधि विषं षाण्मासिकं मासिकं शैलोत्थं गरलं मृगेंद्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥ ५५ ॥

अर्थ–पारेको रेहके निमकके साथ थूहरके दूधसे किसी सुवर्णादि धातुमें मिलाके खरल करे, फिर इसके गोलेको कपडेमें लपेटकर लवणके संपुटमें बंद कर उसके नीचे अग्नि जलावे, एक दिन हठाग्नि देवे तो ऊपरके पात्रमें चन्द्रमा और कुंदपुष्पके समान सपेद भस्म लगजाती है उसको सावधानीसे निकाल लेवे । इस भस्मको ६ रत्तीके प्रमाण प्रातःकाल लौंगोंके साथ खानेको देवे और इसके ऊपर थोडा शीतल जल एक बार पीवे तो यह दो प्रहर बराबर दस्त करावे तथा वर्ष दिनके छः महीने और महीनेके खायेहुए विषोंके विकारोंको तथा पर्वतसे उत्पन्न संखिया आदि विष, सर्पविष, तथा सिंह (सेर) के बाल खानेके विषको तत्काल दूर करे है। इसको लौकिकमें रसकपूर कहते हैं ।

हिरण्यगर्भगुटिका ।

उत्कृत्य मूलं विषजं विदध्याद्गर्भेऽस्य सूतं कनकांशपिष्टम् ॥ संवेष्टयेत्कोलभवेन तं तु मांसेन पश्चाद्विपचेद्वियामम् ॥ ५६ ॥ धत्तूरबीजोद्भवतैलगर्भे संबद्धतां याति मुखस्थितोऽयम् ॥ संभोगकाले दृढतां करोति वीर्यस्य दुग्धं भजतां नराणाम् ॥ ५७ ॥ इति रसरत्नप्रदीपात् ।

अर्थ–विषकी गांठको पोली करके उस चतुर्थांश सुवर्ण मिले हुए घुटे पारेको रक्खे फिर विषहीके टुकडेसे उसके छेदको बंद कर सूअरके मांसमें धरके लपेट देवे फिर इसको धतूरेके बीजोंके तेलमें दो प्रहरतक पचावे तो यह पारा बद्ध हो जायगा, इसको मुखमें रक्खे. जब गरमी मालूम होय तब अधौटा दूध पीवे तो यह मैथुनमें वीर्यको दृढ करे और अत्यंत आनंददायी है इसे हिरण्यगर्भगुटिका कहते हैं ।

रससिंदूर ।

सूतः पंचपलः स्वदोषरहितस्तत्तुल्यभागो बलिर्द्वौ टंकौ नवसादरस्य तुवरी-

कर्ष च संमर्दितः ॥ कूप्यां काचकृतौ स्थितश्च सिकतायंत्रे त्रिभिर्वासरैः पक्वो वह्निभिरुद्भवत्यरुणभाः सिंदूरनामा रसः ॥ ५८ ॥ वाते सक्षौद्रपिप्पल्यपि च कफरुजि त्र्यूषणं चाग्निचूर्णं पित्ते सैला सिता स्याद्व्रणवति बृहती नागरार्द्रामृतांबु ॥ पुष्टौ साज्या त्रियामा हरनयनफलाशाल्मलीपुष्पवृन्तं किं वा कांताललाटाभरणरसपतेः स्यादनूपानमेतत् ॥ ५९ ॥ अपनयति रोगवृंदं द्रढयति कायं महद्बलं कुरुते ॥ पुत्रशतानि च सूते सिंदूराख्यो रसः पुंसाम् ॥ ६० ॥ स्मरस्यायुर्नानागददहनदावानलशिखासखा वह्नेस्तेजोबलरुचिरतावल्लिमुदिरः॥ अपि प्रौढस्त्रीणामतुलबलहारी निधुवने रसःसिंदूराख्यः सकलरसराजो विजयते ॥ ६१ ॥

इति वसंतराजात् ।

अर्थ-सर्वदोषरहित पारा २० तोले, गंधक २० तोले, नौसादर ८ मासे, फिटकरी १ तोला इनको खरल करे जब कजली होजाय तब कांचकी आतसी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें तीन दिन रात्रि अग्नि देवे जब इसकी नली लाल रंगकी शीशीके मुखमें जावे तब उतार लेवे तो यह रससिंदूर नामक रसायन बनकर तैयार होय. वादीके रोगमें पीपलका चूर्ण और सहतके साथ देवे. कफके रोगमें सोंठ मिरच पीपल और चित्रकके चूर्णके साथ देवे. पित्तके रोगमें इलायची और मिश्रीके साथ देवे. व्रणरोगमें कटेरी, सोंठ, अदरख और गिलोयके स्वरसमें देय. देह पुष्ट करनेको मक्खन, हलदी, रुद्रवन्ती और सेमरके फूलके स्वरसमें देवे. यह रससिंदूरके अनुपान कहे हैं । यह रोगसमूहको नष्ट करे, देह दृढ हो, अत्यंत बल देय, इसके सेवनसे १०० पुत्रोंको प्रगट करे. यह कामदेवको बढानेवाला अनेक रोगवनोंके जलानेको अग्निरूप जठराग्निको बढावे, तेज, बल, रुचि और मोददाता है । यह रससिंदूर संपूर्ण रसोंका राजा है. (यह वसंतराज ग्रंथमें लिखा है)

रसकर्पूर ।

यंत्रे सुसिद्धे डमरूसमाख्ये निधाय सूतस्य पलानि पंच ॥ वल्मीकमृत्स्नाखटिकेष्टिकानां सगैरिकाणां तुवरीयुतानाम् ॥ ६२ ॥ ससैंधवानां समभागिकानां चूर्णाढकं चोपरितो निदध्यात् ॥ अम्लेन दध्ना महिषीभवेन पिष्टं रसोनस्य शरावमेकम् ॥ ६३ ॥ समक्रमेणात्र निधाय खंडैराच्छादयेत्खर्प्परजैर्विसंधिः ॥ चूर्णप्रलिप्तोदरमूर्ध्वभांडं संस्थाप्य संमुद्रय दृढं सुचुल्ल्याम् ॥६४॥ प्रज्वालयेद्वह्निमधः क्रमेण संस्थाप्य यंत्रोपरि वस्त्रमार्द्रम् ॥ वह्निं प्रदद्याद्दिनषट्कमत्र तत्स्वांगशीतं परिगृह्य बुद्ध्या ॥ ६५ ॥ तं द्रोणपुष्पीपयसा प्रपिष्टं कूप्यां विदध्यान्नवसादरं च ॥ कर्षप्रमाणं प्रहरद्वयं च वह्निं प्रदद्यादथ शीतलांगीम् ॥ ६६ ॥ निष्कास्य कूपी सिकताख्ययंत्रादास्फोट्य कंठस्थमम् प्रगृह्यात् ॥ कर्पूरनामा रसनायकोऽयं वल्लः पुराणेन गुडेन भुक्तः ॥ ६७ ॥ निर्वातभाजा सरुजा च पथ्यशीलेन कुष्ठामनयाशनः स्यात् ॥ ६८ ॥ फिरं-

गकरिकेसरी सकलकुष्ठतालानलोऽखिल-व्रणविनाशकृद्व्रणजगर्तपूर्तिप्रदः ॥ सुवर्णसमवर्णकृद्बलहुताशतेजस्करः समस्तगदतस्करो रसपतिः स कर्पूरकः॥ ६९ ॥

(इति बौद्धसर्वस्वात्)

अर्थ-शुद्ध पारा २० तोले और बमईकी मिट्टी खडिया ईटका चूर्ण गेरू फिटकरी और सेंधानिमक ये समान भाग लेके इसमें प्रथम पारेको डमरूयंत्रमें भरके फिर मिट्टी आदि सबका ४ सेर चूर्ण कर उस पारेके ऊपर ढकदेवे फिर खट्टे भैंसके दहीमें लहसनको पीस एक शराब बनावे उससे इस पारदको ढकदेवे और इसकी संधियोंको बंद कर देवे. फिर दूसरी हांडीको भीतरसे चूनेसे लपेटके पहली हांडीके मुखसे मुख मिलाय जोड देवे फिर कपड-मिट्टीसे मुखकी संधि बंद करे. इस डमरूयंत्रको चूल्हेपर चढाके नीचे आग जलावे और ऊपर उसके शीतल जलमें भीगा हुआ कपडा रक्खे जब वह गरम होजाय तब दूसरा रख देवे. उसे शीतल करनेको जलमें डालदे, इस क्रमसे ६ दिन रात्रि बराबर अग्नि देवे जब स्वांगशीतल होजाय तब ऊपरकी हांडीमें लगेहुए रसको निकाल ले फिर इसको द्रोणपुष्पी (गोमा) के रसमें पीस और आतसी शीशीमें नौसदरका १ तोला चूर्ण भरके वालुकायंत्रमें ३ प्रहरकी आग्नि देवे जब स्वांग शीतल होजाय तब शीशीको फोडके उसके कंठमें लगेहुए रसकपूरको निकाल लेवे, इसको ३ रत्तीकी मात्रासे पुराने गुडमें रखके खाय और पवनरहित स्थानमें रहे, खटाई मिरचाई आदिसे पथ्य करे तो कुष्ठरोग नष्ट करे है । यह फिरंगरोगरूप हार्थीके मारनेमें सिंहके समान है, सकल कुष्ठोंको कालाग्निरूप है, सब प्रकारके घावोंको भरलावे, देहका सुवर्णके समान उत्तम रंगका करदेवे, बल और जठराग्निको प्रबल करे, तेज देवे, यह सब रसोंका अधिपति रसकपूर सब रोगहारक है (यह बौद्धसर्वस्वग्रंथमें लिखा है)

खोटबद्ध रसकपूर ।

शुद्धसूतसमं तुत्थं घनक्काथेन सप्तधा ॥ भावयित्वा न्यसेत्कूप्यां मुखे मुद्रां च कारयेत् ॥ ७० ॥ वालुकायंत्रमध्ये तु यामार्कं ज्वालयेदधः॥ रसकर्पूरविल्यातः खोटबद्धो भवेद्रसः ॥ ७१ ॥

अर्थ-२० तोले पारदमें २० तोले लीलाथोथा मिलाय नागरमोथेके रसकी सात भावना देवे फिर इसको आतशी शीशीमें भरके मुखपर मुद्रा देकर वालुकायंत्रमें १२ प्रहरकी अग्नि देवे तो यह खोटबद्ध रसकपूर सिद्ध होय। इसके सेवन करनेकी विधिभी पूर्वोक्त रसकपूरके समान जानना. यह भी बौद्धसर्वस्वमें लिखा है ।

सुवर्णादिसर्वधातुशोधन ।

स्वर्णाद्या धातवः सर्वे द्रवीभूताः सुयोजिताः॥ शुध्यंति वक्ष्यमाणेषु द्रवद्रव्येष्वनुक्रमात् ॥ ७२ ॥ तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिकेऽथ कुलत्थके ॥ त्रिफलाक्काथतोये च संशोध्याः सर्वधातवः॥७३॥

अर्थ-सुवर्णसे आदि ले संपूर्ण धातुओंको आगमें पतली करके तेल छांछ गोमूत्र काँजी कुलथीका काढा और त्रिफलेके काढेमें तीन २ बार बुझानेसे इसकी शुद्धि होती है और तामे तथा लोहेके पत्र कराके आगमें तपाके बुझाने चाहिये तो शुद्धि होय ।

लोहका शोधन मारण ।

स्यात्तीक्ष्णलोहयोः शुद्धी रजसोऽथ पुटैस्त्रिभिः ॥ रंभाजलेन घृष्टस्य शिग्रुमूलत्वगंबुना ॥ ७४ ॥ पुनस्तप्तं हिमीभूतं बाह्लीकांबुनि तद्रजः ॥ भावितं मार्कवद्रावैः सप्तधा पुटितं ततः ॥७५॥ मत्स्याक्षीसलिलैस्तावद्वरानीरैर्मृतिर्भवेत् ॥ तत्कुष्ठक्षयमंदाग्निपांडुकासादिकान्गदान् ॥ ७६ ॥ नाशयत्यनुपानैः स्वैर्जरां च पलितं तथा ॥ शुद्धिमारणयोरैक्याद्युक्तमेतन्न दूषणम् ॥ ७७ ॥

(इति रसरत्नप्रदीपात् ॥)

अर्थ–खेडी लोह और पोलादका लोहा (गजबेल) को तथा चाँदी इनको तपाके केलेके जलमें ३ बार बुझानेसे इसकी शुद्धि होती है, तथा सहँजनेके जडकी छालके रसमें घोटके तपावे और बुझावे फिर इसको हींगके पानीमें बुझावे तथा इसको रितायके सात भावना भांगरेके रसकी देय, एवं मछेछीके रसमें सात बार बुझावे और अग्निसंपुटमें फूंकदेवे. इसी प्रकार त्रिफलेके रसमें घोटके अग्नि देनेसे लोहेकी भस्म होय। यह लोहकी भस्म कुष्ट, क्षय, मंदाग्नि, पांडुकामला आदिको अपने २ अनुपानके साथ सेवन करनेसे नष्ट करे है। और वृद्धावस्थाको नष्ट करे है । यह शुद्धि मारणकी एकत्रता कही है. सो दूषण नहीं है। (यह रसरत्नप्रदीप ग्रंथमें लिखा है) ।

लोहभस्मके गुण ।

शुद्धं हतं दरदगंधकयोगतः सद्वैद्येन वारितरमुख्यदिनप्रकाशम् ॥ लोहं निहंत्यनिलपित्तबलासरोगानुक्तानुपानसहितं न हिताय कस्य ॥ ७८ ॥

अर्थ–जो लोह शुद्ध होकर सिंगरफ और गंधकके योगसे भस्म हुआ हो तथा जिसकी सद्वैद्यने जलमें तैरने योग्य भस्म करीहो वहविधिपूर्वक बना लोह वात पित्त कफके रोगोंको नष्ट करे. यह अपने २ अनुपानके साथ सेवन करनेसे किसको हितकारी नहीं है ?

लोहमारणकी दूसरी विधि ।

शुद्धं दाडिमजैः क्वाथैरनले पक्वतां गतम् ॥ सवरावारिभिर्घृष्टं नवसादरसंयुतैः ॥ ७९ ॥ तदर्धं गंधकं तस्याप्यर्धं सूतं नियोजयेत् ॥ कुमारीवारिभिः खल्वे मर्दितं गोलकीकृतम् ॥ ८० ॥ शुष्कमेरंडजैः पत्रैर्वेष्टितं तंतुभिस्तथा॥ संपुटे स्थापयित्वा तं वेष्टिते च मृदा पुनः ॥ ८१ ॥ कुसूलधान्यमध्यस्थं दिनानि किल विंशतिः ॥ उद्धृत्य च ततो लोहं चूर्णितं सुधया समम् ॥ ८२ ॥ सर्वामयहरं सम्यग्रसायनमनुत्तमम् ॥ ८३ ॥ पांडुं खंडयति क्षयं क्षपयति क्षैण्यं क्षिणोति क्षणात्कासं नाशयति भ्रमं नमयति श्लेष्मामयान्खादति ॥ अर्शोगुल्मसशूलपीनसवमिश्वासप्रमेहारुचीराशून्मूलयति प्रभूतगुणकृल्लोहं परं मारितम् ॥८४॥

इति लोहमारणं बौद्धसर्वस्वात् ।

अर्थ–प्रथम शुद्ध लोहेके चूर्णको अनारके छिलकेके क्वाथमें डालके औटावे फिर त्रिफलेके काढेमें नौसदर डालके खरल करे फिर इसमें लोहचूर्णसे आधी गंधक डाले और गंधकसे

आधा पारा मिलावे फिर सबको घीगुवारके रससे खरल करे गाढा होनेपर गोला बना लेवे, इस गोलेको चारों तरफ सूखे अंडके पत्ते लपेट डोरेसे लपेट देवे फिर उसको संपुटमें रख ऊपरसे मिट्टी लपेट देवे फिर इसको ज्वार बाजरा आदि या अन्य धान्यकी राशिमें रखदेवे कि जिसमें अत्यंत गरमी होय इस प्रकार रखनेसे २० दिनमें स्वयं भस्म होजायगा. इसको निकालके खरलमें डाल चूर्ण करलेवे यह अमृतके तुल्य सर्व रोगनाशक है और उत्तम रसायन है । यह पांडुरोग, क्षय, क्षीणता, खाँसी, भ्रम कफके विकार, बवासीर, गोला, शूल, पीनस, वमन, श्वास, प्रमेह, अरुचि इत्यादि सकल रोगोंको तत्काल नष्ट करे और अत्यंत गुणका करनेवाला है. यह लोहका मारण बौद्धसर्वस्वमें लिखाहै।

हरितालशुद्धि ।

शुद्धः स्यात्तालकः स्विन्नः कूष्मांडसलिलैस्ततः ॥ चूर्णोदकैः पृथक्तैले भस्मीभूतो न दोषकृत् ॥ ८५ ॥

अर्थ–हरितालकी कुम्हडे (पेठे) के रसमें औटानेसे शुद्धि होती है फिर चूनेके जलमें और तेलमें औटावे फिर मारणकी विधिसे जो भस्म करीगई है वह अवगुण नहीं करती ।

मनासिलरसशुद्धि ।

बीजपूररसैः पिष्टा जयानीरैर्मनःशिला ॥ सप्ताहं स्वेदितः शुद्धो रसको नरवारिणा ॥ ८६ ॥

अर्थ–मनसिलको प्रथम बिजौरेके रसमें पीसे फिर अरनीके रसमें पीसे तो शुद्ध होय। खपरियाको मनुष्यके मूत्रमें सात दिन औटावे ति शुद्ध होय ।

जेपालशुद्धि ।

जेपालं रहितं त्वगंकुररसज्ञानिर्मले माहिषे निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् ॥ लिप्तंनूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसंनिभं निबूकांबुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ–जमालगोटोंको भैंसके गोबरमें तीन दिन गाड देवे फिर इनके ऊपरका छिलका और भीतरकी हरीहरी जीभ निकालके गरम जलसे धोडाले फिर खरलमें डाल घोटे और इसके घोटते समय सपेद कपडा भी डार लेवे तो वह कपडा सब चिकनाईको पी जावेगा ।

लीलाथोथेकी शुद्धि ।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणांघ्रियुक् ॥ त्रिधैव पुटितं शुद्धं वांतिभ्रांतिविवर्जितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–नीलाथोथेको बिलावकी विष्ठाके साथ घोटे और इसमें सहत और नीलाथोथेका चतुर्थांश सुहागा डाल लेवे फिर अग्निमें रखके फूंक देवे इस प्रकार ३ पुट देनेसे यह वांति और भ्रांतिरहित होजावे ।

तारमाक्षिकशुद्धि ।

भाविता विमला धर्मे जरज्जंबीरवारिणा मेषशृंग्यंबुना घस्रं शुद्धा कर्कोटकीजलैः ॥ ८९ ॥

अर्थ–विमला (तारमाक्षिक) को प्राचीन जँभीरीके रसमें तथा मेढासिंगीके रसमें और ककोडेके रसमें एक एक दिन घोटेनेसे उसकी शुद्धि होती है ।

स्वर्णमाक्षिकशुद्धि ।

तुर्यांशसैंधवोपेतं माक्षिकं मर्दयेद्दृढम् ॥ बीजपूरांबुना दग्धं सम्यक्पात्रे च लोहजे ॥ ९० ॥

अर्थ–सुवर्णमाक्षिकका चतुर्थांश सेंधानिमक डाल बिजौरेके रसमें खरल करे फिर लोहेके पात्रमें रखके फूंकदेवे तो वह शुद्ध होय ।

दरदशुद्धि ।

अम्लद्रव्यद्रवैः पिष्टो दरदो माहिषेण तु ॥ दुग्धेन सप्तधा पिष्टः श्लक्ष्णीभूतो विशुध्यति ॥ ९१ ॥

अर्थ–हींगलूकी डलीको अम्लद्रव्यके साथ घोटे फिर भैंसके दूधकी सात पुट देय तो शुद्ध होय. तहां अम्लद्रव्य (रसराजसुंदर ग्रंथके मध्यम भागमें अम्लवर्गनामसे लिखा है सो) देखलेना ।

शिलाजतुशुद्धि ।

गोदुग्धत्रिफलाभृंगद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ॥ दिनैकं लोहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥ ९२ ॥

अर्थ–शिलाजीतको गौका दूध त्रिफलेका क्वाथ भांगरेका रस इनसे लोहके पात्रमें एक २ दिन घोटनेसे वह निःसंदेह शुद्ध होय ।

कुचलाशोधन ।

त्रिदिनं कांजकः स्विन्नः शुद्धः स्याद्विषतिंदुकः ॥ ९३ ॥

अर्थ–कुचलेको ३ दिन कांजीमें औटानेसे वह शुद्ध होय है ।

कीटीशोधन ।

अक्षाग्निदग्धं गोमूत्रे निर्वापितमयोमलम् ॥ पृथक्पृथक्सप्तवारं शुद्धं भवति सर्वथा ॥ ९४ ॥

अर्थ–लोहकी कीटीको बहेडेकी आगमें लाल करके फिर गोमूत्रमें बुझावे इस प्रकार सात वार बुझानेसे कीटी शुद्ध होय ।

धान्याभ्रक करनेकी विधि ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वा च कंबले॥ त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्करैः । ॥ ९५ ॥ कंबलाद्गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितं च यत् ॥ तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य शुद्धये ॥ ९६ ॥

अर्थ–जितनी अभ्रक हो उसके चतुर्थांश चावलके धान लेवे दोनोंको कंबलमें बांधके ३ रात्रिपर्यंत जलमें भीगने देवे जब वह भीगकर नरम होजाय तब हाथोंसे उस कंबलकी पोटलीको मीड २ के जल डाले तो उस कंबलमेंसे छनकर अभ्रक पानीमें आय जायगी उस वालुकारहित अभ्रकको निकाल लेवे यह देहकी शुद्धिके वास्ते विद्वानोंने धान्याभ्रक कही है ।

विषका शोधन ।

विषं तु खंडशः कृत्वा वस्त्रखंडेन बंधयेत् ॥ गोमूत्रमध्ये निःक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम्॥ ९७ ॥ गोमूत्रं तु प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः ॥ त्र्यहेऽतीते तदुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् ॥ ९८ ॥ शुध्यत्येवं विषं सेवायोग्यं भवति चार्तिजित् ॥ ९९ ॥

अर्थ–सिंगिया विषको बहुत छोटे २ टुकडे कर कपडेकी पोटलीमें बांध लेवे उस पोटलीको गोमूत्रमें डालके ३ दिन धूपमें रख देवे परंतु गोमूत्रको नित्य पलटता रहे जब तीन दिन बीतजावें तब गोमूत्रमेंसे निकाल धूपमें सुखा-

यले और पीसके चूर्ण कर लेवे इस प्रकार शोधित विष सेवन करने योग्य और रोगनाश-कर्ता होताहै ।

उपरसोंका शोधन ।

कंकुष्ठं गैरिकं शंखं कासीसं टंकणं तथा ॥ नीलांजनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटिकाः ॥ १०० ॥ जंबीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा ॥ शुद्धिमायांत्यमी योज्या भिषग्भिर्योग-सिद्धये ॥ १०१ ॥

अर्थ–कंकुष्ठ (मुरदासंख), गेरू, शंख, कसीस, सुहागा, नीला सुरमा, शीप और छोटी शीप तथा कौडी–कड्डे इन सबको जंभीरीके रसमें औटावे और गरम जलसे धो डाले तो ये शुद्ध हों इनको वैद्य योगसिद्धिके वास्ते उन्हीं २ योगोंमें डाले तो गुणकारक होय ।

सुवर्णमारण और गुण ।

रसस्य भस्मना वाथ रसेनालिप्य वै दलम् ॥ हिंगुर्हिंगुलसिंदूरशिलासाम्येन मेलयेत् ॥ १०२ ॥ संमर्द्य कांचनद्रा-वैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ॥ तं भांडस्य तले दत्त्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥१०३॥ अग्निं प्रज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीत-लम् ॥ उद्धृत्य सावशेषं चेत्पुनर्देयं पुट-द्वयम् ॥ १०४ ॥ अनेन विधिना स्वर्ण निरुत्थं जायते मृतम् ॥ एतद्रसायनं बल्यं वृष्यं शीतं क्षयादिजित् ॥१०५ ॥ स्वर्ण स्वर्णसवर्णवर्णजनकं सर्वक्षयो-न्मूलकृद्बल्यं वृष्यमनुष्णवीर्यमसकृत्क्षु-द्वर्धनं बृंहणम् ॥ निःशेषामयसंघसं-हृतिकरं तेजस्करं शुक्रकृच्चक्षूरोगजरापहं नवसुधापानोपमं प्राणिनाम् ॥ १०६ ॥

अर्थ–सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंको पारदकी भस्मसे अथवा पारदसे पोत देवे हींग, हिंगलू, सिंदूर मनसिल इन चारोंको सुवर्णपत्रके समान लेकर पारेके साथ कचनारके रससे १ दिन खरल कर पत्रोंको लपेटे फिर उन पत्रोंके पिट्ठीका गोला बनाय एक हांडीके बीचमें रखे और इसका मुख बंद कर घोर अग्नि दो दिनरात बराबर देवे जब स्वांगशीतल होजाय फिर पूर्वोक्त हींग हींगलू आदि डाल कचनारके रसमें घोट दो अग्निपुट देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होय गुण–यह रसायन है बल करे वृष्य है शीतल क्षयादि रोगोंको दूर करे । सुवर्ण सुवर्णके समान देहके वर्णको करे सब क्षयके रोग नष्ट करे बल करे वृष्य शीतल वीर्यवाला भूँखको बढानेवाला बृंहण है। सकल रोगनाशक तेज करे वीर्य बढावे नेत्र-रोग और बुढापेको दूर करे, यह प्राणियोंको नवीन अमृतके तुल्य गुण करता है ।

रौप्यमारण और गुण ।

विधाय पिष्टिं सूतस्य रजस्तस्याथ मेल-येत् ॥ तालगंधं समं पश्चान्मेलयेन्निंबु-कद्रवैः ॥ १०७ ॥ द्वित्रिःपुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ॥ १०८ ॥ तारं शीतकषायमम्लमधुरं दोषत्रयच्छेदनं स्निग्धं दीपनमक्षिकुक्षिगदजिद्दाहप्रमेह-प्रणुत् ॥ मेदोभेदि मदात्ययात्ययकरं कांत्यायुरारोग्यकृद्यक्ष्मापस्मृतिपांडुशू-लपलितप्लीहज्वरघ्नं परम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–प्रथम पारेकी पिट्ठीकरके उसमें चांदीके कंटकवेधी छोटे टुकडे डाल देवे जब पारा चांदीपर चढजावे तब ताल और गंधक दोनों समान भाग ले नींबूके रसमें घोटकर शरावसं-

पुटमें रखके फूँक देवे इस प्रकार ३ अग्नि देव और प्रत्येक बार हरताल गंधकमें घोट लिया करे तो चांदीकी भस्म होय इसे रसादिकोंमें मिलावे। चांदीकी भस्मके गुण-शीतवीर्य कसेला, खट्टा, मीठा, त्रिदोषनाशक, चिकना, दीपन, नेत्र, कोखके रोग, दाह, प्रमेह, मेदरोग, मदात्यय, क्षई, मृगी, पांडुरोग, शूल, पलित, तिल्ली और ज्वरको नष्ट करे कांति, आयु और आरोग्य करे है।

धातुसे धातुमारण।

तालेन वंगं दरदेन तीक्ष्णं नागेन निष्कं शिलया च नागम्॥ गंधाश्मना चैव निहंात शुल्वं तारं च माक्षीकरसेन हन्यात्॥ ११०॥

अर्थ-हरतालसे वंग, हींगलूसे लोहा, शीशेसे सुवर्ण, मनसिलसे शीशा, गंधकसे तामा और सुवर्णमाक्षिकके योगसे रूपेकी भस्म होती है।

पीतलकांसेका मारण।

राजरीतिं तथा घोषं ताम्रवन्मारयेद्भिषक्॥ १११॥

अर्थ-पीतल और कांसेको ताम्रके समान शुद्ध करे और ताम्रके मारण योगसे इसकी भस्म करनी चाहिये।

शीशामारण।

त्रिभिः कुंभीपुटैर्नागो वासारसविमर्दितः॥ सशिलो भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहनुत्॥ ११२॥

अर्थ-शीशेको अडूसेके रसमें मनसिल डालके घोटे फिर संपुटमें बंद कर गजपुटमें फूंक देय इस प्रकार ३ पुट देनेसे शीशेकी भस्म होय। इस भस्मका सेवन सर्वप्रकारके प्रमेहोंको दूर करे है।

वंगका मारण और गुण।

वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन संपुटेत्॥ शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत्॥ ११३॥ आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगापहर्ता मदनस्य कर्ता॥ वंगेन तुल्यं न च किंचिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्॥ ११४॥ बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलं सौंदर्यैकविवर्धनं हतजरं नीरोगताकारणम्॥ धातुस्थौल्यकरं क्षयक्षयकरं सर्वप्रमेहापहं वंगं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः॥ ११५॥

अर्थ-शुद्ध वंगके कंटकवेधी पत्रोंको नाखूनके समान छोटे २ टुकडे करके हरतालके साथ आकके दूधसे खरल करे फिर सूखे पीपलकी छालमें रखके अग्नि देवे इस प्रकार ७ पुट देनेसे वंगकी भस्म होय। वंगभस्मके गुण-वंगभस्मके सेवन करनेसे आयु बढे बल वीर्यको बढावे रोगहरणकर्त्ता कामदेववर्द्धक इस वंगके समान दूसरी रसायन मनुष्योंको नहीं है। अन्यगुण-बलकारी दीपन पाचन रुचिकारी बुद्धिवर्द्धक शीतल सुंदरता बढावे बुढापा दूर करे नैरोग्यकर्त्ता, धातु पुष्ट करे, क्षयरोगको नष्ट करे और सर्व प्रमेहोंको दूर करे जो प्राणी वंगभस्मका सेवन करते हैं उनके स्वप्नमें भी वीर्य क्षीण नहीं होता।

ताम्रमारण।

ताम्रपादांशतः सूतं तत्तुल्यं गंधकं क्षिपेत्॥ कन्यारसेन संपिष्ट्वा ताम्रप-

वाणि लेपयेत् ॥ ११६ ॥ निक्षिप्य हंडिकामध्ये शरावेण निरोधयेत् ॥ हंडिकां पटुनापूर्य पचेद्यामत्रयं भिषक् ॥ ११७ ॥ स्वांगशीतं विचूर्ण्याऽथ वांतिदाहविवर्जितम् ॥ सर्वदोषहरं ताम्रं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ११८ ॥

अर्थ–जितना ताम्र होय उसका चतुर्थांश पारा और तामेकी बराबर गंधक ले दोनोंको घीगुवारके रसमें खरल कर पिट्ठी करे इसको तामेके पत्रोंपर चढावे, जब सूख जावे तब हांडीमें बंद कर शरावसे बंद करदेवे फिर उस हाँडीको निमकचूर्णसे भरे और चूल्हेपर चढाय ३ प्रहरकी प्रचंडाग्नि देवे जब स्वयं स्वांगशीतल होजाय तब ताम्रको निकालके खरलमें चूर्ण कर डाले, यह वांति और दाहरहित भस्म होती है यह सर्व दोष हरणकर्त्ता सर्व रोगोंमें देनी चाहिये ।

दूसरी मारणकी विधि ।

सूक्ष्मं ताम्रदलं विमर्द्य पटुना क्षारेण जंबीरजैर्नीरैर्घस्रमिदं स्नुगर्कपयसा लिप्तं धमेत्सप्तधा ॥ निर्गुंडयंबुहिमं रसेंद्रकलितं दुग्धाढ्यगंधेन तत्तुल्येनाथ मृतं भवेत्सुपुटितं पंचामृतेन त्रिधा ॥ ११९ ॥

अर्थ–कंटकवेधी छोटे २ तामेके पत्रोंको खरलमें निमक जवाखार और जंभीरीका रस डालके १ दिन घोटे फिर थूहर और आकका दूध उन पत्रोंसे लपेटकर ७ बार अग्निमें धमावे अर्थात् सात आँच देवे फिर निर्गुंडीके रसमें पारा गंधक डाल और आकका दूध मिलाके घोटे और आग्नि देवे फिर पंचामृत (गिलोय गोखरू आदि) की ३ पुट दे गजपुटमें ३ आंच देनेसे तामा भस्म होजाता है ।

तामेकी भस्मके गुण ।

वांतिभ्रांतिविवर्जितं ज्वररुजः कुष्ठानि पांड्वामयं शूलं मेहगुदांकुरानिलगदानुक्तानुपानैर्जयेत् ॥ गुंजामात्रमिदं ततो द्विगुणितं संशुद्धकायेन चेत्प्रोक्तं स्थौल्यजराविपत्तिशमनं पथ्याशिनो वत्सरात् ॥ १२० ॥

अर्थ–१ रत्ती या दो रत्ती भस्मको जैसा रोग होय उसके अनुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे ज्वर–कुष्ठ–पांडुरोग-शूल–प्रमेह–गुदाके रोग दूर करे यह भस्म वमन और भ्रमको नहीं करे । इस ताम्रभस्मको प्रथम वमन विरेचन द्वारा देहकी शुद्धि करके खाय यह पथ्यपूर्वक १ वर्ष पर्यंत सेवन करनेसे देहका अत्यंत मोटा होना, बुढापा और अनेक देहकी विपत्तियोंको दूर करे है ।

अभ्रकमारण ।

दुग्धत्रयं कुमार्यंबु गंगापुत्रं नृमूत्रकम् ॥ वटशुंगमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् । ॥ १२१ ॥ शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ॥ निश्चंद्रिकं भवेत्तत्तु शुद्धदेहे रसायनम् ॥ १२२ ॥

अर्थ–अभ्रकको आक थूहर और बड इन तीनोंके दूधमें घीकुवार नागरमोथा मनुष्यका मूत्र बडकी डाढी (या उसकी कली) और बकरीका रुधिर इनमें खरल कर १०० अग्नि देवे तो यह सौ पुटमें माणिकके समान लाल रंगकी निश्चन्द्र भस्म होय । यह शुद्ध देह करके सेवन करे तो रसायन है ।

अभ्रकभस्मके गुण ।

रोगान्हंति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्सिंहतुल्यप्रभावान्मृत्योर्भीतिं हरति च सदा सेव्यमानो मृताभ्रः ॥ १२३ ॥

अर्थ-रोगोंको नष्ट करे देहको दृढ करे वीर्य बढावे नित्य १०० तरुण स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति होय जिनका सिंहके समान पराक्रम और दीर्घ जीवनवाले ऐसे पुत्रोंको उत्पन्न करे यदि अभ्रकभस्म विधिपूर्वक सेवन करी जावे तो अवश्य मौत (अकालमृत्यु) के भयको दूर करे ।

दूसरे गुण ।

गौरीतेजः परमममृतं वातपित्तक्षयांत्यं प्रज्ञाद्बोधि प्रशमितजरं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ॥ बल्यं स्निग्धं रुचिरमकफं दीपनं शीतवीर्यं तत्तद्योगात्सकलगदजिद्व्योम सूतेंद्रवेधि ॥ १२४ ॥ वयःस्तंभकारी जरामृत्युहारी बलारोग्यकारी महाकुष्ठहारी॥मृतो मेघ एकःसुयोगे सुयोग्यः सदा सूतराजस्यतुल्यो गुणेन॥१२५॥

अर्थ-यह पार्वतीका परम उत्तम अमृतके तुल्य तेज है सो यह वात पित्त और क्षयको नष्ट करता है बुद्धि बढावे बुढापा नहीं आनेदे वृष्य है और आयुके बढानेमें श्रेष्ठ है बल करता चिकना-रुचिकारी-कफ नहीं करे-दीपन-शीतवीर्यवाला यह अपने पृथक् २ अनुपानोंसे सर्व रोगनाशक पारदका बंधन करनेवाला है। अवस्थास्थापक बुढापा और मृत्युनाशक बल आरोग्यकर्त्ता महाकुष्ठोंका नाशक यदि यही एक अभ्रक उत्तम योगके साथ दिया जाय तो यह पारदके समान असंख्य गुणोंको करे है ।

हीरेका शोधन मारण ।

व्याघ्रीकंटगतं वज्रं दोलायंत्रे विपाचितम् ॥सप्ताहं कोद्रवक्वाथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥ १२६ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं खरमूत्रेण सेचयेत् ॥ मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥ १२७ ॥ प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण च ॥ भस्मीभवति तद्भुक्तं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥ १२८ ॥

अर्थ-हीरेको कटेरीकी जड चीर उसके बीचमें रख दोलायंत्रमें कांजी भरके ७ दिन बराबर पचानेसे तथा कोदों और कुलथीके क्काथमें ७ दिन औटानेसे हीरा शुद्ध होय है । मारण फिर इसे आगमें तपाय २ के २१ बार गधेके मूत्रमें बुझावे फिर हरतालको खटमलोंके रुधिरमें पीस उसके गोलेमें हीरेको रख देवे और अग्नि देवे जब हरताल जलजावे तब निकालके पूर्वोक्त क्रमसे घोडेके मूत्रमें बुझावे तो हीरेकी भस्म होय इस भस्मका सेवन करनेसे मनुष्यका देह वज्रके समान कठोर होय और सर्व रोगोंको दूर करे है ।

वैक्रांतशोधन मारण ।

वैक्रांतं वज्रवच्छोध्यं ध्मातं तद्धयमूत्रके॥ हिमं तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥ १२९ ॥

अर्थ-वैक्रांत (कासुले) को हीरेके समान शोधे फिर आगमें तपायके घोडेक मूत्रमें बुझावे इस प्रकार कई बार बुझानेसे भस्म होय इस भस्म-

को जहां हीरेकी भस्म न मिलती होय उसकी प्रतिनिधिमें डालना चाहिये ।

अभ्रककी परीक्षा ।

यदंजननिभं क्षिप्तं वह्नौ नो विकृतिं व्रजेत्॥ वज्रसंज्ञं हि तद्योज्यं व्योम सर्वत्र नेतरत् ॥ १३० ॥

अर्थ–जो कज्जलके समान काले रंगकी हो और आगमें डालनेसे विकृत न हो अर्थात् पत्र २ न होजाय उसको वज्राभ्रक कहते हैं इसी अभ्रकको सर्वयोगोंमें मिलावे अन्य दर्दुर–नाग आदि अभ्रकोंको न डाले ।

अभ्रकका सत्त्वपातन ।

भावयेच्चूर्णितं वज्रं दिनैकं कांजिकेन च ॥ रंभासूरणजैर्नीरैर्मूलकोत्थैश्च मर्दयेत् ॥ १३१ ॥ तुर्यांशटंकणेनैव क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः ॥ महिषीमलसंमिश्रान्विधाय स्थाप्य गोलकान् ॥ १३२ ॥ खराग्निना धमेद्गाढं सत्त्वं मुंचति कांस्यवत् ॥ सत्त्वसेवी वयःस्तंभं कृतशुद्धिर्लभेत्ततः ॥ १३३ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त धान्याभ्रकको १ दिन कांजीमें घोटे फिर केलेका कंद, जमीकंद, मूली इनके रसमें एक एक दिन खरल करे फिर इसमें अभ्रकका चतुर्थांश सुहागा मिलावे और छोटी मछली डालके खरल करे फिर भैंसका गोबर डालके आठ २ दश २ तोलेके गोले बनाय ले इनको मिट्टीमें रख प्रचंड अग्नि अर्थात् बंकनाल धौंकनीसे धमावे तो इसमेंसे कांसेके समान सत्व निकले. (विशेष देखना हो तो हमारे रसराजसुन्दरग्रंथको देखोगे तो सत्त्व शीघ्र निकाल लोगे) जो प्राणी देह शुद्ध करके सत्वका सेवन करते हैं वे अवस्थाका स्तंभन शीघ्र पा सक्ते हैं ।

कैंचुएका सत्वपातन ।

ताम्रभूभवभूनागान्निशापिष्टान्समेन तान् ॥ गुडगुग्गुलुलाक्षोर्णामत्स्यपिण्याकटंकणैः ॥ १३४ ॥ दृढमेतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत्सुखम् ॥ मुंचंति ताम्रसत्त्वं तत्तन्मुद्राजलपानतः॥ १३५॥ नश्यंति जंगमविषाण्यशेषाण्यपि सर्वथा ॥ १३६ ॥

अर्थ–ताम्र आकारवाली पृथ्वीमें उत्पन्न कैंचुए (गिंडोहें) को ले उनको हलदीके साथ पीसे फिर गुड, गूगल, लाख, ऊन, छोटी मछली, तिलोंकी खल और सुहागा डाल गोला बनावे भट्टीमें रख बंकनाल धौंकनीकी अग्नि देनेसे तामेके समान लाल रंगका सत्व निकले. इस सत्वकी अँगूठी बनाले विषबाधावालेको यह अंगूठी धोकर पिलानेसे सर्व सांप आदि जंगम-प्राणियोंका विष दूर हो ।

सब सत्वोंका मारण ।

सर्वेषामुपपूर्वाणां रसानां सत्वमारणम्॥ कर्तव्यं भस्म सूतेन गंधकेनाग्निगर्भके ॥ १३७ ॥

अर्थ–यावन्मात्र उपरस हैं उनका सत्व निकालके मारण करना होय तो पारद और गंधकके साथ घोटकर गोला बनाय अग्नि देवे तो भस्म होय ।

सब उपरसोंका सत्व निकालना ।

ये धातवो येप्युपपूर्वकाश्च रसाश्च मृत्स्नादृषदोल्पसाध्याः ॥ मुंचंति सत्त्वं विमलागणेन गुडादिना तत्र न संशयो-

स्ति॥ १३८ ॥ यत्रोपरसभागोऽस्ति रसे तत्सत्त्वयोजनम्॥कर्तव्यं तत्फलाधिक्यमिच्छता निश्चितात्मना ॥ १३९ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां रसधातुशोधनमारणं नाम सप्तदशस्तरंगः ॥ १७ ॥

अर्थ-यावन्मात्र धातु और उपधातु, रस, मिट्टी, पत्थर इनमेंसे किसीका सत्व निकालना हो तो इनको पूर्वोक्त गुड गूगल आदि गणके साथ मिलाके प्रचंड अग्नि देनेसे ये सत्व त्यागते हैं इसमें संदेह नहीं है । जिस रसमें कहीं उपरस (हरताल अभ्रक आदि) डालना लिखा होय उस जगह वैद्य उसका सत्व डाले तो वह अत्यंत गुण करे है यह निश्चय है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां रसधातुशोधनमारणं नाम सप्तदशस्तरंगः ॥ १७ ॥

अष्टादशस्तरंगः ।

अथ स्वरसादिसाधन ।

अथात्र स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ॥ ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवस्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ-स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट पांच प्रकारके क्वाथ (काढे) कहे हैं इनमें एककी अपेक्षा दूसरा हलका है । जैसे स्वरससे कल्क कल्कसे क्वाथ इसी प्रकार औरभी जानो ।

स्वरस बनाना ।

आहृतात्तत्क्षणोत्कृष्टाद्द्व्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् ॥ वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु स्वरसो रस उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ-तत्कालकी लाई हुई औषधको कूटकर कपडेसे रसको छान लेवे इसको स्वरस कहते हैं ।

दूसरा प्रकार ।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं तद्द्विगुणे जले ॥ अहोरात्रस्थितं यस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ३॥

अर्थ-१ पाव कुटी हुई औषधको आधसेर जलमें भिगोवे; फिर एक दिन रात्र धरा रहने देवे तो उत्तम स्वरस होजाता है इसे छानके पीना चाहिये ॥

तीसरा प्रकार ।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ॥ जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ४ ॥

अर्थ-यादि कहीं आर्द्र (गीली) दवा स्वरसके वास्ते न मिलती होय तो सूखी दवाको अठगुने जलमें डालके औटावे जब चतुर्थांश जल रहे तब उतारके छान लेवे इसकी भी स्वरससंज्ञा मानी है ।

स्वरसकी मात्रा ।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च परमर्धं प्रयोजयेत् ॥ निःशेषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-सर्व क्वाथोंमें स्वरस भारी होता है इसवास्ते इसकी २ तोलेकी मात्रा है तीसरे प्रकारके अर्थात् औटायके बनाये हुए स्वरसकी ४ तोले मात्रा रोगीको पीनी चाहिये ।

स्वरसमें सहत खांड लवण आदि डालनेका प्रमाण ।

मधुश्वेतागुडक्षाराज्जीरकं लवणानि च ॥ घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रान्रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–स्वरसमें सहत, मिश्री या खांड, गुड, जवाखार आदि, जीरा, निमक, घृत, तेल या चूर्ण आदि डालने हों तौ छः छः मासे डाले अब स्वरसका उदाहरण दिखाते हैं ।

अमृतास्वरस ।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित्॥ हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

अर्थ–गिलोय हरीको कूटकर २ तोले रस छान लेवे इसमें छः मासे सहत डाल पीवे तो प्रमेह दूर होय । (अथवा) आमलेंका रस निकाल उसमें हलदीका चूर्ण और सहत छः मासे डालके पीनेसे प्रमेह दूर होय है ।

कल्क बनाना ।

यः पिंडश्चार्द्रद्रव्याणां स कल्क इति कीर्तितः॥वृद्धवैद्यवचःसाक्षात्कल्को दृषदि पेषितः ॥ मात्रा पिचुमिता तत्र द्विगुणं माक्षिकादिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ–गीली औषधोंको पीसकर गोला बनाय लेना उसको कल्क कहते हैं । कोई वृद्ध वैद्य कहते हैं कि जो गीली वस्तु पत्थरपर पीसके चटनीके माफक करलीनी जावे उस औषधको कल्क कहते हैं । इसकी मात्रा १ तोलेकी है. इसमें सहत आदि प्रक्षेप्य वस्तु दूनी डाली जाती हैं । कल्कका उदाहरण दिखाते हैं ।

क्षुद्राकल्क ।

पचेत्क्षुद्रां सपंचांगां पुटपाकेन तद्रसः ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासक्षयापहः ॥ ९ ॥

अर्थ–कटेरीके पंचांगको पुटपाककी विधिसे पकाय रस निकाल ले. इसमें पीपलका चूर्ण डालके सेवन करे तो यह क्षुद्राकल्क खांसी और श्वासको नष्ट करै ।

क्राथकी कल्पना ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णद्रव्याद्विनिःक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे क्वथितं ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ १० ॥

अर्थ–कुटे हुए औषधसे १६ गुना पानी लेकर मिट्टीके पात्रमें क्वाथ करे जब अष्टमांश जल रहे तब उतारके छान लेय इसको शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह कहते हैं । भाषामें इसको काढा भी कहते हैं ।

गुडूच्यादिक्वाथ ।

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ॥ गुडूच्यादिरयं क्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ११ ॥

अर्थ–गिलोय धनिया नीमकी छाल लाल चंदन और पद्माख यह समान भाग औषध लेकर क्वाथ करे यह गुडूच्यादिक्वाथ सर्व ज्वरोंको नष्ट करे है ।

यवागू ।

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ तत्क्वाथेनार्द्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्वराम् ॥ १२ ॥

अर्थ–१६ तोले साध्य द्रव्यको २५६ तोले जलमें डालके औटावे जब आधा रहे तब छानके उस क्वाथमें चावल आदि पदार्थ डालके यवागू बनावे ।

विधि ।

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषाये विपचेद्बुधः ॥ यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-अमचूर, अंबाडेके फलकी छाल और जामुनके छालके अर्धविशेष क्राथमें बारीक चावलोंको डालके यवागू बनावे इसको सेवन करनेसे संग्रहणी दूर होवे ।

यूष ।

कल्कद्रव्यपलं शुंठी पिप्पली चार्द्धकार्षिकी ॥ वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ-१ पल कल्कद्रव्य, सोंठ,पीपल ये दोनों छः छः मासे ले इनको १ सेर जलमें औटावे जब सब वस्तु औटकर जलरूप होजावे तब उतारके छान लेवे इस द्रवपदार्थको यूष ऐसा कहते हैं ।

सप्तमुष्टिक यूष ।

कुलत्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकशुंठकैः ॥ शुंठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः ॥ सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वराञ्जयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-कुलथी, जौ, बेरके फलकी छाल, मूंग, मूली, सोंठ और धनिया इनको औटायके यूष बनावे यह यूष कफवातको नष्ट करै यह सप्त मुष्टिक यूष सन्निपातज्वरोंकोजीते । अब आगे इनके बनानेकी प्रक्रिया लिखी जाती है ।

यवागू ।

अथैषां प्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात् ॥ यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात्कृशरा घना ॥ १६ ॥ तंडुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ॥ यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशिनी १७

अर्थ-यह प्राक्रिया इस जगह संपेक्षसे लिखी जाती है. छः गुने जलमें औटानेसे यवागू सिद्ध होती है तथा चावल, मूंग, उडद अथवा तिल मिलायके जो यवागूसे अधिक गाढी करी जाती है उसका नाम कृशरा (खिचडी) है। गुण-यवागू मलको रोकनेवाली बलकर्त्ता देहको तृप्त करे और वातनाशक है ।

विलेपी ।

विलेपी त्वघना सिक्थैः सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ॥ विलेपी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ १८ ॥

अर्थ-चार गुने जलमें डालके सिद्ध करे परंतु उसमें चावल आदिके कण अधिक न रहने पावें उसको विलेपी कहते हैं । गुण-यह इन्द्रियोंको तृप्त करे, हृदयको हितकारी, मधुर और पित्तनाशक है ।

पेया ।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले॥सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किंचिद्घनस्ततः ॥ १९ ॥ पेया लघुतरा ज्ञेया ग्रहणी धातुपुष्टिदा ॥ यूषो बल्यस्ततः कंठ्यो लघुपाकः कफापहः ॥ २० ॥

अर्थ-जो १४ गुने जलमें डालके सिद्ध करीजाय और जिसमें जल अधिक रहे तथा चावल आदिके सींथ (कण) न्यून हों उसको पंडितजन पेया कहते हैं अर्थात् खाई नहीं जाती किंतु पी जाती है । इस पेयासे कुछ ज्यादे गाढा यूष कहाता है । गुण । पेया हलकी ग्रहणीको सुधारे धातुओंको पुष्ट करे । यूषके गुण-यूष बलदायी, कंठको हितकारी इसका पाक हलका और कंफनाशक है ।

भात ।

जले चतुर्दशगुणे तंडुलानां चतुःपलम् ॥

विपचेत्स्रावयेन्मंडं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ २१ ॥

अर्थ–२० तोले चावलोंको ५६ तोले जलमें डालके औटावे जब चावल सीज जावें तब उतारके उसमेंसे मांडको छान डाले । गुण-यह भात मीठा और हलका है ।

मंड ।

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मंडस्त्वसिक्थकः ॥ शुंठीसैंधवसंयुक्तः पाचनो दीपनो लघुः ॥ २२ ॥

अर्थ–चौदहगुने जलमें चावल डालके औटावें कि जिसमें साबित एकभी चावल न रहे. इस मांडमें सोंठ सेंधानिमक डालके पीवे । गुण–पाचन, दीपन और हलका है यह शुद्ध मंड कहाता है ।

अष्टगुणमंड ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थयुक्तस्तक्रेण योजितः ॥ भृष्टश्च हिंगुतैलाभ्यां स मंडोऽष्टगुणः स्मृतः ॥ २३ ॥ दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तबर्धनः ॥ ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मंडोऽष्टगुण उच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ–जिस मांडमें धनिया, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानिमक और छाछ डालके भूनजावे तथा भुनी हींग और तेल पडा हो उसको अष्टगुण मंड कहते हैं । गुण–अष्टगुण मंड दीपन, प्राणदाता, बस्तिशोधक, रुधिरका बढानेवाला ज्वरनाशक और सर्व दोषोंको नष्ट करे है ।

वाट्यमंड ।

सुकंडितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमंडो यवैर्भवेत् ॥ कफपित्तहरः कंठयो रक्तपित्तप्रसादनः ॥ २५ ॥

अर्थ–छरे बीने और मांडमें भूने हुए जौओंका जो मंड बनताहै उसका नाम वाट्यमंड है । गुण–वाट्यमंड कफपित्तनाशक, कंठको हितकर और रक्तपित्तका हरण करनेवाला है ।

लाजमंड ।

लाजैर्वा तंडुलैर्भृष्टैर्लाजमंडः प्रकीर्तितः ॥ श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ २६ ॥

अर्थ–चावलकी खील अथवा भुने चावलोंसे जो मंड बनाया जाता है उसको लाजमंड कहते हैं । गुण–लाजमंड कफपित्तनाशक, दस्त रोकनेवाला प्यास और ज्वरको हरण करे है ।

फांटकल्पना ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ २७ ॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥ मधुश्वेतागुडादींश्च काथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ २८ ॥

अर्थ–१ पल कुटी हुई द्रव्यमें पावभरके अनुमान गरम जल डाले परंतु यह क्रिया मिट्टीके बरतनमें करे फिर थोडी देरके बाद उस जलको कपडेसे छानलेय इसको चूर्णद्रव और फांट कहते हैं । इसके पीनेकी मात्रा ८ तोलेकी है । इसमें सहत खांड और गुड आदि डालना होय तो काथके समान डालने चाहिये ।

मधूकपुष्पादि फांट ।

मधूकपुष्पं मधुकं चंदनं सपरूषकम् । मृणाले कमलं लोध्रं कंभारी नागकेसरम् ॥ २९ ॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षायवान्कोष्णजले क्षिपेत् ॥ सितामधु-

युतः पेयः फांटो वासौ हिमोऽथवा ॥ ३० ॥ वातं पित्तं तथा दाहं तृष्णा-मूर्च्छामतिभ्रमान् ॥ रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥

अर्थ–महुआके फूल, मुलहटी, चंदन, फालसे, कमलकी जड, कमलगट्टा, लोध्र, कंभारी, नागकेशर, त्रिफला, सारिवा, दाख, जौ इन सबको गरम जलमें डाले, थोडी देरके बाद इसमें सहत और मिश्री मिलायके पीवे इसे फांट अथवा हिम कहते हैं । गुण–यह वात, पित्त, दाह, तृषा, मूर्च्छा, बुद्धिका भ्रम, रक्त-पित्त, मद (मस्ती) इनको निःसंदेह नष्ट करे है, यह मधूकपुष्पादि फांट है ।

हिमकल्पना ।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ॥ ३२ ॥ निःशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ तन्मानं फांटवज्ज्ञयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ ३३ ॥

अर्थ–कुटीहुई १ पल द्रव्यको छः पल जलमें डालके रात्रिभर धरी रहने दे प्रातःकाल हाथोंसे मलकर उसको छानलेवे इसको हिम और शीतकषाय अर्थात् शीतल काढा कहते हैं इस मात्राका प्रमाण फांटके तुल्य है. यह सर्वत्र निश्चय करा गया है ।

आम्रादिहिम ।

आम्रजंबू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥ हिमः स स्यात्पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ॥ ३४ ॥

अर्थ–आम, जामुन, कोहकी छालका चूर्ण कर रात्रिको कोरे कुल्हडेमें भरके भिगोय देवै. प्रातःकाल छान उसमें सहत डालके पीवे तो रक्तपित्त रोग दूर होय ।

चूर्णकल्पना ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ॥ तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ३५ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता ॥ चूर्णेषु भर्जितं हिंगु जीरकं चेति केचन ॥ ३६ ॥

अर्थ–अत्यंत सूखी द्रव्यको पीस कपडछान कर लेवे उसको चूर्ण रज क्षोद कहते हैं । इसके खानेकी मात्रा १ तोलेकी है । चूर्णमें गुड बराबरका डाले । मिश्री या खांड डाले तो दूनी मिलावे । हींग डालनी होय तो ूनके डाले और जीरा भी भुनाहुआ डालना चाहिये ।

वटिका ।

वटिका अथ कथ्यंते तन्नाम गुटिका वटी ॥ मोदको वटिका पिंडी गुवर्तिस्तथोच्यते ॥ ३७ ॥ लेहवत्साधयेद्वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा ॥ लुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी॥३८॥

अर्थ–अब वटिका कहते हैं जिनका नाम गुटिका–वटी–मोदक–वटिका–पिंडी–गुड तथा वर्ती भी कहते हैं । इसमें गुड अथवा खांड डालके अवलेहके समान अग्निपर सिद्ध करे अथवा गूगल डालके उस चूर्णकी गोली बनाय ले ।

वटिकामें प्रक्षेप्य वस्तुओंका प्रमाण ।

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणा गुडः ॥ सर्वचूर्णे समः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ३९ ॥ द्रवश्च

द्विगुणो देयो मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-गोलियोंमें मिश्री मिलानी होय तो चौगुनी डाले गुड दूना डालना और गूगल सब चूर्णकी बराबर मिलावे. तथा गूगलके बराबर सहत डालना चाहिये. जल आदि द्रव पदार्थ डालने होयँ तो औषधोंसे दूने मिलावे इस गुटिकाकी मात्रा १ तोलेकी है परंतु बलाबल विचारके न्यूनाधिक भी वैद्य करसकता है ।

अवलेह ।

क्वाथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया ॥ सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ ४१ ॥ सिता चतुर्गुणा देया चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ॥ द्रवश्चतुर्गुणो देया इति सर्वत्र निश्चयः ॥ ४२ ॥ दुग्धमिक्षुरसो यूषः पंचमूलकषायकः ॥ वासाक्वाथश्च तद्योग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

अर्थ-क्वाथादिकको छानके फिर औटाकर गाढा करना इस रसक्रियाको अवलेह और लेह ऐसा कहते हैं इसकी मात्रा ४ तोलेकी है अवलेहमें औषधोंके चूर्णसे मिश्री (खांड) चौगुनी डाले और गुड डालना होय तो चूर्णसे दूना डाले जल या दूध आदि द्रवपदार्थ डालने होंय तो चौगुने मिलावे यह सर्वत्र निश्चय करा गया है । इस अवलेहके दूध ईखका रस यूष पंचमूलका क्वाथ और अडूसेका क्वाथ ये रोगानुसार अनुपान देना हितकारी हैं ।

अथ गणः । तत्र त्रिफला ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ योज्यौ च विभीतकौ॥ चत्वार्यामलकान्याहुः सिता च द्विगुणा भवेत् ॥ ४४ ॥ त्रिफला मेहशोथघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी ॥ सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयापहा ॥४५॥

अर्थ-एक हरड २ बेहेडे ४ आँवले डाले और इन सबसे दूनी खांड डाले । यह त्रिफला प्रमेह, शोथ, कुष्ठ इनको नष्ट करे और रसायन है इसमें घी और सहत मिलायके सेवन करे तो नेत्रके सकल रोग दूर करे है ।

त्रिकटु ।

पिप्पली मिरचं शुंठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥ दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-पीपल, काली मिरच, सोंठ ये तीन वस्तु समान लेय इसे त्र्यूषण और (त्रिकुटा) कहते हैं, गुण-त्रिकुटा दीपन कफ मेदा कोढ और पीनसका नाशक है ।

पंचकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ कोलमात्रप्रमाणत्वात्पंचकोलमिदं मतम् ॥ ४७ ॥ पाचनं दीपनं रुच्यं शूलगुल्मोदरापहम् ॥ पंचकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इन सब औषधोंको एक एक कोल लेनेसे पंचकोल कहा है । पंचकोलके गुण-पंचकोल दीपन, रुचिकारी, शूल, गोला, उदररोग इनको नष्ट करे है । षट्कोल यदि इसी पंचकोलमें काली मिरच डाल देवे तो षट्कोल कहाता है ।

त्रिसुगंधि चातुर्जातक ।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चातुर्जातं सकेसरैः ।

त्रिगंधं च चतुर्जातं तीक्ष्णोष्णं लघु पित्तकृत् ॥ वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं विषश्लेष्मामयापहम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-बडी इलायची, दालचीनी और तेजपातको त्रिगंधि कहते हैं। गुण-त्रिगंध और चातुर्जात-तीक्ष्ण, गरम, हलका और पित्तकारक है।

जीवनीय गण।

काकोली क्षीरिकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥ मेदा चान्या महामेदा जीवंती मधुकं तथा ॥ ५० ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयगणो मतः ॥ जीवनीयगणः स्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः । ॥५१॥ स्तन्यकृद्बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ-काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवंती, मुलहटी, मुद्गपर्णी और माषपर्णी, ये जीवनीयगण हैं। जीवनीय गण-स्वादिष्ठ, गर्भसंधानकर्त्ता, भारी, स्त्रीके दूधका बढानेवाला, बृंहण, वृष्य, स्निग्ध, शीतल, तृषानाशक, रक्तपित्त, क्षय, खांसी, ज्वर, दाह और बादीको दूर करे।

अष्टवर्ग।

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥ ऋद्धिर्वृद्धिश्च तैः सार्द्धमष्टवर्ग उदाहृतः॥अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥ ५३ ॥

अर्थ-मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि इन आठ औषधियोंको अष्टवर्ग कहते हैं। अष्टवर्ग जीवनीयगणके समान गुणकारी है।

पंचलवण।

सिंधुसौवर्चलं चैव बिडं सामुद्रिकं गुडम् ॥ एकद्वित्रिचतुःपंचलवणानि क्रमाद्विदुः ॥ ५४ ॥ मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं बलापहम्॥ वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-सैंधानिमक, सौंचर, बिड, सामुद्र और साम्हर ये १-२-३-४ और ५ इस क्रमसे पांच निमक हैं ये पाँचों निमक-मधुर मल मूत्रको प्रगट करता, स्निग्ध, सूक्ष्म, बलनाशक, उष्णवीर्य, दीपन, तीक्ष्ण और कफ पित्तके बढानेवाले हैं।

क्षारद्वय।

सर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥ ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ सर्जिकायावशूकजौ ॥ ५६ ॥ क्षाराश्चान्येऽपि गुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदः सदा ॥ पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ ५७ ॥

अर्थ-सज्जीखार और जवाखार ये दो क्षार कहाते हैं। ये दोनों क्षार अग्निके समान हैं अर्थात् जो दाहादि कर्म अग्नि करे है वही क्षारभी करते हैं और जो क्षार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणीको सदैव नाश करे हैं, पाचक, कृमिरोग और पुरुषार्थनाशक एवं शर्करा पथरीको नष्ट करे हैं।

पंचमूल दशमूल।

शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥

१ त्रिगन्धको त्रिसुगन्धभी कहते हैं।

बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मरीपाटला-
युतैः ॥ ५८ ॥ दशमूलमिति ख्यातं
पूर्वार्द्धं तु लघु स्मृतम् ॥ परार्द्धं मह-
दाख्यं स्यात्पंचमूलमिति द्विधा ॥५९॥
दशमूलं सन्निपातशमनं प्रायशः
स्मृतम् ॥ वातपित्तश्वासकाससूतिका-
रोगनाशनम् ॥ ६० ॥ दशमूलं सन्नि-
पाते शोफे त्वक्पंचकं तथा ॥ तत्तद्योगे
तथान्यांश्च वदिष्यामि गणान्पुनः ॥६१॥

अर्थ-शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू, ये लघु पंचमूल हैं, बेल, अरनी, टैंटु, कंभारी और पाढर ये बृहत्पंचमूल हैं। दोनों पंचमूलोंके मिलानेसे दशमूल होता है। तहां दशमूल-प्रायः संनिपातको नष्ट करे है, तथा वात, पित्त, श्वास, खाँसी और प्रसूतिरोग इनका नाश करे है. संनिपातमें दशमूल और सूजनके रोगमें त्वक्पंचक इनको अपने २ योगोंके साथ देवे, और जो बाकीके गण हैं उनको चिकित्सा प्रकरणमें कहूंगा ।

पंचवल्कल ।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थपारिशप्लक्षपादपाः ॥
पंचैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक्पञ्च-
वल्कलम् ॥ ६२ ॥
इति श्रीयोगतरंगिण्यां स्वरसादिकथनं
नामाष्टादशस्तरंगः ॥ १८ ॥

अर्थ-बड, गूलर, पीपल, पारसपीपल और पाखर, ये पांच क्षीरवृक्ष हैं इन पांचोंकी छाल्को पंचवल्कल जानना ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां स्वरसादिकथनं नामाष्टादशस्तरंगः ॥ १८ ॥

एकोनविंशस्तरंगः ।

अब दोषोंके कहनेको और तहां दोषके चिकित्सार्थ संक्षेपसे रोगोंकी गणना करते हैं.

ज्वरोतिसारो ग्रहणी ह्यर्शोऽजीर्णं विषू-
चिका ॥ सालसा च विलंबी च
कृमिरुक्पांडुकामलाः ॥ १ ॥ हलीमकं
रक्तपित्तं राजयक्ष्मा ह्युरःक्षतम् ॥
कासो हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्त्व-
रोचकः ॥ २ ॥ छर्दिस्तृष्णा च
मूर्च्छा च तथा पानात्ययादयः ॥
दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनि-
लामयः ॥ ३ ॥ वातरक्तमुरुस्तंभमा-
मवातोऽथ शूलरुक् ॥ पक्तिजं शूल-
मानाहमुदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ ४ ॥
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्रा-
घातस्तथाश्मरी ॥ प्रमेहो मधुमेहश्च
पिडकाश्च प्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेदोदो-
षोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः ॥
गंडमालापची ग्रंथी ह्यर्बुदं श्लीपदं तथा
॥ ६ ॥ विद्रधी व्रणशोथौ च द्वौ व्रणौ
भग्ननाडिकौ॥ भगंदरोपदंशौ च शूकदो-
षस्त्वगामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्तमुदर्द-
श्चोत्कोठकश्चाम्लपित्तकम् ॥ विस-
र्पश्च सदिस्फोटस्तथैव च मसूरिका ॥
॥ ८ ॥ क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरःस्त्री-
बालकामयाः॥ विषं चेत्ययमुद्देशः संग्र-
हेस्मिन्प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

अर्थ-ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, विषूचिका (हैजा), अलस, विलंबिका, कृमिरोग, पांडु (पीलियाका) रोग, कामला,

हलीमक, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा (खई तपेदिक), उरःक्षत (छातीका घाव), खाँसी, हिचकी, श्वास, स्वरभेद, अरुचि, छर्दि, तृषा, मूर्छा, पानात्यय (मदात्यय), दाह, उन्माद, अपस्मार (मृगी), वातव्याधि, वातरक्त, ऊरुस्तंभ, आमवात, शूलरोग, परिणामशूल, आनाह (अफरा), उदावर्त्त, गोला, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहकी पिडिका, मेदोरोग, उदर (जलंधर), सूजन, अंडवृद्धि, गलगंड, गंडमाला, अपची, ग्रंथी, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रणशोथ, व्रण, नाडीव्रण, भग्नरोग, भग्ननाडी, भगंदर, उपदंश, शूकदोष, त्वगामय (कोढके रोग), शीतपित्त, उदर्द, उदररोग, अम्लपित्त, विसर्प, विस्फोट, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग और विषरोग इन सब रोगोंका वर्णन इस योगतरंगिणी ग्रंथमें वर्णन कराहै ।

ज्वरके लक्षण ।

देहेंद्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ॥ ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १० ॥

अर्थ–देह, इन्द्री और मनको संतप्तकर्त्ता, सर्वरोगोंमें प्रथम होनेवाला प्रबल ऐसे सर्व रोगोंमें ज्वरकी प्रधानता आपने पहले कही ।

संप्राप्ति ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिश्वाससंभवः ॥ ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥ ११ ॥

अर्थ–दक्षके तिरस्कार करनेसे क्रोधित शिवकी श्वाससे प्रगट ज्वर, आठ प्रकारका है. जैसे वात, पित्त, कफ, वातापित्त, वातकफ, कफपित्त, संनिपात और आगतुंज ज्वर, ये आठ भेद जानने । यदि निदानमें विशेष देखनेकी इच्छा होय तो हमारी बनाई माधवनिदानकी टीकाको देखिये ।

संख्या संप्राप्ति ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ॥ बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ १२ ॥

अर्थ–मिथ्या आहार विहारोंके करनेसे आमाश्रित जो वातादि दोष वे रसके साथी हो कोठेकी अग्निकी गरमीको देहसे बाहर निकालकर ज्वर देनेवाले होते हैं ।

पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ॥ इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ १३ ॥ जृंभांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ अप्रहर्षश्च शीतं च भवंत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ १४ ॥

अर्थ–विना परिश्रम श्रम करना मालूम हो, मनका न लगना, देहका वर्ण पलट जाना, मुखमें स्वादका न रहना, नेत्रोंमें जलका आना, सरदी और गरमीकी बारंबार इच्छा हो और न होय, जँभाई, अंगोंका टूटना, देहका भारी होना, रोमांच होना, अरुचि, आँखोंके आगे अंधकारका आना, आनंदका न होना, सरदी लगना ये लक्षण ज्वर प्रगट होनेके पूर्व होते हैं ।

रूप ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥ युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

अर्थ–अग्निका अवरोध (मंदाग्नि होना), अथवा पसीना न आवे, संताप, सब देहका विकार होजाना, अर्थात् क्रम हो ये लक्षण एकही समय जिसमें होवें उसको ज्वर ऐसा कहते हैं।

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठमुखशोषणम्॥ निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ १६ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ॥ शूलाध्माने जृंभणं च भवंत्यनिलजे ज्वरे ॥ १७ ॥

अर्थ–देह कांपे, ज्वरका विषम वेग हो (कभी जोरसे और कभी मंद आवे), कंठ, होंठ, मुख इनका सूखना, निद्रानाश, छींकोंका न आना, अंगोंका रूखा होना, मस्तक हृदय और देहमें पीडा होना, मुखका नीरस होना, मलका रुकना, शूल, अफरा और जँभाईका होना ये लक्षण वातज्वरके हैं।

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ॥ कंठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १८ ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ॥ पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ १९ ॥

अर्थ–ज्वरका तीक्ष्णवेग, अतिसार, अल्प निद्राका आना, वमनका होना, कंठ, होठ, मुख, नाकका पकना, पसीनेका आना, बकवाद करना, मुखका कडुआपना, मूर्च्छा, दाह, मतवाला होना और बारंबार प्यास लगे तथा मलमूत्र और नेत्र पीले हों और भौंर आवे ये पित्तज्वरके लक्षण हैं ।

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ॥ शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तंभस्तृप्तिस्तथैव च ॥ २० ॥ गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ॥ अंगेषु पिडिकाः शीताः प्रसेकश्छर्दितंद्रिके ॥ २१ ॥ कंडूः प्रलाप उष्णाभिलाषिता वह्निमार्दवम् ॥ प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ २२ ॥

अर्थ–देहमें गीलापना, ज्वरका मंद वेग, आलस्य, मुखमें मिठास, मल मूत्रका सफेद उतरना, देहका स्तंभ (जकडना), विना भोजन तृप्ति होना, भारीपना, सरदी लगे, उकलाहट, रोमांच, अत्यंत निद्राका आना, अंगोंमें सफेद २ पिडिका (फुंसियोंका होना), मुखसे लारका जाना, वमन करना और तंद्रा एवं देहमें खुजली, प्रलाप, गरमीकी इच्छा, मंदाग्नि, सरेकमा (मुख नेत्र और नाकसे जलका गिरना); अरुचि, खाँसी और नेत्रोंका सपेद होना, ये लक्षण कफज्वरके हैं ।

वातपित्त ज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ॥ कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ पर्वभेदश्च जृंभा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

अर्थ–प्यास, मूर्च्छा, भौंर, दाह, निद्रानाश, मस्तकमें पीडा, कंठ, मुखका सूखना, ओकारी, रोमहर्ष, अरुचि, अंधकारदर्शन, गाँठोंमें पीडा, जँभाई ये वातपित्त ज्वरके लक्षण हैं ।

वातकफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥ संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ २४ ॥

इति वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

अर्थ-देहका गीलापन, गाँठोंमें पीडा, निद्रा, देह भारी, मस्तकपीडा, मुख, नेत्र, नाकसे जलका गिरना, खाँसी, पसीनेका न आना, संताप और ज्वरका मध्यवेग (न अत्यंत जोर न बहुत मंद) ये लक्षण वातकफज्वरके हैं।

कफपित्त ज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ॥ मुहुर्दाहो मुहुः शैत्यं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ २५ ॥

इति श्लेष्मपित्तज्वरलक्षणम् ।

अर्थ-कफसे मुख लिहसासा और कडवा हो, तंद्रा, बेहोशी, खांसी, अरुचि, प्यास, वारंवार दाह और वारंवार सरदीका लगना ये लक्षण कफपित्त ज्वरके हैं ये वातादिक ज्वरोंके सामान्य लक्षण कहे हैं ।

विशेष लक्षण ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ॥ पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनंदनम् ॥ २६ ॥ सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ रूपैरन्यतराभ्यां च संसृष्टं द्वंद्वजं विदुः ॥ २७ ॥

अर्थ-अब विशेषता दिखाते हैं कि वातके कोपमें अत्यंत जँभाई आती हैं. पित्तके कोपसे नेत्रोंमें दाह और कफके कोपमें अन्नमें अरुचि, और जहां त्रिदोषके लक्षण मिले हों तो त्रिदोषके मिले हुए लक्षण होतेहैं तथा दो दोषोंके मिलित लक्षणोंसे उस व्याधिको द्वंद्वज कहना चाहिये ।

संनिपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा ॥ सस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ २८ ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कंठः शूकैरिवावृतः ॥ तंद्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ २९ ॥ तद्वच्छीतं महानिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥ सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽथ नैव वा ॥ ३० ॥ गीतनर्तनहास्यादि विकृतेहाप्रवर्तनम् ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ॥ ३१ ॥ ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रतस्य च ॥ शिरसो लुंठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥ ३२ ॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्शनमल्पशः ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कंठकूजनम् ॥ ३३ ॥ कोठानां श्यामरक्तानां मंडलानां च दर्शनम् ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥ चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ३४ ॥

अर्थ-क्षणमें दाह क्षणमें शीत लगे, हड्डी संधि और मस्तकमें पीडा, स्रावयुक्त कलुषित (दूषित) लाल टेढे ऐसे नेत्र शब्द और पीडायुक्त कान हों कंठमें काँटे पड गये हों, तंद्रा, मोह, प्रलाप, खाँसी, श्वास, अरुचि और शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना,

रात्रिमें जागना अथवा दिनरात्रि जगे या सोया करे, घोर पसीना आवे, वा न आवे, गावे, नाचे, हँसे, रोवे, अनेक बुरी चेष्टाओंको करे, चारों तरफसे दग्ध (जलीसी) खरदरी और जकडिसी जीभ हो, कफ मिले रक्त पित्तको थूके, शिरको इधर उधर पटके, प्यास, निद्रानाश, हृदयमें व्यथा, पसीना, मूत्र और मलका बडी देरमें कभी २ थोडा आना, अंगोंका अत्यंत कृश न होना, निरंतर कंठका गूँजना, काले और लाल, कोठ और चकत्तोंका देहपर दीखना, मूकत्व (गूंगासा हो जावे), मुख आदि छिद्रोंका पाक होना, पेटका भारीपना और वातादि दोषोंका बहुत देरमें पाक होना ये लक्षण सन्निपातज्वरके जानने ।

भल्लूकके मतसे १३ सन्निपात ।

द्व्युल्बणैकोल्बणैः षट् स्युर्हीनमध्याऽधिकैश्च षट् ॥ समश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ३९ ॥

अर्थ-पृथक् दोषोंसे तथा दो दो दोषोंसे छः तथा हीन मध्य और अधिक दोषोंके होनेसे छः एवं तीनों दोषोंके समान होनेसे एक इस प्रकार सन्निपात तेरह प्रकारके हैं ।

विरुद्धसान्निपात ।

तृष्णा तंद्रा भ्रमः कासस्तालुशोषो ज्वरोऽरुचिः ॥ आनाहो गात्रसंभेदः श्वासकंपश्रमभ्रमाः ॥ विद्धाख्ये सन्निपाते स्याल्लिंगं पित्तानिलोल्बणे ॥ ३६ ॥

अर्थ-प्यास, तंद्रा, भ्रम, खाँसी, तालुएका सूखना, ज्वर, अरुचि, अफरा, अंगोंमें पीडा, श्वास, कंप, श्रम और भौंरोंका आना ये लक्षण पित्त और वात उल्बण जिसमें ऐसे विद्धाख्य सन्निपातमें होते हैं ।

भल्लकसंनिपात ।

संभेदो दक्षिणे पार्श्वे हृदि शीर्षे गलग्रहः ॥ ३७ ॥ दाहोंऽतःशीतता बाह्ये निष्ठीवः कफपित्तयोः ॥ हिक्का प्रमीलकः श्वासो निद्रा कंठप्रतापकः ॥ ३८ ॥ तृष्णा पुरीषसंभेदो वदने तिक्तताऽरुचिः ॥ कफपित्तात्मके चैतल्लक्षणं भल्लसंज्ञके ॥ ३९ ॥

अर्थ-दहने पसवाडेमें तोडनेकीसी पीडा, हृदय शिर और गलेका रुकना, देहके भीतर दाह और देहके बाहर सरदी प्रतीत हो, कफ पित्तका थूकना, हिचकी, नेत्रोंका आधा मिचना, श्वास, निद्रा, कंठमें संताप, प्यास, मलका पतला उतरना, मुखमें कडवाट, अरुचि ये लक्षण कफपित्तात्मक भल्लसंज्ञक संनिपातमें होते हैं ।

शर्कराख्यसंनिपात ।

क्षुण्णाशो जठरे दाहः कटिबस्त्योश्च दूयनम् ॥ शिरोगौरवमालस्यं निद्रा शीतज्वरो रुजा ॥ ४० ॥ मन्यास्तंभः प्रवांतिश्च तृष्णायाश्च विनिग्रहः ॥ सन्निपाते शर्कराख्ये कफवातोल्बणे भवेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ-भूँखका न होना, पेटमें दाह, कमर और बस्ती (मसाना या पेडू) का पीडित होना मस्तकका भारीपना, आलस्य, निद्रा, शीतज्वर, पीडा, गरदनमें पीडा, वमनका होना, प्यासका विरोध ये लक्षण कफवातोल्बण शर्कराख्य सन्निपातमें होते हैं ।

विस्फुरसंनिपात ।

मूर्च्छा ग्लानिज्वरो हिक्का तृष्णा दाहो बलक्षयः ॥ उरःसादोऽतिनिद्रा च स्फुरणं गुदनिस्सृतिः ॥ ४२ ॥ पर्वशूलं प्रलापश्च विण्मूत्रं शोणितप्रभम् ॥ पिण्डिकोद्वेष्टनं शूलं बस्तिकर्षः प्ररोदनम् ॥ ४३ ॥ दाहः सर्वांगसंभेदो दर्शनस्य च निग्रहः ॥ लिंगं विस्फुरकाख्ये तु सन्निपातेऽनिलोल्बणे॥ ४४ ॥

अर्थ–मूर्छा, ग्लानि, ज्वर, हिचकी, तृषा, दाह, बलकी क्षीणता, छातीका रहजाना, अतिनिद्रा, देहका फडकना और कांचका निकलना, गांठोंमें पीडा, बकवाद, मल, मूत्र रुधिरके समान उतरे, देहमें फुंसी होजावें, शूल, बस्तिपीडा, रुदन करना, दाह और सर्व अंगोंमें हडकल, नेत्रोंसे दर्शनशक्तिका चला जाना ये वातोल्वण विस्फुरकाख्य संनिपातके लक्षण हैं ।

शीघ्रकारी संनिपात ।

बहिरंतर्ज्वरो दाहः शीतयोगात्कफानिलौ ॥ कुरुतः कुपितौ श्वासकासहिक्काप्रमीलकान् ॥ ४५ ॥ पर्वभेदं विषूचीं च प्रलापं गौरवं क्लमम्॥नाभिपार्श्वे रुजा तस्य छिन्नः श्वासः प्रवर्तते॥ ॥ ४६ ॥ स्रोतोभ्यः शोणितावृत्तिः शूलः श्वासस्तृषा भृशम् ॥ स्यादहोरात्रजीवित्वं पित्ताढ्ये शीघ्रकारिणि॥४७॥

अर्थ–बाहर भीतर ज्वर और दाह, सरदीके योगसे कफ और वातका कुपित होकर श्वास, खाँसी, हिचकी और आधे नेत्रोंका खुला रहना इनको करे, गांठोंमें पीडा सुईसी देहमें चुभे प्रलाप भारीपन क्लम नाभि और पसवाडेमें पीडा छिन्नश्वासका होना, नाक, कान नेत्र आदि छिद्रोंसे रुधिरका गिरना, शूल, श्वास, प्यासका निरंतर होना, ये लक्षण पित्तोल्बण शीघ्रकारी संनिपातमें होते हैं. यह रोगी एक दिन रात जीवे ।

फंफणक सन्निपात ।

तंद्रा शीतज्वरो दाहो हृद्ग्रहो मधुरास्यता ॥ अरुचिर्गौरवालस्ये श्लेष्मनिष्ठीवनं भृशम् ॥ ५८ ॥ तृप्तिर्मूर्च्छा वमिस्तृष्णा दृष्टिवाक्श्रोत्रनिग्रहः ॥ कफस्य निग्रहात्पित्तं कुर्यात्सोपद्रवं ज्वरम् । ॥ ४९ ॥ पित्तस्य निग्रहात्क्रुद्धो मेदोमज्जास्थितोऽनिलः ॥ हृद्भेदं बहिरायासं कृत्वा हंत्युपवासतः ॥ ५० ॥ अत्र चेत्स्नाति भुंक्ते वा त्रिरात्रं नैव जीवति ॥ भवेत्फंफणके रूपं सन्निपाते कफोल्वणे ॥ ५१ ॥

अर्थ–तंद्रा, शीतज्वर, दाह, हृदयरोग, मुखमें मिठास, अरुचि, गौरव (भारीपना),आलस, बारंबार कफका थूकना, तृप्तत्व, मूर्च्छा-वमन, प्यास, नेत्र, वाणी और कानोंका रुक जाना, एवं कफके जीतनेसे पित्त घोर उपद्रवयुक्त ज्वरको करे फिर उस पित्तको मेदोमज्जामें स्थित वातजीत कुपित पवन हृदयमें चीरनेकीसी पीडा और बाहर आयासको करके लंघन करनेसे नष्ट करे यदि इसमें स्नान और भोजन करे तो वह तीन रात्रि नहीं जीवे. ये कफोल्बण फंफणक संनिपातके लक्षण हैं ।

कर्णशूल सन्निपात ।

मध्यक्षीणाधिकाः कुर्युः पित्तवातकफाः क्रमात्॥ मध्यं दाहं ज्वरं नित्यं स्वल्पशूलं विसंज्ञताम् ॥ ५२ ॥ मन्यायां

हृदये कंठे मस्तके वदने रुजम् ॥ हिक्कांगगौरवं ग्लानिं वाक्संगं तनुसंगताम् ॥ ॥ ५३ ॥ प्रमीलं च कटितोदं कासं श्वासं च जत्रुरुक् ॥ उत्पाद्य कर्णमूलं च शूलं शांतिं गता अपि ॥ ५४ ॥ कुर्वंति कर्णमूलाख्यां पिडिकां कर्णमूलजाम् ॥ व्यालाकृतिः स विज्ञेयस्त्र्यहादर्वाङ् न सिध्यति ॥ ५५ ॥

अर्थ–मध्यपित्त, क्षीणवात और अधिक कफ ये क्रमसे मध्यदाह, नित्यज्वर, अल्पशूल और बेहोशीको करते हैं । गरदन, हृदय, कंठ, मस्तक, मुख इनमें पीडा, हिचकी, अंगोंका भारीपना, ग्लानि, गूंगापना, देहकी कृशता, तंद्रा, कमरमें पीडा, खाँसी, श्वास, हसलीमें पीडा इनको उत्पन्न कर शांतिको प्राप्त होकरभी वे तीनों दोष कर्णमूलमें शूलको प्रगट कर कर्णमूल संनिपातको तथा कानकी पिडिकाओंको करे हैं । इस कर्णमूलको सांपके समान जानना. यह तीन दिनसे प्रथम अच्छा नहीं होता ।

कर्कटक संनिपात ।

मध्यक्षीणाधिका यत्र कुर्युर्वातादयः क्रमात् ॥ स्वंस्वं रूपं स्वशक्तया च जिह्वां स्तब्धां सुकर्कशाम् ॥ ५६ ॥ कंठकूजनमालस्यं मुखमालक्तकोपमम् ॥ शूकपूर्णगलत्वं च शुष्ककंठोष्ठतालुकः । ॥ ५७ ॥ अंतर्दाहं गुदभ्रंशं वाग्भ्रंशं दृष्टिनिग्रहम् ॥ सरक्तकफनिष्ठीवं कृच्छ्रात्स्तोकं मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥ प्रमीलश्वासकासानां प्रत्यहं परिवर्धनम् ॥ अनिष्टेच्छा मनोग्लानिः पार्श्वे बाणहतोपमे ॥ ५९ ॥ कफस्याकृष्यमाणस्य हृदयादप्रवर्तनम् ॥ पार्श्वघातं तथा काण्डैस्तुद्यते भिद्यते भृशम् एष कर्कटको नामः सन्निपातः सुदारुणः ॥ ६० ॥

अर्थ–जहां वातपित्त और कफ ये मध्य, क्षीण और अधिक हों वहां अपने २ रूप और अपनी शक्ति करके जीभका टेढापन और कठोरता, कंठका गूंजना, आलस्य, मुखका महावरसे रंगा हुआसा होना, गलेमें कांटोंका पड जाना, तथा कंठ होंठ और तालुएका सूखना, अंतर्दाह, गुदाका निकल आना, वाणीकी भ्रष्टता दृष्टिका रुकना, रुधिर मिले कफको बडी कठिनतासे थोडा २ वारंवार थूकना, तंद्रा, श्वास, खाँसी इनका नित्यप्रति बढना, बुरे बुरे मनोरथ करना, मनमें ग्लानि, दोनों पसवाडे तीसरे बिंधे हुएसे हों कफको खींचनेपर भी हृदयसे न निकलना, पसवाडोंमें चोटसी लगे, तथा बाणोंसे पीडित और निरंतर भिदेसे होवें, ये लक्षण दारुण कर्कटक नाम संनिपातके हैं ।

संमोहकसन्निपात ।

वृद्धमध्यमहीनास्तु कुर्युर्वातादयःक्रमात् ॥ एकपक्षाभिघातं च यत्र लिंगं स्वकंस्वकम् ॥ ६१ ॥ कंपमूर्च्छाभ्रमायासविलापारतिमोहनम् ॥ संमोहक इति ख्यातः सन्निपातोऽतिकष्टदः ॥ ६२ ॥

अर्थ–जहां वातादिक वृद्ध मध्यम और हीन होते वे अपने २ लक्षणों करके एक पांसूका अभिघात करते हैं तथा कंप, मूर्च्छा, भौंर, परिश्रम, विलाप, मनका न लगना, मोह ये लक्षण अत्यंत कष्टदायक संमोहक सन्निपातके हैं ।

संग्राम सन्निपात ।

हीनप्रवृद्धमध्याख्या यत्र वातादयः क्रमात् ॥ कुर्वंत्यतोऽनेकगदं स्वं स्वं लिंगं च शक्तितः ॥ ६३ ॥ कफपित्तांशजांस्तेभ्यो निर्गमः स्फोटसंभवः॥ सर्वस्रोतःप्रपाकश्च संग्रामाख्ये ज्वरे मतः ॥ ६४ ॥

अर्थ–जहाँ हीन वात अधिक पित्त और मध्यम कफ होते हैं वे अपनी २ शक्तिसे अपने २ लक्षणवाले अनेक रोगोंको करे है. उनमें कफ पित्तके अंशजन्य फोडोंका होना और सब कान नाक आदि छिद्रोंका पकना हों ये संग्रामाख्य सन्निपातज्वरमें होते हैं ।

क्रकच सन्निपात ।

प्रवृद्धहीनमध्यस्था यत्र वातादयः क्रमात् ॥स्वं स्वं लिंगं प्रकुर्वंति विलापायासकंपनम् ॥ ६५ ॥ मन्यास्तंभं च मृत्युं च मूर्च्छामोहारतिभ्रमम् ॥ सन्निपातः स विज्ञेयस्तज्ज्ञैः क्रकचसंज्ञितः ॥ ६६ ॥

अर्थ–जहाँ वातादिक दोष क्रमसे अधिक हीन और मध्य होते हैं, वे अपने २ लक्षण विलाप परिश्रम कंप गरदनका रहजाना मृत्यु मूर्च्छा मोह अरति (मनका न लगाना) भ्रमको करैं इन लक्षणोंसे क्रकचसंज्ञक सन्निपात जानना ।

पाकल संनिपात ।

मध्यप्रवृद्धहीनाश्च यत्र वातादयः क्रमात् ॥ स्वं स्वं लिंगं प्रकुर्वंति स्तब्धदृष्टिश्च मानवः ॥ ६७ ॥ अंतः पाकं यकृत्प्लीहहृत्क्लोमांत्रोदरेषु च ॥ पूयस्रावं गुदास्याभ्यां शीर्णदंतगातिर्नृणाम् ॥ ६८ ॥ मर्मांतरहतस्येव शयनं च विशेषतः ॥ पाकलाख्यः स विज्ञेयः सन्निपातोऽतिदारुणः ॥ ६९ ॥

अर्थ–जहां वातादिक मध्य अधिक और हीन होवें वहां अपने २ लक्षण करते हैं. मनुष्यके नेत्रोंको तिरछे और कलेजा, तिल्ली, हृदय, क्लोम, आंत इनको तथा उदरके भीतर पाकको करे मुख और गुदाके मार्गसे राध निकले और दांत गिरेसे होजावें मर्मोंमें चोट लगनेकीसी पीडा होवे, निद्रा अधिक आवे, यह अतिदारुण (पाकलाख्य) सन्निपात जानना ।

कूटपालक ।

वृद्धा वातादयो यत्र स्वैः स्वैर्लिंगैः समन्विताः ॥ ७० ॥ उच्छ्वासपरतां कुर्युर्मूकतां स्तब्धतां दृशः ॥ आस्यदंतश्रुतेर्नाशं स्तब्धांगत्वं विसंज्ञताम् ॥ ॥ ७१ ॥ जीवनं च त्र्यहेऽतीते स ज्ञेयः कूटपालकः॥ कूटपालकिनं दृष्ट्वा व्याहरंत्यल्पबुद्धयः ॥ ग्रहभूतपिशाचाद्यैर्विषाद्यैर्वापि वीक्षितम् ॥ ७२ ॥

इति त्रयोदश सन्निपाताः ।

अर्थ–जहां अपने २ लक्षणों करके युक्त वातादि तीनों दोष बढे हुए हों उस प्राणीको ऊर्द्ध्वश्वास करे वा मूक (गुंगा) करे, नेत्र टेढे, मुख, दाँत, कान और नाक ये टेढे हो जावें देहकी संज्ञा जाती रहे और उसका जीना भी तीन दिनसे अधिक नहीं यह (कूटपालक) संनिपात जानना । इस कूटपालक संनिपातवाले

प्राणीको देखकर अल्पबुद्धि (मूर्ख) कहते हैं कि इसको ग्रह, भूत, प्रेत, पिशाचने अथवा विषने दबाय लिया है। ये तेरह सन्निपात भल्लक आचार्यके मतसे कहे हैं।

सन्निपातोंमें साध्यासाध्य।

दोषे प्रवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः॥ सन्निपातज्वरोऽसाध्यकृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा॥ ७३॥ सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा॥ पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा॥ ७४॥ पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्॥ हंति विमुंचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात्॥ ७५॥ सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा॥ एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च॥ ७६॥

अर्थ-सन्निपातज्वरमें दोषोंके बढनेसे और जठराग्निके नष्ट होनेसे सबके सब लक्षण होनेसे वह संनिपातज्वर असाध्य है इसमें विपरीत लक्षणवाला कृच्छ्रसाध्य जानना चाहिये। यह सन्निपातज्वर सातवें दशवें और बारहवें दिनमेंसे किसी एक दिन फिर घोररूपसे आनकर कि तो शांत होजावे अथवा उस रोगीको मारडालता है। पित्त कफ और वातकी वृद्धिसे क्रमपूर्वक १०। १२। और ७ दिनमें संनिपातज्वर धातुपाक होनेसे इस प्राणीको मारडाले और मलपाक होय तो उसको छोड देता है। ७-१४। ९। १८। ११। और २२ दिनपर्यंत त्रिदोषज्वरके मोक्ष (त्यागने) और वध (मारने) की अवधि जाननी।

मतांतर कहते हैं।

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः॥ क्रमादसाध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः॥ ७७॥

अर्थ-ज्वरके प्रथम ज्वरके मध्य और ज्वरक अंतमें यदि कर्णमूलमें सूजन उत्पन्न होय तो वह क्रमसे असाध्य, कृच्छ्रसाध्य और सुखसाध्य मुनियोंने कही है।

अभिन्यास।

त्रयः प्रकुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगामिनः॥ आमावबद्धा ग्रथिता बुद्धींद्रियमनोगताः॥ ७८॥ जनयंति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम्॥ तेन संजायते रोगी गतसर्वेंद्रियक्रियः॥ प्रत्याख्येयः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र सिध्यति॥७९॥

अर्थ-वातादि तीनों दोष कुपित होकर उर (छाती) और छिद्रोंके अनुगामी हो आमसे मिल आपसमें ग्रंथित (गँठकर) बुद्धींद्रियमनमें जाके महाघोर दृढ (अभिन्यास) ज्वरको प्रगट करे हैं कि जिससे इस प्राणिका सर्व इंद्रियोंकी सब क्रिया नष्ट हो यह मुर्देके समान पडा रहता है यह बहुत चिकित्सा करनेसे कदाचित् कोई एक अच्छा होता है।

आगंतु ज्वर।

अभिचाराभिषंगाभ्यामभिघाताभिशापतः॥ ८०॥ आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत्॥ श्यावास्यताविषकृते तथातीसार एव च॥ ८१॥ भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा॥ ८२॥ कामजे

चित्तविभ्रंशस्तंद्रालस्यमभोजनम् ॥ भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ ८३ ॥ अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषंगादुद्वेगोहास्यरोदनकंपनम् ॥ ८४ ॥ कामशोकाभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः॥ भूताभिषंगात्कुप्यंति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ८५ ॥

अर्थ–अभिचार (घातमूढ) और आभिषंग (काम क्रोध भय शोक भूतादिकका आवेश) तथा अभिघात (चोट लगना) और अभिशाप (गुरु ब्राह्मणादिके शापसे) आगंतुक ज्वर प्रगट होता है. उसमें उसी २ दोषके लक्षण जानने. (विषजन्य) ज्वरमें मुख काला, अतिसार, भोजनमें अरुचि, प्यास, चोटनी, और मूर्च्छा ये लक्षण हों औषधीगंधजन्य ज्वरमें मूर्च्छा, शिरपीडा, वमन ये लक्षण हों। कामज्वरमें चित्तभ्रंश, तंद्रा, आलस्य, अभोजन ये लक्षण हों । भयज्वरमें बकवाद, शोकज्वर और कोपज्वरमें कंप होता है, अभिचार और अभिशाप ज्वरमें मोह तृषा होती है । भूतबाधाजन्य ज्वरमें उद्वेग, हँसना, रोना और काँपना ये लक्षण होते हैं । काम शोक भयसे वायु कुपित होती है, क्रोधसे पित्त और भूतबाधासे भूतलक्षणके समान मल वात पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित होते हैं ॥

विषमज्वर ।

दोषोल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥ धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ८६ ॥ यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च ॥ वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमो मतः ॥ ८७ ॥

अर्थ–जिसको ज्वर छोडगया हो उसके अहिताचरणसे अल्प दोष परिपूर्ण होकर, रसरक्तादि किसी एक धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वरको करते हैं । जो विना समयके सरदी अथवा गरमी लगके चढे और वेग करकेभी विषम हो अर्थात् कभी जोरसे आवे और कभी भेदसे आवे उस ज्वरको विषमज्वर कहते हैं ।

विषमज्वरोंके नाम ।

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ संततो रसरक्तस्थः सततो रक्तधातुगः॥ ॥ ८८ ॥ अन्येद्युष्कं प्रकुरुते दोषं पिशितधातुगः ॥ मेदोगतस्तृतीयाख्यमस्थिमज्जागतः पुनः ॥ कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–संतत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ये विषमज्वरके पांच भेद हैं । तहाँ संततज्वर रस और रुधिर धातुमें रहता है. सततज्वर रुधिरमेंही रहता है. अन्येद्यु (इकतरा) मांस धातुमें स्थित हो ज्वरको करे है । तृतीयक (तिजारी) मेदामें रहकर ज्वर करे, और हड्डी और मज्जामें स्थित दोष रोग संकर घोरमृत्युरूप चातुर्थिक (चौथैया) ज्वरको करे है ।

विषमज्वरोंका काल ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा संतत्या यो विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ९० ॥ अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ॥ अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्तते ॥ ९१ ॥ तृतीयकस्तृ-

तीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः॥ इत्यादयस्तु विज्ञेया ज्वरा नानाविधा बुधैः ॥ ९२ ॥

अर्थ–सात वा दश वा बारह दिन रात्रि जो बराबर आनकर फिर जाय उसको संततज्वर कहते हैं। सततज्वर दिनरात्रिमें दो समय आता है और इकतरा दिनरात्रिमें एक समय आता है, तृतीयक (तिजारी) ज्वर जिस दिन आता है उसके फिर तीसरे दिन आता है । और चौथैया ज्वर चौथे दिन आता है इस प्रकार बुद्धिमानोंको ये अनेक प्रकारके ज्वर जानने चाहिये ।

ज्वरके उपद्रव ।

श्वासो मूर्च्छारुचिच्छर्दितृष्णातिसारविड्ग्रहाः ॥ हिक्काकासांगभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ९३ ॥

अर्थ–श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतिसार, मलका न उतरना, हिचकी, खांसी और अंगफूटन ये ज्वरके दश उपद्रव हैं ।

साम और निराम ज्वरके लक्षण ।

तंद्रा लालाप्रसेकश्च स्तब्धता क्षुत्प्रणाशता ॥ ९४ ॥ हृल्लासो मूत्रभूयस्त्वं सामज्वरलक्षणम् ॥ सामे न भेषजं देयं निरामे तद्विचारतः ॥ ९५ ॥

अर्थ–तंद्रा, लारका बहना, स्तब्धता, भूखका नाश, हृल्लास, अत्यंत मूत्रका उतरना ये सामज्वरके लक्षण हैं । वैद्यको उचित है कि सामज्वरमें औषध कदाचित् न देवे और निरामज्वरमें विचारके औषध देवे ।

ज्वरमुक्तिके लक्षण ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपविड्भेदसंज्ञता ॥ कूजनं चातिवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ९६ ॥ स्वेदो लघुत्वं शिरसः कंडूः पाको मुखस्य च ॥ क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ९७ ॥ विगतक्लमसंतापमव्यथं विमलेंद्रियम् ॥ युक्तं प्रकृतिसत्वाभ्यां विंद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥ ९८ ॥

अर्थ–दाह, पसीना, भ्रम, प्यास, कंप, दस्त, पेटका गूँजना और देहमें दुर्गंधका आना ये ज्वरमुक्तके लक्षण हैं । देहमें पसीनेका आना तथा हलकापना, शिरमें खुजली चले, मुखपाक छींक आवें, भोजनकी इच्छा हो ये ज्वरमुक्तके लक्षण जानने । ग्लानि और संताप जाते रहें, व्यथारहित निर्मल इंद्रिय हो और जो अपनी प्रकृति और सत्व करके युक्त हो उसको ज्वर रहित जानना ।

दोषपाक और धातुपाक ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः॥ इंद्रियाणां च वैमल्यं दोषपाकस्य लक्षणम् ॥ ९९ ॥ निद्रानाशो हृदि स्तंभो विष्टंभो गौरवारुचिः ॥ अरतिर्बलहानिश्च धातुनां पाकलक्षणम् ॥१००

अर्थ–वातादि दोष और प्रकृतिका पलट जाना ज्वर और देहका हलकापना, तथा इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, ये दोषपाकके लक्षण हैं। निद्रानाश, हृदयका स्तंभ, विष्टंभ, गौरव और अरुचि, तथा मनका न लगना और बलकी हानि ये धातुपाकके लक्षण हैं (मलपाकसे रोगी बच जाय और धातुपाक होनेसे रोगी मरजाय है।)

असाध्य लक्षण।

हतप्रभेंद्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम्॥ गंभीरं तीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत्॥ १०१॥ हिक्काश्वासतृषायुक्तो मूढो विभ्रांतलोचनः॥ सततोच्छ्वास हीनश्च म्रियते ज्वरपीडितः। १०२॥

अर्थ-जिसकी इन्द्री और प्रभा जाती रही हो, क्षीण होगया हो, अरुचिसे पीडित, गंभीर और तीक्ष्ण वेगसे पीडित ज्वररोगी वैद्यको त्याज्य है। हिचकी श्वास और तृषा करके युक्त, मूढ, फटे हुए नेत्र और निरंतर ऊंचे २ श्वास ले और क्षीण पडगया हो वह ज्वररोगी मरजावे।

ज्वरहीनके लक्षण।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्॥ स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोन्नलिप्सा कंपश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि॥ १०३॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां संक्षेपतो ज्वरनिदाननिरूपणं नामैकोनविंशस्तरंगः॥ १९॥

अर्थ-हलका देह, ग्लानि, मोह और ताप जिसके चले गये हों, मुखमें छाले होगये हों, इन्द्रियोंका शुद्ध और व्यथारहित होना, पसीना आवे, और छींक आवे, प्रकृति ठीक होजाय, भोजन करनेको मन करे, मस्तक काँपे, ये लक्षण ज्वरहीन मनुष्यके जानने।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां ज्वरनिदानमेकोनविंशस्तरंगः।

विंशस्तरंगः।

ज्वरचिकित्सा।

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्॥ क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥॥ १॥ आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन्॥ विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत्॥ २॥ अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम्॥ ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम्॥ ३॥ बलाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत्॥ बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः॥ ४॥ चक्रदत्तात्॥

अर्थ-क्षय, वात, भय, क्रोध, काम, शोक, और श्रम इन ज्वरोंके विना सब ज्वरोंमें प्रथम लंघन कराना कहा है। वातादि दोष, आमसहित आमस्थानमें स्थित हों अग्निको नष्ट कर रसरक्तादि बहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर ज्वरको करते हैं इसीसे उस आमके पचानेको और उन मार्गोंके शुद्ध करनेको ज्वरवाला रोगी लंघन करे। अपने स्थानसे इतस्ततः चलायमान दोष और अग्निका लंघन कराना उन दोषोंको पचाता है. ज्वरको नष्ट करे, दीपन, कांक्षा (इच्छा), रुचि और देहका हलकापना करे है। परंतु लंघन रोगीको बलके अविरुद्ध करावे, क्योंकि आरोग्यता बलके आधीन है और उसी आरोग्यताके अर्थ यह क्रियाक्रम है। यह (चक्रदत्तमें (लिखा है।

लंघननिषेध।

न लंघयेन्मारुतजे ज्वरे च क्षयोद्भवे च क्षुधिते च जंतौ॥ न गुर्विणीं दुर्ब-

लबालवृद्धान्भीतांस्तृषात्तानपि सोर्ध्ववातान् ॥ ९ ॥

अर्थ—वातज्वर, क्षयज्वर, भूंखे प्राणीको, गर्भवती, दुर्बल, बालक, वृद्ध, भयभीत, प्यासे, और जिसके ऊर्ध्ववात अथवा ऊर्ध्वश्वास है इन सबको लंघन नहीं कराना चाहिये ।

ज्वरकी तरुण-मध्य और पुराणसंज्ञा ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥ मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमतउत्तरम् ॥६॥

अथवा-सात रात्रिपर्यंत ज्वरको तरुण कहते हैं और आठवें दिनसे लेकर चौदहवें दिनतक ज्वरकी मध्यमसंज्ञा है. इसके उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है ।

ज्वरवालोंको हितोपदेश ।

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनांते भोजयेल्लघु ॥ श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७ ॥

अर्थ ज्वरयुक्त अथवा ज्वररहित प्राणीको सायंकाल्के समय हलका भोजन करना. कफ क्षीण, गरमी बढीहुई बलवान् जठराग्नि होवे तो रात्रिमें भोजन करे अन्यथा नहीं ।

ज्वरपाककी अवधि ।

वातजः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पित्तजः ॥ श्लेष्मजो द्वादशाहेन ज्वरः पाकं प्रपद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—वातज ज्वर सातरात्रिमें और पित्तज्वर दशरात्रिमें कफज्वर बारह रात्रिमें पक्व होता है. ज्वरके पक्व होनेपर औषध देवे ।

लंघनसहनमें कारण ।

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ॥ न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनं महत् ॥ ९ ॥

अर्थ—लंघनके करनेकी जो शक्ति है, वह दोषोंकी जाननी क्योंकि ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो दोषोंके क्षीण होनेपर घोर लंघन सहसके ।

नवज्वरमें पथ्य ।

नवज्वरे दिवास्वापस्नानभोजनमैथुनम् ॥ क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें दिनका सोना, स्नान, करना, भोजन, मैथुन, क्रोध, हवा खाना, दंड कसरत करना, और काढे आदिका पीना वर्जित है ।

पथ्यापथ्य ।

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिषेवणम् ॥ अभूरिजल्पं निष्क्रोधकामशोकं च रोगिणम् ॥ कारयेत्सुखसंपत्त्यै शीघ्रं वैद्यो विचक्षणः ॥ ११ ॥

इति चक्रदत्तात् ॥

अर्थ—पवनरहित स्थानमें रहना, गरम जल पीना, थोडा बोलना क्रोध न करना, काम और शोकको त्याग ये रोगीसे उसकी सुखसंपत्तिके वास्ते वैद्य करावे । यह चक्रदत्तमें कहा है ।

उष्णोदक ।

कफमेदोनिलामघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा॥ १२ ॥

अर्थ—गरम जल, कफ, मेदा, आम और बादीको नष्ट करे अग्नि दीपन करे, बस्तिको शोधे, खांसी, श्वास और ज्वर इनको हरण करे

तथा गरम जल पीना सदैव रोगी मनुष्यको पथ्य है ।

उष्णोदकके लक्षण ।

यत्क्वाथ्यमानं निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं भवेत् ॥ अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ–गरम जलके लक्षण जो औटाते २ उफान आनेसे रहजावे झागरहित निर्मल होकर आधा रहजावे उसको उष्णोदक कहते हैं ।

क्वथित जलके गुण ।

तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनं च वातजित् ॥कफघ्नं पादशेषं च पाचनं लघुदीपनम् ॥ १४ ॥ शारदं चार्धपादोनं पादहीनं च हैमनम् ॥शिशिरे च वसंते च ग्रीष्मे चार्द्धावशेषितम् ॥ १५ ॥ विपरीते ऋतौ तद्वत्प्रावृष्यष्टावशेषितम्॥ भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति॥ अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १६ ॥

अर्थ–उसमें जो चतुर्थांश घटा हुआ गरमजल पित्तको, अर्द्ध हीन बादीको और जो औटाते २ चतुर्थांश रहगया वह जल कफनाशक, पाचन हलका और दीपन जानना । शरद् ऋतुमें अर्द्धपाद (अर्थात् सेरमेंसे आधपाव) शेष रखा, हेमंत ऋतुमें एक पादहीन, शिशिर वसंत और ग्रीष्म ऋतुओंमें आधा शेष रहा, एवं विपरीत ऋतुमें तथा वर्षाऋतुमें अष्टावशेष जलदेना चाहिये यह कफके समूहको तोडता है, बादीको दूर करे, अजीर्णको तत्काल जरावे, इतने गुण रात्रिके समय गरम जल पीना गुण करे है ।

जलके भेद ।

धारापातेन विष्टंभि दुर्जरं पवनापहम्॥ शृतशीतं त्रिदोषघ्नं बाष्पांतर्भावशीतलम् ॥ दिवाशृतं तु यत्तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ॥ रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥ १७ ॥

अर्थ–धारापातका जलपीना विष्टंभी है, पवनसे ताडित जल दुर्जर है, औटा हुआ और जिसका मुख ढककर शीतल करा है वो त्रिदोषनाशक है, दिनका औटा जल रात्रिमें भारी होजाता है, एवं रात्रिका औटा जल प्रातःकालं भारी होजाता है ।

शीत जल ।

मूर्च्छापित्तोष्मदाहेषु विषोत्थे च मदात्यये ॥ श्रमक्लमपरीते च मार्गोत्थे वमथौ तथा ॥ १८ ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमंभ प्रशस्यते अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥ १९ ॥ मंदाग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मंदमाचरेत् ॥ २० ॥ इति मदनपालात् ॥

अर्थ–मूर्च्छा पित्तकी गरमी, दाह, विषके विकार, मदके रोग, श्रम, ग्लानि करके व्याप्त, मार्ग चलनेसे परिश्रमी, वमनरोग और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें इन सब रोगोंमें (शीतल जल) देना चाहिये । अरुचि, सरेकमा, प्रसेक, सूजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कोढ ज्वर, नेत्ररोग व्रण और मधुप्रमेह इन रोगोंमें अल्पजल पीना चाहिये यह मदनपाल निघंटुमें कहा है ।

पानीयं पानीयं शरदि वसंते च पानीयम् ॥ नादेयं नादेयं शरदि वसंते च नादेयम् ॥ २१ ॥ स्फुटम् ॥

अर्थ-शरदृतुमें जलमात्र निर्मल होनेके कारण पीने योग्य ही होते हैं और वसंत ऋतुमें गदले होनेसे अल्प पीने योग्य होते हैं । एवं शरदृतुमें नदीका जल निर्मल होनेसे रोगीको देना वर्जित नहीं है और वसंत ऋतुमें दूषित होनेके कारण नदीके जलको पीना निषेध है ।

मात्राका प्रमाण ।

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिरक्षैश्च मध्यमा ॥ जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्काथौषधेषु च ॥ २२ ॥ कर्षं चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः ॥ द्रवशुक्त्यावलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥ मात्रामधुघृतादीनां क्काथस्नेहेषु चूर्णितात् ॥२३॥

अर्थ-तेल, क्काथ, और औषध इनकी ४ तोलेकी मात्रा उत्तम है तीन तोलेकी मध्यम और दो तोलेकी मात्रा हीन कहलाती है । चूर्ण कल्क और संपूर्ण गोलियोंकी मात्रा १ कर्षकी है तथा वह चूर्णादिक गीले होवें तो दो तोले लेना एवं जो पतले पदार्थ हीं हैं वह चार कर्ष पीना चाहिये ।

जल डालनेका क्रम ।

द्विचत्वारिंशता माषैरष्टादशकबंधकैः ॥ पलं द्वादशबंधं स्याद्गुंजाषट्कसमन्वितै- ॥ २४ ॥ क्काथद्रव्यपलं वारि द्विरष्टगुणमिष्यते॥चतुर्भागावशिष्टंतुपेयं पलचतुष्टयम् ॥ २५ ॥ दीप्तानलं महाकायं पाययेदंजलिं जलम् ॥ अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतं तु चिकित्सकाः॥२६॥ क्काथत्यागमनिष्टं तत्त्वष्टभागावशेषितम्॥ पारंपर्योपदेशेन वृद्धवैद्याःपलद्वयम् ॥ पाययंत्यातुरं सायं पाचनं सप्तमेहनि ॥ २७ ॥

अर्थ-सहत, घृतआदि और क्काथ, स्नेह ये चूर्णितसे ४२ मासे और १८ बंधककी जाननी १२ पल और छः रत्तीका एक बंधक होता है । जो क्काथ द्रव्य १ पल है, उसमें जल १६ पल डालके औटाना, जब ४ पल शेष रहे तब उतारके पीना चाहिये और जिनकी दीप्ताग्नि है और बडी देहके हैं उनको एक अंजली अर्थात् पावभर जल पिवावे और छोटी देहवालोंको २ पल पिवावे । अष्टभागावशेषित क्काथ त्याज्य है वृद्ध वैद्य परंपरानुसार ज्वरवाले रोगीको सातवें दिन सायंकालमें८ तोले पाचन क्काथ पिलावे ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदवोऽथ पीत्वा ग्लानिं परां समुपयांति बलक्षयं च ॥ २८ ॥

अर्थ-अन्न रहित औषध वीर्याधिक होती है और वह निःसंदेह शीघ्र रोगोंको नष्ट करे है यदि इस क्काथको बालक, वृद्ध, स्त्री, और नरम मिजाजवाले पीवे तो उनको अत्यंत ग्लानि करे तथा उनके बलको क्षीण करे है ।

जीर्ण औषधके लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ॥ लघुत्वमिंद्रियोद्गारशुद्धी जीर्णौषधाकृतिः ॥ २९ ॥ क्लमो दाहोंगसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजः॥ अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ ॥ ३० ॥ औषधशेषे भुक्तं पीतं च तथौषधं सशेषेन्ने ॥ न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ३१ ॥ शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्यादन्ना-

वृतं न च पुनर्वदनान्निरेति ॥ प्राग्भ-क्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च भीरुशि-शुवृद्धवरांगनाभ्यः ॥ ३२ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-पवनका अनुलोम होकर चलना, स्वस्थता, भूँख प्यासका लगना, मन प्रसन्न हो, इन्द्रियोंमें हलकापना, शुद्ध डकारका आना यह (जीर्ण औषधके) लक्षण हैं । क्लम, दाह, अंगोंका रहजाना, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तकमें दर्द, मनका डामाडोल होना, बलकी हानि ये (सावशेष) अर्थात् (संपूर्ण औषध) न पचनेके लक्षण हैं। (औषध) के शेष रहनेपर यदि (भोजन) वा (जल) पीवे, अथवा (अन्न शेष) रहनेपर (औषध) पीवे वह औषधी रोगोंको शमन नहीं करती किंतु और २ रोगोंको करे है। जो औषधी भोजनके साथ मिलायके दीनीगई है वह शीघ्र पच जाती है, बलको नष्ट नहीं करे और अन्नयुक्त होनेसे फिर मुखसे भी नहीं निकलती इसी वास्ते डरपोक, बालक, वृद्ध और सुकुमार स्त्रियोंको भोजनके पहले ग्रासमें औषधि मिलायके देनी चाहिये । यह वृंद ग्रंथमें लिखा ।

गुडूच्यादि क्वाथ वातज्वरपर ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् पृथौ वातज्वरे सर्वलिंगे सप्तमवासरे ३३

अर्थ-गिलोय, पीपलामूल और सोंठ ये पाचन औषध है इसका काढा करके घोर वातज्वरके संपूर्ण चिह्न मिलते हों उसको सातवें दिन देवे ।

शालपर्ण्यादि क्वाथ ।

शालिपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा ॥ आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्र-वातज्वरच्छिदम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-शालपर्णी, खिरेटी, दाख, गिलोय, सरिवन (गौरीसरके बीज) ये समान ले क्वाथ करके गरम २ सुहाता पीवे तो तीव्र वातज्वर-को दूर करे ।

किरातादि क्वाथ ।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः॥ सस्थिराकलसीविश्वैः क्वाथो वातज्वरा-पहः ॥ ३५ ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्र-वाला, छोटी और बडी कटेरी, गोखरू, शाल-पर्णी और पृष्ठपर्णी इनका काढा वातज्वरको नष्ट करे ।

अश्वकंचुकीरस ।

"रसं विषं गंधकतालटंकणं कटुत्रजै-पालफलत्रिकं समम् ॥ विमर्द्य भृंगस्य रसेन कल्पिता वटी वरा सर्वगदान्नि-हंति ॥ ३६ ॥ रोगे यदिष्टं त्वनुपान-मात्रा देया वटी तेन समा भिषग्भिः ॥ पाश्चात्यदेशागतयोगिनेयमुक्तानुयुक्ता-नुभवेन पश्चात् ॥ ३७ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, विष, गंधक, हरताल-सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटा, हरड, बहेडा, आंवला ये सब औषध समान भाग लेवे सबको भांगरेके रसमें खरल कर उडदके बराबर गोली बनायलेवे। यह सब रोगोंको नष्ट करे है. जिस २ रोगमें जो जो अनुपान कहा है उसी २ के साथ देवे यह एक पाश्चिमसे आये हुए महात्माकी बताई हुई है और उसकी परिचित है, यह अश्वकंचुकी रस है । भाषामें

(घोडाचोली) कहते हैं । इसके अनुपान वैद्यरहस्यमें लिखे हैं ।

काश्मर्यादि ।

काश्मरीसारिवाद्राक्षात्रायमाणामृताभवः । कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥ ३८ ॥

अर्थ–कंभारी, सारिवा, दाख, त्रायमाण और गिलोय इनके काढेमें पुराना गुड डालके पीवे तो वादीके ज्वरको दूर करे ।

पैत्तिकज्वरे कट्फलादि ।

कट्फलेंद्रयवारिष्टतिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ॥ पाचनं दशमेंह्नि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–कायफल, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, कुटकी और नागरमोथा इनका काढा करके यह पाचन तीव्र पितज्वरमें दशवें दिन देवे तो ज्वर पचे ।

दुरालभादि ।

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिंबवासाकटुरोहिणीनाम् ॥ क्काथं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ४० ॥
इति योगशतात् ॥

अर्थ–धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, अडूसा और कुटकी, इनका काढा करके उसमें खांड डालके पीवे तो प्यास रक्त पित्त और दाहयुक्त ज्वर दूर होय ।

पित्तज्वरचिकित्सा ।

एकः पर्पटक श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः॥ किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोशीरधान्यकैः ॥ ४१ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–एकही पित्तपापडा पित्तज्वर नाश करनेको समर्थ है और उसमें लालचंदन, खस, और धनिया मिल जावे तो फिर पित्तज्वरको नाश करे इसमें क्या कहना है ?

कफज्वरपर बीजपूरादि क्काथः ।

बीजपूरशिफापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम्॥ सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥ ४२ ॥

अर्थ–बिजौरेके जडकी छाल, हरड, सोंठ और पीपलामूल इनका काढा कर उसमें थोडासा सुहागा डालके कफज्वरमें यह पाचन बारहवें दिन देवे ।

भूनिंबादि काथ ।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यः सठी शुंठी शतावरी ॥ गुडूची बृहती चेति क्काथो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–चिरायता, पीपल, कचूर, सोंठ, सतावर, गिलोय और कटेरीकी जड, इनका काढा कफज्वरको दूर करे ।

आमलक्यादि क्काथ ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः ॥ सर्वज्वरभयातंकभेदी दीपनपाचनः॥ ४४ ॥

अर्थ–आमले, हरड, पीपल और चित्रककी छाल इनका क्काथ सर्वज्वरके कोपको नष्ट करे, भेदी (दस्तावर) और दीपन पाचन है ।

चतुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह ॥ श्वासकासहरः श्रेष्ठः प्रोक्तो लेहः कफांतकृत् ॥ ४५ ॥
इति वृंदात् ॥

अर्थ–कायफल, गाँठदार, पुहकरमूल, पीपर और काँकडासिंगी इनके अवलेहमें सहत

डालके सेवन करे तो श्वास, खाँसी, हरण करे और कफको नष्ट करे, यह वृंदमें लिखा है।

छिन्नोद्भवांबुधरधन्वयवासविश्वैर्दुःस्पर्शपर्पटकमेवकिराततिक्तैः ॥ मुस्ताटरूषकमहौषधधन्वयासैः क्वाथं पिबेदनिलपित्तकफज्वरेषु ॥ ४६ ॥ पृथक्पृथक्त्रिभिश्चरणैः क्वथितैः क्वाथैर्वातादिषु योगाः ॥ अमृतारिष्टकचंदनपद्मकधानोद्भवः क्वाथः ॥ ज्वरहल्लासच्छर्दिस्तृष्णादाहरुचीर्हन्यात् ॥ ४७ ॥ सर्वज्वरे गुडूच्यादिः योगशतात् ॥

इति श्लेष्मज्वरचिकित्सा ॥

अर्थ–गिलोय, नागरमोथा, धमासा, सोंठ, कटेरी, पित्तपापडा, मोथा, चिरायता और कुटकी, मोथा, अडूसा, सोंठ और धमासा इनको क्रमसे वात, पित्त और कफज्वरमें पीवे यह तीन क्वाथ श्लोकके एक एक पादमें कहे हैं, ये वातादिके नाशकर्त्ता जानने अथवा गिलोय, नीमकी छाल, चंदन, पद्माख और धनिया इनका काढा ज्वर, हल्लास, वमन, तृषा, दाह, अरुचि इनको नष्ट करे। यह योगशतमें लिखाहै।

पर्पटाब्दामृतोदीच्यकैरातैः साधितं जलम् ॥ पंचभद्रमिदं प्रोक्तं वातपित्तज्वरापहम् ॥ ४८ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ–पित्तपापडा, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला और चिरायता इनसे बनाया हुआ काढा (पंचभद्रक) कहाता है यह वातपित्त ज्वरको नष्ट करे है।

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः॥ शृतमंबु हरेत्तूर्णं वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ४९ ॥ इति वृंदात् ॥

अथ–त्रिफला, सेमरका मूसला, रास्ना, अमलतासका गूदा और अडूसा इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको शीघ्र दूर करे।

अथवा श्लेष्मज्वरे क्षुद्रादिः ।

क्षुद्राशुंठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे ॥ ५० ॥

अर्थ–कटेरी, सोंठ, गिलोय और पुहकरमूल, इनका काढा कफवातज्वरमें तथा सन्निपातज्वरमें पीना चाहिये।

आरोग्यपंचक।

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः ॥ क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–अमलतास, पीपरामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काढा तत्काल वातकफज्वरको नष्ट करे।

अमृताष्टक ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः ॥ पटोलचंदनाभ्यां च शृतं पिप्पलिचूर्णयुक् ॥ अमृताष्टकमेतत्तु पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ५२ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ–पटोलपत्र, चंदन, मूर्वा, पाढ, कुटकी और गिलोय यह पटोलादि गण पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली इनका काढा कफ पित्तज्वरको दूर करे और विषविकार इनको दूर करे।

पटोलं चंदनं मूर्वा पाठा तिक्तामृता गणः ॥ पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥ ५३ ॥ पटोलं पिचुमंदं च त्रिफला मधुकं बला ॥ साधितोयं

कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ५४॥

अर्थ–पटोलपत्र, नीमकी छाल और त्रिफला मुलहटी और खिरेटी, गिलोय, नीमकी छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, पटोलपत्र और लाल चंदन इनके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो यह अमृताष्टक पित्त कफ-ज्वरको दूर करे ।

त्रिरात्रं पंचरात्रं वा दशरात्रमथापिवा॥ लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् । ॥ ५५ ॥ कंटकारीद्वयं शुंठी धान्यकं सुरदारु च ॥ एभिः शृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–तीन, पांच अथवा दशरात्रि पर्यंत जबतक दोष न पचे तबतक सन्निपातज्वरमें लंघन करावे, फिर छोटी बडी कटेरी, सोंठ, धनिया और देवदारु, इनका क्काथ संनिपात ज्वरको पाचन करके दूर करे ।

दशमूलादि क्काथ ।

शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ बिल्वाग्निमंथस्योनाकपाटलाकाश्मरीयुतैः ॥ ५७ ॥ दशमूलमिति ख्यातं क्कथितं तज्जलं पिबेत् ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं सन्निपातज्वरापहम् ॥ ५८॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ–शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखरू, बेल, अरनी, अरलू, पाढल और कंभारी यह दशमूल है इसका काढा करके उसमें पिपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो संनिपातज्वर दूर होय ।

भार्ङ्ग्यादि द्वात्रिंशक ।

भार्ङ्गीभूनिंबनिंबैर्घनकटुकवचाव्योषवासाविशालारास्नानंतापटोलीसुरतरुरजनीपाटलाटुंटुकीभिः ॥ ब्राह्मीदार्वीगुडूचीत्रिवृदतिविषया पुष्करत्रायमाणैः पाठाव्याघ्रीकलिंगैस्त्रिफलसटियुतैः कल्पितैस्तुल्यभागैः ॥ ५९ ॥ क्काथो द्वात्रिंशनामात्रिकदशकमितान्सान्निपातान्निहंति श्वासं शूलं च हिक्कां कसनगुदरुजाध्मानमन्यारुजश्च ॥ ऊरुस्तंभांत्रवृद्धिंगलगदमरुतं सर्वसंधिग्रहार्तिंहन्यादेकोपि सिंहो गजनिवहमिव प्रस्फुरद्दानधारम् ॥ ६० ॥ इत्यारोग्यदर्पणतः ।

अर्थ–भारंगी, चिरायता, नींब, नागरमोथा, कुटकी, वच, सौंठ, मिरच, पीपल, अडूसा, इन्द्रायनकी जड, रास्ना, जवासा, पटोलपत्र, देवदारु, हलदी, पाढल, अरलू, ब्राह्मी, दारुहलदी, गिलोय, निसोत, अतीस, पुहकरमूल, त्रायमाण, पाठा, कटेरी, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा, आमला और कचूर ये समान भाग लेकर काढा करे यह द्वात्रिंश नामक क्काथ तेरह प्रकारके सांनिपातोंको नष्ट करे, श्वास, शूल, हिचकी खाँसी, बवासीर, अफरा, गरदनकी पडिा, ऊरुस्तंभ, अंत्रवृद्धि, गलेका वात, तथा सर्व संधियोंकी पीडा इनको इस प्रकार नष्ट करे जैसे मतवाले हाथियोंके झुंडको अकेला सिंह मार भागता है ।

भूनिंबादि अष्टादशांग ।

भूनिंबदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेंद्रबीजधनिकेभकणाकषायः॥ तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलज्वरमाशुहन्यात् ॥ ६१ ॥

अर्थ–चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ,

नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियां, गजपीपर इनका क्वाथ करके पीवे तो तंद्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादि रोगयुक्त ज्वरको शीघ्र दूर करे ।

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शांतवेगायां न क्रियासंकरो हितः ॥ ६२ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–वैद्य रोगीको औषध देवे यदि वह गुण न करे तो दूसरी देवे, परंतु पहली औषधके वेग शांति होनेपर देवे, संकर क्रिया (एकपर दूसरी करना) हितकारी नहीं है ।

निंबाब्ददारुकटुकात्रिफलाहारिद्राक्षुद्रापटोलदलनिःक्वथितःकषायः ॥ पेयस्त्रिदोषजनितज्वरनाशनाय क्वाथः समं मगधया दशमूलजोवा ॥ ६३ ॥

इति चिकित्साकलिकातः ।

अर्थ–नीमकी छाल, नागरमोथा, देवदारु, कुटकी, त्रिफला, हलदी, कटेरी और पटोलपत्र इनकाकाढा कर पीपरका चूर्ण डालके पीवे तो संनिपात ज्वरको दूर करे, (अथवा) संनिपातके दूर करनेको दशमूलका काढा पीवे ।

पंचतिक्त कषाय ।

क्षुद्रापौष्करभूनिंबगुडूचीविश्वभेषजैः ॥ पंचतिक्तकनामायं क्वाथो हंत्यखिलज्वरम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–कटेरी, पुहकरमूल, चिरायता, गिलोय और सोंठ यह पंचतिक्तक क्वाथ संपूर्ण ज्वरोंको नष्ट करे ।

दार्व्यब्दौतिक्तफलात्रिकं च क्षुद्रापटोलीरजनी सनिंबा ॥ क्वाथं विदध्याज्ज्वरसन्निपाते निश्चेतने पुंसि विबोधनार्थम् ॥ ६५ ॥

इति योगशतात् ॥

अर्थ–देवदारु, नागरमोथा, कुटकी, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र, हलदी और नीमकी छाल इनका काढा करके पीवे इसको संनिपात ज्वर और बेहोशीके दूर करनेको देवे ।

अष्टांगावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी ॥ श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ६६ ॥ एषावलेहिका हंति सन्निपातं सुदारुणम् ॥ हिक्कां श्वासं च कासं च कंठरोगं च घुर्घुरम् ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः ॥ ६७ ॥

अर्थ–कायफल, पुहकरमूल, काँकडासिंगी, त्रिकुटा, जवासा, कलोंजी इनका बारीक चूर्ण कर सहतके साथ अवलेह बनावे इसके सेवन करनेसे दारुण संनिपात दूर हो । हिचकी, श्वास, खाँसी, कंठरोग, घरघर बोलना इनको दूर करे, इस अवलेहको कफकी आधिक्यतामें अदरखके रसके साथ देवे तो कफको नष्ट करे ।

अष्टादशांग ।

दशमूली सठी शृंगी पौष्करं सदुरालभा॥शुंठी कटुजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ६८ ॥ अष्टादशांग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ॥ कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ ६९ ॥

अर्थ–दशमूल, कचूर, काँकडासिंगी, पुहकरमूल, जवासा, सोंठ, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी यह अष्टादशांग क्वाथ संनिपात

ज्वरको दूर करे, तथा खाँसी हृदयपीडा, पसवाडेकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन इन रोगोंको हरण करे ।

चतुर्दशांग ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ॥ किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्धयार्थिने वा त्रिवृता विमिश्रः ॥ ७० ॥

अर्थ-प्राचीन ज्वरमें वा वातकफोल्बणमें एवं सन्निपात ज्वरमें दशमूलके काढेमें किराततिक्तादि गणको मिलायके देवे, अथवा पूर्वोक्त रोगोंकी शुद्धिके वास्ते दशमूलके काढेमें निसोथका चूर्ण मिलायके देवे । यह चतुर्दशांग क्वाथ है ।

किरातं नागरं मुस्तं गुडूची चेत्ययं गणः ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-अब किराततिक्तादि गणको कहते हैं चिरायता, सोंठ, मोथा और गिलोय यह किराततिक्तादि गण जानना ।

उद्धूलन ।

भूनिंबकारवीतिक्तावचाकट्फलजं रजः ॥ उद्धूलनं त्रिदोषोत्थे स्वेदाभिष्यंदिनि ज्वरे ॥ ७१ ॥

अर्थ-चिरायता, कलौंजी, कुटकी, वच, कट्फल इनके चूर्णका उद्धूलन त्रिदोष ज्वर कि जिसमें पसीने आतेहों उसमें हितकारी है ।

मरिचं पिप्पली शुंठी पथ्या लोध्रं सपौष्करम् ॥ भूनिंबकटुकाकुष्ठं कारवींद्रयवा सठी ॥ ७२ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ प्रस्वेदे कंठरोधे च संधिमर्दनमिष्यते ॥ एतदुद्धूलनं श्रेष्ठं सन्निपातहरं परम् ॥७३॥

अर्थ-कालीमिरच, पीपल, सोंठ, हरड, लोध, पुहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूठ, कलौंजी, इन्द्रजौ और कचूर ये सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे जिस सन्निपात रोगीका कंठ रुक गयाहो, पसीने आतेहों उसकी संधि २ में मालिस करे, यह उद्धूलन उत्तम सन्निपातको हरण करनेवाला है ।

स्वेदोद्गमे भ्रष्टकुलत्थचूर्णैरुद्धूलनं शस्तमिति ब्रुवंति ॥ चूर्णं शकृद्रोर्लवणस्य भांडं स्वेदापहं गुंठनमुत्तमं हि ॥७४॥

इति वृन्दात् ॥

अर्थ-जिस सन्निपात रोगीके पसीने अधिक आतेहों उसके भुनी कुलथीके चूर्णकी मालिश करना उत्तम कहाहै । अथवा गोबरका चूर्ण पुराना निमक रखनेकी हाँडीका चूर्ण दोनोंकी मालिश करना उत्तम कहाहै ।

यवानिका वचा शुंठी पिप्पली कारवी तथा ॥ एतैरुद्धूलनं शस्तं त्रिदोषोत्थे ज्वरे नृणाम् ॥ एतस्यास्तरणं शस्तं सन्निपातभवे नृणाम् ॥ ७५ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-अजवायन, वच, सोंठ, पीपल, कलौंजी इनका चूर्ण कर सन्निपातमें मनुष्योंके देहमें मालिस करे अथवा अलसीका बारीक चूर्ण शय्यापर बिछायके रोगीको उसपर सुवावे । यह सारसंग्रहमें लिखा है ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥ अवलेहोंजनं चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ७६ ॥

अर्थ–लंघन, बालूमें सेकना, नस्य देना, कुल्ले करना, अवलेह और अंजन ये सन्निपात ज्वरमें प्रथम करने चाहिये ।

स्वेद ।

खर्परभृष्टपटास्थितकांजिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ॥ शमयति वातकफामयमस्तकशूलांगभंगादीन् ॥ ७७ ॥

अर्थ–बालूको कपडेमें गरम कर कांजीसे बुझाय उस गरम गरमकी पोटली बांधके स्वेदन कर्म करे तो यह वातकफके रोग, मस्तकशूल और अंगभंगोंको दूर करे ।

नस्य ।

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपा कुष्ठमेव च ॥ वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यात्संज्ञाकराणि च ॥ ७८ ॥

अर्थ–सैंधानिमक, सफेद मिरच, सरसों, कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसके नास दे तो सान्निपातकी मूर्च्छा दूर होय ।

गंडूष ।

आर्द्रकस्य रसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम् ॥ आकंठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनःपुनः॥ लीनो ह्याकृष्यते श्लेष्मा लाघवं चास्य जायते ॥ ७९ ॥

अर्थ–अदरखके रसमें सैंधानिमक और त्रिकुटेका चूर्ण मिलायके इसको थोडी देर मुखमें और कंठमें रखकर कुल्ला कर देवे इस प्रकार वारंवार करे तो मुखमें लिसे हुए कफको निकाल डाले और इस प्राणिका देह हलका होजावे ।

अंजन ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः॥ अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ८० ॥

अर्थ–सिरसके बीज, गोमूत्र, पीपल, कालीमिरच, सैंधानिमक, सहसन, मनसिल और बच इन सबको बारीक पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो सन्निपातवाला रोगी जग उठे ।

रसस्थे रससंशुद्धी रक्तस्थे रक्तमाक्षणम् मांसस्थे रेचनं शस्तं मेदस्थेचासहिष्णुता ॥ ८१ ॥ रेचनं वमनं स्वेदश्चास्थिस्थे स्वेदमर्दने ॥ मज्जाशुक्राश्रयं दृष्ट्वा तमसाध्यं ज्वरं वदेत् ॥ ८२ ॥ इति योगरत्नावल्याम् ॥

अर्थ–यदि ज्वर रसधातुमें होय तो लंघनादिकसे रसकी शुद्धि करे । रुधिरमें होय तो सिंगी, जोंक, फस्त आदि लगायके रुधिरको निकाल डाले । मांसमें हो तो जुलाब लेवे और मेदामें ज्वर होनेसे स्पर्शादिक बुरे लगते हैं इसमें वमन विरेचन दोनों करावे और पसीने निकाले यदि ज्वर हड्डीमें होय तो स्वेदन मर्दन करे और मज्जा तथा शुक्रधातुमें ज्वर पहुंच गया होय तो उसको असाध्य जाने ।

सिद्धार्थकादि लेप ।

सिद्धार्थको वचा हिंगु करंजः सुरदारु च ॥ मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक्कटुत्रयम् ॥ ८३ ॥ प्रियंगुश्च शिरीषं च निशा दार्वी समांशतः॥अजामूत्रेण संपिष्टो गोमूत्रैर्वाथ चूर्णितः ॥सर्वज्वरं निहंत्याशु सिद्धार्थादिः प्रलेपतः ॥८४॥

अर्थ–सफेद सरसों, वच, हींग, कंजा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेद कटेरीकी छाल, त्रिकुटा, प्रियंगु, सिरसकी छाल, हलदी, दारु–

हलदी ये बराबर ले बकरेके मूत्र अथवा गोमूत्रमें पीसके लेप करे तो यह सिद्धार्थादि लेप सर्व ज्वरोंको नष्ट करे ।

उद्धूलन ।

रसविषमरिचमहेशप्रियफलभस्मैकभूचतुर्वसुभिः॥ भागैर्मितमुद्धूलनमिदममितस्वेदशैत्यहरम् ॥ ८५ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–पारा, सिंगियाविष, कालीमिरच, बेलके फलकी भस्म ये क्रमसे १।१।४ और ८ भाग लेवे सबको बारीक पीस देहमें मालिश करे तो यह अत्यंत पसीनोंका आना सरदीका लगना सब दूर हो ।

दंभादिक्रिया ।

तप्तायोलांछनं पश्चात्तालुसूक्तं त्रिदोषजे ॥ रुद्राभिषेकभूदेवभोजनग्रहजाप्यतः ॥ मंत्ररक्षादिभिः कार्या सन्निपातप्रतिक्रिया ॥ ८६ ॥

अर्थ–लोहेकी सलाईको गरम करके तालुएके ऊपर दाग देवे तो सन्निपात दूर हो । अथवा रुद्रका सहस्रकलशाभिषेक,ब्राह्मणभोजन ग्रहोंका जप और दान तथा मंत्र यंत्रादिसे रक्षा करना इत्यादिक सर्व क्रिया सन्निपात रोगमें करनी चाहिये ।

कर्णमूलक ।

सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः ॥ शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ८७ ॥

अर्थ–सन्निपात ज्वरके अंतमें दारुण कर्णमूल शोथ प्रगट होती है. उससे कोई एक प्राणी बचता है ।

न रक्तेन विना वृद्धिर्ज्वरे वा सन्निपातके ॥ दोषः प्रशममायाति क्वाथपाचनकादिभिः ॥ ८८ ॥ दोषे प्रशमितेप्यत्र रक्तं नैव विलीयते ॥ तेन संजायते शोथः कर्णमूले सुदारुणः ॥ ८९ ॥ तस्मात्तत्र प्रतीकारं कुर्याद्रक्तावसेचनैः॥ जलौकालांबुशृंगैश्च ततः स्याल्लेपनं हितम् ॥ ९० ॥

अर्थ–सन्निपातज्वरमें कर्णककी विना रुधिरके वृद्धि नहीं होती और बढे हुए दोष तो क्वाथ पाचनादि करके शमन होजाते हैं, परंतु रुधिर नष्ट नहीं होता इसीसे कानकी जडमें दारुण सूजन प्रगट होती है इसीवास्ते उसको रुधिर निकालने आदि क्रिया करके दूर करे तहां जोंक, तूंबी, सिंगी आदिसे रुधिरको निकाल फिर लेप करना हितकारी है ।

यदा पाको भवेत्तत्र व्रणवद्भेषजं तदा॥ कर्कटस्य च मांसेन स्वेदनं बंधनं तथा ॥ कर्णमूलभवे शोथे हितादपि हितं मतम् ॥ ९१ ॥

अर्थ–यदि वह कर्णमूलकी सूजन पकजावे तो उसपर व्रणरोगके समान चिकित्सा करे और कैंकडेके मांससे स्वेदन, बंधन करना कर्णमूल शोथपर हितकारी कही हैं ।

सिद्धार्थसैंधववचागृहधूमविश्वैः पिष्टैर्जलेन निशया सहितं च सूक्ष्मम् ॥ लेपो हितो रुधिरनाशकरः प्रतीतः शोफव्रणस्य शमनः सरुजस्य कर्णे॥९२॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–सफेद सरसों सैंधानिमक, वच, घरका धूआँ, सोंठ और हलदी इनको जलमें बारीक

पीसकर लेप करे तो यह रुधिरको नाश करे, तथा पीडायुक्त कानकी सूजनको दूर करे।

कुलत्थं कट्फलं शुंठी कारवी च समांशकैः ॥ सुखोष्णं लेपनं कार्यं कर्णमूलं मुहुर्मुहुः ॥ ९३ ॥ बीजपूरकमूलत्वग्वह्निमंथस्तथैव च ॥ नागरं देवदारुश्च रास्ना वह्निश्च योजितः ॥ एभिः प्रलेपनं श्रेष्ठं गलशोथविनाशनम्॥९४॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-कुलथी, कायफल, सोंठ, कलौंजी, इनको समान भाग ले बारीक पीस गरम कर सुहाता २ कर्णमूलपर वारंवार लेप करे। अथवा बिजौरेकी जड और छाल, अरनी, सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक इनका समान भाग पीस लेप करे तो यह गलशोथको दूर करे।

शरपुंखाशिफातुंबीसकृष्णाविषमुष्टिभिः॥ प्रलेपो वा हिडंबीभिः श्वयथौ कर्णमूलजे ॥ ९५ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ-सरफोंकाकी जड, तूंबीके बीज, पीपल और कुचला इनका अथवा हिडंबीका लेप कर्णमूलके सूजनपर करे।

शुष्कां च स्फुटितां जिह्वां द्राक्षया मधुपिष्टया ॥ प्रलेपयेत्सघृतया सन्निपातज्वरे गदे ॥ ९६ ॥

अर्थ-यदि संनिपातके कारण जीभ सूखगई हो, फटगई हो, उसको सहतमें पिसी हुई दाखोंमें घी मिलायके लेप करे तो जीभका सूखापन और फटना दूर हो।

पंचमुष्टिक यूष।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकशुंगयोः ॥ एकैकं मुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ९७ ॥ पंचमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ॥ शस्यते गुल्मशूलेषु श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥ ९८ ॥

अर्थ-जौ, बेर, कुलथी, मूँग, मूलीके ऊपरकी कोमल २ डाँठरे, इन सबको एक २ मुट्ठी लेकर अठगुने जलमें पचावे यह (पंचमुष्टिक) यूष वात पित्त और कफको नष्ट करे है, इसको गोलेका रोग, शूल, श्वास, खाँसी, क्षयरोग और ज्वर इनमें देना चाहिये।

सन्निपाते प्रकंपंतं विलपंतं च यो घृतम्॥ भोजयेत्पाययेद्वापि स वैद्याख्यां कथं व्रजेत् ॥ ९९ ॥

अर्थ-जो संनिपातमें काँपते और विलाप करते हुए रोगीको घी खवावे या पिलावे तो वह किस प्रकार वैद्य कहलाये सक्ता है? वह तो घोर मूर्ख है।

सन्निपातेषु दाहार्तं यः सिंचेच्छीतवारिणा ॥ आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ १०० ॥

अर्थ-जो वैद्य सन्निपात ज्वरके दाहमें शीतल जलसे रोगीको छिडकता है, कहो वह रोगी किस तरह बचेगा? और वह वैद्य किस प्रकार हो सक्ता है?

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥ यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेता यमसंगरे ॥ १०१ ॥ सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥ कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोर्हति॥१०२॥

अर्थ-जो संनिपातज्वरकी चिकित्सा करता है वह मानो मृत्युके साथ युद्ध करता है, जो

वैद्य इस संनिपातको जीत लेता है, वह यमके संग्रामका जीतनेवाला है ऐसा जानना । जो वैद्य संनिपात रूप समुद्रमें डूबे हुए रोगीको उद्धार करता है, उसने किस धर्मको नहीं करा ? और वह किस पूजाके योग्य नहीं है ?

आगंतुज्वरोंकी चिकित्सा ।

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् ॥ पानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्थान ग्रहपीडजौ ॥ १०३ ॥ औषधीगंधविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥ जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगंधकृतं ज्वरम् ॥ १०४ ॥ क्रोधजे पित्तजित्कार्या आर्यसद्वाक्यमेव च ॥ आश्वासैनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ १०५ ॥ हर्षणैश्च शमं यांति कामशोकभयज्वराः ॥ भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्वंधावेशनताडनैः॥ जयेद्भूताभिषंगोत्थं मनःशांत्यैव मानसम् ॥ १०६ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–अभिचार और अभिशाप ज्वरोंको होम आदि कर्मसे जीते तथा देवापराध तथा ग्रहपीडाजन्य ज्वरको दान स्वस्त्ययन (पुण्याहवाचन) और अतिथि सत्कारादिसे दूर करे। औषधींगंधजन्य और विषजन्य ज्वरको विषपित्तको नाश कर्त्ता यत्नोंसे दूर करे । तथा सर्व गंधज्वरोंको बुद्धिमान् वैद्य क्वाथोंसे दूर करे । क्रोधज्वरमें सर्व पित्तके जीतनेवाली क्रिया करे। तथा बडोंके शांतिकारी वाक्योंको सुने । काम, शोक और भयज्वरोंको धीरज धराना मनोवांछित पदार्थ देना. और वादीके शमन करने करके दूर करे । भूताभिषंगज्वरमें भूतविद्यामें कहे बंधन ताडनादिक उनसे भूतादिक ज्वरोंको दूर करे । और मानसिक ज्वरको मनको शांतिकर्त्ता कर्मोंसे दूर करना चाहिये ।

विषमज्वरकी चिकित्सा ।

पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्याकवालकैः॥ क्वाथः सितामधुयुतो जयेदेकाहिकं ज्वरम् ॥ १०७ ॥

अर्थ–पटोलपत्र, हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, दाख, अमलतासका गूदा और नेत्रवाला इनके काढेमें मिश्री और सहतमें डालके पीवे तो इकतरा ज्वर दूर हो ।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥ सितामधुयुतः क्वाथस्तृतीयज्वरनाशनः ॥ १०८ ॥

अर्थ–गिलोय, धनिया, नागरमोथा, लाल चंदन, खस और सोंठ इनके काढेमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो तृतीयक ज्वरको नष्ट करे ।

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ धात्रीयुतैः शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ॥ चातुर्थिके ज्वरे श्वासे कासे मंदानले तथा ॥ १०९ ॥

अर्थ–देवदारु, हरड, अडूसा, शालपर्णी, सोंठ, और आँवले इनके काढेमें सहत और मिश्री मिलायके चातुर्थिकज्वर, श्वास, खाँसी, और मंदाग्नि इनमें देवे ।

मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ॥ पिप्पलीचूर्णयुक्तसर्वविषमज्वरनाशनः ॥ ११० ॥

अर्थ–नागरमोथा, कटेरी, गिलोय, सोंठ, आँवला इनके काढेमें सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो यह सर्व विषमज्वरोंको नष्ट करे ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ रक्तचंदनभूनिंबपटोलवृषपौष्करैः १११॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपपर्टकैः समैः ॥ क्वाथं प्रातर्निषेवेत सवशीतज्वर- च्छिदम् ॥ ११२ ॥

शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ-कटेरी, सोंठ, धनिया, गिलोय, नागरमोथा, पद्माख, लालचंदन, चिरायता, पटोलपत्र, पुहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, भारंगी और पित्तपापडा सब समान भाग ले क्वाथ कर प्रातःकालमें पीवे तो सर्व शीतज्वर दूर हों ।

दार्व्यादि क्वाथ ।

दार्वीदारुकलिंगलोहितलताशम्याकपाठासठीशौंडीवीरकिरातवारणकणात्रायंतिकापद्मकैः ॥ उग्राधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्र्वंबुसिंहीशिवाव्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानंतामृतापौष्करैः॥११३ धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकं क्वाथो हंति तृतीयकं ज्वरमयं चातुर्थकं भूतजम् ॥ ११४ ॥

इत्यारोग्यदर्पणतः ॥

अर्थ-दारुहलदी, इन्द्रजौं, मजीठ, अमलतास, पाठ, कचूर, पीपल, खस, चिरायता, गजपीपर, त्रायमाण, पद्माख, वच, धनिया, सोंठ. नागरमोथा, सरल, सहजना, नेत्रवाला, कटेरी, आवले, बडी कटेरी, पित्तपापडा, कुशाकी जड, कुटकी, जवासा, गिलोय और पुहकरमूल ये सब समान भाग ले क्वाथ करे यह क्वाथ रसरक्तादि धातुस्थ, ज्वर, विषमज्वर, सन्निपातज्वर, चौथैया ज्वर और भूतज्वर इन सबको दूर करे । यह आरोग्यदर्पणग्रंथमें लिखा है ।

निदग्धिकानागरिकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥ जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमांद्यार्दितपीनसेषु ॥ ११५ ॥

इति योगशतात् ॥

अर्थ-कटेरी, सोंठ, गिलोय इनका क्वाथ कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो जीर्ण ज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मंदाग्नि, अर्दितरोग और पीनस इनको दूर करे ।

जीर्णज्वरके लक्षण ।

न शाम्यति ज्वरो यस्तु पक्षादूर्ध्वं शरीरिणाम् ॥ मंदवेगानुबंधश्च स ज्ञेयो जीर्णतां गतः ॥ ११६ ॥

अर्थ-जो एक पक्षपर्यंत ज्वरशांति न होवे और मंद २ नित्य देहमें रहा करे उसको जीर्णज्वर जानना ।

कासजीर्णज्वरश्वासहृत्पांडुकृमिरोगहृत् । जीर्णज्वरेग्निसादे च शस्यते गुडपिप्पली ॥ ११७ ॥

अर्थ-खाँसी, जीर्णज्वर, श्वास, हृदयरोग, पांडु, कृमिरोग, जीर्णज्वर और मंदाग्नि इनपर गुडमें पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करना चाहिये ।

वर्द्धमानपीपल ।

त्रिभिरथ परिवृद्धां पंचभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धां पिप्पलीं वर्द्धमानः ॥ इति पिबति पुमान्यस्तस्य न श्वासकासज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाःस्युः११८

इति वृंदात ॥

अर्थ-३ अथवा ५ अथवा ७ अथवा दशसे वृद्धिके क्रमसे जो वर्द्धमान पीपलोंको पीता है

उस पुरुषके श्वास, खाँसी, ज्वर, उदररोग, गुदाकी बवासीर और वातरक्त ये रोग नष्ट होजावें ।

ऊर्णनाभिस्थजालेन कज्जलं ग्राहयेत्ततः ॥ अंजयेन्नेत्रयुगलं त्र्याहिकं तु ज्वरं जयेत् ॥ ११९ ॥

अर्थ-मकडीके जालेका काजल पाडके दोनों नेत्रोंमें अंजन करे तो तिजारी ज्वर दूर होय ।

उलूकदक्षिणः पक्षः सितसूत्रेण वेष्टितः ॥ बंधितो वामकर्णे तु हरत्येकाहिकं ज्वरम् ॥ १२० ॥

अर्थ-उल्लूके दहने पंखको सपेद सूतसे लपेटके बाएँ कानमें बांधे तो इकतरा ज्वर दूर होय ।

भृंगराजजटा बद्धा कर्णे रात्रिज्वरापहा॥ सवज्वरहरी श्वेतमंदारस्य च मूलिका १२१

अर्थ-भांगरेकी जडको कानमें बाँधे तो रात्रिमें आनेवाले ज्वरको दूर करे। सपेद आककी जड सब ज्वरोंको नष्ट करे ।

तुरंगरिपुमूलं वा श्वेतं शीतज्वरापहम् ॥ विवस्त्रेणोद्धृता देवी मूलिका कर्णबंधनात् ॥ चातुर्थिकं ज्वरं हंति द्रोणपुष्पीरसाजनात् ॥ १२२ ॥

अर्थ-सपेद कनेरकी जडको बांधनेसे शीतज्वर दूर हो. नग्न होकर सहदेईको जड समेत उखाड ले फिर इसकी जडको कानसे बांधे तो चौथेया ज्वर दूर हो । अथवा गोमाके रसका अंजन चातुर्थिक ज्वरको दूर करे ।

ज्वर दूर करनेका मंत्र ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः क्रोधेश्वराय नमो ज्योतिःपतंगाय नमो नमः ॥ सिद्धिरुद्रआज्ञापयति स्वाहा ॥ अनेन सप्तसप्तैस्तु सर्षपैः सप्त ताडयेत् ॥ चातुर्थिकज्वरान्मुक्तो नरो भवति सर्वथा ॥ १२३ ॥

इत्यारोग्यदर्पणतः ॥

अर्थ-नमो भगवते रुद्राय नमः क्रोधेश्वराय ॥ इस मंत्रको सरसोंपर सात बार पढके रोगीके देहमें खींचकर मारे तो वह रोगी तत्काल चातुर्थिक ज्वरसे छूट जावे । यह आरोग्यदर्पणमें लिखा है ।

रसद्वारा ज्वरकी चिकित्सा ।

सर्वज्वरारि ।

एकभागो रसो भागद्वयं शुद्धं च गंधकम् ॥ विषस्य च त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती ॥ १२४ ॥ जैपालजाः पंच भागा निंबुद्रवविमर्दिताः ॥ कृमिघ्नप्रमिता वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः । ॥ १२५ ॥ शृंगवेरेण दातव्या वटिकैका दिनानने ॥ जीर्णज्वरे तथाजीर्णे समे वा विषमेऽपि वा ॥ सर्वज्वरं निहंत्याशु दावो वनमिवानलः॥१२६॥

अर्थ-शुद्ध पारा ४ तोले शुद्ध गंधक ८ तोले शुद्ध विष १२ तोले हरडकी छाल १६ तोले और शुद्ध जमालगोटेके बीज २० तोले सबको नींबूके रसमें खरल करे वायविडंगके समान गोली बनावे प्रातःकाल एक गोली अदरखके रससे देवे तो जीर्णज्वर, अजीर्णज्वर, सम, विषम, सब ज्वरोंको नष्ट करे जैसे वनको दानावल नष्ट करे है ।

सन्निपातहर वीरभद्राख्यरस ।

त्र्यूषणं पंचलवणं शतपुष्पा द्विजीरकम्॥

क्षारत्रयं समांशेन चूर्णमेषां पलत्रयम्। ॥ १२७ ॥ शुद्धं सूतं पलं चाभ्रं गंधकं च पलंपलम ॥ आर्द्रकस्य रसैः खल्वे दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ १२८ ॥ वीरभद्रो रसः ख्यातो माषैकः सन्निपातजित्॥चित्रकार्द्रकसिंधूत्थमनुपानं जलैः सह ॥ पथ्यं क्षीरौदनं देयं द्विवारं च रसो हितः ॥ १२९ ॥

अर्थ-त्रिकुटा, पाँचों निमक, सोंफ, सफेदजीरा, कालाजीरा, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा प्रत्येक तीन पल ले, शुद्ध पारा १ पल, अभ्रक, गंधक दोनों एक एक पल ले इन सबको अदरखके रसमें एक दिन खरल करे तो यह (वीरभद्र) रस तैयार हो. इसको चित्रक, अदरख, और सैंधेनिमकके साथ १ मासेके अनुमान जलसे सेवन करे इसके ऊपर दूध भातका पथ्य दो वार देवे तो यह सन्निपातको नष्ट करे।

सन्निपातहर ब्रह्मास्त्ररस।

ब्रह्मास्त्रमथ वक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ भस्म सूतं त्रिगंधं च तत्समं गरलं त्वहेः ॥ १३० ॥ त्रिभिः समं विषं योज्यं मरिचं सर्वतुल्यकम्॥ वराहकेकिमहिषपित्तैः सप्तविभावितम्। ॥ १३१ ॥ लांगल्या देवदाल्या च ज्वालामुख्यार्द्रकद्रवैः ॥ एकविंशतिधा भाव्यं प्रत्येकं घर्मशोषितम् ॥ १३२ ॥ द्विगुंजामात्रनस्येन मृतमुत्थापयेद्दुतम्॥ दध्यन्नं ससितं पथ्यमुपचाराश्च शीतलाः ॥ १३३ ॥ सर्वोदरगदघ्नोयमसाध्यमपिसाधयेत् ॥ आस्थिशूलानि सर्वाणि नाशयत्येव सर्वथा ॥ १३४ ॥

अर्थ-तत्काल परचेका दिखानेवाला ब्रह्मास्त्र रस कहताहूं। पारेकी भस्म १ भाग गंधक ३ भाग इन दोनोंकी बराबर काले सांपका जहर लेवे और तीनोंकी बराबर सिंगिया विष लेवे तथा सबकी बराबर कालीमिरच लेनी, सबको खरलमें डालके सूअर, मोर, भैंसा इनके पित्तेकी सात २ भावना देवे, फिर कलियारी, वंदाल और ज्वालामुखी (अगनबूटी) इनके रसकी तथा अदरखके रसकी इक्कीस २ पुट देकर धूपमें सुखायलेवे, फिर दो रत्तीके बराबर लेकर इसकी नास देवे तो एक दफे मृततुल्यभी सन्निपात रोगी तत्काल जी उठे इसके ऊपर दही भात और बूरा भोजन करावे और सब उपचार शीतल ही करे यह (ब्रह्मास्त्ररस) सब प्रकारके उदरके असाध्य रोगोंको भी नष्ट करे सम्पूर्ण हड्डियोंके शूलको सर्वथा नष्ट करे।

विनोदविद्याधररस।

रसं गंधं विषं ताम्रं त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ कटुका च त्रिवृद्दंती हेमाह्वा टंकणं विषम् ॥ १३५ ॥ एतानि समभागानि सर्वांशं दंतिजं फलम् ॥ चूर्णयित्वा तु तत्सम्यङ् मर्दयेद्द्विकांबुना ॥ १३६ ॥ दंतीक्काथैस्ततः सम्यग्वटी टंकार्धमानतः ॥ विनोदविद्याधर इत्याख्यातस्तरुणज्वरम् ॥ १३७ ॥ शूलं गुल्मं तथा पांडुं ग्रहण्यर्शःकृमाञ्जयेत् ॥ अजीर्णमामवातं च गुल्मादेरगदां- स्तथा ॥ १३८ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, गंधक, विष, ताम्रभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, कुटकी, निसोथ, दंती, चोक, सुहागा और

बच्छनाग विष ये सब समान भाग लेवे, सबके बराबर शुद्ध जमालगोटे लेवें सबको चूर्ण कर थूहरके दूधमें खरल करे फिर दंतीके काढेमें खरल कर दो २ मासेकी गोली बनावे यह (विनोद-विद्याधर) रस तरुणज्वरको दूर करे,शूल,गोला, पांडुरोग, संग्रहणी, बवासीर, कृमिरोग, अजीर्ण, आमवात, गोला, उदररोग इनको दूर करे ।

पंचानन रस ।

शंभोः कंठविभूषणं समरिचं दैत्येंद्ररक्तं रसैः पक्षौसागरलोचने हिमरुचिर्भागैस्तथाधा रविः ॥ खल्वांतः खलुमदयद्रविजलैर्गुंजाप्रमाणोऽशितः प्रोद्दंडज्वरदंतिदपदलने पंचाननोऽसौ रसः॥१३९॥पथ्यं च देयं दधिभक्ततक्रं सिंधूत्थपथ्यासितया समेतम् ॥ गंधानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धं च देयं शुभदाडिमी च ॥ १४० ॥

इति रसमञ्जरीतः ।

अर्थ–शुद्ध सिंगिया विष, काली मिरच, गंधक, तांबेकी भस्म और पारा ये क्रमसे २–४–३–१ भाग ले और तांबेकी भस्म अर्द्ध भाग लेवे, सबको खरलमें डालके आकके दूधसे खरल कर एक एक रत्तीकी गोली बनावे १ गोली सेवन करनेसे प्रचंड ज्वररूप हाथीके दलन करनेको यह सिंहरूप है। इसके ऊपर दही भात छाछका पथ्य देवे तथा उसमें सेंधानिमक, हरड और खाँड मिलायले, जिस रोगीने यह रस खायाहो उसकी देहमें चंदन लगावे शीतल जल पीनेको देय, दूध और अनार ये खानेको दने चाहिये ।

महाज्वरांकुश ।

शूद्धं सूतं विषं गंधं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ॥ चतुर्णां द्विगुणं व्योषं हेमक्षीरीविभावितम्॥ १४१ ॥चतुर्वारं घर्मशुष्कं चूर्णं गुंजाद्वयोन्मितम् ॥ जंबीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसेन वा ॥ ॥ १४२ ॥ महाज्वरांकुशो नाम समस्तज्वरनाशनः ॥ एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥ विषमं च त्रिदोषोत्थं हंति सद्यो न संशयः ॥१४३॥

अर्थ–शुद्ध पारा, विष, गंधक ये समान भाग ले और तीनोंकी बराबर धतूरेके बीज लेवे, इन चारोंसे दूना त्रिकुटे (सोंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण ले इसमें चोकके रसकी ४ भावना देवे, फिर धूपमें सुखायके इसमेंसे दो रत्ती चूर्ण जँभीरीके गूदे अथवा अदरखके रससे खाय, यह (महा ज्वरांकुश) रस समस्त ज्वरोंका नाश करे । एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक,चातुर्थिक विषम और त्रिदोषजन्य तत्काल दूर हो ।

चिंतामणिरस ।

सूतं गंधकमभ्रकं समलवं सूतार्द्धभागं विषं तत्तुल्यं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम्॥ पत्रैर्मजुभुजंगवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं सह दलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥ १४४॥ भागार्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं गुंजानागरसिंधुचित्रकयुतं सर्वज्वरान्नाशयेत् ॥ शूलं संग्रहणीं गदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां सर्वव्याधिमतां नृणां हिततमश्चिंतामणिर्नामतः॥१४५॥

अर्थ–पारा, गंधक, अभ्रक भस्म, सब समान भाग ले, पारेसे आधा विष लेवे और

विषकी तुल्य शुद्ध जमालगोटा ले नींबूके रसमें खरल कर गोला बनावे और उसके ओर पास नागरबेलके पान लपेटकर गड्ढेमें रख कुक्कुटपुटकी अग्नि देवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब निकाल उन पानों समेत गोलेका चूर्ण कर इसमें अर्द्ध भाग जमालगोटा और इतना ही शुद्ध विष मिलायके १ रत्तीके प्रमाण सोंठ, सेंधानिमक, चित्रक इनके साथ खाय तो सर्वज्वर दूर हो । शूल, संग्रहणी, उदररोग इन सबको दूर करे, इसके ऊपर दही भातका सेवन करे । यह चिंतामणि रस सर्व रोगियोंको हितकारि है ।

सूचिकाभरणरस ।

खंडं कृत्वा विषं कृष्णं सार्कदुग्धेःल्पभांडके ॥ सकांजिके सगरले क्षिप्त्वा चुल्ल्यां निधापयेत् ॥ १४६ ॥ सप्ताहतः समुद्धृत्य श्लक्ष्णचूर्णीकृतं च तत्॥सूचिकाभरणो नाम रसो गुप्ततमो भुवि ॥ १४७ ॥ संज्ञानाश विचेष्टे च वल्लः कांजिकपेषितः ॥ ब्रह्मरंध्रे प्रयोक्तव्यो महामोहप्रणाशनः ॥ १४८ ॥

अर्थ–काले विषके टुकडे २ करके एक छोटेसे बासनमें आकका दूध कांजी और सर्पविष भरके उसमें इन विषके टुकडोंको डाल चूल्हेपर चढावे नीचे बराबर सात दिनतक अग्नि जलावे और जैसे २ काँजी आकका दूध सूखता जाय और वैसा २ डाले सातवें दिन सबको सुखायके उतार ले और सबका चूर्ण करके शीशीमें भरके धररखे, यह पृथ्वीमें गुप्ततम सूचिकाभरण नामसे प्रसिद्ध रस है इसको सन्निपातकी संज्ञा नष्ट होनेमें तीन रत्ती काँजीमें पीसके मस्तकमें लगावे तो यह महामोहको नष्ट करे ।

सर्वज्वरहररस ।

रसदरददिनेशं फेनगंधेन युक्तं मुनिदिनमिति खल्वे विश्वतोयेन घृष्टम् ॥ ज्वरहरमिह सूतं वल्लमात्रप्रमाणं प्रथमजनितदाहं पाययेदार्द्रकेण ॥ १४९ ॥

अर्थ–पारा, हिंगूल, तामेंकी भस्म, समुद्रफेन और गंधक ये समान भाग ले सबको सोंठके काढेमें सात दिन खरल करे तो यह ज्वरहरणकर्त्ता पारा है, ३ रत्ती ले अदरखके रसके साथ पिलावे तो सर्वज्वरोंको और दाहको नष्ट करे ।

विषूचिकापर चुक्राद्य तैल ।

पलं चुक्रं कुष्ठं पिचुयुगमितं सैंधवकणे तदर्धे प्रत्येकं करतलमितं जातिफलकम् ॥ कटोस्तैलं पक्वं कुडवमितमग्नावधिभृतं तदेतच्चुक्राद्यं शमयति विषूचिं च सगदाम् ॥ १५० ॥

अर्थ–चूक ४ तोले, कूट २ तोले, सेंधानिमक और पीपल ये छः २ मासे ले और जायफल १ तोला, सबको पीसि पाव भर कडुए तेलमें डालके पक्व करे तो यह (चुक्रादितैल) पीडा युक्त विषूचिकाको दूर करे ।

महाशीतज्वरांकुशरस ।

अष्टौ तालकमेतदर्द्धममलं शंबूकचूर्णं क्षिपेत्पश्चादत्र नवांशको वरशिखी सर्वं पुनः पेषयेत् ॥ तोयैस्तच्च कुमारिकादलभवैः पक्वं गजाख्ये पुटेप्येकद्वित्रिचतुर्थशीतहरणः शीतांकुशोऽयं रसः ॥१५१॥ ज्वरं धातुगतं चित्तभ्रमं पित्तास्रजान्गदान् ॥ रक्तातिसारग्रहणीदुर्नामास्राणि नाशयेत् ॥ १५२॥ गुंजाद्वयमितं दद्या-

स्सितया सह वारिणा ॥ सजीरकेण दध्यन्नं पथ्यं शीतज्वरांकुशे ॥ १५३ ॥

अर्थ–शुद्ध हरताल ८ तोले, छोटे शंखोंका चूर्ण ४ तोले, लीलाथोथा १० मासे ले सबको बारीक पीसे और घीगुवारके रसमें खरल करके गजपुटमें रखके फूंक देवे तो यह शीतज्वरांकुश एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक ज्वर, शीतज्वर, धातुगतज्वर, चित्तभ्रम, सन्निपात, रक्तपित्तके विकार, रक्तातिसार, संग्रहणी, बवासीर इन सबको नष्ट करे । इसको २ रत्ती ले मिश्रीमें मिलायके जलसे खाय और पथ्यमें जीरे मिले दहीके साथ भात वा दूधभात भोजन देवे ।

चंद्रशेखर वा उदकमंजरी ।

शुद्धसूतसमं गंधं मरिचं टंकणं तथा ॥ चतुस्तुल्यासिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ १५४ ॥ त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोयं चंद्रशेखरः॥ द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयः शीतोदकं पुनः ॥ १५५ ॥ तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र निधापयेत्॥ त्रिदिनाच्छ्लेष्मपित्तोत्थमत्युष्णं नाशयेज्ज्वरम् ॥ १५६ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा, गंधक, काली मिरच और सुहागा सब बराबर ले चारोंके बराबर मिश्री मिलावे फिर मछलीके पित्तेकी ३ दिन भावना देवे तो यह चंद्रशेखर रस बने २ रत्तीकी मात्रा अदरखके रससे देवै ऊपरसे शीतल जल पीवे और छाछ भात बैंगनका साग ये पथ्य देवे तो यह तीन दिनमें अति उष्ण कफपित्त ज्वरको नाश करे इसीको उदकमंजरी रस भी कहते हैं ।

शीतारि ।

समेभ्यो रसटंकेभ्यो द्विगुणाञ्जयपालकान्॥ पिष्ट्वा नवज्वरे देयं वल्लं जंभांभसास्य च ॥ १५७ ॥ चिंचाक्षारेण खंडेन शीतज्वरविनाशकृत्॥आध्मानामानिलहरः सितागुडयुतो रसः ॥ अयं रसोपि सहसा पुत्रस्यापि न कथ्यते ॥ १५८॥ इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–पारा और सुहागा दोनों बराबर ले और दूने जमालगोटेका बीज ले सबको पीसके ३ रत्तीके अनुमान जंभीरीके रससे नवीन ज्वरमें देवे और इमलीके खारमें और मिश्रीमें मिलायके देवे तो शीतज्वरको दूर करे, मिश्री गुडके साथ इसको खाय तो अफराकी वादी दूर हो इस रसको वैद्य अपने पुत्रसे भी न कहे अर्थात् गुप्त रक्खे ।

शीतारि रस ।

तुत्थं टंकणसूतकं विषवलिं सत्खर्परं तालकं चूर्णं खल्वतले विमर्द्य गुटिका सत्कारवेल्लद्रवैः ॥ गुंजार्द्धप्रमिता च शुद्धसितया सा पर्णखंडेन वा एकद्वित्रिचतुर्थकज्वरहरः शीतारिनामा रसः१५९॥

अर्थ–लीलाथोथा, सुहागा, पारा, विष, गंधक, खपरिया, हरताल और चूना, इनको खरलमें पीसके करेलेके रससे गोली बनावे इसमेंसे आधरत्ती रसको मिश्रीमें मिलाय पानमें रखके खाय तो एकाहिक, द्व्याहिक, तिजारी और चातुर्थिक ज्वरोंको यह शीतारिरस दूर करे।

लघुमालिनी वसंत ।

रसकयुगलभागं वह्लिजं भागमेकं द्वितयमपि सुखल्वे मर्दयेन्म्रक्षणेन ॥ भवति

घृतविमुक्तो निंबुनीरेण यावज्ज्वरहरमु-
पकुल्यामालिनीप्राग्वसंतः ॥ १६० ॥
जीर्णज्वरेधातुगतेतिसारे रक्तान्विते रक्त-
जविष्ठरोगे ॥ घोरव्यथे पित्तकृते च
दोषे बलप्रदो दुग्धयुतं च पथ्यम्।
॥ १६१ ॥ प्रदरं नाशयत्याशु तथा
दुर्नामशोणितम् ॥ विषमं नेत्ररोगं च
गजेंद्रमिवकेसरी ॥ १६२ ॥

अर्थ-खपरिया २ भाग और कालीमिरच १ भाग ले दोनोंको मक्खनसे घोटे फिर तबतक नींबूके रसमें खरल करे कि जबतक उसकी चिकनाई दूर न होवे तो यह मालिनी वसंत रस बने इसको सहत और पीपलके चूर्णमें मिलायके सेवन करे तो यह धातुगत जीर्णज्वर रक्तातिसार रुधिरके रोग घोर व्यथावाले पित्तके रोग इनको नष्ट करे बल देवे इसपर दूध पीना पथ्य है यह प्रदरको तत्काल दूर करे, तथा बवासीरके रुधिरको बंद करे, विषमज्वर, नेत्ररोग इन सबको दूर करे।

बृहन्मालती वसंत।

स्वर्णं मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्ध्या
प्रयोज्यं खर्पर्यष्टौ प्रथमनवनीतेन निंब्वं-
बुना च ॥ यावत्स्नेहो व्रजति निचयं
मर्दयेत्तावदेव गुंजामात्रा मधुचपलया
सर्वरोगे वसंतः ॥ १६३ ॥ जीर्णेज्वरे
धातुगतेतिसारे रक्तान्विते रक्तजाविष्ठ-
रोगे॥ घोरव्यथे पित्तभवे विकारे वल्ल-
द्वयं दुग्धयुतं च पथ्यम् ॥ १६४ ॥
वसंतो मालतीपूर्वः सर्वरोगहरः शिशोः॥
गर्भिण्यै देयमेतच्च जयंतीपुष्पकैर्युतम्॥
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठं गर्भपालनमुत्तमम् १६५

अर्थ-सुवर्ण मोती, हींगुल, कालीमिरच, प्रत्येक क्रम वृद्धिसे भाग लेवे और शुद्ध खपरिया आठ भाग लेवे सबको खरलमें डालके प्रथम मक्खनसे खरल करे फिर जबतक चिकनाई दूर न हो तबतक नींबूके रसमे घोटे फिर इसमेंसे १ रत्ती रस सहत और पीपलके साथ सर्व रोगोंमें देवे धातुगत जीर्णज्वर, अतीसार, रक्तजन्य रक्तातिसार, घोर व्यथावाला पित्तका विकार इनमें ६ रत्ती दूधके साथ देवे. यह (मालतीवसंतरस) बालकके सर्व विकारोंको दूर करे गर्भवती स्त्रीको अरनीके फूलोंके साथ देवे, यह सर्व ज्वरोंको हरण करता और गर्भके रक्षा करनेको उत्तम प्रयोग है।

जीर्णज्वरपर षट्तक्रतैल।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहि-
तयष्टिकाभिः ॥ तैलं ज्वरे षड्गुणतक्र-
सिद्धमभ्यंजनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥
दध्नः ससारकस्य स्यात्षट्तक्रे तक्र-
मुत्तमम् ॥ १६६ ॥

अर्थ-सोरा, वा सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हरदी, मजीठ इन सब औषधोंको तेलमें डाल छःगुनी छाछके साथ परिपक्व करे इसकी मालिश करनेसे शीत और दाहको नष्ट करे यदि इस तेलमें छाछके स्थानमें दहीका जल मिलाय लिया जाय तो बहुत उत्तम (षट्तक्र तैल) बने।

अनुभूत लाक्षादि तैल।

लाक्षाप्रस्थं क्राथयित्वा चतुःप्रस्थमिते
जले॥ पादशेषं जलं नीत्वा तैलप्रस्थे
विनिक्षिपेत् ॥ १६७ ॥ तैलाच्चतुर्गुणं
मस्तु गोदध्नश्चात्र निःक्षिपेत् ॥
शतपुष्पामश्वगंधां हरिद्रां देवदारु

च ॥ १६८ ॥ रेणुकां कटुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम् ॥ मुस्तं च चंदनं रास्नां प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥ १६९ ॥ कल्कीकृत्य क्षिपेत्तैले ततो मृद्वग्निना पचेत् ॥ तस्याभ्यंगात्प्रणश्यंति सर्वेऽपि विषमज्वराः ॥ कंडूशूलांगदौर्गंध्यमंगस्फोटादिकाञ्जयेत् ॥ १७० ॥

अर्थ-एकसेर लाखको चार सेर जलमें औटावे जब सेरभर जल रहे तब उतारके छानलेवे. फिर इसमें १ सेर मीठा तिंल्लीका तेल डाले और ४ सेर गौके दहीका जल डाले, फिर सोंफ, असगंध, हलदी, देवदारु, रेणुका, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहटी, मोथा, चंदन और रास्ना प्रत्येक एक एक तोला लेवे, सबका कल्क करके उस तेलमें डालके उसको मंद २ अग्निसे पचावे, इस तेलके मालिस करनेसे सब विषमज्वर दूर हों । खुजली,शूल, देहकी दुर्गंध अंगोंके फोडा इत्यादि रोग दूर हों ।

लघुलाक्षादि तैल ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठा कल्कैस्तैलं विपाचयेत् ॥ षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ १७१ ॥

अर्थ-लाख, हलदी, मजीठ इनके कल्कको तेलमें डालके और तेलसे छःगुनी कांजी मिलायके तेलको पचावे, यह तेल दाहज्वर और शीतज्वरको दूर करे ।

मध्य लाक्षादि तैल ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् ॥ चतुर्गुणेरिते क्काथे द्रव्यैरेतैः पलोन्मितैः ॥ १७२ ॥ लोध्रकट्फलमंजिष्ठामुस्तकेसरपद्मकैः॥ चंदनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गंडूषधारणात् ॥ १७३ ॥ दंतरोगाः प्रणश्यंति लेपात्सर्वज्वराञ्जयेत् ॥ एतल्लाक्षादिकं तैलं बलपुष्टिप्रदीप्तिदम् ॥ १७४ ॥

अर्थ-मीठा तेल लाखका रस और गौका दूध, प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेवे, फिर आगे लिखी हुई चार २ तोले औषधोंके चौगुने क्काथ तेलको पचावे, (क्काथ द्रव्य) लोध, कायफल, मजीठ, नागरमोथा, नागकेशर, पद्माख, चंदन, कमलगट्टा और मुलहटी, इनसे तेलको सिद्ध कर इस तेलको मुखमें रखनेसे दाँतोंके विकार दूर हों और देहमें मालिश करनेसे सर्व ज्वरोंको दूर करे. यह (लाक्षादि तेल) बल, पुष्टि और जठराग्निको दीप्त करे ।

षट्चरणतैल ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठामूर्वाचंदनशारिवा ॥ तैलं षट्चरणं नाम चाभ्यंगाज्ज्वरनाशनम् ॥ १७५ ॥

अर्थ-लाख, मुलहटी, मजीठ, मूर्वा, चंदन और सारिवा इनसे बने हुए इस षट्चरण तेलकी मालिशसे ज्वर दूर हो ।

अंगार तेल ।

द्राक्षामूर्वाहरिद्रे द्वे मंजिष्ठा चेंद्रवारुणी॥ बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ १७६ ॥ आरनालाढकेनात्र तैलं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ १७७ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ-दाख, मूर्वा, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, इन्द्रायनका गूदा, बडी कटेरी, सेंधानिमक, कूठ, रास्ना, जटामांसी और सता-

वर इन सबका कल्क और चार सेर काँजी एक १ सेर मीठे तेलमें डालके पचावे तो यह अंगारक तैल सर्व ज्वरोंको दूर करे । यह वृंदमें लिखा है ।

ज्वरहरआमलक्यादि चूर्ण ।

धात्रीशिवासैंधवचित्रकाणां कणायुतानां समभागचूर्णम् ॥ जीर्णज्वरारोचकवह्निमांद्ये सविड्ग्रहे शस्तमिति प्रतिज्ञा१७८॥

अर्थ–आँवले, हरड, सेंधानिमक, चित्रककी छाल और पीपल ये समान भाग ले चूर्ण करे. यह आमलक्यादि चूर्ण जीर्णज्वर, अरुचि, मंदाग्नि, मलका रुकना, इनका अवश्य दूर करे ।

तालीसादि चूर्ण ।

तालीशोषणविश्वपिप्पलितुगाः कर्षाभिवृद्धास्त्रुटिः कर्षार्द्धा त्वगपि प्रकामधवला द्वात्रिंशकर्षासिता ॥ तालीसाद्यमिदं सुचूर्णमरुचावाध्मानमंदानलश्वासच्छर्द्यतिसारशोषकसनप्लीहज्वरे शस्यते ॥ १७९ ॥

अर्थ–तालीसपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पींपल और वंशलोचन ये प्रत्येक एक तोलेकी वृद्धिसे लेवे. और छोटी इलायचीके बीज ६ मासे तथा ३२ तोले सपेद मिश्री लेवे यह तालीसादि चूर्ण अरुचि, अफरा, मंदाग्नि, श्वास, वमन, अतीसार, शोष, खाँसी, तिल्ली और ज्वर इनपर देना चाहिये ।

सुदर्शन चूर्ण ।

त्रिफला रजनीयुग्मं कंटकारीयुगं सठी॥ त्रिकटु ग्रंथिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ १८० ॥ कटुका पर्पटं मुस्तं त्रायमाणं च वालकम् ॥ निम्बं पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकः ॥१८१॥ यवानींद्रयवा भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा॥ वचात्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः। ॥ १८२ ॥ शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी विडंगं तगरं तथा॥ चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ १८३ ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशलोचनम् ॥ पुंडरीकं च काकोल्यौ पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ १८४ ॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ॥ सर्वचूर्णस्य चार्धांशं कैरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ १८५ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १८६ ॥ पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥१८७॥ शीतज्वरं त्रिदोषादीन्मोहं तंद्रां तृषां तथा ॥ श्वासं कासं च पांडुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम्॥१८८॥ त्रिकपृष्ठकटीवातपार्श्वशूलनिवारणम् ॥ सीतांबुना पिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवारणम् ॥ १८९॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ॥ तथा सर्वज्वराणां च चूर्णमेतद्विनाशनम् ॥ १९० ॥

अर्थ–हरड, बहेडा, आंवला, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, बडी कटेरी, कचूर, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपरामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, नीमकी छाल, पुहकरमूल, मुलहटी, कूडेकी छाल, अजमायन, इन्द्रजौ, भारंगी,

सहजनेके बीज, फिटकरी, वच, तज, वा दालचीनी, पद्माख, खस, चंदन, अतीस, खिरेटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, कमलगट्टा, काकोली, क्षीरकाकोली, पत्रज, जावित्री और तालीसपत्र ये सब समान भाग लेवे. इस सब चूर्णसे आधा चिरायता मिलावे, यह त्रिदोषनाशक सुदर्शन चूर्ण है, यह सम्पूर्ण ज्वरको निःसंदेह दूर करे एकदोषज, द्विदोषज, आगंतुज, धातुस्थ, विषम और सन्निपातजन्य तथा मानसिकज्वर, शीतज्वर, सन्निपातसे उत्पन्न मोह, तंद्रा, प्यास, श्वास, खाँसी, पांडुरोग, हृद्रोग और कामला, त्रिकस्थानकी, पीठकी, कमरकी वादी, पसवाडेका शूल इनको दूर करे, इसको शीतल जलसे पीवे तो सर्व ज्वरोंको नष्ट करे, जैसे सुदर्शन चक्र दैत्योंका नाश करता है, उसी प्रकार यह चूर्ण सर्व ज्वरोंको नष्ट करे है ।

सितोपलादि चूर्ण ।

चूर्णं षोडशकुंजराब्धिनयनक्ष्मामानभाजःसितावांशीमागधिकात्रुटिस्त्वच इह क्षौद्राज्ययुक्तं प्रगे ॥ लीढं हंति सितोपलादिकमिदं सर्वांगदाहं क्षयं पार्श्वार्तिज्वरवातपित्तकसनश्वासाग्निमांद्यारुचीः॥

अर्थ—सपेद मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, छोटी पीपल ४ तोले, छोटी इलायचीके दाने २ तोले और दालचीनी १ तोला ले, सबका चूर्ण करके प्रातःकाल सहत और घीके साथ सेवन करे तो यह सितोपलादि चूर्ण सर्व अंगके दाहको, क्षय, पसवाडेकी पीडा, ज्वर, वादी, पित्त, खाँसी, श्वास और मंदाग्नि और अरुचि इनको दूर करे ।

कट्फलादि चूर्ण ।

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता सठी शृंगी च पौष्करम् ॥ मधुना चूर्णमेतेषां शृंगवेररसेन वा ॥ १९२ ॥ लिहेज्ज्वरार्तं कंठ्यं कासश्वासारुचिच्छिदम् ॥ वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति॥१९३॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

इति दिङ्मात्रमाख्यातं ज्वराणां हि चिकित्सितम् ॥ सप्रत्ययं सानुभवं संप्रदायाद्गुरोरिह ॥ १९४ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां ज्वरचिकित्सानाम विंशतितमस्तरंगः ॥ २० ॥

अर्थ—कायफल, नागरमोथा, कुटकी, कचूर, काकडासिंगी और पोहकरमूल इनके चूर्णको सहतसे अथवा अदरखके रससे सेवन करे तो ज्वर, कास, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल, क्षय इनको दूर करे और कंठको शुद्ध करे है यह कट्फलादि चूर्ण है । विश्वासयुक्त और अनुभवकारी और गुरुकी संप्रदायानुसार मैंने इस जगह यह ज्वरोंकी चिकित्सा संक्षेपसे वर्णन करी है । विशेषतः इस ग्रंथके परिशिष्ट भागमें लिखा है सो देखिये ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां ज्वरचिकित्सा नाम विंशतितमस्तरंगः ॥ २० ॥

एकविंशस्तरंगः ।

अतिसार-संप्राप्ति ।

संशम्यापांधातुरग्निंप्रवृद्धोवर्चोमिश्रोवायुनाधः प्रणुन्नः ॥ सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदंति ॥१॥

अर्थ-जलधातु (कफ, रस, मूत्र, स्वेद, मेद, पित्त और रक्त इत्यादि) वे बढकर जठराग्निको मंद कर अपान वायुका निकाला हुआ मल गुदाके द्वारा नीचे गिरे उसको वैद्य अतिसार कहते हैं यह रोग छः प्रकारका है ।

अतिसारके छः भेद ।

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥

अर्थ-वात, पित्त, कफ, सन्निपात, शोक, और आम इन भेदोंसे छः प्रकारका है ।

अतिसारके पूर्वरूप ।

हृन्नाभिवायूदरकुक्षितोद गात्रावसादानिलसन्निरोधाः ॥ विसंग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥२॥

अर्थ-हृदय, नाभि, गुद, उदर और कूख इन स्थानोंमें सुई छेदनेकी सी पीडा होय. तथा अंग शिथिल अधोवायुकी रुकावट तथा मलका अवरोध, पेटका फूलना और अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक न होय यह अतिसार रोग होनेवाले प्राणीके लक्षण हैं ।

वातातिसारके लक्षण ।

अरुणं फनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः॥ शकृदामं सरुक्छब्दं मारुतेनातिसार्यत ॥ ३ ॥

अर्थ-लाल और झागयुक्त, रूखा, थोडा और वारंवार दस्त होय. कभी आम मिला दस्त होय और पीडायुक्त शब्द होय यह वातातिसारके लक्षण हैं ।

पित्तातिसार ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्छादाहपाकोपपन्नम् ॥

अर्थ-पित्तातिसारमें मल पीला, नीला, किंवा कुछ २ लाल रंगका होय तथा मूर्च्छा दाह और गुदाका पकना ये पित्तातिसारके लक्षण हैं ।

कफातिसारके लक्षण ।

शुक्लं सान्द्रं सकफं श्लेष्मदुष्टं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ४ ॥

अर्थ-मल सपेद, गाढा, कफ मिला, तथा कच्चे मांसके समान, दुर्गंधयुक्त और शीतल होय तथा जिसमें रोमांच होय ये लक्षण कफातिसारके हैं ।

आगंतुजशोकातिसार ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जंतोः ॥ कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणंती प्रकाशम् ॥ ५ ॥ निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं त्वविड्वा निर्गंधं वा गंधवद्वातिसारः ॥ शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥६॥

अर्थ-जिस प्राणीके बंधु (स्त्री पुत्र भाई आदि) नष्टहोगयेहों अथवा धनादिक नष्ट होगये हों तो यह उन्हीं २ का शोक करे तब इस प्राणीकी बाष्प (शोकसे प्रगट देहकी गरमीसे जो नेत्र नाक गले आदिका जल) उसके साथ उष्मा (शोकजन्य गरमी) कोठेमें जायकर जठराग्निको मंद करे तब उसके प्रभावसे यह प्राणी अल्प भोजन करने लगे और वही बाष्पोष्मा कोठेमें जायकर इस प्राणीके रुधिरको कुपित करे अर्थात् अपने स्थानसे चलायमान करदेवे, यह संप्राप्ति कही, अब लक्षण कहते हैं कि वह रुधिर गुदाके मार्गसे गुंजा (घूंघची)

के समान लालरंगका मलसे मिला दुर्गंधयुक्त अथवा विना मल और गंधरहित निकले उसको वैद्य शोकातिसार कहते हैं यह दुश्चिकित्स्य है। कारण कि विना उसके शोक दूर हुए केवल औषधोंसे नष्ट नहीं हो सक्ता यह अतिसार वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है ।

सन्निपातातिसारके लक्षण ।

तंद्रायुक्तो मोहमासाद्य शोषी वर्च्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्तः ॥ सर्वोद्भूते सर्वलिंगोपपत्तिः कृच्छ्रोपायः प्रोक्त एषोत्र नूनम् ॥७॥

अर्थ–जिसमें तंद्रा, मोह, अंगोंका रहजाना, मुख सूखना और जिसके मल रंग अनेक प्रकारका होय, प्यास बहुत लगे, तथा सब दोषोंके लक्षण जिसमें मिलते हों वह (सन्निपातातिसार) कष्टसाध्य कहा है । यह बालक वृद्ध और निर्बलोंको कष्ट साध्य है ।

आमातिसार ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति । पुरीषं भृशदुर्गंधि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस प्राणीका (आम) दोषोंसे मिला अर्थात् (कच्चा) होय उसकी यह परीक्षा है कि उसको जलमें डालनेसे डूबजाता है उसमें अत्यंत दुर्गंध और लिवलिवा (गिलगिला) होय है उसको आम कहते हैं ।

पक्वातिसार ।

एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ॥ लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥

अर्थ–इस पूर्वोक्त आमके लक्षणोंसे विपरीत लक्षण हो अर्थात् दुर्गंध कम हो जलमें डूबे नहीं तथा हलका होय उसको (पक्वमल) जानना ।

अतिसारके असाध्य लक्षण ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ छर्दि मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ १० ॥

अर्थ–सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा और हिचकी ये उपद्रव जिसके होते हैं उस अतिसाररोगीको वैद्य त्याग देवे ।

अतिसारकी चिकित्सा ।

सासृक्सगुह्यगुदवंक्षणबस्तिशूलमामातिसारमनिलप्रतिबद्धविट्कम् ॥ दोषानुरूपविहितैरिह लंघनाद्यैः पेयादिभिस्तमवलोक्य मि कृचिकित्सेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस अतिसारमें रुधिर गिरता हो और लिंग, गुदा, पेडू, बस्ति इनमें पीडा होती होय तथा आमातिसार होवे अथवा वादीसे मल कठोर हो गया हो उसको उसके दोषोंके अनुसार बलाबल विचारके लंघन करावे तथा पेया आदिसे वैद्य चिकित्सा करे ।

प्राक्पंचकोलकजलप्लुततंडुलाभिः पेयाभिरप्यथ पृथग्लघुलाजमंडैः॥मृद्वोदनैर्मधुरदाडिमयूषयुक्तैरामातिसारशमनैरुपादिष्टपथ्यैः ॥ १२ ॥

अर्थ–प्रथम पंचकोलके क्वाथमें चावलोंकी पेयासे अथवा हलके खीलोंके मंडोंसे नरम भात मिष्ट आचारके यूषोंसे मिले इत्यादि पदार्थ आमातिसारमें पथ्य कहे हैं ।

गंगाधर चूर्ण ।

मुस्तमोचरसलोध्रधातकीपुष्पबिल्वगिरिकोटजैः समैः ॥ चूर्णितैः सगुडतक्रसेवितैर्निम्नगाजलरयोपि रुध्यते ॥ १३ ॥

अर्थ–नागरमोथा, मोचरस, लोध, धायके फूल, बेलगिरी और इन्द्रजौ ये समान भाग ले चूर्ण करे इसमेंसे १ तोले चूर्णको गुड मिली छाछसे सेवन करे तो अतिसार प्रबल दस्तभी बंद होय ।

विश्वाभयाघनवचातिविषामराह्वाक्काथोऽथ विश्वजलदातिविषाश्रृतो वा ॥आमातिसारशमनः कथितः कषायः शुंठीघनप्रतिविषाऽमृतवल्लिजो वा ॥ १४ ॥

अर्थ–सोंठ, हरड, नागरमोथा, वच, अतीस, देवदारु इनका क्काथ अथवा नागरमोथा और अतीसका क्काथ अथवा सोंठ नागरमोथा अतीस और गिलोय इनका क्काथ आमातिसारको नष्ट करे। ये तीन क्काथ कहे हैं ।

रुधिरातिसारका यत्न ।

सहरीतकिप्रतिविषारुचकं सवचं सहिंगुसकलिंगयवम् । इति यत्कलिंगयवषट्कमिदंरुधिरातिसारगुदशूलहरम् ॥ १५ ॥

इति चिकित्साकलिकातः ॥

अर्थ–हरड, अतीस, काला निमक, वच, हींग और इन्द्रजौ यह कालिंगयवषट्क योग रक्तातिसार और गुदाके शूलको दूर करे यह चिकित्साकलिकामें लिखा है ।

ज्वरातिसारका यत्न ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुंठीबिल्वाब्दवालकैः ॥ पाठाभूनिंबकुटजैश्चंदनोशीरपद्मकः ॥ १६ ॥ कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशांतये ॥ हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥१७॥

अर्थ–गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रबाला, पाढ, चिरायता, इन्द्रजौ, चंदन, खस और पद्माख इनका शीतल क्काथ (हिम) बनायके पीनेसे ज्वरातिसार दूर हो तथा हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास और दाहको नष्ट करे ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च पद्मकेसरमेव च ॥ पिबेत्तंदुलतोयेन ज्वरातीसारशांतये ॥ १८ ॥

अर्थ–कमलगट्टा, अनारकी छाल और कमलकी केशर समान भाग चूर्ण कर चावलोंके धोवनसे पीवे तो ज्वरातिसार दूर हो ।

उशीरं बालकं मुस्तं बिल्वं धान्यकमेव च ॥ समंगाधातकीलोध्रं विश्वं पाचनदीपनम् ॥ १९ ॥ हंत्यरोचकपिच्छामविबंधं सातिवेदनम् ॥ सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥२०॥

अर्थ–खस, नेत्रवाला. नागरमोथा, बेलगिरी, धानिया, मजीठ, धायके फूल, लोध और सोंठ इनका क्काथ पाचन और दीपन है ।

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥ नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–जिस अतिसारमें पीडा न होती हो और पकगया हो, जिसकी जठराग्नि दीप्त हो, बहुत दिन प्रगट हुए होगये हों और दस्तोंका रंग अनेक प्रकारका हो उसको पुटपाकोंसे चिकित्सा करे ।

कुटजपुटपाक ।

स्निग्धं घनं कुटजकल्कमजंतुजग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पेषयित्वा ॥ जंबूपलाशपुटतंदुलतोयसिक्तं बद्धं कुशेन च बहिर्घनपंकलिप्तम् ॥ २२ ॥ सुस्विन्नमेतदुपपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ॥ कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः सर्वातिसारशमने स्वयमेव संज्ञा ॥ २३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–चिकनी, मोटी, तथा जिसमें घुन न लगा हो ऐसी कूडा वृक्षकी छालको चावलोंके जलसे बारीक पीसे फिर गोला बनाय उसपर जामनके पत्ते लपेट कुशा लपेट ऊपरसे कीचका गाढा २ लेप कर अग्निमें परिपक्व करे जब पुटपाक होजाय तब निकाल पत्ते आदिको दूर कर रस निचोडलेवे इसमें सहत डालके अतिसारवालेको देवे तो यह अतिसार रोगको नष्ट करे। यह वृंद ग्रंथमें लिखा है ।

श्रीपर्णिपर्णावृतदीर्घवृंतजत्वकपीडकातंदुलवारिकल्कितात् ॥ मृद्वेष्टितादग्निविपाचितादसं पिबेदतीसारहरं समाक्षिकम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तया कल्पनया वटादिना कल्कीकृतेनोदररंगेण तित्तिरिः ॥ प्रकल्पितः स्यात्पुढपाकजो रसः सशर्करः क्षौद्रयुतोतिसारजित् ॥ २५ ॥

इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–बेलके पत्ते और सोनापाठाकी छाल, दोनोंको चावलोंके जलसे पीस कल्क बनावे फिर मिट्टी लपेटके पुटपाक करे जब सिद्ध होजाय तब रस निचोडके सहत मिलाय पीवे तो अतिसार दूर होय । इसी प्रकार वड आदि-वृक्षोंके पत्तोंका कल्क करके तीतरके पेटको साफ कर उसमें भर पुटपाककी विधिसे सिद्ध करे जब तैयार होजावे तब आगमेंसे निकाल रस निचोड लेवे उसमें खांड और सहत डालके पीवे तो अतिसार रोग दूर होय यह चिकित्साकलिकामें लिखाहै ।

वृद्धबालातिसारपर ।

कासमर्दकजं मूलं घृष्ट्वा तंदुलवारिणा ॥ दीयते पलिका मात्रा वृद्धबालातिसारिणि ॥ २६ ॥

अर्थ–कसौंदीकी जडको चाँवलोंके धोवनमें पीस ४ तोले देवे तो बालक और वृद्ध मनुष्यके दस्त बंद होय ।

दुर्बलपर ।

प्रपचेत्सर्पिषा पथ्यां लोहपात्रेतियत्नतः शिशिरा सा प्रदातव्या चातिसारिणि दुर्बले ॥ २७ ॥

अर्थ–लोहके पात्रमें घी डालके हरड भूने जब शीतल होजावे तब देवे तो दुर्बलका अतिसार दूर होय ।

कुटजावलेह ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् ॥ क्वाथे पादावशेषेस्मिन्पूते लेहं पुनः पचेत् ॥ २८ ॥ सौवर्चलयवक्षारबिडसैंधवपिप्पली। धातकींद्रयवा जाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ २९ ॥ लिह्याद्बदरमात्रं च शीतं क्षौद्रेण संयुतम्॥ पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ३० ॥

अर्थ-कूडाकी छाल १०० पल लेवे और कूटकर ६४ सेर जलमें औटावे जब १६ सेर जल रहे तब छान लेवे इसको दूसरी कढाईमें औटावे और इसमें कालानिमक, जवाखार, बिडनिमक, सेंधानिमक, पीपल, धायके फूल, इन्द्रजौ और जीरा, ये प्रत्येक दो दो तोले डालके अवलेह सिद्ध करे इसमेंसे एक तोला नित्य सहत डालके सेवन करे तो पक्वातिसार, अपक्वातिसार, अनेक रंगका पीडावाला, और दुष्टसंग्रहणी तथा प्रवाहिका ये सब दूर होंय।

लघुकुटजावलेह ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ॥ तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ ३१ ॥ कुटजक्वाथतुल्योत्र दाडिमस्य रसो मतः ॥ यावल्लपसिकाभासं शृतं तमुपकल्पयेत् ॥ ३२ ॥ तस्याधकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥ अवश्यमरणीयोपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-कूडाकी छाल ४ तोलेको ३२ तोले जलमें डालके क्वाथ करे जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसी प्रकार अनारकी छालका क्वाथ करे, और कूडाकी छालके बराबर अनारका रस मिलावे फिर अग्निपर चढायके लपसीके समान गाढा करे. इसमेंसे १ तोले अवलेहको आठ आनेभर छाछके साथ पीवे तो जो रक्तातिसारवाला मृत्युके निकटभी हो वह बचजावे।

कपित्थाष्टक ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ ३४ ॥ वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः ॥ त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणीकृतैः ॥ ३५ ॥ चूर्णोतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ॥ कासश्वासारुची हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-अजमायन, पीपरामूल, दालचीनी, तेजपात, बडी इलायची और नागकेशर, सोंठ, काली मिरच, चित्रक, नेत्रवाला, जीरा, धनिया, और संचरनिमक, ये समान भाग लेवे ततडीक, धायके फूल, पीपल बेलगिरी, अनारदाना और अजमोद ये समान भाग लेवे, इसमें सबसे तिगुनी या छःगुनी खांड मिलावे, और अठगुना कैथके गूदेका चूर्ण डाले यह कपित्थाष्टक चूर्ण अतिसार, संग्रहणी, क्षय, गोला, गलेके रोग, श्वास, खाँसी, अरुचि और हिचकियोंको दूर करे।

अतिसारमें जल ।

यथा शृतं भवेद्वारि तथातीसारनाशनम् ॥ अतीसारं निहंत्येव शतभागशृतं जलम् ॥ ३७ ॥ यथा शतं तथा क्षीरमतीसारेषु पूजितम् ॥ चिरोत्थितेषु तत्पेयं त्रिभागजलसाधितम् ॥ अमृतं तन्निरामे स्यात्सामेतीसारके विषम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-जलको चतुर्थांश अर्द्धांश इत्यादि क्रमसे औटावे यह जैसे अधिक औटता है उसी २ प्रकार अतिसार रोगको नष्ट करे है, यदि सौ भागका १ भाग शेष रखे तो अत्यन्त हित करे जिस प्रकार जलका औटाना लिखा है उसी प्रकार दूधमें जल डालके औटावे जब दूधमात्र शेष रहे तब उतारके पीवे तो अतिसारको दूर करे। यदि बहुत दिनका अतिसार होय तो

१ भाग दूध और तीन भाग जल डालके औटावे वह दूध निराम अतिसारमें अमृतके तुल्य है और साममें विषके समान मारनेवाला है।

लाईचूर्ण।

सूतं गंधं त्रिकटुकं दीप्यकं जीरकद्वयम् ॥ सौवर्चलं सैंधवं तु रामठं बिडमेव च ॥ ३९ ॥ शक्राशनस्य चूर्णं तु चूर्णतुल्यं प्रदापयेत् ॥ संग्रहं शूलमानाहं हन्यान्नानातिसारजित् ॥ ४० ॥

अर्थ-पारा, गंधक, त्रिकुटा, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, संचरनिमक, सेंधानिमक, हींग, विड निमक और सबकी बराबर भांग मिलायके चूर्ण करे, यह संग्रहणी, शूल, अफरा और अनेक प्रकारके अतिसारोंको दूर करे।

द्वितीय लाइ चूण।

कर्ष गंधकमर्द्धपारदमुभौ कुर्याच्छुभां कज्जलीं त्र्यक्षं त्र्यूषणतश्च पंचलवणं सार्द्धं त्रिकर्षं पृथक् ॥ तच्छक्राशनचूर्णतुल्यनिहितं तत्सर्वमेकीकृतं खादेच्छाणमितं सकांजिकपलं मंदाग्न्यतीसारजित् ॥ ४१ ॥

अर्थ-गंधक १ तोला, शुद्ध पारा ६ मासे दोनोंकी कजली करे, सोंठ, मिरच, पीपल, प्रत्येक एक २ तोले लेवे, पांचों निमक प्रत्येक साढेतीन २ तोले, और सब औषधोंके समान भांगका चूर्ण मिलावे सबको एकत्र करे चार मासे चूर्णको ४ तोले कांजीसे खाय तो मंदाग्नि और अतिसारको दूर करे।

बृहल्लाई चूर्ण।

दीप्यौ क्षारत्रयाग्नित्रिकटुगजकणाबेलभल्लातकोग्रा द्वे जीरे हिंगुकुष्ठाखिलपटुरसगन्धाभ्रधूमोत्तमाश्च ॥ एतेषां तुल्यभागं रज उदितमतीसारशूलग्रहण्यानाहप्लीहप्रमेहानलहतिषु बृहल्लाइचूर्णं प्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ-अजमायन, अजमोद, सज्जीखार, जवाखार और सुहागा, चित्रक, सोंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, बेलगिरी, भिलावा, वच, जीरा, कालाजीरा, हींग, कूट, पांचों निमक, पारा, गंधक, अभ्रक, घरका धूमासा, ये प्रत्येक समान भाग ले चूर्ण करे, यह (बृहल्लाई चूर्ण) अतिसार, शूल, संग्रहणी, अफरा, पिलही, प्रमेह, और मंदाग्निपर परमोत्तम है। यह योगरत्नावलीमें लिखा है।

अतिसारमें त्याज्य।

स्नानावगाहमभ्यंगं गुरुस्निग्धान्नभोजनम् ॥ व्यायाममग्निसंतापमतीसारी विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति वृंदात्

इति योगतरंगिण्यामतीसारचिकित्सा नामैकविंशस्तरंगः ॥ २१ ॥

अर्थ-स्नान करना, जलमें गोते लगाना, मालिश, भारी और चिकने अन्नका भोजन, दंड कसरत और धूप आदिका संताप इनको अतिसार रोगी कदाचित् सेवन न करे। यह वृन्दमें लिखा है।

इति योगतरंगिणीभाषाटीकायामतिसारचिकित्सा नामैकविंशस्तरंगः ॥ २१ ॥

द्वाविंशस्तरंगः ।

संग्रहणी ।

अतीसारे निवृत्तेपि मंदाग्नेरहिताशिनः ॥ भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत् ॥ १ ॥

अर्थ–अतिसार चलेजानेपर मंदाग्निमें उसके विरुद्ध (भारी अन्न आदिका) सेवन करे तब फिर जठराग्नि दूषित हो ग्रहणी (कला) को दूषित करे तब इस प्राणीके संग्रहणी रोग होता है ।

संप्राप्तिपूर्वक लक्षण ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुंचति ॥ २ ॥ पक्कं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥ ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥

अर्थ–अत्यंत कुपित हुए वातसे, पित्तसे, कफसे, संनिपातसे ग्रहणी दूषित हो वह दूषित ग्रहणी अत्यंत भोजन करे कच्चे अथवा पक्के अन्नको गुदाके मार्ग होकर निकाले, उसमें पीडा होय, तथा उस मलमें दुर्गंध आवे, कभी वादीसे गाढा दस्त हो और कभी पित्तसे पानीके समान पतला दस्त हो इसको वैद्यक शास्त्रके ज्ञाता संग्रहणी रोग कहते हैं ।

ग्रहणी ।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता ॥ पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणीं तां विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥

अर्थ–उदरमें छठी पित्तधरा नामक जो (कला) कही है यह पक्वाशय और आमाशयके बीचमें है, इसीको विद्वान् (ग्रहणी) कहते हैं ।

मतांतर ।

अथामसंचयादेव जायते ग्रहणीगदः ॥ क्वचिदामं क्वचित्पक्कं सार्यते विट्सरुग्द्रवम् ॥ ५॥पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा विंशतेर्वा दिनात्परम् ॥ मासाद्वापि भवेत्कोपो ग्रहणीरुजि मानवे ॥ ६ ॥

अर्थ–अब मतांतर कहते हैं कि यह ग्रहणीका रोग जब आमका संचय होता है तभी होता है इसमें कभी तो कच्चा दस्त होता है और कभी पकाहुआ दस्त होता है, तथा दर्दके साथ पतला दस्त होता है यह ग्रहणीरोग किसीके पंद्रहवें दिन किसीके बारह दिनमें किसीके बीसवें दिन और किसी २ प्राणीके १ महीने इसका कोप और दौरा होता है ।

ग्रहणीकी चिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ॥ अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विरेचयेत् ॥ ७ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–ग्रहणीके आश्रित वातादि दोषोंकी अजीर्णके समान चिकित्सा करे और इस आमको आमातिसारके समान पचानी चाहिये। यह वृंदमें लिखा है ।

विश्वादिभिः सरुजि पाचनमत्र शस्तं मुस्तादिभिर्भवति संग्रहणं ततश्च ॥ स्याद्दीपनं तदनु च ग्रहणीविकारे कल्याणकारिभिरिति ग्रहणी चिकित्स्या॥८॥

अर्थ–इस पीडायुक्त संग्रहणी रोगमें विश्वादि क्काथ करके आमको पचावे फिर मुस्तादि क्काथसे इसके दस्तोंको रोकना चाहिये, जब पाचन ग्रहण हो चुके तब इसको दीपन कर्त्ता

औषधी देवे यह इस प्राणीके कल्याण करनेवाली ग्रहणी रोगकी चिकित्सा है ।

कल्याणकावलेह ।

पाठाधान्ययवान्यजाजिहबुषाचव्याग्निसिंधूद्भवैः सश्रेयस्यजमोदकीटरिपुभिः कृष्णाजटासंयुतैः॥सव्योषैः सफलत्रिकैः सत्रुटिभिस्त्वक्पत्रकैरौषधैरित्यक्षप्रमितैः सतैलकुडवैः साष्टत्रिवृन्मुष्टिभिः ॥ ९॥ एतैरामलकीरसस्य तुलया सार्द्धं तुलार्द्धं गुडात्पक्कव्यं भिषजावलेहवदयं प्राग्भोजनाद्भक्षितः ॥ ये केचिद्ग्रहणीगदाः सगुदजाः कासाः सशोषामयाः सश्वा सश्वयथुस्वरोदररुजः कल्याणकस्ताञ्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–पाढ, धनिया, अजमायन, जीरा, हाउबेर, चव्य, चित्रक, सेंधानिमक, हरड, अजमोद, वायविडंग, पीपलामूल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, इलायची, दालचीनी और निसोथ ये प्रत्येक एक पल लेवे और १०० पल आमलोंका रस मिलावे और १० पल गुड मिलावे सबको मिलायके अवलेह बनावे वैद्य इसको प्रातःकाल भोजनसे प्रथम भक्षण करे तो सब ग्रहणीके विकार, गुदाके रोग, खाँसी, शोष, श्वास, सूजन, स्वरभंग और उदरविकारोंको यह कल्याणकावलेह दूर करे ।

तक्रहरीतकी ।

त्रिकांशे तक्रस्य द्विकुडवपटौ षष्टिरभयाः पचेद्यस्थीः सार्द्ध घृततिलजशुंठ्यग्निकुडवैः ॥ समावाप्याजाजीमरिचचपलादीप्यकपलं लिहन्नेतां हंति ग्रहणिमनलं दीपयति च ॥ ११ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–बडी २ हरड ६० नग लेवे उनको तिगुनी १२ सेर छाछमें डालके भिगोय देवे और आधा सेर निमक डाले फिर उनको निकाल घृत तिलोंका खार सोंठ चित्रक इनके तीन तीन पाव मिलाय अग्निपर पचावे तथा यह प्रक्षेप करे जैसे जीरा, मिरच, पीपल और अजमायनका चूर्ण डालके चाटे तो जीर्णादि रोग दूर हों ग्रहणीकी अग्निको दीपन करे । यह वृन्दमें लिखा है ।

भूनिंबकौटजकटुत्रिकमुस्ततिक्ताः कर्षांशका सशिखिमूलपिचुद्वयाः स्युः ॥ त्वक्कौटजीपलचतुष्कमिता गुडांभः पीतं नृणामिह हरेद् ग्रहणीविकारान् ॥ १२॥ इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–चिरायता, इन्द्रजौ, सोंठ, मिरच, पीपल, मोथा, कुटकी ये प्रत्येक तोला २ लेवे और चित्रककी छाल २ तोले लेवे कुडाकी छाल १६ तोले सबको एकत्र कर गुडके सरबतसे सेवन करे तो ग्रहणीका रोग दूर हो । यह वृंदमें लिखा है ।

जातीफलादि चूर्ण ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेसरैः ॥ कर्पूरचंदनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥ १३ ॥ शुंठीविडंगमरिचैः समभागैर्विचूर्णितैः॥ यावंत्येतानि सर्वाणि दद्याद्भंगां च तावतीम् ॥ १४ ॥ सर्व चूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः ॥ १५ ॥ अस्य प्रभावाद ग्रहणी

कासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यांति वेगतः ॥ १६॥

अर्थ-जायफल, लौंग, इलायची, पत्रज, दालचीनी, नागकेशर, कपूर, चंदन, तिल, वंशलोचन, तगर, आमला, तालीसपत्र, पीपल, हरड, कलौंजी, चित्रक, सोंठ, वायविडंग और मिरच ये समान भाग ले चूर्ण करे सब चूर्णकी बराबर भांग मिलावे और इन सबकी बराबर मिश्री मिलावे. इसमेंसे १ तोले चूर्णको सहतमें मिलायके सेवन करे तो ग्रहणी, खाँसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वातकफके विकार सरेकमाँ ये सब दूर हों ।

तालीसादिचूर्ण ।

तालीसोग्रतुगाषडूषणनिशाबिल्वाजमोदासठीचातुर्जातलवंगधातकिविषाजातीफलं दीप्यकम् ॥ पाठामोचरसालपंचलवणाजाजीद्वयं बेलकं वृक्षाम्लाम्लवरापलाशतरुजं मांस्यंबुदं वालकम् ॥ ॥ १७ ॥ ऐंद्रीब्रह्मसुवर्चला दृढपदी कुष्टं समस्तं समं बल्या सर्वसमा जया खिलसमा मत्स्यंडिका वासिता ॥ चूर्णोऽयं ग्रहणीक्षयादिकसनश्वासारुचिप्लीहरुग्दुर्नामातिसृतिज्वरार्तिपवन स्थौल्यप्रमेहप्रणुत् ॥ १८ ॥ तीव्रापस्मृतिपांडुगुल्मजठरश्लेष्मोत्थपित्तोद्भवोन्मादध्वंसविधायको विजयते सर्वामयध्वंसकः ॥ बालानां च विशेषतो हितकरः सुस्पष्टवाणीप्रदः पुष्ट्यायुर्बलकांतिधीस्मृतिमहामेधाविलामप्रदः ॥ १९ ॥

अर्थ-तालीसपत्र, वच, वंशलोचन, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, हलदी, बेलगिरी, अजमोद, कचूर, तज, पत्रज, बडी इलायची, नागकेशर, लौंग, धायके फूल, अतीस, जायफल, अजमायन, पाढ, मोचरस, हरताल, पाँचों निमक, जीरा, कालाजीरा, वायविडंग, तंतड़ीक, चूक, त्रिफला, पलासका खार, जटामांसी, नागरमोथा, सुगंधवाला, इन्द्रायन, हुरहुर, बहुफरी और कूठ, ये समान भाग लेवे, सबकी बराबर बल्या और इन सबके बराबर भाँग मिलावे, और फिर सब चूर्णके बराबर सपेद खांड मिलाय लेवे यह चूर्ण ग्रहणी, क्षय, खाँसी, श्वास, अरुचि, प्लीह, बवासीर, अतिसार, ज्वर, वादी, स्थूलता, प्रमेह, अपस्मार, पांडु, गोला, उदर, कफ पित्तके विकार, उन्माद इत्यादि सर्व रोग दूर हों, बालकोंको अत्यंत हितकारी और सुंदरवाणीका देनेवाला, पुष्टिकर्ता आयुदाता, बल, कांति, बुद्धि, स्मरण और मेधाका देनेवाला है।

चित्रकादि गुटिका ।

चित्रकंपिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥ व्योषहिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र कारयेत् ॥ २० ॥ गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमस्य रसेन वा ॥ कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ २१ ॥

अर्थ-चित्रक, पीपरामूल, सर्जीखार, जवाखार, पांचों निमक, सौंठ, मिरच, पीपल, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको एकत्र करे, फिर बिजौरेके रससे अथवा अनारदानेके रसमें खरल कर गोली बनावे। यह आमको पचावे और जठराग्निको दीपन करे ।

तक्रपान ।

ग्रहणीरोगिणस्तक्रं संग्राहि लघुदीपनम् ॥ पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥ २२ ॥ श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ॥ ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ २३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-ग्रहणी रोगवालेको छाछका पीना दस्तोंको रोके, हलकी, दीपन, पथ्य, मधुरपाकी होनेसे पथ्य है और पित्तको कुपित नहीं करे अथवा कच्चा वेलफलके कल्कमें सोंठका चूर्ण मिलावे इसमें गुड मिलायके खाय ऊपरसे छाछ पीवे तो ग्रहणीरोग दूर हो। यह वृंदमें लिखाहै।

ग्रहणीकपाट ।

शुद्धाहिफेनबलिसूतकपर्दभस्महालाहलोषणविशुद्धसुवर्णबीजैः ॥ अंभोधिपंक्तिकरशैलधराष्टविंशत्यंशैर्विचूर्णिततमैर्ग्रहणीकपाटः ॥ २४ ॥ वल्लोस्य हंति मधुना सह जीरकेण भुक्तोतिसारमपि संग्रहणीमुदग्राम्॥आमं विपाच्य सहसा जनयत्यवश्यं वैश्वानरं जठरवार्तिनमार्तिभाजः ॥ २५ ॥

अर्थ-शुद्ध अफीम ४ तोले, गंधक, पारा २ तोले, कौडीकी भस्म ७ तोले, विष १ तोला, काली मिरच ८ तोले और शुद्ध धतूरेके बीज २० तोले लेवे सबको खरल कर लेवे, यह ग्रहणीकपाट रस २ रत्तीको जीरेके चूर्ण और सहतमें मिलायके चाटे तो अतिसार और घोरसंग्रहणीको दूर करे आमको पचावे और जठराग्निको प्रज्वलित करे ।

द्वितीय ग्रहणीकपाट ।

रसेंद्रगंधातिविषाभयाभ्रक्षारत्रयं मोचरसो वचा च ॥ जया च जंबीररसेन पिष्टः पिंडीकृतः स्याद् ग्रहणीकपाटः । ॥ २६ ॥ तस्यार्द्धमाषं मधुना प्रभाते शंबूकभस्माभियुतं निहंति ॥ उग्रं ग्रहण्यामयमग्निमांद्यं क्षैण्यामयं श्वाससुरःक्षतं च ॥ २७ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ-पारा, गंधक, अतीस, हरड, अभ्रक, सज्जी, सुहागा, जवाखार, मोचरस, वच और भांग सब समान भाग लेवे,जंभीरीके रससे खरल कर गोली बनाय लेवे यह (ग्रहणीकपाट) रस ३ रत्ती और ३ रत्ती छोटे शंखकी भस्म मिलाय सहतके साथ चाटे तो घोर संग्रहणी, मंदाग्नि, क्षीणता रोग, क्षय, श्वास और उरःक्षतको दूर करे। यह रत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

पथ्यापथ्य ।

पिच्छिलानि कठोराणि गुरूण्यन्नानि यानि च ॥ आमकृंति न सेव्यानि ग्रहणीरोगिभिः क्वचित् ॥ २८ ॥

इति श्रीयोगतरं० ग्रहणीचिकित्सा नाम द्वाविंशस्तरंगः ॥ २२ ॥

अर्थ-पिच्छिल पदार्थ, कठोर भारी ऐसे अन्न, तथा जो आमके करनेवाले अन्न हैं उनको संग्रहणी रोगवाला कदापि सेवन न करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां ग्रहणीरोगाधिकारो द्वाविंशस्तरंगः ॥२२॥

त्रयोविंशस्तरंगः।

अर्शोरोगाधिकारः।

अर्शरोगकी संप्राप्ति।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥ अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रयं दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ॥ १॥

अर्थ-पृथक् २ दोषोंसे तीन, और समस्त दोषोंसे १ तथा रुधिरसे और सहज इस प्रकार सर्व बवासीर गुदाकी वलीमें छः प्रकारकी होती हैं।

मांसांकुरान्नपानादौ कुर्वंत्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ २ ॥

अर्थ-वात पित्त और कफ ये दोष त्वचा, मांस, और मेदाको बिगाडके गुदाके मांसमें अनेक प्रकारके मस्सोंको प्रगट करें उनको अर्श (बवासीर) कहते हैं।

पूर्वरूप।

विष्टंभोन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ॥ कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोल्पविट्कता ॥३॥ ग्रहणीदोषपांड्वर्तेराशंका चोदरस्य च ॥ पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ४ ॥

अर्थ-जिसके बवासीर होनेवाली होती है उसके पेटमें अन्नका विष्टंभ हो, दुर्बलता, कूखोंका फूलना, कृशता, बहुतसी डकारोंका आना, अल्प मल उतरे, ग्रहणीरोग, पांडुरोग, उदर रोगकी शंका होना ये लक्षण होते हैं।

वातार्श।

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥ म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषमाः परुषाः खराः ॥ ५ ॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ बिंबीकर्कंधुखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ॥ ६ ॥ केचित्कदंबपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः॥शिरःपार्श्वांसकटचूरुवंक्षणाभ्याधिकिन्यथाः । ॥ ७ ॥ क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ८ ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विड्बद्धमुपवेश्यते ॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रः प्रजायते ॥ गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥ ९ ॥

अर्थ-वातोल्बण बवासीरके मस्से सूखे, चर्चनेवाले, मुरझायेसे, काले और लाल, कठिन अपिच्छिल, विषम, गौकी जीभके समान खरदरे, कठोर, परस्पर समानतारहित, टेढे, तीक्ष्ण, फटे मुखके, कँदुरी, ककोडा, खिजूर और कपास फलके समान, कोई कदंबके फूल सदृश, कोई सपेद सरसोंके समान हों। ये मस्तक, पसली, कंधा, कमर, ऊरु और वंक्षण (पेडू) इनमें अधिक पीडा करते, तथा छींक, डकार, अफरा, हृदयरोग और अरुचिके करनेवाले हैं, इनसे पीडित हो गांठदार थोडा, शब्दके साथ और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त पीडा, झाग, चीकटके समान थर युक्त और गाढे मलको त्याग करे। उस प्राणीके त्वचा, नख, मल, मूत्र, नेत्र और मुख ये काले होजावें, एव वातकी बवासीरमें गोला, पिलही, उदररोग और अष्ठीला ये उत्पन्न होते हैं।

पित्तार्श ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥ १० ॥ तन्वस्रस्राविणो रक्तास्तनवो मृदवस्तथा ॥ शुकजिह्वायकृत्पिंडजलौकावक्त्रसंनिभाः ॥ ११ ॥ दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारतिमोहदाः॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्मपीतरक्तामवर्चसः॥ यवमध्या हरित्पीता हारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १२ ॥

अर्थ–पित्तोल्बण बवासीरके मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और कालौंच युक्त होय, पतला जिनमेंसे रुधिर बहे, तथा उनमें रुधिरकीसी गंध आवे, महीन, नरम और लंबे तोतेकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखक समान हों। यह पित्तकी बवासीर दाह, पाक, ज्वर, पसीने, प्यास, मूर्च्छा, मनका न लगना और मोहको करे है। इसमें पतला, नीला, गरम, पीला, रुधिरमिला और कच्चा मलका दस्त होय जौके आकार (बीचमें मोटा और दोनों बगलमें पतला) हो, हरा और पीले रंगका तथा उस रोगीके त्वचा और नाखून आदि हलदीके समान पीले हों।

कफार्श ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मंदरुजः सिताः ॥ १३ ॥ उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कंड्वाढ्याः स्पर्शनाप्रियाः ॥ १४ ॥ करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ वंक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः ॥१५॥ सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाडयशिशिरज्वरकारिणः ॥ १६ ॥ क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायाः विकारदाः ॥ वसाभाःसकफप्रायापुरीषाः सप्रवाहिकाः न स्रवंति न भिद्यंते पांडुस्निग्धत्वगादयः ॥ १७ ॥

अर्थ–कफोल्बण बवासीरके मस्से भीतरी जडवाले सघन मंद २ पीडाकारक सफेद रंगके ऊंचे उठे हुए, मोटे, चिकने, टेढे, गोल, भारी, निश्चल, पिच्छल, गीले, श्लक्ष्ण जिनमें खुजली होती हो और छूनेमें प्रिय लगे तथा करीर (बांसके अंकुर) कटहलकी गुठली और गौके थनकेसे आकारवाले हों पेडूमें अफराके करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें खींचनेके समान पीडा कर्त्ता तथा खांसी, श्वास, हृल्लास, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा मस्तकमें सरदी भरी हुईसी प्रतीत हो, सरदीका ज्वर करनेवाले, स्त्रीरमणकी इच्छा न होना, मंदाग्नि, वमन और आम है बहुतसी जिसमें ऐसे अतिसार और संग्रहणी आदि रोगोंके प्रगट कर्त्ता होते हैं। चर्बीके समान, कफ और घीकेसे मिले दस्त हों, तथा प्रवाहिका रोग हो और मस्सोंमेंसे रुधिर नहीं निकले, गाढा दस्त होनेपर भी मस्से नहीं फूटें तथा देहकी त्वचा आदि (नेत्र, नख) ये कुछ २ पीले और चिकने हों, ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं।

त्रिदोषार्श ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ १८ ॥

अर्थ–जो पूर्व वातादि तीनों दोषोंके लक्षण

कहे हैं वे सब मिलते हों उसको संनिपातज बवासीर जानना और येही लक्षण सहजार्शके हैं ।

रक्तार्श ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ वटप्ररोहसदृशा गुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥ १९ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ स्रवंति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २० ॥ भेकाभः पीडयते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥ हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेंद्रियः ॥ २१ विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ॥ तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ॥२२॥

अर्थ–रक्तोल्बण (खूनी बवासीर) के मस्से जो गुदामें होते हैं वे पित्तकी बवासीरके समान होते हैं । वडके अंकुरसमान घूँघची और मूँगेके समान होते हैं । यदि उनको गाढा मल दबावे तो अत्यंत दुष्ट, गरम रुधिर गिरे, इस बहुत रुधिरके गिरनेसे वर्षाके मेंडकके समान पीला पडजावे. और रुधिरके अत्यंत क्षीण होनेसे यह अत्यंत दुःखी होय । देहका वर्ण, बल, उत्साह और ओज ये क्षीण होजाँय, इन्द्री (नेत्र नासिका आदि) व्याकुल होजावें. मल काले रंगका कठोर और रूखा उतरे. प्रायः अधो वायुका निकलना बंद होजाय अथवा पतला और झागदार ऐसा रुधिर निकले. कमर जाँघ और गुदा इनमें पीडा होय ।

साध्यत्वादि ।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ॥ अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ २३ ॥ द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥२४॥ सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरा वलिम् ॥ जायंतेऽर्शांसि संसृत्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥२५॥

अर्थ–जो बवासीर बाहरकी वलीमें प्रगट हुई हो और एक दोषोल्बणकी हो और जिनको हुए एक वर्षसे अधिक न हुआ हो ऐसी बवासीर सुखसाध्य जाननी । जो बवासीर भीतरकी दूसरी वलीमें दो दोषोंसे प्रगट हुई हो और जिसको हुए एक वर्ष व्यतीत होगया हो वह कष्टसाध्य जाननी । सहज कहिये जन्म होनेके समयसे जो बवासीर होय और तीन दोषोंसे प्रगट हुई हो, एवं तीसरी वलीमें जो हो सो बवासीर असाध्य जाननी ।

अर्शक अरिष्ट ।

हस्तादिशोफैर्हृत्पार्श्वशूलैश्छर्दिज्वरादिभिः ॥ तृष्णया गुदपाकेन निहन्युर्गुदजा नरम् ॥ मेढ्रादिष्वपि जायंते दुर्नामानि नृणामिह ॥ २६ ॥

अर्थ–जिस बवासीरके होनेसे हाथ पैर आदिमें सूजन होय और हृदय तथा पसलीमें दर्द होय । वमन, ज्वर, तृषा और गुदा पकजाय तो वह उस रोगीको मारडाले. यह बवासीरका रोग मेढ्र (लिंग) आदिमेंभी होता है ।

अर्शका यत्न ।

तत्रार्शसामुपदिशंति चतुःप्रकारमारोग्यमेकमगदैरपरं च शस्त्रैः ॥ क्षारेण चान्यदनलेन चतुर्थमित्थमित्यागमैककृतिनः किल सुश्रुताद्याः ॥ २७ ॥ स्यादौषधैरचिरजेषु चिरोद्गतेषु क्षारेण च

क्षतजपित्तसमुद्भवेषु ॥ स्थूलेषु वातकफजेष्वनलेन शस्त्रैः सत्त्वाधिकस्य बलिनश्च सतश्चिकित्सा ॥ २८ ॥

इति चिकित्साकलिकातः ।

अर्थ–बवासीरकी चिकित्सा चार प्रकारकी हैं. एक तो औषधोंसे करी जाती है. दूसरी शस्त्रसे करीजाय है. तीसरी क्षारके लगानेसे और चतुर्थ बवासीरकी चिकित्सा अग्निसे अर्थात् दाग देनेसे होय है इस प्रकार सुश्रुतादि आचार्य कहते हैं । तहाँ जिसको बहुत दिन न हुए हों उसको औषधिद्वारा चिकित्सा करे और जिसको हुए बहुत दिन होगये हों तथा स्रावके होनेसे अथवा पित्तसे जो प्रगट हुई हो उसको क्षार लगायके काटडालना और जो वातकफसे प्रगट हो और मोटी होय उसको दाग देनेसे नष्ट करे तथा जो प्राणी बलवान् हो तथा पराक्रमी होय उसकी शस्त्रद्वारा चिकित्सा करे अर्थात् शस्त्रसे काटडाले यह चिकित्साकलिका ग्रंथमें लिखा है ।

अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ॥ सन्नेऽनले संति न संति दीप्ते रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥ २९ ॥ यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ॥ अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ ३० ॥

अर्थ–अर्शरोग, अतिसार और संग्रहणी ये रोग अन्योन्य एकके निदानसे दूसरा प्रगट होय है सो ये तीनों विकार अग्निके मंद होनेसे होते हैं और दीप्त जठराग्निके होनेसे नहीं होते अतएव इन तीनों रोगोंमें विशेष करके जठराग्निकी रक्षा करे । जो अन्न, जल और औषध वातको अनुलोम करनेवाले हैं और जो अग्निके बलको बढानेवाले होंय वेही बवासीरके रोगियोंको नित्य सेवन करने चाहिये ।

पित्तातिसारवद्भिन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत् ॥ उदावर्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥ ३१ ॥ प्रवृत्तबहुलास्राणि पित्तशोणितनाशनैः ॥ विड्विबंधे हितं तक्रं यवानीविश्वसंयुतम् ॥ ३२ ॥ न प्ररोहंति गुदजाः प्रायस्तक्रसमाहताः॥ तिलं भल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम् ॥ ३३ ॥ दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपांडुज्वरापहम् ॥ मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ॥ सर्वेसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ३४ ॥ ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति प्रशूलगुल्मगदान् ॥ निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि नाशयत्याशु ॥ ३५ ॥ मृल्लिप्तं सौरणं कंदं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत् ॥ अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ ३६ ॥

अर्थ–जिस बवासीरमें दस्त होते होंय उसकी पित्तातिसारके समान चिकित्सा करे और जिसमें बहुत गाढा मल उतरता होय उस बवासीरकी उदावर्त रोगके समान चिकित्सा करे, जिनमें रुधिर अत्यंत गिरता होय उनकी पित्त और रुधिरनाशक यत्नोंसे चिकित्सा करे । मलके रुकनेमें अजवायन और सोंठका चूर्ण डालके छाछ पीवें. प्रायः छाछ करके नष्ट करे हुए गुदाके मस्से फिर नहीं प्रगट होते ! अथवा तिल मिलाय हरड और गुड समान भाग लेके सेवन करे तो बवासीर, श्वास, खाँसी,

प्लीहा, पांडुरोग और ज्वर ये नष्ट होंय । अथवा मिरच, सोंठ, चित्रक और जमींकंद क्रमसे दूने लेय और सबकी बराबर गुड ले कूट पीस लड्डू बनाय ले यह जठराग्निको बढावे, उदरविकारको नष्ट करे, शूल और गोलेके रोगको निर्मूल करे तथा श्लीपद और बवासीरको तत्काल नष्ट करे अथवा सूरन (जमीकंद) के कंदको कपडमिट्टी कर पुटपाककी विधिसे अग्निमें पकाय लेवे. फिर इसको कटु तेल और सेंधेनिमकमें मिलायके बवासीर दूर करनेके वास्ते भक्षण करे ।

रक्तार्शका यत्न ।

नवनीततिलाभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात्॥ दधिरसमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यंति रक्तवहाः ॥ ३७ ॥

अर्थ—मक्खन और तिलोंके खानेसे अथवा नागकेशर, मक्खन और मिश्रीके खानेसे या दहीकी मलाई और मथित (छाछका भेद) इनके सेवनसे खूनी बवासीरके मस्से शांत होंय ।

शिरीषबीजं द्वौ क्षारौ लांगली सैंधवं वचा ॥ स्नुहीक्षीरेण पिष्टानि गवां पित्तेन भावयेत् ॥ ३८ ॥ अर्शांसि लेपयेत्तेन सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥ लिप्तान्येतानि सर्वाणि विनश्यंति न संशयः॥३९॥यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ ॥ तथा ह्यर्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करौ हतः ॥ ४० ॥ हरिद्रायाः प्रयोगेण प्रमेहा इव षोडश ॥क्षाराग्निभ्यां निवर्तंते तथा दृश्या गुदोद्भवाः ॥ ४१ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ—सिरसके बीज, सज्जीखार, जवाखार, कलियारी, सेंधानिमक और वच इनको थूहरके दूधमें पीसके गौके पित्तेकी भावना देवे फिर इसको बवासीरके मस्सोंपर सात रात्रि लेप करे तो वारंवार सब मस्से नष्ट हो जांय अथवा जैसे खैरसार और बिजैसारसे सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं उसी प्रकार और भिलाएसे सर्व प्रकारकी बवासीर नष्ट होती है । अथवा जैसे हलदीके प्रयोगसे सोलह प्रकारकी प्रमेह नष्ट होती है, उसी प्रकार जो बवासीरके मस्से दीखते हैं वे क्षार लगानेसे और दागनेसे नष्ट होते हैं. यद्यपि प्रमेह बीस प्रकारकी है परंतु यहांपर वातकी प्रमेह त्यागकर १६ ही कही हैं ।

शूरणपिंडिका ।

भागाः षोडश वृद्धदारुसहितात्कंदात्कृतात्कर्कशादष्टौ चित्रकमूलतश्च तुलिताः स्युस्तालमूलीयुतात् ॥ तालीसत्रिफलाविडंगमगधाविश्वोपकुल्याजटाभल्लातैश्च चतुष्पलैर्द्विपलिकैरेला लवंगोषणैः ॥ ४२ ॥ इत्येभिः सकलैर्गुडद्विगुणितैः कुर्याद्भिषङ्मोदकान्यैर्भुक्तैर्न नृणां भवंति गुदजा न प्लीहपांड्वामयाः ॥ नो गुल्मग्रहणीगदोदररुजः कोष्ठे न शूलानि च श्वासश्लीपदशोफविद्रधियकृद्ग्रन्थ्यर्बुदादीनि च ॥ ४३ ॥

अर्थ—विधायरा १६ तोले, जमीकंद १६ तोले, चित्रककी छाल ८ तोले, मूसली, तालीसपत्र, त्रिफला, वायविडंग, पीपल, सोंठ, पीपलामूल और भिलाए सब दो पल लेवे एवं इलायची, लौंग और कालीमिरच सव दो पल ल और इन सबसे दूना गुड लेवे सबको कूट पीस गुड मिलायके लड्डू बनावे. जो प्राणी इन लड्डुओंको भक्षण करे उनके बवासीर, प्लीह, पांडु-

रोग, गोला, ग्रहणी, उदर और शूल, श्वास, श्लीपद, सूजन, विद्रधि, यकृत्, गांठ और अर्बुद ये रोग कदापि नहीं हों ।

कांकायन वटक ।

पथ्यादलस्य गुरुणः पलपंचकं स्यादेकं पलं च मरिचादपि जीरकाच्च॥कृष्णा-त्तदुद्भवजटाचविकाग्निशुंठ्यः कृष्णा-दिपंचकमिदं पलतः प्रवृद्धम् ॥ ४४ ॥ एतैररुष्करपलाष्टकसंयुतैः स्यात्कंदस्त्व-रुष्करफलाद् द्विगुणः प्रकल्प्यः ॥ स्या-द्यावशूककुडवार्द्धमतः समस्ताद्योज्यो गुडो द्विगुणितो वटकीकृतश्च ॥ ४५ ॥ कांकायनेन मुनिना गदितः किलायं श्रेयस्करेण वटकोऽत्र गुदामयेषु ॥ क्षाराग्निशस्त्रयतनैरपि ये न सिद्धाः सिध्यंत्यनेन वटकेन गुदामयास्ते ॥४६॥

इति चिकित्सातः ।

अर्थ–हरडका वल्कल ५ पल, काली मिरच १ पल, जीरा १ पल, पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ प्रत्येक एक एक पल क्रमसे अधिक लेवे। मिलाये ८ पल और जमी-कंद १६ पल तथा जवाखार आध पाव ले और सबकी बराबर गुड मिलाय गुटिका बनाय लेवे, यह कांकायनऋषिकी कही हुई (कांकायनगुटिका) सर्वगुदाके रोगोंपर है, जो क्षार अग्नि शस्त्र आदिके लगानेसे नहीं जाय, वे गुदाके रोग इस गोलीके सेवन करनेसे दूर होय हैं । यह चिकित्सा ग्रंथमें लिखाहै ।

सिंधूत्थं देवदाल्याश्च बीजं कांजिकपे-षितम् ॥ गुदांकुरान्प्रलेपेन पातयत्यु-ल्बणानि च ॥ ४७ ॥

अर्थ–सेंधानिमक और बंदालके फलोंको काँजीमें पीस गुदाके मस्सोंपर लगावे तो घोर मस्से गिरजावें ।

समशर्करचूर्ण ।

शुंठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णी-कृतं क्रमविवर्धितमूर्द्धमंत्यात् ॥ खादे-दिदं समसितं गुदजाग्निमांद्यगुल्मारु-चिश्वसनकंठहृदामयेषु ॥ ४८ ॥

इति समशर्करं चूर्णम् ॥

अर्थ–सोंठ, पीपल, मिरच, नागकेशर, पत्रज, दालचीनी, इलायची ये अंतके क्रमसे बढती भाग लेवे (जैसे इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग) सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलायके सेवन करे तो बवासीर, मंदाग्नि, गोला, अरुचि, श्वास, कंठ और हृदयके रोग ये दूर हों ।

चतुःसममोदक ।

सनागरारुष्करवृद्धदारुकं गुडेन यो मोदकमत्त्युदारकम् ॥ अशेषदुर्नामक-रोगदारकं करोति वृद्धिं सहसैव दार-कम् ॥ ४९ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–सोंठ, भिलावा, विधायरा इनके समान गुड मिलायके सेवन करे तो बवासीर दूर हो और जठराग्निको बढावे। यह रत्नावली ग्रंथमें लिखाहै.

देवदालीकषायेण शौचमाचरतांनृणाम्॥ किं वा तद्धूम सवाभिः कुतः स्युर्गुदजां-कुराः ॥ ५० ॥ तत्रायोलांछनं केचि-द्दुर्नामघ्नं बुधा जगुः ॥ तक्रं सकृष्णं पिबतां दुर्नामश्रवणं कुतः ॥ ५१ ॥

अर्थ–बंदालके क्वाथसे गुदाको धोयाकरे अथवा बंदालके फलकी धूनी दियाकरे तो बवा-सीरके मस्से दूर हों। कोई आचार्य्य कहते हैं तत्ते

लोहेसे दाग देवे तो बवासीर दूर होय अथवा छाछमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो बवासीर दूर होय।

अर्शकुठार रस।

भागः शुद्धरसस्य भागयुगुलं गंधस्य लोहाभ्रयोः षड्बिल्वाग्निदलोषणात्रयरजो दंती च भागैः पृथक् ॥ पंच स्युः स्फुटटंकणस्य च यवक्ष रस्प सिंधूद्भवा भागाः पंच गवां जलं सुविमलं द्वात्रिंशदेतत्पचेत् ॥ ५२ ॥ स्नुग्दुग्धं च गवां जलावधि शनैः पिंडीकृतं व्रजेद्द्वौमाषौ गुदकीलकाननजटाच्छेदे कुठारो रसः५३ इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–पारा शुद्ध १ तोला, गंधक २ तोले, लोह, अभ्रक इनके छः छः तोले लेवे, बेलगिरी, चित्रक, पत्तज, सोंठ, कालीमिरच, पीपल और दंती प्रत्येक एकएक तोला लेवे, सुहागा ५ तोले, जवाखार ५ तोले, सेंधानिमक ५ तोले और गोमूत्र ३२ तोलेमें इनको पचावे थूहरका दूध ३२ तोले ले फिर गाढा होनेपर गोली बनाय ले २ मासे नित्य सेवन करे तो यह अर्शकुठाररस बवासीरको दूरकरे। यह रसरत्नप्रदीपमें लिखाहै।

बोलबद्धपर्पटी रस।

शुद्धं बलिं रससमं सुदृढं विमर्द्य सर्पिःप्लुतं द्विगुणबोलरजोविमिश्रम् ॥ तावत्पचेद्द्रवति लोहमये च यावत्पात्रे क्षिपेच्च कदलीदलयुग्ममध्ये ॥५४॥ जातो रसः पर्पटिकाभिधानः समस्तदुर्नामकरोगहारी ॥ संसेवितो वल्लचतुष्कमात्रमार्तस्य पुंसस्तनुपुष्टिकारी ॥ ५५ ॥

अर्थ–पारा दो तोले, गंधक २ तोले, बेलका चूर्ण ४ तोले, इनको घृतमें डालके लोहेके पात्रमें पचावे, जब गंधक पिघलके सब एक रस होजाय तब उतार केलेके पत्तेपर ढाल देवे ऊपरसे दूसरा पत्ता ढकके दाब देवे यह बोलबद्ध पर्पटी ८ रत्ती सेवन करे तो सर्व प्रकारकी बवासीर दूर हो और देह पुष्ट होय।

नित्योदित रस।

मृतं सूताभ्रलोहार्कविषं गंधं समंसमम्॥ सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ॥ ५६ ॥ द्रवैः सूरणकंदोत्थैः खल्वे मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ माषमात्रं लिहेदाज्यैरसाध्यार्शांसि नाशयेत्॥रसो नित्योदितो नाम्ना ह्यर्शोरोगकुलांतकः ॥५७॥

अर्थ–चंद्रोदय अभ्रक, लोह, ताम्रभस्म, विष और गंधक ये समान भाग लेवे और सबकी बराबर मिलाये लेवे, सबका बारिक चूर्ण कर जमीकंदके रससे तीन दिन खरल करे, इस रसको १ मासा ले घीमें मिलायके चाटे तो असाध्य भी बवासीर नष्ट होय। यह नित्योदित रस है।

पथ्यापथ्य।

वेगावरोधं स्त्रीयानं कटुकं चोत्कटासनम् ॥ यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ ५८ ॥ पित्तकृंति न सेव्यानि द्रव्याण्यर्शोयुतैर्नरैः ॥ विना तक्रं समगधं विनान्नं लघुपाकि च॥५९॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यामर्शश्चिकित्सा नाम त्रयोविंशस्तरंगः ॥ २३ ॥

अर्थ–मल मूत्र आदिके वेगोंको रोकना, स्त्रीसंग, मार्ग चलना, चरपरे पदार्थ खाना और ऊंकरू बैठना, तथा जैसी बवासीर होय उसीके अनुसार अन्न जल बवासीरवाला त्याग दे खूनी

बवासीरवाला पित्तकर्त्ता पदार्थ न सेवन करे परंतु छाछ और पीपल इनको त्याग कर अन्यका निषेध है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामर्शश्चिकित्सा नाम त्रयोविंशस्तरंगः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशस्तरंगः ।

अजीर्णाधिकारः ।

संप्राप्ति और सामान्य लक्षण ।

प्रकृत्या रसशेषाद्वा त्रिभिर्दोषैरपाकतः॥ भवंति षडजीर्णानि वैषम्यादशनस्य च ॥ १ ॥ विबंधोतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिर्मारुतमूढता ॥ अजीर्णलिंगं सामान्यं विष्टंभो गौरवं भ्रमः ॥ २ ॥

अर्थ–रस शेषसे और तीनों दोषोंसे और कुपच इन कारणोंसे अजीर्ण होतेहैं. प्रायः यह अजीर्ण भोजनकी विषमतासे होते हैं इस प्रकार छः भेद अजीर्णके हैं । उसके ये लक्षण हैं कि मल रुकजाना, या दस्त होना, ग्लानि, अधोवायुका न निकलना, तथा विष्टंभ गौरव और भ्रम ये अजीर्णके सामान्य लक्षण हैं ।

मंदाग्नि आदिकी चिकित्सा ।

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः॥ तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मंदे श्लेष्मविशोधनम् ॥ ३ ॥ वचालवणतोयेन वांतिरामे प्रशस्यते ॥ धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः॥ ४ ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ विष्टंभे स्वेदनं कार्यं पेयं वा लवणोदकम् ॥रसशेषे दिवास्वापो लंघनं वमनं तथा॥५॥

अर्थ–(समाग्नि) की रक्षाकरे (विषमाग्नि) में वातनाशक कर्म करे (तीक्ष्णाग्नि) में पित्त शमनकर्ता औषध देवे और (मदाग्नि) में कफका शोधन करना चाहिये । (आमाजीर्ण) में वच सैंधानिमक इनको गरम जलके साथ पीवे अथवा धनिया और सोंठका क्काथ पीनेको देवे यह आमाजीर्णको नष्ट करे शूलनाशक और बस्तिको शोधन करेहैं । 'विष्टभाजीर्ण' में अफरा दे और निमक मिला गरम जल पीवे 'रसशेषाजर्णि' में दिनमें सोवे लंघन और वमन करना चाहिये ।

दिनमें सोना ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लिन्नानतीसारिणः शूलश्वासवनस्तृषामदमहाहिक्कामरुत्पीडितान् ॥ क्षीणान्क्षीणकफान्छिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवास्वापयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–जो दंड कसरत करचुके हों । स्त्रीसंग करके थके हैं, रास्ता चले हैं, घोडा, ऊंट आदि सवारी करे हैं, क्लेशित, अतिसाररोगी, शूल, श्वास, तृषा, मद्य, घोर हिचकी, वादीसे पीडित, क्षीण और क्षीणकफवाले, बालक, नसेसे पिडित, वृद्ध, रसशेषअजर्णिवाले, रात्रिमें जगे, और दिनमें भोजन नहीं करा उनको दिनमें यथेच्छ सुलाना चाहिये ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवचलं पिबेत् ॥ मधुनोष्णोदकेनाथ मत्वा दोषगतिं भिषक् ॥ चतुर्विधमजीर्णं तु मंदानलमयारुचिम् ॥ ७ ॥

आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाशु विनाशयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-हरडकी छाल और पीपल इनके चूर्णमें कालानिमक मिलायके पीवे अथवा यथा दोषानुसार गरम जलमें सहत मिलाय वैद्य पिलावे । यह चार प्रकारका अजीर्ण, मंदाग्नि, अरुचि, अफरा, वायगोला और शूल इनको तत्काल नष्ट करे ।

संजीवनी गुटिका ।

विडंगं नागरं कृष्णापथ्यावह्निबिभीतकाः ॥ वचा गुडूची भल्लातं विषं चात्र प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥ एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥ गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकज रसैः ॥ १० ॥ एकामजीर्णयुक्तस्य द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥ तिस्रो भजंगदष्टस्य चतस्रः सन्निपातिनः ॥ गुटिका जीवनी नाम्ना संजीवयति मानवम् ॥ ११ ॥

अर्थ-वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड, चित्रक, बहेडा, वच, गिलोय, मिलाये और विष ये समान भाग लेवे, गोमूत्रसे बारीक पीस घूंघचीके समान गोली बनावे अनुपान अदरखका रस, एक गोली अजीर्णरोगको, दो गोली विषूचिकावालेको, तीन गोली साँपके काटे हुएको और चार गोली संनिपातवालेको देवे । यह संजीविनीगुटिका मृतसदृश मनुष्यको जिवावे है ।

विषूचिकांजनम् ।

मातुलिंगं जटा व्योषं निशाबीजं करजकम् ॥ कांजिकेनांजनं हन्याद्विषूचीमाति दारुणाम् ॥ १२ ॥

अर्थ-बिजौरेकी जड, सोंठ, मिरच, पीपल, हलदी, कंजेके बीज इनको कांजीमें पीसके अंजन करे तो दारुण विषूचिका (हैजा) दूर हो ।

अग्निमुखचूर्णम् ।

हिंगुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा मता ॥ पिप्पली त्रिगुणा देया शृंगवेरं चतुर्गुणम् ॥ १३ ॥ यवानी स्यात्पंचगुणा षड्गुणा च हरीतकी ॥ चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं मतम् ॥ १४ ॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमामप्रशांतये ॥ पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ १५ ॥ सोदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ॥ अंगानि यस्य दीर्यंते विषं वा येन भक्षितम् ॥ १६ ॥ चूर्णमग्निमुखं नाम्ना सर्वोपद्रवमाहरेत् ॥ १७ ॥

इति वीरसिंहावलोकतः ।

अर्थ-हींग १ तोला, वच २ तोले, पीपल ३ तोले, अदरख ४ तोले, अजमायन ५ तोले, हरडकी छाल ६ तोले, चित्रक ७ तोले, कूठ ८ तोले ले, यह वातहरणकर्त्ता चूर्ण है, इसको आमके नष्ट करनेको पीवे, इसे दही, दहीका जल, मद्य, और गरम जल इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करे । यह उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा उदररोग ये दूर हों । जिसके अंग फटतेहों, अथवा जिसने विष भक्षण कराहोय उनको यह (अग्निमुख चूर्ण) दूर करे । यह (वीरसिंहावलोक) ग्रंथमें लिखा है ।

हिंग्वष्टक चूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैंधवं जीरके द्वे

समधरणघृतानामष्टमो हिंगुभागः ॥ प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयंति जठराग्निं वातरोगान्निहंति ॥ १८ ॥

अर्थ-सोंठ, मिरच, पीपल, अजमायन, सेंधानिमक, जीरा, कालाजीरा और हींग ये एक एक तोला लेके चूर्ण करे। भोजनके पहले ग्रासमें यह छः मासे चूर्ण और घी मिलायके सेवन करे तो जठराग्निको प्रबल करे और वायगोलेको नष्ट करे।

वृद्धवैश्वानर चूर्ण ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु ॥ भागास्त्रयोऽजमोदाया नागरं भागपंचकम् ॥ १९ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ २० ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्वस्तिजान्गदान् ॥ प्लीहानं ग्रंथिशूलादिमानाहं गुदजानि च॥२१॥ विबंधजठरान्रोगान्केचिद्वातसमुद्भवान्॥ वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ २२ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-सेंधानिमक २ तोले, अजमायन २ तोले, अजमोद ३ तोले, सोंठ ५ तोले और हरडकी छाल १२ तोले, सबको बारीक पीस चूर्ण करे इसको दहीका जल, कांजी, छाछ, घी और गरम जल इनमेंसे यथोचित अनुपानके साथ देवे, तो आमवात, गोला, हृदय और बस्तीके रोग, प्लीह, गाठि, शूल, अफरा, बवासीर, मलका रुकना, उदररोग, वादीके रोगको दूर करे तथा यह वृद्धवैश्वानर चूर्ण अधोवायुको निकाले है। यह वृन्दमें लिखा है।

लघुवैश्वानर चूर्ण ।

सिंधूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्णमुष्णांबुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ॥ तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं भस्मीभवत्यशितमात्रमपि क्षणेन ॥ २३ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ-सेंधानिमक, हरड, पीपल और चित्रक इनके चूर्णको गरम जलके साथ पीवे तो नष्ट अग्निको प्रज्वालित करे जिसने मांसके पदार्थ घी और नवीन अन्नभोजन करा है उसका इस चूर्णके सेवन करते ही तत्काल भस्म होजाय। यह योगरत्नावलीमें लिखा है।

लवणभास्कर चूर्ण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ॥ सैंधवं च विडं चैव पत्रतालीसकेशरान् ॥ २४ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पंच सौवर्चलस्य च ॥ मरिचाजाजिशुंठीनामेकैकस्य पलं पलम् । ॥ २५ ॥ त्वगेला चार्द्धभागः स्यात्सामुद्रात्कुडवद्वयम् ॥ दाडिमात्कुडवं चैव द्विपलं चाम्लवेतसम् ॥ २६ ॥ एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं सुगंधममृतोपमम् ॥ लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ २७ ॥ श्लेष्मवातं वातगुल्मं शूलमंदाग्न्यरोचकान्॥अन्यानपि निहंत्याशु रोगाँल्लवणभास्करः ॥ २८ ॥

अर्थ-पीपल, पीपरामूल, धनिया, कालाजीरा, सेंधानिमक, बिडनिमक, पत्रज तालीसपत्र, नागकेशर ये प्रत्येक दो दो पल लेवे, काला

निमक ९ पल, कालीमिरच, जीरा, सोंठ ये प्रत्येक एक २ पल ले, दालचीनी, और इलायची दो दो तोले, समुद्रनिमक आधसेर अनारदाना पावभर, अमलवेती ८ तोले, इन सबको बारीक पीस कपडछान चूर्ण करे, यह लवणभास्कर चूर्ण भास्कराचार्यने कहाहै, यह कफवात, वातगोला, शूल, मंदाग्नि, अरुचि और भी सब रोगोंको यह चूर्ण नष्ट करे ।

शंखद्रावरस ।

अर्कस्नुहीतिलाश्वत्थचिंचापामार्गवह्निजम् ॥ गृहीत्वा भस्म तस्मात्तु वस्त्रपूतं जलं हरेत् ॥ २९ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तं तु यावल्लवणतां व्रजेत् ॥ तत्तुल्याविव संग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टंकणं तथा ॥ ॥ ३० ॥ सामुद्रं वापि गोदंती कासीसं चापि सोरकम् ॥ द्विगुणं पंचलवणं शंखद्रावरसेन तु ॥ ३१ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य सप्ताहं त्वम्लयोगतः ॥ संधितं सकलं चूर्ण वारुणीयंत्रमुद्धरेत् ॥ ३२ ॥ द्रुतं तजोजलमस्थं स्वच्छं स्रवति तत्तदा ॥ सर्वान्धातून्द्रावयाति वराटानपि शंखकान् ॥ ३३ ॥ अजीर्णस्याथ मंदाग्नेः का वार्ता द्रावणे पुनः॥ गुल्मप्लीहोदरं शूलमष्टधापि विनाशयेत्॥ वैद्यजीवनहेतुश्च शंखद्रावरसो ह्ययम् ३४

अर्थ—आक, थूहर, तिल, पीपल, इमली, औंगा और चित्रक इनकी राख ले जलमें भिगोय देवे, फिर उसमेंसे नितरता हुआ जल कपडेसे छानके ले इसको कढाईमें भरके नीचे मंद २ अग्नि जलावे जब सब जल सूखके खार जमजाय तब इस खारकी बराबर सज्जीखा और जवाखार लेवे तथा सुहागा ले, तथा समुद्र निमक, गोंदनीका खार, सपेद कसीस और सोरा ये सुहागेकी बराबर डाले पांचों निमक एक सुहागेसे दूने डाले फिर शंखके द्रावसे घोटके कांचकी शीशीमें भरे तथा खटाईके योगसे सात रात्रि अधिवासित करके वारुणीयंत्रमें डालके अर्क निकाल लेवे यह सब सुवर्णादि धातुओंको गलाय देवे कौडी और शंख इसमें डालतेही गल जावे फिर अजीर्ण और मंदाग्निका नष्ट करना क्या बडी बात है। यह गोला, प्लीहा, उदर, आठ प्रकारके शूलोंको नष्ट करे । वैद्योंका जीवन रूप यह शंखद्राव रस है ।

क्रव्यादरस ।

शुद्धो रसः पलमितो द्विपलं गंधकं मतम् ॥ पलार्द्धं लोहभस्म स्यात्ताम्रमर्द्धपलं मतम् ॥ ३५ ॥ सर्वं कज्जलीकीकृत्य लोहपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ चुल्ल्यामग्निं मृदुं दद्याद्यथा गंधो न दह्यते ॥ ३६ ॥ गोमयस्यालवाले तु पत्रं वातारिजं क्षिपेत् ॥ स्थापयेच्च रसं तत्र पत्रं चोपरि निक्षिपेत् ॥ ३७॥ वस्त्रशुद्धं ततः कृत्वा लोहपात्रे पुनः क्षिपेत् ॥ पुनस्तत्तापयेच्चल्ल्यां मातुलुंगरसं ततः॥ ३८ ॥ मानाच्छतपलं दद्यात्पंचकोलं तथैव च ॥ शुक्रस्य च तुलां दत्त्वा सिद्धं तच्च समुद्धरेत् ॥ ॥ ३९ ॥ एकं तद्गोलकं कृत्वा तत्समं टंकणं मतम्॥टंकणार्धं विषं दद्यान्मरिचं विषसम्मितम् ॥ ४० ॥ भावनाश्चणकक्षारैः सप्त दद्याद्विचक्षणः ॥ सिध्यत्येवं रसस्तं तु रसं माषद्वयात्म-

कम्॥ ४१ ॥ सैंधवं माषमात्रं तु तक्रेण सह पाययेत् ॥ रसं क्रव्यादनामानं दद्यात्तं भोजनोपरि ॥ ४२ ॥ शीघ्रं तज्जारयेद्भक्तं पुनर्भोजनमाचरेत् ॥ अनेन क्रमयोगेन सर्वव्याधिहरो रसः४३ इत्येते रसार्णवतः

अर्थ–शुद्ध पारा ४ तोले, गंधक ८ तोले, लोहेकी भस्म २ तोले, तामेकी भस्म, दो तोले, सबकी कजली कर लोहेके पात्रमें डाल चूल्हेपर चढाय मंदाग्नि देवे कि जिससे गंधक न जले फिर गोबरका थामलासा बनाय उसके ऊपर अंडका पत्ता बिछाय देवे, फिर उस तई हुई पारे गंधककी कजलीको उस पत्तेपर ढाल देवे जब जम जावे तब पीसके कपडछान कर लेवे फिर लोहेके पात्रमें चढायके मंदाग्नि देवे और इसमें बिजौरेका रस १०० पल डाले पंचकोल १०० पल चूकाकी खटाई १०० पल डालके मंदाग्निसे पचावे, जब गाढा हो जाय तब उसकी बराबर सुहागा डाले और सुहागेसे आधा सिंगिया विष मिलावे तथा विषके समान काली मिरच डाले सबको खरल कर चनाके खारकी सात भावना देवे इस प्रकार करनेसे यह रस सिद्ध होय इसकी दो दो मोसकी गोली बनाय लेवे १ गोली १ मासे सेंधानिमक मिली छाछके साथ देवे यह क्रव्यादरस भोजन करनेके पश्चात् देना चाहिये। यह उसी समय भोजनको पचाय देवे और फिर भोजन करनेकी इच्छा होय इस क्रमसे यह सर्वरोगनाशक रस है। यह रसार्णवमें लिखा है।

बृहत्क्रव्यादरसः।

द्विपलं गंधकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ पारदं पलमानं तुमृतशुल्बायसी पुनः ॥ ४४ ॥ तोलमानेन संमिश्राः पंचांगुलदले क्षिपेत् ॥ ततो विचूर्ण्य यत्नेन लोहपात्रे विनिःक्षिपेत् ॥ ४५ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तं तु दर्व्या संचालयेन्मुहुः ॥ पलमात्ररसं सम्यग्दद्याज्जंबीरकस्य तु ॥ संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः ॥ ४६ ॥ भावनाः किल दातव्याः पंचाशत्प्रमिताः पृथक् ॥ भ्रष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ ४७ ॥ तदर्धं कृष्णलवणं मरिचं सर्वतुल्यकम् ॥ सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा ॥ ४८ ॥ ततः संशोष्य संपेष्य कूप्याश्च जठरे क्षिपेत् ॥ अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः ॥ ४९ ॥ भुक्तानि कंठपर्यंतं चतुर्वल्लमितो रसः ॥ कट्वम्लतक्रसहितः पीतमात्रो हि पाचयेत् ॥ ५० ॥ पुनर्भोजयति क्षिप्रं का पुनर्मंदवह्निता ॥ रसः क्रव्यादनामायं प्रोक्तो मंथानभैरवात् ॥ ५१ ॥ सिंहलक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च ॥ दिष्टो ग्रामं समासाद्य भैरनानंदयोगिना ॥ ५२ ॥ कुर्याद्दीपनमूर्ध्वजत्रुगदहृद्दुष्टामसंशोधनं तुंदस्थौल्यनिबर्हणो गदहरः शूलार्तिशूलापहः ॥ गुल्मप्लीहविनाशको बहुरुजां विध्वंसनोवातहावातग्रंथिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामारसः ॥ ५३ ॥

इति मंथानभैरवात् ॥

अर्थ–गंधक ८ तोलेको अग्निपर तपाके उसमें ४ तोले पारा मिलाय और तामेकी भस्म

तथा लोहेकी भस्म एक एक तोला डालके अरंडके पत्तेपर ढाल देवे फिर इस पर्पटीका चूर्ण करके लोहेके पात्रमें डाल देवे और मंदाग्निसे पचावे तथा बारंबार कलछीसे चलाता रहे. फिर इसमें ४ तोले जंभीरीका रस डाले और बारीक चूर्ण कर पंचकोलके काथकी और अमलवेतके रसकी पचास २ भावना देवे फिर इस चूर्णकी बराबर भुना सुहागा मिलावे और सुहागेसे आधा कालानिमक और सबकी बराबर कालीमिरचका चूर्ण डाले फिर इसमें सात भावना चनाके खारकी देवे. फिर सबको कूट पीस शीशीमें भरके धर रक्खे जिसने अत्यंत भारी मांस और गरिष्ठ पदार्थ भोजन करे हो तथा कंठपर्यंत भोजन करा होय तो उसको इस रसकी ८ रत्तीकी मात्रा चरपरे खट्टे रसके या छाछके साथ देवे तो तत्काल पचाय देवे फिर तत्काल भोजन करे मंदाग्निका तो क्याही कहना है । यह क्रव्यादरस मंथानभैरवने कहा है यह सिंहल राजा जो अत्यंत मांसका खानेवाला था उसके लिये भैरवानंदयोगीने कहाथा । अग्निको दीपन करे, हसलीके ऊपरके रोगोंको हरण करे, दुष्ट आमको शोधन करे, अत्यंत पुष्टताको नष्ट करे, शूलकी पीडा. गोला, प्लीह, वादी, वादीकी गांठ, घोर उदररोग, इन सबको यह क्रव्यादरस दूर करे ।

शंखवटी ।

चिंचाऽश्वत्थस्नुहीक्षारादपामार्गार्कतस्तथा ॥ लवणं पंच संगृह्य ततो लवणपंचकम् ॥ ५४ ॥ सैंधवाढ्यं समादाय सर्वमेतत्पलद्वयम् ॥ कर्षं कर्षं विषं गंधरसं टंकणकं तथा ॥५५॥ हिंगुपिप्पलिशुंठीनां तथा मरिचजीरयोः ॥ द्वौ द्वौ कर्षौ पृथक्कार्यौ तथा द्वौ शंखचूर्णतः ॥ ५६ ॥ पलत्रयाच्च कर्षैकं द्विकर्षं तु लवंगतः ॥ एतत्सर्वं समासाद्य श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥ ५७ ॥ भावयेदम्लयोगेन सप्तधा तु प्रयत्नतः ॥ रसः शंखवटी नाम्ना सेवितः सर्वरोगजित् । ॥ ५८ ॥ गुंजामात्रमिदं खादेद्भवेद्दीपनपाचनम् ॥ अजीर्णं वातसंभूतं पित्तश्लेष्मभवं तथा ॥ विषूचीं शूलमानाहं हन्यादत्र न संशयः ॥ ५९ ॥

इति रसार्णवतः ॥

अर्थ–इमली, पीपल, थूहर, औंगा और आक इनका क्षार तथा पांच प्रकारका निमक और सेंधानिमक ये सब दो दो पल लेवे, विष, गंधक, पारा, सुहागा ये एक २ तोला ले हींग पीपल, सौंठ, मिर्च, जीरा दो दो तोले लेय. शंखका चूरा दो तोले, वच २१ तोले, लौंग २ तोले फिर नींबूके रसमें सात भावना देवे तो यह (शंखवटी) रस सिद्ध होय सेवन करनेसे सर्व रोगको नष्ट करे, मात्रा १ रत्तीकी है यह दीपन और पाचन है । अजीर्ण, वादीके रोग, पित्तकफके रोग, विषूची, शूल और अफरा ये दूर हों ।

भस्मकरोगनिदान ।

कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम् ॥ तीव्रं प्रवर्धयेदग्निं तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥ तृड्दाहश्वासमूर्च्छादीन्कृत्वैवात्यग्निसंभवान् ॥ पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेत्तनुम् ॥२॥

अर्थ–जब कफ क्षीण होजाय तथा वात-

युक्त पित्त अपने स्थान पर स्थित हो, अग्निको अत्यंत बढावे, तब उस रोगको (भस्मक) ऐसे कहते हैं । यह भस्मक तृषा, दाह, श्वास, मूर्च्छा इत्यादि तीक्ष्णाग्निके रोगोंको प्रगट कर तत्काल अन्नको पचाय फिर धातुको पचायकर इस प्राणीको मारे है ।

भस्मकरोगचिकित्सा ।

तंभस्मकं गुरुस्निग्धसांद्रमंडहिमस्थिरैः॥ अन्नपानैर्नयेच्छांतिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः । ॥ ३ ॥ माहिषं दधि दुग्धं च माहिषं भस्मकापहम् ॥असकृत्पित्तहरणं पायसाज्यस्य भोजनम् ॥ ४ ॥ कोलास्थिमज्जकल्कस्तु पीतो वाप्युदकेन वै ॥ अचिराद्विनिहंत्येष प्रयोगो भस्मके नृणाम् ॥ ५ ॥नारीक्षीरेण संपिष्टां पिबेदौदुंबरत्वचम्॥ ताभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशांतये ॥ ६ ॥ सिततंडुलसितकरभीक्षीरेण पायसं सिद्धम् ॥ भुक्त्वा घृतेन पुरुषो द्वादशदिवसान्बुभुक्षितो न भवेत् ॥ ७ ॥ विदारीस्वरसक्षीरे पचेदष्टगुणं घृतम् ॥ माहिषं जीवनीयेन कल्केनात्यग्निनाशनम् ॥ ८ ॥

अर्थ–उस भस्मकको भारी, चिकना, कठोर, मंद और शीतल ऐसे अन्न पानोंसे और पित्तनाशक जुल्लाबोंसे शांत करे। भैंसकी दही और दूध सेवन करे, तथा वारंवार पित्तको हरण कर्ता यत्नोंसे तथा खीरमें घी डालके भोजन करना भस्मक रोगको दूर करे अथवा बेरकी गुठली वा मिंगीके कल्कको वा इस कल्कको जलसे पीवे तो तत्काल भस्मक दूर होवे । अथवा गूलरकी छालको स्त्रीके दूधसे पीसके पीवे (अथवा) इनकी खीर करके खाय तो भस्मक दूर हो (अथवा) सपेद चावलोंकी खीर ऊँटनीके दूधसे बनाय घी मिलायके खाय तो उस प्राणीको १२ दिनतक भूंख नहीं लगे अथवा विदारीकंदके स्वरससे आठगुना घी लेकर सिद्ध करके भैंसका तथा जीवनीयगणकी औषधोंके कल्कसे भैंसका घृत सिद्ध करे यह भस्मक रोगको नष्ट करे ।

अजीर्णेऽग्निकुमारो रसः ।

पारदं च विषं गंधं टंकणं समभागतः॥ मरिचस्याष्टभागाः स्युर्द्वौद्वौ शंखवराटयोः ॥ १ ॥ पक्वजंबीरजैर्गाढं रसैः सप्त विभावयेत् ॥ गुंजाद्वयमितो देयो रसो ह्यग्निकुमारकः ॥ २ ॥ समीरणसमु तमजीर्णं च विषूचिकाम् ॥ क्षणेन क्षपयत्येष कफरोगनिकृंतनः ॥ ३ ॥ इति रसेंद्रचिंतामणेः ॥

अर्थ–पारा, विष, गंधक, सुहागा ये समान भाग लेवे. काली मिरच ८ भाग, शंख और कौडीकी भस्म दो दो भाग ले, सबको बारीक पीस पके जंभीरीके रसकी सात भावना देवे मात्रा २ रत्तीकी है, यह अग्निकुमार रस वादीका अजीर्ण विषूचिका और कफ इनको एक क्षणमात्रमें दूर करे। यह रसेन्द्राचिंतामणिमें लिखा है।

आनंदभैरव गुटी ।

हंसांघ्रिटंकणमरीचकणामृतं चेज्जंबीरनीरपरिमर्दितमर्कयामे ॥ सानंदभैरवगुटी त्रियवप्रमाणा सर्वामयप्रशमनी विविधानुपाना ॥ ४ ॥

अर्थ–सिंगरफ, सुहागा , कालीमिरच, पीपल और विष समान भाग ले जम्भीरीके रससे १२

प्रहर खरल करे फिर तीन जौके समान गोली बनायले। यह भैरवी गुटी अनेक अनुपानोंसे सर्व रोगोंका नष्ट करे ।

पाशुपतास्त्रो रसः ।

कर्षं सूतं द्विधा गंधं त्रिभागं भस्म तीक्ष्णजम् ॥ त्रिभिः समं विषं योज्यं चित्रकद्रवभावितम् ॥ ५ ॥ द्विधात्रिकटुकं योज्यं लवंगैले तु सप्तमे ॥जातीफलं जातिपत्रं चार्द्धभागमितं मतम् । ॥ ६ ॥ तदर्द्धं पंचलवणं स्नुह्यर्कौ चापि तिंतिणी ॥ अपामार्गोश्वत्थ एषां लवणं च पलार्द्धकम् ॥ ७ ॥ टंकणं च यवक्षारं सर्जिका हिंगु जीरकम्॥ हरीतकी सूततुल्या मर्द्दयेदम्लयोगतः ॥ ८ ॥ धूर्त्तबीजस्य भस्मानि सर्वसप्तमभागतः॥ रसः पाशुपतो नाम प्रोक्तः प्रत्ययकारकः ॥ ९ ॥ गुंजामात्रा वटी कार्या सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥ तालमूलीतक्रयोगादुदरामयनाशिनी ॥ १० ॥ मोचारसेनातिसारं ग्रहणीं तक्रसैंधवैः ॥ शूले नागरकं शस्तं हिंगुसौवर्च्चलान्वितम् । ॥ ११ ॥ अर्शःसु तक्रेण युता पिप्पली राजयक्ष्मणि ॥ वातरोगं निहन्त्याशु शुंठी सौवर्च्चलान्विता ॥ १२ ॥ गुडूची शर्करायोगात्पित्तरोगविनाशिनी॥पिप्पलीक्षौद्रयोगेन श्लेष्मरोगं निकृंतति ॥ अतः परतरं नास्ति धन्वंतरिमते स्थितम् ॥ १३ ॥

इति धन्वंतरिमतात् ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ तोला, गंधक २ तोले, लोहभस्म ३ तोले इन तीनोंके समान विष डाल चित्रकके रससे भावना देवे तथा दो भाग त्रिकुटा और लौंग तथा इलायची ये दो दो भाग मिलावे जायफल और जावित्री ये आधे २ भाग मिलावे और सबसे आधे पांचों निमक तथा थूहर और आकका खार, इमली, ओंगा और पीपल इन प्रत्येकका क्षार दो दो तोले मिलावे सुहागा जवाखार, सज्जी, हींग, जीरा, हरड ये सब पारदके समान लेवे सबको नींबूके रसमें खरल करे तथा धत्तूरेके बीजोंका भस्म सबका सातवाँ भाग मिलावे तो यह प्रत्यक्ष परचेका दिखानेवाला पाशुपत नामक रस बने इसकी एक २ रत्तीकी गोली बनावे यह सब अजीर्णोंको नष्ट करे। मूसलोंका चूर्ण और छाछके साथ सेवन करे। तो उदर रोग नष्ट करे। मोचरससे अतिसारको, सैंधानमक और छाँछसे ग्रहणीरोगको, सोंठ, हींग, कालानिमक इनके साथ शूल रोगको, केवल छाछसे अर्शरोगको, पीपलके साथ राजयक्ष्माको, सोंठ, कालानिमक इनके साथ वादीके रोगोंको गिलोयसत और मिश्रीके साथ पित्तके रोगौको, पीपरका चूर्ण और सहतसे कफके रोगोंको नष्ट करे। इससे परे औषध धन्वंतरिके मतसे दूसरी नहीं है। यह धन्वंतरिसंहितामें लिखा है।

आदित्यरस ।

दरदं च विषं गंधं त्रिकटु त्रिफलासमम्॥ जातीफलं लवंगं च लवणानि च पंच वै ॥ १४ ॥ सर्वमेतत्कृतं चूर्णमम्लयोगेन सप्तधा ॥ भावयित्वा वटी कार्या गुंजार्धप्रमिता बुधैः ॥ १५ ॥ रसो ह्यादित्यसंज्ञोयमजीर्णक्षयकारकः ॥ भुक्तमात्रं पाचयति जठरानलदीपनः१६॥

इति रससिन्धोः ॥

अर्थ-हिंगूल, विष, गंधक, सौंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, जायफल, लौंग और पांचों निमक ये समान भाग चूर्ण करे, सबकी नींबूके रसकी सात भावना देवे आध २ रत्तीकी गोली बनावे यह आदित्य संज्ञक रस अजीर्णको नष्ट करे और भोजन करे पदार्थको तत्काल पचावे तथा जठराग्निको दीपन करे । यह रससिंधु ग्रंथमें लिखा है ।

अग्निमुखरस ।

सूतं गंधं विषं तुल्यं मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ अश्वत्थचिंचापामार्गक्षाराः क्षारौ च टंकणम् ॥ १७ ॥ जातीफले लवंगं च त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ शंखक्षारं त्रिलवणं हिंगु जीरं द्विभागकम् ॥ १८ ॥ मर्दयेदम्लयोगेन गुंजामात्रा वटी शुभा॥ पाचनी दीपनी सद्योऽजीर्णशूलविषूचिकाः ॥ १९ ॥ हिक्कां गुल्मं च मोहं च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ रसेंद्रसंहितायाश्च नाम्ना ह्यग्निमुखो रसः ॥ २० ॥

अर्थ-पारा, गंधक, विष, समान भाग ले अदरखके रससे खरल करे फिर पीपल, इमली, अपामार्ग इनके खार, सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, जायफल, लौंग, त्रिकुटा, त्रिफला ये सब समान भाग लेवे, शंखका खार, तीनों निमक, हींग और जीरा ये दो दो भाग लेवे सबको नींबूके रससे खरल कर एक एक रत्तीकी गोली बनावे यह तत्काल पाचन और दीपन करे, तथा अजर्णि शूलकों और विषूचिकाको नष्ट करे तथा हिचकी, गोला, मोह इनको नष्ट करे, यह रसेन्द्रसंहितासे अग्निमुख रस कहा है

अजीर्णारी रसः ।

शुद्धं सूतं गंधकं च पलमानं पृथक् पृथक् ॥ हरीतकी च द्विपला नागरस्त्रिपलः स्मृतः ॥ २१ ॥ कृष्णा च मरिचं तद्वत्सिंधूत्थं त्रिपलं मतम् ॥ चतुःपला च विजया मर्दयेन्निंबुकद्रवैः । ॥ २२ ॥ पुटानि सप्त देयानि घर्ममध्ये पुनःपुनः ॥ अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो दीपनपाचनः ॥ २३ ॥ भक्षयेद्द्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्रेचयत्यपि ॥ २४ ॥ इति रसेन्द्रचिंतामणेः ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, गंधक दो दो पल ले, हरडकी छाल २ पल, सोंठ ३ पल, पीपल, मिरच और सैंधानिमक प्रत्येक तीन २ पल लेय, और भाँग ४ पल लेय इनको नींबूके रससे धूपमें सात पुट देवे यह अजीर्णारि रस तत्काल दीपन और पाचन है, इसका सेवन करनेवाला प्राणी दूना भोजन करे यह पचावे तथा दस्त भी करावे है । यह रसेन्द्रचिंतामणिमें लिखा है ।

चंडाग्निरसः ।

शुंठीपारदगंधकामृतपटुश्रीपुष्पसट्टंकणं द्विर्द्विः शंखकपर्दकौ वसुगुणं कृष्णोषणं सद्रसात् ॥ जंबीरस्य परिस्रुतं दृढतरं संमर्द्य मुन्याप्लवै सिद्धे वल्लमितोऽग्निदीप्तिकृदयं चण्डाग्निनामा रसः ॥ २५ ॥

अर्थ-सौंठ, पारा, गंधक, विष, सेंधानिमक, लौंग, सुहागा ये समान भाग ले, शंख और कौडीकी भस्म दो दो भाग ले पीपल और कालीमिरच आठ २ भाग लेवे, प्रथम

जम्मीरीके रसमें खरल कर अगस्तियाके रसमें भावना दे २ रत्तीकी गोली बनावे । यह चंडाग्निरस अग्निको अत्यन्त दीपन करे ।

जीर्ण आहारके लक्षण ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥ लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ २६ ॥

अर्थ–शुद्ध डकारका आना, चित्तमें उत्साह हो, यथोचित मल मूत्रादि उतरे, देहमें हलकापना और भूँख प्यासका लगना ये अजीर्ण पकजानेके लक्षण हैं ।

इति श्रीयोगतरंगिण्यामजीर्णचिकित्सा समाप्ता ।

अथ कृमिचिकित्सा ।

लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः श्वसनं भ्रमः ॥ भुक्तद्वेषोतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ–ज्वर, देहका रंग पलट जाय, शूल, हृदयरोग, श्वास, भ्रम, भोजनके पदार्थमें अरुचि और आतिसार ये जिसके कृमि पेटमें पड गई हों उसके लक्षण हैं । यह माधवमें लिखा है ।

कृमिचिकित्सा ।

मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रुक्काथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः ॥ मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्कृमीन्निहंति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ २ ॥

इति योगशतात् ॥

अर्थ–नागरमोथा, मूसाकर्णीका फल, देवदारु, सहजना पीपल इनके क्राथमें वायविडंगका कल्क मिलायके पीवे तो बाहर भीतरकी कृमि और कृमिसे होनेवाले रोग दूर हो । यह योगशतमें लिखा है ।

निंबोजमोदा जंतुघ्नं ब्रह्मबीजं सचोरकम् ॥ सहिंगुकं समगुणं सद्यो जंतुविनाशनम् ॥ ३ ॥ विशालायाः फलं पकं तप्तलोहोपरि क्षिपेत् ॥ तद्धूमो दंतलग्नानां कीटानां पातनो भवेत् ॥४॥ पारसीकयवानिका पीता पर्युषितवारिणा प्रातः ॥ गुणपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ ५ ॥ पलाशबीजस्य रसं पिबेद्वा मधुसंयुतम् ॥ लिह्यात्क्षौद्रेण वैडंगं चूर्णं वा कृमिकृन्तनम् ॥ ६ ॥ दाडिमत्वक्कृतः क्राथस्तिलतैलेन संयुतः॥त्रिदिनात्पातयत्यव कोष्ठतः कृमिजालकम् ॥ ७ ॥

अर्थ–नीम, अजमोद, वायविडंग, ढाकके बीज, गडोना और हींग ये समान भाग ले सेवन करे तो कृमिरोग दूर होय अथवा इन्द्रायनके पके फलका गूदा अग्निमें गरम करे लोहेपर डाले जब धूँआ निकले तब उसको दाढमें देवे तो दांतके कीडे मरजायँ अथवा खुरासानी अजमायनको वासी जलसे गुड मिलायके पीवे तो कोठेकी कृमिको निकाल देवै अथवा ढाकके बीजके रसमें सहत डालके पीवे अथवा वायविडंगके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो कृमि सब गिरजावें अथवा अनारके फलकी छालका क्राथ कर उसमें तिल्लीका

तेल मिलायके ३ दिन पीवे तो पेटके सब कीडोंको निकाल देवे ।

सुगंध धूप मच्छर मक्खीन पर ।

ककुभकुसुमं विडंगं लांगलिभल्लातकं तथोशीरम्॥ श्रीवेष्टं सर्जरसं चन्दनमथ कुष्ठमष्टमं दद्यात् ॥ ८ ॥ एष सुगंधो धूपो मशकक्रूमीणां विनाशकः प्रोक्तः॥ शय्यासु मत्कुणानां शिरसि च गात्रेषु यूकानाम् ॥ ९ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–कोहके फूल, या वायविडंग, कलियारी, भिलाए, खस, गूगल और राल, इनकी धूनी मच्छर कीडोंको तथा खाटके खटमलोंको और जुआं लीखोंको नष्ट करे। यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा हैं ।

विडंगादि तैल ।

भंडीपिष्टारनालेन गोमूत्रेणातिमुक्तकः॥ कुनटीकटुतैलेन योगो यूकानिवारणः ॥ ॥ १० ॥ सविडंगं च शिलया सिद्धं सुरभिजलेन कटुतैलम्॥निखिला नयाति विनाशं लिक्षासहिता दिनैर्यूकाः ॥ ११॥

अर्थ–सपेद निसोथको कांजीमें पीसे । अथवा अतिमुक्तक माधवीको गोमूत्रसे पीसे । अथवा मनसिलको कडवे तेलसे पीसके लगावे तो जूं लिखोंको नष्ट करे। अथवा वायविडंग और मनसिलके कल्कसे गोमूत्र डालके कडवे तेलको सिद्ध करे, यह बहुत दिनके जूं और लीखोंको नष्ट करे ।

रसादि लेप ।

रसेंद्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ॥ तांबूलपत्रजो वापि लेपनं यौकनाशनम् ॥ १२ ॥

इति वृंदात् ॥

क्रिमिमुद्गर रसः ।

अर्थ–धत्तूरेके पत्रोंको पारेमें मिलायके पीसे अथवा पानके रसमें पारेको पीस जहां जूंआं लीख हों लेप करे तो जूंआ और लीख मरके गिरपडें यह रसादिलेप वृंदमें लिखाहै ।

क्रमेण वृद्धं रसगंधकाजमोदाविडंगं विषमुष्टिका च॥ पलाशबीजं च विचूर्ण्यमस्य निष्कप्रमाणं मधुनावलीढम् ॥ ॥ १३ ॥ पिबेत्कषायं घनजं तदूर्ध्वं रसोयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः ॥ क्रिमीन्निहंति कृमिजांश्च रोगान्संदीपयत्यग्नि मयं त्रिरात्रात् ॥ १४ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां कृमिचिकित्सा नाम चतुर्विंशस्तरंगः ॥ २४ ॥

अर्थ–पारा १ तोला गंधक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडंग ४ तोले, कुचला ५ तोले और ढाकके बीज ६ तोले इनको बारीक पीस ४ मासे रसको सहतसे चाटे इसके ऊपर नागरमोथेका क्वाथ पीवे तो यह क्रिमिमुद्गररस पेटके कीडे और कृमिजन्य रोगोंको तीन दिनमें दूर करे तथा अग्निको दीपन करे है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां क्रिमिचिकित्सा नाम चतुर्विंशस्तरंगः ॥ २४ ॥

पंचविंशस्तरंगः ।

पांडु ।

पांडुरः श्वासकासार्तः पीतत्वङ्नखलोचनः ॥ वम्यग्निसादश्वयथुसहितः पांडुरोगवान् ॥ १ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–जो प्राणी श्वास, खाँसीसे पीडित-जिसका देह नाखून और नेत्र ये पीले हों तथा वमन, मंदाग्नि और सूजन युक्त हो उसको पांडु रोग जानना ।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिंबनिंबजः॥ क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पांडुरोगं सकामलम् ॥ २ ॥ लोहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजिनः ॥ पिबेत्पांड्वामयी शोथी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता, नीम इनका क्वाथ सहत डालके पीवे तो कामलासहित पांडुरोग दूर हो। यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है। अथवा लोहेके पात्रमें औटा हुआ दूध सात दिन पीवे, पथ्य भोजन करे तो पांडुरोग सूजन और ग्रहणी रोग दूर हो । यह वृंदमें लिखा है।

लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफला कटुरोहिणी ॥ प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्तः सुखी भवेत् ॥ ४ ॥

इति सर्वसंग्रहात् ॥

अर्थ-लोहेके चूर्ण, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला और कुटकी इनके चूर्णको सहत और घृतमें मिलायके चाटे तो कामलारोगी सुखी होय.

रेचनं कामलार्तानां पृथग्वा कारयेद्भिषक् ॥ ततः प्रशमनोपायः कर्तव्यो बुद्धिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ दंतीकल्कं समगुडं शीतवारिपरिप्लुतम् ॥ विरेचनं मुख्यतमं कामलाया विनाशकम् ॥ ६ ॥

अर्थ–प्रथम कामलारोगीको दस्त करावे। फिर उसके नष्ट करनेकी औषध वैद्य विचारके देवे। अथवा दंतीके कल्कमें बराबरका गुड मिलाय शीतल जलमें धोयके पीवे यह कामलारोगनाशक मुख्य विरेचन है ।

अयोरजोव्योषविडंगचूर्णं लिहेद्धरिद्रां त्रिफलान्वितां वा ॥ सशर्करां कामलिनां त्रिभंडी हिता गवाक्षी सगुडा च शुंठी ॥ ७ ॥ सदार्वीत्रिफलाव्योषविडंगमयसो रजः॥ मधुसर्पियुतं लिह्यात्पांडुरोगं सकामलाम् ॥ ८ ॥ त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य वा रसम् ॥ प्रातःप्रातर्मधुयुतं कामलार्तः पिबेन्नरः ॥ ९ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–लोहकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल-वायविडंग इनके चूर्णको हलदीके चूर्णसे अथवा त्रिफलाके चूर्णसे सेवन करे। अथवा निसोथके चूर्णमें मिश्री मिलायके खाय। अथवा इन्द्रायनकी जड, गुड और सोंठ मिलायके सेवन करे तो कामलारोग दूर होय अथवा देवदारु, त्रिफला त्रिकुटा, वायविडंग और लोहभस्म इनको सहत और घृत मिलायके पांडुरोगी और कामलावाला सेवन करे। अथवा त्रिफला वा गिलोयका, दारुहलदीका अथवा नीमका रस प्रातःकाल सहत डालके पीवे तो कामला रोग दूर हो। यह वृंदमें लिखा है ।

आमलक्यवलेह ।

रसमामलकानां तु संशुद्धं यंत्रपीडितम् ॥ द्रोणं पचेत्तन्मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥ १० ॥ चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा ॥ प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेषितम् ॥ ११ ॥ शृगवेरपलं पंच तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ॥ तुलार्द्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ १२ ॥ मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलमात्रकम् ॥ हलीमकं कामलां च पांडुत्वं चापकर्षति ॥ जलदोषमतीसारं नियच्छति न संशयः ॥ १३ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–शुद्ध आमलोंका रस १६ सेर आगपर चढायके पचावे उसमें आगे लिखी औषध और मिलावे, पीपलका चूर्ण १ सेर, मुलहटी ८ तोले, १ सेर द्राक्षका कल्क, अदरख २० तोले, वंशलोचन ८ तोले, मिश्री २॥ सेर डालके अवलेह बनावे जब गाढी होजाय तब उतार लेवे इसमें १ सेर सहत मिलाय ४ तोले नित्य सेवन करे । यह हलीमक, कामला, पांडुरोग, जलके विकार और अतिसार इनको दूर करे । यह सारसंग्रहमें लिखा है ।

नवायस चूर्ण ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडंगदहनाः समाः॥ नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा॥ भक्षयेत्पांडुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् १४

इति योगसारात् ॥ ॥

अर्थ–सौंठ, मिर्च, पीपल, हरड बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रक ये समान भाग ले तथा इनकी बराबर लोहभस्म मिलावे, इसको सहत और घृतसे सेवन करे तो पांडुरोग, हृदयरोग, कोढ, बवासीर और कामला रोगको दूर करे ।

मंडूरवटक योग ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ ॥ दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रंथिकं देवदारु च ॥ १५ ॥ एषां द्विपलभागानां चूर्णं कृत्वा पृथक्पृथक्॥मंडूरं द्विगुणं चूर्णाज्जीर्णमंजनसंन्निभम्॥१६॥ गोमूत्रेष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः।उदुंबरसमान्कुर्याद्वटकांस्तान्यथोचितान्॥१७॥ उपभुंजीज तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ॥ मंडूरवटका ह्येते प्राणदाः पांडुरोगिणाम् ॥ १८ ॥

ति योगसारात् ॥

अर्थ–सौंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, मोथा, वायविडंग, चव्य, चित्रक, दारुहलदी, दालचीनी, सुवर्णमाक्षिक, पीपलामूल, देवदारु ये प्रत्येक आठ २ तोले लेय सबका अलग २ चूर्ण करे फिर सबसे दूना पुराना मंडूर लेवे इसको पीसके काजलके समान चूर्ण करें, इसको अठगुने गोमूत्रमें पकायके सब चूर्ण मिलायदेवे और एक एक तोलेकी गोली बनायके एक गोली छाछके साथ खाय ऊपरसे अपनी आत्माके अनुकूल भोजन करे ये (मंडूरवटक) पांडुरोगियोंको प्राणके देनेवाले हैं । यह योगसार ग्रंथमें लिखा है ।

अवलेह ।

धात्री लोहरजो व्योषं निशा क्षौद्राज्यशर्कराः ॥ लेहो निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ १९ ॥

अर्थ–आँवले, लोहेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल और हलदी इनके चूर्णको सहत, घी, और मिश्री मिलायके चाटे तो घोर कामला रोग नष्ट होय ।

अंजन ।

अंजनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसस्य तु। निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं चोपरि मेलयेत् ॥ २० ॥

अर्थ–कामलारोगीके हलदी, गेरू और आंवलेका चूर्ण मिलाय द्रोणपुष्पी (गोमा) के रसका अंजन करे ।

मंडूर ।

दग्धाक्षकाष्ठैर्मलमायसं च गोमूत्रनिर्वापितसप्तवारम् ॥ विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुंभाह्वयं पांडुगद निहन्यात्॥२१॥ इति वीरसिंहावलोकितः ॥

अर्थ–लोहेकी कीटीको बहेडेकी लकडीमें जलायके गोमूत्रमें ७ बार बुझाय देवे फिर इसका बारीक चूर्ण कर सहतसे चाटे तो कुंभकामला और पांडुरोग ये नष्ट हों। यह वीरसिंहावलोक ग्रंथमें लिखा है ।

अतिशुद्धमयोभस्म मधुक्षौद्रयुतं लिहेत्॥ पांडुरोगस्य नाशाय कामलानां च सर्वशः ॥ २२ ॥

अर्थ–अत्यंत शुद्ध लोहभस्मको सहत और घीके साथ चाटे तो पांडुरोग और कामला रोग नष्ट होय ।

चंपकादिचूर्ण ।

चंपकं चंदनं वारि पर्पटोशीरपद्मकम्॥ मंजिष्ठातिविषा मोचा वासेंद्रयवपिप्पली ॥ २३ ॥ केसरं धातकी पाठा मुस्ता शुंठी च बिल्वजम् ॥ उत्पलं दाडिमीबीजं जंबूबीजं त्वचामयम् ॥ २४ ॥ एला च चंदनं रक्तं माषचर्ण रसांजनम्॥ तालीसं च समांशानि शर्करा च चतुर्गुणाः ॥ २५ ॥ हारिद्रिके पांडुरोगे प्रमेहे रक्तपित्तके ॥ कासे श्वासे च हिक्कायां मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ २६ ॥

अर्थ–चंपाके फूल, चंदन, नेत्रवाला, पित्तपापडा, खस, पद्माख, मजीठ, अतीस, मोचरस, अडूसा, इन्द्रजौ, पीपल, नागकेशर, धायके फूल, पाढ, मोथा, सोंठ, बेलगिरी, कमलगट्टा, अनारदाना, जामुनके बीज, दालचीनी, कूठ, इलायची, चंदन लाल, उडदका चूर्ण, रसोत, तालीसपत्र, ये सनान भाग लेवे और सब चूर्णसे मिश्री चौगुणी लेवे इसको हारिद्र, सांनिपात, पांडुरोग, प्रमेह, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, हिचकी और दारुण मूत्रकृच्छ्रको दूर करे ।

हलीमक और कामलाकी चिकित्सा ।

पांडुरोगे कामलायां यान्युक्तान्यौषधानि च ॥ तानि सर्वाणि योज्यानि रोगे चापि हलीमके ॥ २७ ॥ इति वृंदात् । योगरत्नावल्याश्च ॥

अर्थ–जो औषध पांडुरोग और कामला रोगपर कहे हैं उन सब औषधोंको हलीमकरोग पर देना चाहिये । यह वृंद और योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

पथ्य ।

यवगोधूमशालीनां मृदुजांगलजै रसैः॥ मुद्गाढकीमसूराद्यैः प्रायो भोजनमिष्यते ॥ २८ ॥

अर्थ-जौ, गेहूं, शालीचावल, नरम जंगली जीवोंका मांसरस, मूंग, अरहर और मसूर ये प्रायः पांडुरोगवालेको भोजन करना चाहिये ।

त्रैलोक्यनाथ रस ।

पलानि चत्वारि रसस्य पंच गंधस्य सत्त्वस्य गुडूचिकायाः ॥ व्योषस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः सशाल्मलस्येह पलत्रयं स्यात ॥२९॥ पृथक्पृथक्षड्गनस्य चाष्टौ लोहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन॥ घृष्टं चतुःषष्टिमितं तदर्धाः स्युर्भावना मार्कवजद्रवस्य॥३०॥ शिग्रुत्थनीरेण च षोडशाष्टौ तथानलोत्था गृहकन्यकायाः ॥ आर्द्रद्रवस्येति रसोयमुक्तः पांडुक्षयश्वासगदादिहंता ॥ क्षौद्रेण वा शर्करया घृतेन कर्षार्धमेतस्य भजेत्प्रयत्नात्॥३१॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां पांडुकामलाकुंभकामलाचिकित्सा नाम पंचविंशस्तरंगः ॥ २५ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा ४ पल, गंधक ५ पल, गिलोयसत्व, सोंठ, मिरच, पीपल, मूसली और सेमरका मूसला प्रत्येक तीन ३ पल लेवे, अभ्रककी भस्म ६ पल, लोहकी भस्म ८ पल, लेवे सबको त्रिफलेके क्राथसे ६४ भावना देवे, फिर ३२ भावना भांगरेके रसकी देवे और सहजनेके रसकी २४ भावना देय तथा घीगुवारके रसकी ३ भावना देवे और तीन भावनाही अदरखके रसकी देवे तो यह रस पांडुरोग, क्षय, श्वास आदिरोगोंको नष्ट करे. इस रसकी ६ मासेकी मात्रा सहत अथवा मिश्री और घृतके साथ सेवन करे । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां पांडुकामलाकुंभकामलाचिकित्सा नाम पंचविंशस्तरंगः ॥ २५ ॥

षड्विंशस्तरंगः ।

रक्तपित्त ।

क्षारकट्वम्लतीक्ष्णादेर्दग्धं पित्तं दहत्यसृक् ॥ तदूर्ध्वाधोबिलैर्याति रक्तपित्तं तदुच्यते ॥ १ ॥

अर्थ-खारी, चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण आदि पदार्थोंके सेवनसे पित्त कुपित हो रुधिरको दग्ध करे यह ऊपर अथवा नीचेके मार्गसे गिरे उस रोगको रक्तपित्त कहते हैं ।

अधःप्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वगं च विरेचनैः ॥ जयेदन्यतराद्वापि क्षीणस्य शमनैः पृथक् ॥ २ ॥ अतिप्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ॥ अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ ३ ॥ लंघितस्य ततो युक्त्या लब्वन्नमवचारयेत्॥पाचनं तर्पणं लेहसर्पींषि विविधानि च ॥ ४॥ द्राक्षामधूककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ॥ यष्टीमधूकसंयुक्तं सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ ५ ॥ पयांसि शीतानि रसाश्च जांगलाः सतीनयूषांश्च सशालिषष्टिकाः॥ हितानि चैतानि च रक्तपित्तं चान्यान्यपि स्युः किलपित्तहानि ॥ ६ ॥

इति वृन्दात् ॥

अर्थ-अधोगत रक्तपित्तको वमन करानेसे दूर करे । और ऊपरके मार्गसे जो जानेवाला रक्तपित्त है उसको दस्त करायके दूर करे और जो क्षीण प्राणी है और जिसके दोनों मार्गसे रक्तपित्त जाता होय उसको शमन कर्त्ता औषधोंसे जीते । जिसके वातादि दोष अत्यन्त बढे हुए हों उस रक्तपित्त रोगवालेको प्रथम अपतर्पण अर्थात् लंघनादि द्वारा जीते जब लंघन कर चुके तब युक्तिपूर्वक क्रमसे हलके अन्न (साबूदाना यूष आदि) भोजनको देवे. फिर पाचन, तर्पण, अवलेह, और अनेक प्रकारके घृत देने चाहिये । रक्तपित्तवालेको दाख, मुलहटी, कंभरि और मिश्री इनका जुलाब देवे । तथा मुलहटी और सहतसे वमन करावे । शीतल दूध, जंगली जीवोंका मांस, तीनी आदिका यूष, शाली चावल और साठी चावल ये सब रक्तपित्तपर हितकारी हैं । तथा इसी प्रकार अन्य पदार्थ जो पित्तके नाशक हैं वे देवे । यह बृंदमें लिखा है ।

पक्वोदुंबरकाश्मर्य्यः पथ्या खर्जूरगोस्तनी ॥ मधुना हंति संलीढा रक्तपित्तं न संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ-पके गूलर, कंभारी, हरड, खजूर और दाख इनको पीस सहतसे सेवन करे तो रक्तपित्त दूर हो ।

दूर्वादिघृत ।

दूर्वासोत्पलकिंजल्कमंजिष्ठाः सैलवालुका ॥ मूर्वा लोध्रमुशीरं च मुस्ता चंदनपद्मकौ ॥ ८ ॥ द्राक्षामधुकपथ्या च काश्मीरं चंदनं सितम् ॥ एतैः पिष्टैः कर्षमात्रैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९ ॥ अजाक्षीरं तंदुलांबु पृथग्दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ तत्पानं वमतां रक्तं नावनं नासिकागते ॥ १० ॥ कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ चक्षुर्गते च रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी ॥ ११ ॥ मेढ्रे पायुगते वापि सर्वत्रैव प्रयोजयेत् ॥ प्रवृत्तं रोमकूपेभ्यो ह्यभ्यंगेन जयेद् ध्रुवम् ॥ १२ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-दूब, कमलकी केशर, मजीठ, एलवालुक, मूर्वा, लोध, खस, नागरमोथा, लाल चन्दन, पद्माख, दाख, महुआ, हरड, केशर और सपेदचन्दन ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे घी १ सेर बकरीका दूध ४ सेर चावलोंके धोवनका जल ४ सेर औटायके घृत सिद्ध करे यह घृत पीवे तो रुधिरका वमन होना दूर हो जिसके नकसीर फूटकरके रुधिर जाता होय उसके नस्य देवे, जिसके कानके मार्गसे जाता होय उसके कानोंमें भरे, नेत्रसे जाय तो नेत्रोंमें भरे. लिंग और गुदासे जाता होय तो उन सबमें इसको देवे । और जिसके सब रोमांचोंसे निकले उसके इस घृतकी मालिश करे । यह बृंदमें लिखा है ।

वासाहरीतकी ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् । ॥ १३ ॥ चूर्णानामभयानां च खंडाच्छतपलं तथा ॥ शीतीभूते निदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥ १४ ॥ वंशोद्भवायाश्चत्वारि पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ चातुर्जातपलं त्वेकं चूर्णितं तत्र दापयेत् ॥ १५ ॥ रक्तपित्तं निहंत्याशु

कासं श्वासं तथा क्षयम् ॥ विद्रधिं जाठरं गुल्मं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥ पलार्द्धं भोजनं चास्य यथेष्टं तत्र भोजनम् ॥ १६ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–वासे (अडूसे) का पंचांग ५ सेरको ४० सेर जलमें औटावे. जब ५ सेर जल रहे तब उसमें ४ सेर हरडोंका चूर्ण डालके पचावे और ५ सेर खांड मिलावे जब अवलेह शीतल होजावे, तब ३२ तोले सहत मिलावे और वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८ तोले चातुर्जात ४ तोले इनका चूर्ण करके मिलाय देवे, यह रक्तपित्त खाँसी, श्वास, क्षय, विद्रधि, उदर, गोला, प्यास, हृदयरोग, पीनस इनको दूर करे इसकी मात्रा २ तोलेकी है इसपर यथेष्ट भोजन करे। यह रत्नावलीग्रंथमें लिखा है।

चंदनादि चूर्ण ।

चंदनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेसरम् ॥ नागपुष्पं च बिल्वं च भद्रमुस्तं सशर्करम् ॥ १७ ॥ ह्रीबेरं चैव पाठा च कुटजोत्पलमेव च ॥ शृंगवेरं सातिविषा धातकी सरसांजना ॥ १८ ॥ आम्रास्थि जंबूसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च ॥ नीलोत्पलं समंगा च सूक्ष्मैलादाडिमत्वचः ॥ १९ ॥ चतुर्विंशतिरेतानि समभागानि कारयेत् ॥ तंडुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ २० ॥ योगं लोहितपित्तानामर्शसां ज्वरिणां तथा ॥ मूर्च्छामदोपसृष्टानां तृष्णार्त्तानां प्रदापयेत् ॥ २१ ॥ अतीसारं तथा छर्दि स्त्रीणां चापि रजोग्रहम् ॥ प्रच्युतानां च गर्भाणां स्थापनं परमिष्यते ॥ ॥ २२ ॥ अश्विनोः संमतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ २३ ॥

अर्थ–चंदन, लामज्जक तृण, लोध, खस, कमलकी केशर, नागकेशर, बेलगिरी, मोथा, मिश्री, नेत्रवाला, पाढ, कुडाकी छाल, कमलगट्टा, अदरख, अतीस, धायके फूल, रसोत, आमकी गुठली, जामुनकी गुठली, मोचरस, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, अनारके फलकी छाल, ये २४ औषधोंको समान भाग ले चूर्ण कर चावलके धोवनमें सहत मिलाय इसको देय। यह रक्तपित्त, बवासीर, ज्वररोगी, मूर्च्छा, मद, तृषा, अतिसार, वमन, स्त्रियोंके गिरते हुए रुधिरको रोकता है और गिरते गर्भको रोके है। यह अश्विनीकुमारका कहा योग रक्तपित्तनाशक है।

कूष्मांडक रसायन ।

कूष्मांडकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ॥ पचेत्तप्ते घृते प्रस्थे पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ २४ ॥ यदा मधुनिभानि स्युस्तदा खंडशतं न्यसेत् ॥ पिप्पलीशृंगवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च । ॥ २५ ॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकम् ॥ न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दार्व्या संघट्टयेत्ततः ॥ २६ ॥ तत्पक्वं स्थापयेद्भांडे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ॥ तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्तक्षतक्षयी । ॥ २७ ॥ कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ॥ वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ २८ ॥ उरःसंधा-

नकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् ॥ अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्मांडकरसायनम् ॥२९॥

अर्थ–छिले और कतरे करे हुए पेठेके टुकडे ५ सेरको जलमें औटावे, जब गलजावे तब उतारके जल छानलेय फिर उनको १ सेर घीमें भूने, जब भुनकर सहतके समान होजावे तब ५ सेर मिश्रीकी चासनी करे, उसमें पेठेको डाल फिर पीपल अदरख ये प्रत्येक ८ तोले, जीरा, दालचीनी, इलायची, पत्रज, कालीमिरच, धनिया प्रत्येक दो दो तोले डाले. सबको कलछीसे एक जीव कर देवे इसको चीनी या काचकी शीशीमें भरके धररक्खे, और इसमें सहत आधसेर मिलावे, इसको रोगी अपने जठराग्निका बलाबल विचारके खाय तो रक्तपित्त, स्राव, क्षय, खाँसी, श्वास, तमक, वमन, तृषा और ज्वरको दूर करे, देहको पुष्ट कर फिर नवीन कर देवे बल वर्णको देय, हृदयके घावको अच्छा करे वीर्य बढावे, स्वरको शुद्ध करे । यह अश्विनीकुमारका कहा कूष्मांडरसायन है ।

मध्वाटरूषकरसौ यदि तुल्यभागौ कृत्वा नरः पिबति पुण्यतरः प्रभाते ॥ तद्रक्तपित्तमपि दारुणमत्यवश्यमाशु प्रशाम्यति जलैरिव वह्निपुंजः ॥ ३० ॥
इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–१ तोला सहत और १ तोला अडूसा दोनोंको मिलायके प्रातःकाल पीवे तो दारुण भी रक्तपित्त अवश्य नष्ट होय । यह राजमार्त्तंडमें लिखाहै ।

वासाखंड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले॥ तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ३१ चूर्णानामभयानां तु खंडाच्छतपलं तथा ॥ द्वे पले पिप्पली चूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥ ३२ ॥ कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् । क्षिप्त्वावलोड्य तं खादेद्रक्तपित्ती क्षयी ॥ कासश्वासगृहीतश्च यक्ष्मवांश्च विशेषतः ॥ ३३ ॥

अर्थ–अडूसेका पंचांग ५ सेरको ४० सेर जलमें पचावे, जब दश सेर जल रहे तब छानले, १ सेर बडी हरडका चूर्ण डाले मिश्री ५ सर, पीपलका चूर्ण ८ तोले डालके अवलेह सिद्ध करलेवे, जब शीतल होजावे, तब पावभर सहत, दालचीनी, पत्रज, बडी इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक तोले तोले चूर्ण करके डाले सबको मिलायके २ तोले नित्य खाय तो रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, श्वास ये दूर हों. यह यक्ष्मारोगवालेको विशेष हितकारी है ।

खंडखाद्यलोह ।

शतावरीमुंडितिकाबलामृताफलत्वचः पुष्करमूलभार्ङ्गीः॥ वृषो बृहत्यौ खदिरं च मूसली पृथक्पृथक्पंचपलानिमानि ॥ ३४ ॥ पक्कं जले द्रोणमितेष्टमांशं यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥विमूर्च्छितस्यात्र निधाय धीमान् पलानि च द्वादश माक्षिकस्य ॥ ३५ ॥ तथा सुचूर्णस्य च लोहजस्य विघट्टितं खंडघृतं च तुल्यम्॥ देयं पलं षोडशकं विधिज्ञैर्विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥ ३६ ॥ गुडेन तुल्यं च यदा भवेत्तदा तुगाविडंगं मगधा च शुण्ठी ॥द्वे जीरके कर्कटकं फलानां त्रिकं च धान्यं मरिचं सकेसरम् ॥ ३७ ॥

पलेन मात्रां विदधीत तत्पृथक्सु- घट्टितं चूर्णमिदं घृते च ॥ स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युंज्यात्कर्षप्रमाणं विदधीत लोहम् ॥ ३८ ॥ प्रभातकाले च सदुग्धपानं गुरूणि चान्नानि च भोज- नानि ॥ रक्तं सपित्तं सहसा निहंति रक्तप्रवाहं च सरक्तशूलम् ॥ ३९ ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं तथैव वस्तौ विहितं नराणाम् ॥ भगंदरार्शःश्वयथून्नि- हंति तथाम्लपित्तं किल राजरोगम् । ॥ ४० ॥ विशेषतः कुष्ठरुजश्च गुल्मा- न्बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–शतावर, गोरखमुंडी, खिरेटी, गिलोय, त्रिफला, पुहकरमूल, भारंगी, अडूसा, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, खैरसार और मूसली ये प्रत्येक पांच पांच पल लेवे, सबको १६ सेर जलमें औटावे, जब २ सेर जल रहे तब छानले फिर दूसरे लोहके कढावमें चढायके औटावे अवलेह होजाय तब उतारले शीतल होनेपर ४८ तोले सहतसे भस्मकरी लोहभस्म मिलावे मिश्री १६ पल घी १६ पल सबको मिलायके गुडपाकके समान गाढा करे फिर वंशलोचन, वायविडंग, पीपल, सौंठ, जीरा, कालाजीरा, काकडासिंगी, त्रिफला, धनिया, मिरच, नाग- केशर, ये प्रत्येक चार चार तोले लेय, चूर्ण करके उसी पाकमें डाल करछीसे मिलाय देवे, फिर, घीके चिकने पात्रमें भरके रख देव, इसमेंसे १ तोला खंडखाद्य लोह सेवन करे ऊपरसे दूध पिवे, तथा गरिष्ठ पदार्थ भोजन करे यह रक्तपित्त, रुधिरका शूल, रक्तातिसार, रुधिर- प्रमेह यदि इसको बस्ति प्रयोगमें देवे तो भगंदर, बवासीर, सूजन और अम्लपित्तको नष्ट करे, विशेष करके कोढ और गोलेके रोगको नष्ट करे, यह बलदाता और वीर्य बढानेवाला है।

रक्तपित्तकुलकंडन रस ।

शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिकभुजं- गरंगजम् ॥ मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत्पृथगतो द्रवैस्त्रिशः ॥४२॥ चंद- नस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृष- पल्लवस्य च ॥ धान्यवारणबुसाशतावरी- शाल्मलीवटजटामृतस्य च ॥४३॥ रक्त- पित्तकुलकंडनाभिधो जायते रसवरोस्रपि- त्तिनाम् ॥ प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवि- तस्तु वसुकृष्णलामितः,॥४४॥ नास्त्य- नेन सममत्र भूतले भेषजं किमपि रक्त- पित्तिनाम् ॥ ४५ ॥

इति रसेंद्रचिंतामणेः ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां रक्तपित्तचिकि- त्सा नाम षड्विंशस्तरंगः ॥ २६ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा, गंधक, मूँगा, सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिक, शीशा और रांगा इन सबकी भस्म लेवे, सबको खरल कर चंदन, कमल, चमेली, अडूसेके पत्ते, काँजी, गजपीपल, पिष्ट तुंबी, शतावर, सेवर, वडकी जटा और गिलोय इन प्रत्येककी तीन २ भावना देवे तो यह रक्त- पित्तकुलकंडन रस बने। मात्रा आठ तंदुलके प्रमाण लेवे इससे बढकर रक्तपित्तवालोंको दूसरी और औषधि नहीं है। यह रसेन्द्रचिंताम- णिमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां रक्तपित्त- चिकित्सा नाम षड्विंशस्तरंगः ॥ २६ ॥

सप्तविंशस्तरंगः ।

क्षय ।

श्लेष्माधिक्याद्व्यवायाद्यैः पीडितो यः प्रशुष्यति ॥ कासश्वासार्दितो रक्तं वमेच्छुक्लेक्षणो ज्वरी ॥ १ ॥ अग्निमांद्यतृषायुक्तो रिरंसुर्मांसलोलुपः ॥ विस्वरश्छर्दिमान्दीनःस ज्ञेयः क्षयपीडितः ॥२॥

अर्थ-जिस प्राणीको अत्यंत मैथुनादिके करनेसे कफ सूख जावे कि जिससे यह खांसी श्वाससे पीडित हो, रुधिरकी वमन करे, नेत्र सपेद हों, ज्वर हो, मंदाग्नि, तृषायुक्त, मैथुन करने और मांस खानेकी इच्छा हो, स्वरभंग, वमन करे और दीन होय उस प्राणीको क्षयपीडित जानना ।

अन्न ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः॥ मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतः ॥ ३ ॥

अर्थ-शाली चावल, साठी चावल, गेहूँ, जौ और मूँग आदि, मद्य, जंगली जीव (पशु-पक्षी आदि) का मांस खाना, राजरोगवालेको हित है ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् ॥ ४ ॥ तेन षडू विनिवर्तंते विकाराः पीनसादयः ॥ द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोष्टगुणं जलम् ॥ पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडंगो यूष उच्यते ॥ ५ ॥

इति सुश्रुतात् ॥

अर्थ-बकरेके मांसरसमें पीपल, जौ, कुलथी, सौंठ, अनारदाना और आमले, तथा बकरीका घी मिलायके षडंगयूष पीवे तो राजयक्ष्मा और पीनसादि विकार दूर होंय । तहां मांसरस बनानेका क्रम लिखते हैं कि औषधोंसे दूना मांस और सबसे अठगुना जल डाले, जब चतुर्थांश शेष रहे तब घृत मिलायके देवे, इसे षडंगयूष कहते हैं। यह सुश्रुतमें लिखा है ।

चतुर्दशांग लौह ।

रास्नाकर्पूरतालीसभेकपर्णी शिलाजतु॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगदहनाः समाः॥ ॥ ६ ॥ चतुर्दशायसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ लीढं कासं ज्वरं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च ॥बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-रास्ना, कपूर, तालीसपत्र, मंडूकपर्णी, शिलाजीत, त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चित्रक्की छाल ये समान भाग लेवे और १४ भाग लोहभस्मको मिलावे सबका चूर्ण कर सहत और घीमें मिलायके सेवन करे तो खाँसी, ज्वर, श्वास, राजयक्ष्माको नष्ट करे, बल वर्णको बढावे है ।

द्विपंचमूलीजलसिद्धमाज्यं वासाघृतं वाप्यथ षट्पलं वा॥ हितं पयश्छागलमव्यवाये प्रयुज्यते नागबलाभिधानम्॥८॥

अर्थ-दशमूलकी दश औषधोंसे सिद्ध करा बकरीका घी, अथवा वासाघृत वा षट्पलघृत, अथवा मैथुनरहित प्राणीको केवल बकरीका दूध अथवा नागबलादि घृत राजरोगवालेको देना हित है ।

च्यवनप्राशावलेह ।

शृंगी चामलकी फलत्रिकबला छिन्नाविदारी सठी जीवंतीदशमूलचंदनघनै-

नीलोत्पलैलावृषैः ॥ मृद्वीकाष्टकवर्गपौष्करयुतैः सार्द्धं पृथक्पालिकैरब्द्रोणेन शतानि पंच विपचेद्धात्रीफलानामतः ॥ ९ ॥ उद्धृत्यामलकानि तैलघृतयोः षड्भिश्च षड्भिः पलैर्भृष्टान्यर्द्धतुलां निधाय विधिवन्मीनांडिकायाः पचेत् ॥ शीते षण्मधुनः पलानि कुडवो वांश्याश्चतुर्जाततो मुष्टिर्मागधिकापलद्वयमयं प्राशः स्मृतश्च्यावनः ॥ १० ॥ न शोषः साकल्यं व्रजति वपुषि क्षीयमाणोऽपि जंतोर्न मूर्च्छा न च्छर्दिस्तृडपि च नच श्वासकासादयश्च ॥ न चालक्ष्मीर्विघ्नं क्वचिदपि च न व्यापदः संभवंति प्रयोगादेतस्मान्मनसि च धियो बिभ्रति भ्रांतिमंतः ॥ ११ ॥

इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–काकडासिंगी, भूयआंवला, हरड, बहेडा, आमला, खिरेटी, गिलोय, विदारीकंद, कचूर, जीवंती, दशमूलकी दश औषधी, चंदन लाल, नागरमोथा, नील कमल, इलायची छोटी, अडूसा, दाख, अष्टवर्गकी आठ औषधी और पुहकरमूल प्रत्येक चार चार तोले ले सबको १६ सेर जलमें डालके और ५०० आवले डालके पचावे जब आमले सीज जावें तब निकालके गुठली निकाल डाले फिर छः पल घी और छः पल तेल दोनोंको मिलायके इसमें आमलोंको भूने फिर २॥ सेर मिश्रीकी चासनी करके उसमें इन आमलोंको डाल दे जब अवलेह सिद्ध होजावे तब उतार ले शीतल होनेपर छः पल सहत डाले वंशलोचन पावभर, दालचीनी, पत्रज, बडी इलायची और नागकेशर सब मिलायके एक एक पल लेवे पीपल २ पल सबका चूर्ण कर मिलाय देवे यह च्यवनप्राशावलेह है इसके सेवनसे न शोष रहे, न मूर्च्छा, न वमन, तृषा, श्वास, खाँसी ये रहे और कोई प्रकारकी व्याधी नहीं होय और चित्तकी भ्रांति दूर होय । यह चिकित्सामंजरीमें लिखा है ।

वासावलेह ।

वासकस्य रसप्रस्थो माक्षिकं सितशर्करा ॥ पिप्पलीद्विपलं चैव दत्वा मृदुग्निना पचेत् ॥ १२ ॥ लेहीभूते ततः पश्चाद्द्यात्क्षौद्रं पलाष्टकम् ॥ दत्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेहमुत्तमम् ॥१३॥ निहंति राजयक्ष्माणं दुर्नामानि बहून्यपि ॥ पार्श्वशूलं च हृच्छूलं ज्वरं चाशु व्यपोहति ॥ १४ ॥
इति योगशतात् ॥

अर्थ–अडूसेका रस १ सेर, सुवर्णमाक्षिक, सपेद चीनी और पीपल इनमें २ पल डालके मंदाग्निसे पचावे जब अवलेह होजाय तब शीतल होनेपर ८ तोले सहत मिलावे, यह राजयक्ष्मा और बवासीरको दूर करे । यह योगशतग्रंथमें लिखा है ।

फलत्रिकक्काथविशुद्धमादौ शुद्धं गुडूच्या दशमूलशुद्धम् ॥ स्थिरादिकाकोलियुगादिसिद्धं शिलाजतु स्यात्क्षयिषु प्रसिद्धम् ॥ १५ ॥ इति चरकात् ॥

हेमाद्याः सूर्यसंतापाद्द्रवंति गिरिधातवः ॥ जलाभं मृदु कृष्णाभं तद्वदंति शिलाजतु ॥ १६ ॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला इनके क्वाथमें प्रथम शुद्ध करे फिर गिलोयके रसमें फिर दश मूलके क्वाथमें शुद्ध करे फिर पृष्ठिपर्णी और काकोली आदिके क्वाथमें शुद्ध करलेवे तो यह शिलाजीत क्षयरोगका नाशक प्रसिद्ध है। यह चरकमें लिखा है। तहां गरमियोंमें सूर्यके संतापसे सुवर्ण आदि पर्वतोंकी धातु जलरूप हो अति नरम काले रंगकी उन पर्वतोंसे जो चुचाती है उसको शिलाजीत कहते हैं।

तालीसादि चूर्ण।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभाः॥ यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके॥ १७॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा॥ कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम्॥ हृत्पांडुग्रहणीदोषप्लीहशोषज्वरापहम्॥१८॥

अर्थ—तालीसपत्र, मिरच, सोंठ, पीपल ये क्रमसे अधिक भाग लेवे दालचीनी और इलायची पीपल ये आधे आधे भाग ले और मिश्री ये औषधसे आठगुनी लेवे, यह श्वास, खाँसी, अरुचि, हृदयरोग, पांडुरोग, ग्रहणी, प्लीह,शोष और ज्वरको दूर करे तथा जठराग्निको दीपन करे है।

मृद्वीकारिष्ट।

मृद्वीकायास्तुलार्धं तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत्॥ चतुर्थशेषे तस्मिंस्तु पूते शीते प्रदापयेत्॥ १९॥ गुडस्य द्वितुलां दत्त्वा तत्सर्वं घृतभाजने॥ विडंगं फलिनी कृष्णा त्वगेला पत्रकेसरम्। ॥ २०॥ मरिचं च भिषक्चूर्णं सम्यक् कृत्वा विचक्षणः॥ क्षिपेच्च पलिकैर्भागैः स्थापयेच्च कियद्दिनम्॥ २१॥ ततो यथाबलं पीत्वा कासश्वासगलामयान्॥ हंति यक्ष्माणमत्युग्रमुरःसंधानकारकम्॥ २२॥ चतुर्थभागं द्राक्षाया धातुकीमत्र केचन॥ प्रयच्छंति ततो वीर्यमेतस्योच्चैः प्रजायते॥ २३॥

अर्थ—मुनक्कादाख २॥ सेरको ३२ सेर जलमें औटावे, जब ८ सेर जल शेष रहे, तब छान लेवे, जब शीतल होजाय तब गुड १० सेर डालके इसको घृतके पात्रमें भरे फिर वायविडंग, प्रियंगु, पीपल, दालचीनी, इलायची, पत्रज, केशर, मिरच, ये प्रत्येक चार २ तोलेका चूर्ण करके उस पात्रमें भर देवे फिर इसको २ महीनेतक धरा रहने दे फिर इसमेंसे रोगीका बलाबल विचारके पीवे तो खांसी श्वास, गलेके रोग, राजयक्ष्मा और उरःक्षतको अच्छा करे। किसी २ आचार्यका मत है कि इसी अरिष्टमें दाखका चतुर्थांश धायके फूल डाले तो यह अधिक वीर्यवान् होजाय है।

बृहन्नवायस चूर्ण।

त्रिकटुत्रिफलाभिश्च जातीफललवंगकैः॥ नवभागोन्मितैरेतैः समं तीक्ष्णं मृतं भवेत्॥ २४॥ संचूर्ण्य लोडयेत्क्षौद्रैर्नित्यमत्ति च मानवः॥ कासं श्वासं क्षयं मेहं पांडुरोगं भगंदरम्॥ ज्वरं मंदानलं शोथं संमोहं ग्रहणीं जयेत्॥ २५॥

अर्थ—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, जायफल, लौंग, ये नौ भाग लेवे और इसके बराबर लोहभस्म लेवे सबको एकत्र कर इसकी मात्रा सहतमें मिलायके नित्य

सेवन करे तो खाँसी, श्वास, क्षय, प्रमेह, पांडुरोग, भगंदर, ज्वर, मंदाग्नि, सूजन, मोह और संग्रहणीको दूर करे ।

सितोपलादि चूर्ण ।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशलोचनः ॥ पिप्पली स्याच्चतुःकर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी ॥ २६ ॥ एककर्षा च त्वक्कार्या चूर्णयेत्सर्वमेकतः॥ सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ २७ ॥ कासश्वासक्षयहरं हस्तपादांगदाहजित्॥ मंदाग्निसुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम्॥ ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति२८॥

अर्थ–मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, इलायची २ तोले और दालचीनी १ कर्ष सबका एकत्र चूर्ण करे, यह सितोपलादिचूर्ण सहत और घीमें मिलायके खाय तो श्वास, खाँसी, क्षय, हाथपैरोंका दाह, मंदाग्नि, सुप्तजिह्व, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर, मस्तकके विकार और रक्तपित्तको तत्काल दूर करे ।

पिप्पल्याद्यरिष्ट ।

पिप्पलीलोध्रमरिचपाठाधात्र्येलवालुकैः॥ चव्यचित्रकजंतुघ्नक्रमुकोशीरचंदनैः । ॥ २९ ॥ मुस्ताप्रियंगुलवलीहरिद्रामिसिपल्लवैः ॥ पत्रत्वक्कुष्ठतगरनागकेसरसंयुतैः ॥ ३० ॥ भागैः स्यादर्द्धपलिकैर्द्राक्षां षष्टिपलं क्षिपेत् ॥ पलानि शतधातुक्या गुडस्य च शतत्रयम् ॥ ॥ ३१ ॥ तोयार्मणद्वये सिद्धं भवत्येतत्सुखावहम् ॥ग्रहणीपांडुरोगार्शःकार्श्यगुल्मोदरापहः ॥ पिप्पल्यादिररिष्टोऽयं क्षयक्षयकरः परः ॥ ३२ ॥

अर्थ–पीपल, लोध, मिर्च, पाढ, आमले, एलवालुक, चव्य, चित्रक, वायविडंग, सुपारी, खस, चंदन, मोथा, प्रियंगू, हरपारेवडी, हरदी, कलौंजीके पत्ते, पत्रज, दालचीनी, कूठ, तगर, नागकेशर प्रत्येक चार चार तोले दाख ६० पल धायके फूल १० पल गुड १६ सेर ले इनको ३२ सेर जलमें औटावे जब चतुर्थांश रहे तब उतारके छानके किसी चिकने पात्रमें भरके रख देवे, संग्रहणी, पांडु, बवासीर, कृशता, गोला, उदर इन सबको यह पिप्पल्यादि अरिष्ट दूर करे, तथा क्षयरोगको नष्ट करे है । यह भी द्राक्षारिष्ट है इसके बनानेमें अरिष्टकी विधिसे बनाना चाहिये ।

छागलादिघृत ।

छागमांसतुलः सम्यक्पाचयेदार्मणेंभसि॥ पादशेषेण तेनैव सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३३ ॥ ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेंदे द्वे तथा जीवककर्षभौ ॥ काकोलीक्षीरकाकोली कल्कैरेभिःपलोन्मितैः॥३४॥ सम्यक्सिद्धेऽवतार्याथ शीते तस्मिन्प्रदापयेत्॥शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥ पलंपलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हंति दुस्तरम् ॥ बल्यं स्थौल्यकरं वृष्यं दीपनं मंदवह्निजित् ॥ ३६ ॥

इति हारीतात् ॥

अर्थ–बकरेका मांस ५ सेर उसको सोलह सेर जलमें औटावे जब ४ सेर रहे तब उतार ले फिर ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली इनका कल्क एक एक पल लेवे । घृत ४ सेर ले, जब घृत सिद्ध होजाय तब उतारके शीतल होने पर ८

पल मिश्री और पावभर सहत डाले, इनमेंसे ४ तोले नित्य पीवे तो घोर यक्ष्मा रोग दूर होय, बल करे, स्थूलता, वृष्य है, दीपनकर्त्ता, मंदाग्निनाशक है । ऐसा हारीतने लिखा है ।

चंदनादितैल ।

चन्दनांबु नखं वाप्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ॥ मंजिष्ठा सरलं दारु सठचेलापद्मकेसरम् ॥ ३७ ॥ पत्रं बिल्वमुशीरं च कंकोलं च नतांबुदम्॥ हरिद्रे सारिवे तिक्ता लवंगागुरुकुंकुमम् ॥ ३८ ॥ त्वग्रेणुनलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ॥ लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ ३९ ॥ अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ॥ आयुःपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम् विशेषात्क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ॥ ४० ॥

अर्थ–चंदनका क्वाथ, नखद्रव्य, कूठ, मुलहटी, छारछबीला, पद्माख, मजीठ, सरल, देवदारु, कचूर, इलायची, कमलकेशर, पत्रज, बेल, गिरी, खस, कंकोल, तगर, नेत्रबाला, हलदी, सारिवा, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दालचीनी, रेणुका नलिका, ये सब चार चार तोले इन सबका कल्क करे । दहीका जल २ ॥ सेर, और लाखका रस १। सेर तेल ४ सेर सबको एकत्र कर तेल बनावे, यह तेल, अपस्मार, ज्वर, उन्माद,क्षयरोग और रक्तपित्तको नष्ट करे, बाल, ग्रहनाशक बलवर्णकर्त्ता है ।

मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवनम् ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ४१ ॥

अर्थ–पुरुषोंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है इसीसे राजयक्ष्मावाले रोगीके मल और वीर्यको सावधानीके साथ रक्षण करे ।

अगस्त्यहरीतकी अवलेह ।

हरीतकीशतं युंज्याद्यवानामाढकं तथा पलानि दशमूलस्य विंशतिश्च नियोजयेत् ॥ ४२ ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलमपामार्गः सठी तथा ॥ कपिकच्छुः शंखपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली । ॥ ४३ ॥ बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥ पचेत्पंचाढके तोये यवः स्विन्नैः शृतं नयेत् ॥ ४४ ॥ तच्चाभयाशतं दद्यात्क्काथे तत्र विचक्षणः ॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद्गुडतुलां तथा ॥ ॥४५॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धे दत्त्वा पृथक्पृथक् ॥ तत्क्षौद्रं पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया ॥ ४६ ॥ हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥ क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्कार्शोरुचिपीनसान् ॥ ४७ ॥ ग्रहणीं नाशयत्येव वलीपलितनाशनः ॥ बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनः ॥ विहितोगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥ ४८ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ–हरड, बडी १०० नग, जौ ४ सेर, दशमूलकी दश औषध प्रत्येक दो दो पल,चित्रक, पीपरामूल, ओंगा, कचूर, कौंछके बीज, शंखपुष्पी, भारंगी, गजपीपल, खिरेंटी, पुहकरमूल प्रत्येक दो दो पल लेवे, सबको २० सेर जलमें डालके औटावे, जब जौ पकजाय तब उतारके जल छानलेवे, इस क्वाथमें पूर्वोक्त १०० हरड-

डालके और घृत तथा तेल ये आठ २ पल डाले गुड ९ सेर डाले सबको मिलायके क्काथ करे जब अवलेह सिद्ध हो जाय तब सहत पावभर और पीपलका चूर्ण पावभर मिलावे, इसमेंसे दो हरड नित्य खाया करे ऊपरसे अवलेह चाटे तो क्षय, खांसी, श्वास, हिचकी, बवासीर, अरुचि, पीनस, ग्रहणी इन रोगोंको नष्ट करे और वली-पलितनाशक है, बलवर्ण कर्त्ता, यह अवलेह रसायन है। अगस्त्यऋषिने कहाहै ।

कुमुदेश्वररस ।

पारदं शोधितं गंधमभ्रकं च समं मतम् ॥ तदर्धं दरदं दद्यात्तदर्धा च मनःशिला ॥ ४९ ॥ सर्वार्द्धं मृतलोहं च खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ द्विःसप्त भावना देयाः शतावर्या रसेन च॥५०॥ ततः शुष्को भवत्येष कुमुदेश्वरसंज्ञकः॥ सितया मरिचेनाथ गुंजाद्वित्रिप्रमाणतः ॥ ५१ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पूजयित्वेष्टदेवताम् ॥ यक्ष्माणमुग्रं हंत्येव वातपित्तकफामयान् ॥ ५२ ॥ ज्वरादीनखिलान्रोगान्यथा दैत्याञ्जनार्दनः ॥ सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः५३ इति रसार्णवात् ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, गंधक, अभ्रक ये समान भाग लेवे, अन्य औषधोंसे आधा सिंगरफ और सिंगरफसे आधी मनसिल लेवे सब औषधोंसे आधा लोहभस्म ले सबको बारीक पीस सतावरके रसकी ७ भावना देवे तो यह कुमुदेश्वररस तैयार हो जब सूखजाय तब शीशीमें भर लेवे, २ रत्ती या तीन रत्ती रस मिश्री और कालीमिर्चके चूर्णसे देवे, इसको प्रातःकाल इष्टदेवका पूजन करके देवे तो घोर राजयक्ष्माको वात-पित्त कफके विकार और ज्वरादिक अखिल रोगोंको नष्ट करे, नित्य सेवन करनेसे वली और पलित रोग नष्ट होय । यह रसावर्णमें लिखा है ।

पंचामृतरस ।

भस्मीभूतसुवर्णतारदिनकृत्सूताभ्रसत्त्वैः क्रमात्संवृद्धैस्त्रितयत्रयक्रिमिहरांभोदैर्युतः कट्फलैः ॥ निर्गुंडीदशमूलवह्निरजनीव्योषार्द्रकैर्भावितो गोलीकृत्य विशोषितो निगदितः पंचामृताख्यो रसः ॥ ५४ ॥ नानेन सदृशः कोपि रसोस्ति भुवनत्रये॥ निहंति सकलान्रोगान्भवरोगानिवाच्युतः ॥ ५५ ॥ सर्वरोगहरः सूतस्तत्तद्रोगानुपानतः ॥ अयं पंचामृतो नृणां त्रिदशानामिवामृतम् ॥ ५६ ॥ क्षयरोगं निहंत्याशु पंचकासांश्च दारुणान्॥विद्रधिं जाठरं गुल्मं हृद्रोगं च विनाशयेत्॥५७॥ इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-सुवर्ण, रूपा, ताँबा, पारा इनकी भस्म और अभ्रकसत्व ये क्रमसे १-२-३-४ और ५ भाग लेवे, फिर त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिजातक, वायविडंग इनको एक एक भाग डालके फिर कायफल, निर्गुंडी, दशमूल, चित्रक हलदी, सोंठ, मिरच, पीपल और अदरख इनके रसकी भावना देकर गोली बनाय लेवे यह (पंचामृत-रस) है इसकी बराबर त्रिलोकीमें रस नहीं है। यह अपने २ अनुपानके योगसे सर्व रोगोंको हरण करे. यह देवोंको अमृत, इस प्रकार मनुष्यको रस है। क्षयरोग, पांच खाँसी, विद्रधि,

उदर, गोला और हृद्रोगको नष्ट करे । यह सारसग्रहमें लिखा है ।

वसंतकुसुमाकररस ।

पृथग्द्वौ हाटकं चंद्रस्त्रयो वंगाहिकांतयोः ॥ चत्वारि सूतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं पविः ॥ ५८ ॥ भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीकदली निशा ॥ शतपत्रं श्वेतकंजं मालत्याः कुसुमैस्तथा । ॥ ५९ ॥ पश्चान्मृगमदाभाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥ कुसुमाकरविख्यातो वसंतपदपूर्वकः ॥ ६० ॥ वल्लद्वयमिदं चास्य सिताज्यमधुना सह ॥ वलीपलितहृन्मेध्यं कामदं सुखवर्धनम् ॥६१॥ मेहघ्नं पुष्टिदं कांतं परं सौख्यं रसायनम् ॥ सिताचंदनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगनुत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–सुवर्णभस्म २ तोले, रूपेकी भस्म २ तोले; वंगभस्म ३ तोले, शीशेकी भस्म ३ तोले, कांतभस्म ३ तोले, पारेकी भस्म, अभ्रक, मूँगा मोती और हीरेकी भस्म चार चार तोले लेवे सबको एकत्र कर गौके दूध, ईख, अडूसा, बेल, केला, हलदी, कमल, सपेद कंजा और चमेलीके फूलोंके रसकी भावना देवे फिर कस्तूरीके रसकी भावना देवे तो यह बसंतकुसुमाकर रस सिद्ध होय ४ रत्तीकी मात्रा मिश्री घृत और सहतके साथ देवे यह वली पलित हरणकर्त्ता, कामदायक, सुखवर्द्धक, प्रमेहनाशक, पुष्टकारी, कांतिकरे परम सुखदायक रसायन है । यह सिता चंदन आदिके योगसे देवे तो अम्लपित्तादि रोगोंको दूर करे ।

मालतीवसंत ।

स्वर्ण मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्धयाप्रयोज्यं खर्परयष्टौ प्रथमनवनीतेन निंब्वंबुना च ॥ यावत्स्नेहो व्रजति विलयं मर्दयेत्तावदेव गुंजामात्रं मधुचपलया सर्वरोगे वसंतः ॥ ६३ ॥

अर्थ–सुवर्णके वर्क, बूका मोती, सिंगरफ, कालीमिरच ये क्रमसे १–२–३–४ भाग लेवे और खपरिया ८ भाग लेवे, सबको खरलमें डाल मक्खनसे घोटे फिर नींबूके रससे जबतक घोटे कि जहांतक मक्खनकी चिकनाई दूर न होय । इसको १ रत्ती ले सहत और पपिलके चूर्णसे सेवन करे यह सर्व रोगपर मालती वसंत कहा है ।

रत्नगर्भपोटली ।

रसं वज्रं हेमतारं नागं लोहं च ताम्रकम् ॥ तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ६४ ॥ राजावर्त्तं च वैक्रांतं गोमेदं पुष्परागकम् ॥ शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः । ॥ ६५ ॥ मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तनापूर्य वराटकान् ॥ टंकणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुद्रणं चरेत् ॥ ६६॥ मृद्भांडे तान्सुसंयंत्र्य सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ आदाय चूणयत्सम्यङ् निर्गुंडया सप्त भावनाः ॥ ६७ ॥ आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ द्रवैर्भाव्यं ततः शुष्कं देयं गुंजाचतुष्टयम् ॥ ६८ ॥ क्षयरोगं निहंत्याशु सत्यं शिव इवांधकम् ॥ योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैश्च वा ॥ पोटलीरत्नगर्भोयं सर्वरोगहरो मतः ॥ ६९ ॥

अर्थ–पारा, हीरा, सुवर्ण, रूपा, शीशा, लोहा और ताँबा प्रत्येककी भस्म समान भाग

लेवे, तथा मोती, सुवर्ण, माक्षिक, मूँगा, राजावर्त्त, वैक्रांत, गोमेद, पुखराज और शंख इनकी भस्म समान भाग लेवे सबको एकत्र कर चित्रकके रसमें ७ दिन खरल करे फिर इनको पीले रंगकी कौडियोंमें भरके फिर सुहागेको आकके दूधमें पीसके कौडियोंके मुखको बंद कर देवे फिर इन कौडियोंको बडे पात्रमें भर मुख बंद करके गजपुटमें रखके फूंक देवे फिर उन कौडियोंको निकाल बारीक पीसे और निर्गुंडीके रसकी, अदरखके रसकी सात २ भावना देवे चित्रकके रसकी २० भावना देवे जब सूख जावे, तब शीशीमें भरके धररक्खे । इसमेंसे ४ रत्ती सेवन करे तो क्षयरोग निश्चय दूर हो इसको पीपल, सहद, घृत और मिर्चके अनुपानसे देवे । यह रत्नगर्भ पोटली सर्व रोगोंको हरण करे ।

खंडपिप्पली अवलेह ।

कृष्णाप्रस्थं पचेदाढकपयसि घृतस्यांजलीखंडपात्रं दत्त्वा लेहोपमेस्मिन्सुरकुसुमचतुर्जातविश्वोषणेंदून् ॥ ग्रंथश्रीखंडयष्टीमधुघुसृणयुतं जातिकापंच कर्ष प्रत्येकं चूर्णयित्वा मधुकुडवयुतः स्याच्च कृष्णाऽवलेहः ॥ ७० ॥ आदौ मंदाग्निकार्श्यं हरति स च शिशुस्त्रीजरन्मानुषेषु प्रायोवृष्योक्षिपथ्योविपुलबलकरो दीपनः पाचनश्च ॥ कासश्वासप्रमेहक्षयरुगतितृषाकामलापांडुकंडूप्लीहाजीर्णं ज्वरं चानिलकफविकृतीरम्लपित्तं च हन्यात् ॥ ७१ ॥

अर्थ--छोटी पीपल १ सेर ४ सेर गौके दूधमें औटावे, उसमें घी आध पाव, और मिश्री ४ सेर जब अवलेहके समान होजावे तब लौंग' दालचीनी, पत्रज, इलायची, नागकेशर, सौंठ, कालीमिर्च, भीमसेनीकपूर, पीपरामूल, चंदन, मुलहटी, सहत, केशर और जावित्री ये प्रत्येक पांच २ तोले लेवे. सबका बारीक चूर्ण कर मिलावे तथा सहत पावभर मिलावे तो यह कृष्णावलेह सिद्ध होय । यह मंदाग्नि और कृशताको हरण करे, बालक स्त्री और बुड्ढे मनुष्योंको हितकारी है. वृष्य है, नेत्रोंको हितकर, बलकारी, दीपन और पाचन है, श्वास, खाँसी, प्रमेह, क्षय, पीडा, तृषा, कामला, पांडुरोग, खुजली, प्लीह, अजीर्ण, ज्वर, वादी' कफके विकार और अम्लपित्तको नष्ट करे ।

राजमृगांक ।

रसभस्म त्रयो भागाः स्वर्णभस्मैकभागकम् ॥ मृतताम्रस्यैकभागः शिलागंधकतालकम् ॥ ७२ ॥ तथा भागद्वयं शुद्धं मेलयित्वा विचूर्णयेत् ॥ वराटीं पूरयत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥ ७३ ॥ पिष्ट्वा च तन्मुखं रुध्वा मृद्भांडे तान्निधारयेत्॥शुष्कं गजपुटे त्यक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ ७४ ॥ रसो राजमृगांकोयं पंचगुंजः क्षयापहः ॥ दशपिप्पलिकाक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ सघृतं दापयेत्पथ्यं राजरोगप्रशांतये ॥ ७५ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–पारेकी भस्म ३ भाग सुवर्ण १ भाग, ताँबेकी भस्म १ भाग, मनसिल, गंधक और हरताल प्रत्येक दो दो भाग लेवे सबको खरल कर कौडियोंमें भरे और उनके मुख बकरीके दूधसे पिसे सुहागेसे बंद कर देवे इनको मट्टीके

बर्तनमें रखके मुख बंद करके सुखायले फिर गजपुटमें रख फूंक देवे, इस राजमृगांकको बारीक पीस शीशीमें भरके रख देवे । मात्रा ९ रत्ती है इसको दश पीपल, सहत, कालीमिर्च १९ और घृत इनमें मिलायके देवे तो राजरोग दूर हो । यह सारसंग्रहमें लिखा है ।

मृगांक ।

रसेन तुल्यं कनकं तयोस्तु साम्येन युज्यान्नवमौक्तिकानि ॥ रसप्रमाणो बलिरंघ्रिभागः क्षीरस्य सर्वं तुषवारिणा तु ॥ ७६ ॥ संमर्द्य घस्रं सुविधाय गोलं दिनं पचेत्तं लवणेन पूर्णे ॥ भांडे मृगांकोयमतिप्रगल्भक्षयाग्निमांद्यग्रहणीगदेषु ॥ ७७ ॥ साज्योषणाभिर्मधुपिप्पलीभिर्वल्लोस्य देयो न ततोधिकस्तु ॥ पथ्यं हितं शीतलमेव योज्यं त्याज्यं सदा पित्तकरं विदाहि ॥ ७८ ॥ इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–पारा ४ तोले, सुवर्ण ४ तोले, नये मोती ४ तोले, गंधक ४ तोले ले सबका १ भाग दूध मिलावे, इनको तुषांबु (कांजी) से १ दिन खरल कर गोला बनाय लेवे फिर एक मिट्टीके पात्रमें निमक भर बीचमें इस गोलेको रखे ऊपरसे फिर निमक भर मुख बंद कर देवे, फिर १ दिनकी अग्नि देवे, यह मृगांकरस क्षय, मंदाग्नि और ग्रहणी रोगपर है । इसको घृत, मिर्च, सहत और पीपलके चूर्णमें मिलायके २ रत्ती देवे, अधिक न देवे और पथ्यमें सब पदार्थ शीतल देवे तथा पित्तकारक और दाहकारी पदार्थ त्याज्य हैं । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखाहै ।

कनकसुंदररसः ।

रसः कनकभागिकः कनकमाक्षिकस्तालकस्तिलारसकगंधका रससमाः सतुत्था इमे ॥ विमर्द्य पयसा रवेः सकलमेतदस्योपरि द्रवैः प्रतिदिनं पृथक्तदिति भावयेद्बुद्धिमान् । ॥ ७९ ॥ जयामुनिकलिप्रियादहनभृंगवासोद्भवैर्विभाव्य च रसैस्ततः सुदृढगोलकं स्वेदयेत् ॥ मृगांकवदथार्द्रकद्रवभरेण तं सप्तधा विमर्द्य च कटुत्रयांबुभिरय क्षयस्यांतकृत् ॥ ८० ॥ रसः कनकसुंदरो भवति सन्निपातेऽप्ययं सहार्द्रकरसैस्तथा पवनगुल्मशूलादिहृत् ॥ सविश्वघृतयोजितः सकलमत्र पथ्यं हितं मृगांकवदथापरं किमपि नैव योज्यं क्वचित् ॥ ८१ ॥

अर्थ–पारा और सुवर्ण भस्म एक एक भाग, सुवर्णमाक्षिक, हरताल, मनसिल, खपरिया गंधक और लीलाथोथा ये सब पारेके समान लेवे, इन सबको आकके दूधमें खरल करे, फिर अरनी, अगस्तिया, कलियारी, चित्रक, भाँगरा और अड़ूसा इनके रससे एक एक दिन खरल करके गोला बनावे, फिर इसको मृगांकरस समान निमकके पात्रमें रखके अग्नि देवे, फिर अदरखके रसकी भावना दे त्रिकुटाके रसकी भावना देवे तो क्षयरोगका नाशकर्त्ता रस बने, यह कनकसुंदर रस है, इसको सांनिपातमें अदरखके रससे देवे. वादी, गोला शूल आदिको हरण करे, राजरोगमें घृत और सोंठके साथ देवे और पथ्य सब मृगांकके समान जानना ।

राजरोगपर पथ्यापथ्य ।

शोकः स्त्रियः क्रोधमसूयनं च त्यजेदुदारान्विषयान्भजेच्च ॥ गुरुं द्विजातित्रिदशांश्च पूजयेत्कथाश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥ ८२ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां क्षयचिकित्सा नाम सप्तविंशस्तरंगः ॥ २७ ॥

अर्थ–सोच करना, स्त्रीसंग, क्रोध, निन्दा इनको रोगी त्याग देवे और उत्तम विषयोंका सेवन करे, गुरु, ब्राह्मण और देवता इनका पूजन कराकरे, तथा ब्राह्मणोंसे रामायण, भागवत आदि पुण्यकथाओंको सुने ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां क्षयचिकित्सा नाम सप्तविंशस्तरंगः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशस्तरंगः ।

उरःक्षत ।

कर्मभिर्बहुभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च ॥ विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥ १ ॥

अर्थ–अनेक क्रूर कर्मोंके करनेसे तथा हृदयमें किसी प्रकारकी बलवान् चोट लगनेसे जो वक्षस्थलमें व्याधि प्रगट होती है उस बलवतीको उरःक्षत रोग ऐसा कहते हैं ।

चिकित्सा ।

उरोमंथी क्षती लाजान्पयसा मधुसंयुतान् ॥ सद्य एष पिबेज्जीर्णे पयसाद्यात्सशर्करात् ॥ २ ॥

अर्थ–जिसके उर (छाती) में मथनेकीसी पीडा होय अथवा हृदयमें घाव होय वह खीलोंको दूध और सहतमें मिलायके पीवे जब यह पच जावे तब उसी समय मिश्री मिलाय दूध पीवे ।

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचो द्राक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं तथा ॥ सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ३ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्तां गुटिकां संप्रकल्पयेत् ॥ अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ ४ ॥ कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् ॥ रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ५ ॥ शोषप्लीहामवातांश्च स्वरभेदं क्षयक्षयम् ॥ गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–इलायची, पत्रज, दालचीनी, दाख और पीपल ये आधे आधे पल ले, मिश्री मुलहटी खिजूर और मुनक्कादाख ये एक एक पल लेवे सबका बारीक चूर्ण कर सहत डालके २ तोलेकी गोली बनावे एक गोली नित्य खाय तो खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, तृषा, पसलीका शूल, अरुचि, शोष, प्लीहा, आमवात, स्वरभेद और क्षई इनको दूर करे, यह तृप्त करता है वृष्य है और रक्तपित्तको नष्ट करे ।

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षायां संमितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् ॥ पचेत्तोयाढके सिद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ ७ ॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् ॥ प्रदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ८ ॥ सिद्धशीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदा

पयेत् ॥ एतद्द्राक्षाघृतं सिद्धं क्षीणक्षतहितं परम् ॥ ९ ॥

अर्थ-दाख १ सेर, मुलहटी आधसेर, दोनोंको चार सेर जलमें औटावे जब १ सेर जल शेष रहे तब उतारके छानलेय इसमें ४ तोले मुलहटी ४ तोले दाख और पीपल २ तोले इनका चूर्ण डाल १ सेर घृतको मंदाग्निसे पचावे, जब घृत सिद्ध होजाय तब ८ पल मिश्री मिलावे यह द्राक्षाघृत उरःक्षती प्राणियोंको परम हितकारी है।

कास।

कासका निदान।

प्राणो ह्युदानमन्वेत्य यदोर्ध्वमुपसर्पति ॥ तदा संजायते कासः कंठहृन्नाभिहर्षणः ॥ १० ॥

अर्थ-जब प्राणपवन उदान पवनको साथ ले ऊपरको आता है तब इस प्राणीके कंठ, हृदय, नाभिको खींचनेवाला कास (खाँसी) का रोग होता है।

चिकित्सा।

पंचमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ११ ॥ भार्ङ्गी द्राक्षा सठी शृंगी पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ गुणतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम्॥१२॥बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम् ॥ पित्तकासापहं योज्यं शर्करामधुसंयुतम् ॥ १३ ॥ पुष्करं कट्फलं भार्ङ्गीविश्वपिप्पलिसाधितम्॥ पिबेत्क्वाथं कफोद्रेके श्वासे कासे च हृद्ग्रहे ॥ १४ ॥ प्रस्थं बिभीतकानामस्थिन विहाय साधयेदजामूत्रे॥लेहवदवलेहोयं मधुना सहितोतिकासहरः॥१५॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ-लघुपंचमूलका क्वाथ कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे और इसके ऊपर मांसरस और यूषादि अन्नका सेवन करे तो वादीकी खाँसी दूर हो। अथवा भारंगी, दाख, कचूर, काकडासिंगी, पीपल और सोंठ इनमें गुड और तेल मिलाके अवलेह बनावे यह वादीकी खाँसीमें हित है। अथवा खिरेटी छोटी और बडी कटेरी अडूसा और दाख इनका क्वाथ मिश्री और सहत मिलायके पीवे तो पित्तकी खाँसी दूर हो। अथवा पुहकरमूल, कायफल, भारंगी, सोंठ और पीपल, इनका क्वाथ कफकी खाँसी श्वास और हृदयरोगको दूर करे। अथवा बहेडे १ सेरकी गुठली निकाल बकरीके मूत्रमें औटायके अवलेह बनावे. इसमें सहत डालके पीवे तो खाँसी नष्ट होय। यह वृंदमें लिखा है।

मरिचादि गुटिका।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसंमिता॥ अर्द्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ॥१६॥ एतच्चूर्णीकृतं युंज्याद्दष्टकर्षयुतेन हि ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् ॥ अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यांत्येव संक्षयम् ॥१७॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ-मिरच १ तोला, पीपल १ तोला, जवाखार ६ मासे, अनारका छिलका २ तोले इनको बारीक पीस आठ तोले गुड मिलाके चार २ मासेकी गोली बनाय लेवे. १ गोली मुखमें रखके इसका रस चूसा करे तो सब खाँसी नष्ट होय।

भागोत्तरो वटकः ।

रसगंधकणापथ्याकलिद्रुफलवासकाः ॥ भार्ङ्गी चेति क्रमाद्वृद्धमेतद्बब्बुलजैर्द्रवैः। ॥ १८ ॥ पिष्टं विंशतिवारं तत्कुर्यात्क्षौद्रेण गोलकान् ॥ कर्षप्रमाणेन तस्यै तमेकं प्रातरुत्थितः॥१९॥ अद्यान्मासत्रयं क्षुद्राक्काथं दशकणायुतम् ॥ पिबेत्तदनु कासाच्च श्वासाच्च परिमुच्यते॥२०॥

अर्थ-पारा १ तोला, गंधक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ५ तोले, अडूसा ६ तोले और भारंगी ७ तोले ले, सबको बारीक पीस बबूलके काढेकी २० भावना दे फिर सहतसे ३ तोलेकी गोली बनाय लेवे,नित्य प्रातःकाल एक गोली खाय ऊपरसे १० पीपलका चूर्ण मिला कटेरीका क्काथ पीवे तो खाँसी और श्वास दोनों दूर हों ।

पर्पटीरसः ।

भागो रसस्य गंधस्य द्वावेको लोहभस्मनः॥एतद् वृष्टं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ २१ ॥ पातयेद्गोमयगते तथैवोपरि योजयेत् ॥ ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिर्मर्द्दयेत्सप्तधा पृथक् ॥ २२ ॥ भार्ङ्गीमुंडीमुनिवराजयानिर्गुंडिकाद्रवैः ॥व्योषवासककन्यार्द्रद्रवैः शुष्कं पुटेल्लघु ॥ २३ ॥ आगंधं खर्परे नाम्ना पर्पटीति रसो भवेत् ॥सर्वरोगहरः स्वैःस्वैरनुपानैर्द्विमाषिकः ॥ २४ ॥ तांबूलीपत्रसहितः कासश्वासहरः परः ॥ सकणः स्वरसाक्काथोऽनुपानं वा सगोजलम्॥२५॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ-पारा, गंधक और लोहभस्म प्रत्येक एक एक तोला लेवे, सबकी कजली कर अग्निपर पतली करके केलेके पत्तेपर ढाल देवे और ऊपरसे दूसरा पत्ता ढकके दाब देवे फिर इसको बारीक पीसके भारंगी, मुंडी, अगस्तिया, त्रिफला, अरनी, निर्गुंडी, त्रिकुटा, अडूसा, घीकुवार, इन प्रत्येकमें सात २ भावना दे जब भावना सूख जाय तब लावकपुटमें रखके फूंक देवे, कि जिसमें गंधक न रहे तो यह पर्पटीरस सिद्ध होय यह अपने २ अनुपानसे दो मासे लेनेसे सर्व रोगोंको हरण करता है. नागरवेलके पानमें रखके देवे तो खाँसी और श्वासको नष्ट करे। अथवा पीपलयुक्त तुलसीका क्काथ देवे अथवा गोमूत्रके साथ देवे ।

पारदादि चूर्ण ।

पारदं गंधकं शुद्धं मृतं लोहं च टंकणम्॥ रास्ना विडंगं त्रिफला देवदारु कटुत्रयम् । ॥ २६ ॥ अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषं तुल्यानि चूर्णयेत् ॥ त्रिगुंजः सर्वकासघ्नो ज्वरारोचकमेहनुत् ॥ २७ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ-पारा, गंधक, लोहभस्म, सुहागा, रास्ना, वायाविडंग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकुटा, गिलोय, पद्माख, सहत और विष ये समान भाग लेवे, चूर्ण कर ३ रत्ती सेवन करे तो सब खाँसी, ज्वर, अरुचि और प्रमेहको नष्ट करे । यह योगरत्नावलीमें लिखाहै ।

कासघ्नी गुटिका ।

तुल्या लवंगमरिचाक्षफलत्वचः स्युः सर्वैः समश्च गदितः खदिरस्य सारः ॥ बब्बूलवृक्षजकषाययुजां चतुर्णां कासं निहंति गुटिका घटिकाष्टकांतः ॥२८॥

इति लोलिंबराजात् ॥

अर्थ-लौंग, कालीमिरच और बहेडेकी छाल एक एक तोला, खैरसार ३ तोले, सबके चूर्णमें बबूलके क्राथकी भावना दे गोली बनाय लेवे, यह खाँसियोंको बहुत शीघ्र दूर करे । यह वैद्यजीवनमें कहाहै ।

कफघ्री गुटिका ।

कर्पूरमर्द्धकर्ष मृगमदमपि देवकुसुमयुगम् ॥ मरिचकणाक्षकुलिंजनमेकैकं शुक्तिपरिमाणम् ॥ २९ ॥ दाडिमफलवल्कलपलमखिलसमं खदिरसारमवचूर्ण्य ॥ वटिका मुद्गसमाना विवृताऽऽस्ये कफघ्नी स्यात् ॥ ३० ॥

इति ग्रंथांतरे ॥

अर्थ-भीमसेनीकपूर ६ मासे, कस्तूरी ६ मासे, लौंग २ तोले, मिरच, पीपल, बहेडेकी छाल और कुलिंजन ये २ तोले, अनारके फलकी छाल ४ तोले और इन सब औषधोंके समान खैरसार लेवे, सबको पीस [बबूरकी छालके क्राथसे] मूँगके समान गोली बनावे, मुखमें रखनेसे कफको दूर करे ।

रात्रिद्वयशिलाधूमपानात्कासस्तुतिः कुतः॥ जलपानादपि तथा क्रमेण क्षणदाक्षये । ॥ ३१ ॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥ रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ ३२ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-हलदी, दारुहलदी, मनसिल इनका धूमपान करनेसे खाँसी दूर हो । अथवा इन्हीं औषधोंका क्राथ पीनेसे खाँसी दूर हो । अडूसेके होनेपर रक्तपित्ती, क्षयी, खाँसीवाले प्राणी क्यों दुःख पाते हैं ? अर्थात् अडूसा क्राथ पीवे । यह सारसंग्रहमें लिखाहै ।

कासकर्त्तरी ।

रंगं कृष्णाभया क्षारं रूषभार्ङ्गी क्रमात्तरा ॥ तत्समं खादिरं सारं बब्बूलकाथभावितम् ॥ ३३ ॥ एकविंशतिवारांश्च मधुना क्रमिता गुटी ॥ श्वासं कासं च हिक्कां च हंतीयं कासकर्तरी ॥ ३४ ॥

अर्थ-राँगेकी भस्म, पीपल, हरड, जवाखार. अडूसा और भारंगी ये क्रमसे अधिक भाग ले, और सबकी बराबर खैरसार लेवे, सबको बबूलके क्राथमें घोटकर २१ भावना दे फिर सहतसे गोली बनायले । यह कासकर्त्तरी गोली श्वास, खाँसी, हिचकीको नष्ट करे ।

कासरोगमें पथ्यापथ्य ।

मैथुनस्निग्धमधुरदिवास्वापपयोदधि ॥ मिष्टान्नपायसादीनि कासी धूमं च वर्ज्जयेत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां कासचिकित्सा नाम अष्टाविंशस्तरंगः ॥ २८ ॥

अर्थ-मैथुन करना, चिकने पदार्थ, मिठाई, दिनमें सोना, दूध, दही, मिष्ट अन्न, जैसे-खीर आदि और धुएँमें रहना खाँसी रोगवालेको वर्जित हैं ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां कासचिकित्सा नामाष्टाविंशस्तरंगः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशस्तरंगः ।

हिक्का ।

अपानादूर्ध्वगात्क्रुद्धाद्धिक्काः पंचकफान्वितात् ॥ अन्नजा यमलाः क्षुद्रा गंभीरा महतीति च ॥ १ ॥

अर्थ–जब कुपित अपानपवन कफके साथ कंठादि ऊपरके स्थानोंमें आता है तब इस प्राणीके पांच प्रकारकी हिचकी होती हैं। जैसे– अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती ये पांच हैं।

चिकित्सा।

नारीपयःपिष्टमशुक्लचंदनं घृतं सुखोष्णं च ससैंधवं च ॥ पिष्टं तथा सैंधवमंबुना च निहंति हिक्कां ननु नावनेन ॥ २ ॥

इति नारायणीयात् ॥

अर्थ–स्त्रीका दूध, पिसा लाल चंदन, मंदोष्ण (थोडा गरम) घी और सैंधानिमकका चूर्ण अथवा केवल सैंधानिमककोही जलमें पीसके नास देनेसे हिचकी नष्ट हो।

यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावलीढं कृष्णाचूर्णं शर्कराढ्यं च किंवा॥ सर्पिः कोष्णं क्षीरमुष्णं रसो वा हन्यादिक्षोः पानतः पंच हिक्काः ॥ ३ ॥

इतिसुश्रुतात् ॥

अर्थ–मुलहटीको वा सहतको पीपलके चूर्ण और खांडमें मिलायके खाय। अथवा गरम २ घी वा गरम दूध वा गरम ईखका रस पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकी दूर हों।

शिखिपिच्छभस्मकृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम् ॥ हिक्कां हंति प्रबलां श्वासं चैवातिदुस्तरां छर्दिम् ॥ ४ ॥

इति चिकित्सादीपात् ॥

अर्थ–मोरपखोंका भस्म, पीपलका चूर्ण इनको सहतमें मिलायके चाटे तो प्रबल हिचकी श्वास और घोर वमनको दूर करे। यह चिकित्सादीपकमें लिखा है।

कोलमज्जांजनं लाजास्तिक्ताकांचनगैरिकम् ॥ कृष्णा धात्री सिता शुंठी कासीसं दधिनाम च ॥ ५ ॥ पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमुस्तकम् ॥ षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ॥ ६ ॥

अर्थ–बेरकी गुठली, सुरमा, चावलोंकी खील, कुटकी, सुवर्णगेरू, पीपल, आंवले, मिश्री और सोंठ, कसीस और कैथ, पाढरके फूल और फल, पीपल, खिजूर और नागरमोथा ये चौथाई २ श्लोकमें छः अवलेह कहे हैं। इन प्रत्येकको सहतमें मिलाके चाटे तो हिचकियोंको नष्ट करें।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥ नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ ७ ॥

अर्थ–मुलहटीको सहतके साथ, पीपर खांडके साथ, और सौंठ गुडके साथ ये तीन योग हैं। इनमेंसे किसी एकका नस्य लेवे तो हिचकी दूर हो।

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्ये वालक्तकांबुना ॥ योज्या हिक्काभिभूतेभ्यः स्तन्यं वा चंदनान्वितम् ॥ ८ ॥ सिंधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं पिबेत् ॥ हिक्कार्तो मधुना लिह्याच्छुंठीं धात्रीकणान्विताम् ॥ ९ ॥ कृष्णामलकशुंठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥ मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ १० ॥ हिक्की श्वासी पिबेद्भार्ङ्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ॥ नागरं वा सिताभार्ङ्गीसौवर्चलसमन्वितम् ॥ ११ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–स्त्रीके दूधमें मक्खीकी बीट मिलाके नास देवे। अथवा महावरकी नास देवे अथवा स्त्रीके दूधमें चंदन घिसा मिलायके नस्य देवे तो हिचकी दूर हो। अथवा सेंधानिमक, संचर निमक इनको बिजौरेके रसमें मिलाके पीवे। अथवा सोंठ, आँवले और पीपलका चूर्ण सहतमें मिलाके चाटे तो हिचकी दूर हों। अथवा पीपल, आँवले और सोंठके चर्णको सहत और मिश्रीके साथ वारंवार चाटे तो हिचकी और श्वास दूर हो। अथवा हिचकीवाला, श्वासी ये भारंगी और सोंठका चूर्ण गरम जलसे पीवे। अथवा सोंठको या मिश्री, भारंगी और संचर निमक मिलायके पीवे। यह वृंदमें लिखा है।

दशमूलीजलयुतं सूतं हिक्किषु योजयेत्॥ श्वासकासहरः सर्वो विधिरत्रापि योज्यते॥ १२॥

इति रसरत्नप्रदीपात्॥

अर्थ–दशमूल और नेत्रवाला इनमें पारा मिलायके हिचकी रोगवालेको देवे और श्वास खासीके हरणकर्त्ता सब योग इस हिचकी रोगमें देने चाहिये। यह रसरत्नप्रदीपमें लिखे हैं।

पाटलाफलतोयेन क्षौद्रेण च समन्वितम्॥ हेमभस्म निहंत्येव हिक्काः पंच सुदारुणाः॥ १३॥ कटुकागैरिकाभ्यां च मुक्ताभस्म तथैव च॥ बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम्।॥ १४॥ हेममुक्तार्ककांतानां भस्म वल्लसमन्वितम्॥ बीजपूररसः क्षौद्रसौवर्चलसमन्वितः॥ १५॥ हंति हिक्काशतशतमेकमात्रप्रयोगतः॥ का कथा पंचहिक्कानां हरणे पुनरुच्यते॥१६॥

इति बौद्धसर्वस्वात्॥

अर्थ–पाटलके फलके काथमें सहत मिलायके पीवे। अथवा सुवर्णकी भस्म सेवन करे तो पांच प्रकारकी श्वास दूर हो, अथवा कुटकी और गेरू मिलायके या मोतीके भस्मको बिजौरेके रससे पीवे अथवा तामेके भस्म सहत मिलायके पीवे तो हिचकी दूर हो, अथवा सुवर्ण, मोती, तामा और कांतलोह इनके ३ रत्तीभस्मको सहत और संचर निमक मिलाय बिजौरेके रससे पीवे, एक ही मात्रासे अनेक हिचकी दूर हों फिर पांच हिचकियोंका क्या कहना है। यह बौद्धसर्वस्वमें लिखा है।

दशमूलीकषायेण मधुना च समन्वितम्॥ कांतायोभस्म हिक्कानां पंचानां पंचतां नयेत्॥ १७॥

इति वसंतराजात्॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां हिक्काचिकित्सा नामैकोनविंशस्तरंगः॥२९॥

अर्थ–दशमूलके काथमें सहत मिलाय इसके साथ कांतलोहका भस्म सेवन करे तो पांच प्रकारकी हिचकी दूर हों। यह वसंतराज ग्रंथमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां हिक्काचिकित्सा नामैकोनत्रिंशस्तरंगः॥ २९॥

त्रिंशस्तरंगः।

श्वास।

यैर्निमित्तैर्भवेद्धिक्का श्वासस्तैरेव जायते। कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः क्वथितं जलम्॥ पीतं पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम्॥ १॥

इति वृंदात्॥

अर्थ–जिन कारणोंसे हिचकी होती है वही सब कारण श्वासरोग होनेके हैं. यत्न–कुलथी, सोंठ, कटेरी और अडूसा इनके क्वाथमें पुहकरमूलका चूर्ण डालके पीवे तो श्वास और खाँसी दूर हो. यह वृंदमें लिखा है।

गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्धारयेद्गुटिकां मुखे॥ श्वासकासेषु सर्वेषु विभीतं वापि केवलम्॥ २॥

इति शार्ङ्गधरात्॥

अर्थ–गुड, सोठ, आवले, मोथा इनकी गोली बनाके मुखमें रक्खे, अथवा केवल बहेडेकी छालको भूनके मुखमें रखे तो सब श्वास और खाँसी दूर हो।

भारंगी हरीतकी अवलेह।

भार्ङ्गीजटापलशतं सलिलार्भणाभ्यां युक्पश्चमूलतुलया सहितं विपाच्यम्॥ पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां पक्तव्यमुज्ज्वलगुडस्य शतेन साकम्। ॥ ३॥ उत्तार्य तत्र शिशिरे मधुनः पलानि चत्वारि च द्विगुणितानि पलत्रयं च॥ व्योषत्रुटित्वगिभकेसरपत्रकाणामेषां पलं खलु निधेयमथोपयोज्यम्॥ ४॥ श्वासं च कासमपि शोषमयापि हिक्कामैकाहिकं ज्वरमथोत्कटपीनसं च॥ हन्याद्रसायनमिदं हि पुरंदरस्य प्रोक्तं सहस्रकरपुत्रभिषग्वराभ्याम्॥ ५॥

अर्थ–भारंगीकी जड ५ सेरको बीस सेर दूधमें तथा दशमूलकी दश औषध ५ सेर मिलायके क्वाथ करे जब जल चतुर्थांश रहे तब उतारके छानलेवे फिर इसमें बडी २ हरड जिनकी गुठली निकाल डाली होय और ५ सेर उत्तम गुड डालके अवलेह बनावे फिर उतारके शीतल होनेपर इसमें ८ पल सहत मिलावे तथा सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, दालचीनी, नागकेसर और पत्रज प्रत्येक चार २ तोले ले चूर्ण करके इसमें अनुमान माफिक मिलायदेवे, श्वास, खाँसी, शोष, हिचकी, ऐकाहिक ज्वर, घोर पीनस, इन रोगोंका हनन करनेवाला यह रसायन अश्विनीकुमारोंने इन्द्रसे कहा है।

श्वासकुठार।

रसं गंधं विषं चैव टंकणं च मनःशिला॥ एतानि टंकमात्राणि मरिचं चाष्टटंककम्॥ ६॥ एकैकं मरिचं दत्त्वा खल्वे चूर्णं विमर्दयेत्॥ त्रिकुटं टंकषट्कं च दत्त्वा पश्चाद्विचूर्णयेत्। ॥ ७॥ सर्वमेकत्र संयोज्य काचकूप्यां विनिक्षिपेत्॥ श्वासे कासे च मंदाग्नौ तथा श्लेष्मामयेषु च॥ ८॥ गुंजामात्रं प्रदातव्यं पर्णखंडेन धीमता॥ सन्निपाते च मूर्च्छायामपस्मारे तथा पुनः॥ ९॥ अतिमोहत्वमापन्ने नस्यं दद्याद्विचक्षणः॥ रसः श्वाशकुठारोऽयं सर्वश्वासविकारजित्॥ १०॥

इति सारसंग्रहात्॥

अर्थ–पारा, गंधक, विष, सुहागा, मनसिल प्रत्येक चार २ मासे ले कालीमिरच ३२ मासे ले प्रथम एक एक मिरच डालके चूर्ण करे फिर सब वस्तु मिलावे और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये प्रत्येक आठ आठ मासे मिलाय बारीक कपडछान चूर्ण करलेवे और शीशीमें भरके रख देवे. इसे श्वास, खाँसी,

मंदाग्नि, कफकी बीमारीमें १ रत्ती पानमें रखके देवे तथा संनिपात, मूर्च्छा, मृगी, अत्यन्त बेहोशीमें इसकी नास देवे । यह सर्व श्वासनाशक श्वासकुठार रस है ।

सोमनाथी ताम्र ।

अर्केशानसमं बलिं भवसमं तालं तदर्द्धां शिलां श्लक्ष्णां कज्जलिकां विधाय सुदृढेऽमत्रेऽध ऊर्ध्वं क्षिपेत् ॥ ताम्रस्याथ मुखं निरुध्य विधिवत्तद्गर्भयंत्रे पचेत्क्षोदैर्भांडनभःप्रपूर्य पटुनो युत्त्यैकघस्रं सुधीः ॥ ११ ॥ सोमनाथीयताम्रस्य वल्लयुत्त्यानुपानतः ॥ शीलयन्सकलान्रोगानुन्मूलयति पथ्यभुक् ॥ १२ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां श्वासचिकित्सा नाम त्रिंशस्तरंगः ॥ ३० ॥

अर्थ–तामाके नखके समान छोटे २ टूक, पारा, गंधक दोनों समान भाग ले, गंधकसे आधी मनशिल, इन सबको एकत्र कजली करके तामेके पत्रोंपर चढाय दे, फिर इस तामेंको गर्भयंत्रमें रखके मुख बंद करे और दूसरे पात्रमें निमक भरके मुख बंद कर १ दिनकी अग्नि देवे तो सोमनाथी ताम्र बनके सिद्ध होय। इसमेंसे ३ रत्ती ताम्र अनुपानके साथ देवे तो सब रोगोंको जडसे उखाड देवे। इसपर पथ्यसे रहे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां श्वासचिकित्सा नाम त्रिंशस्तरंगः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशस्तरंगः ।

स्वरभेद ।

अम्लादेः कुपितैर्दोषैः स्वरनाडीगतैर्नृणाम् ॥ स्वरभेदः पृथक्सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च ॥ १ ॥

अर्थ–स्वरभेदका निदान कहते हैं । खटाई आदि पदार्थोंके खानेसे वातादि दोष कुपित हो स्वरके बहनेवाली नाडियोंमें जायके स्वरभंग (गला बैठना) रोगको करेहैं । यह वात, पित्त, कफ, सन्निपात, मेद और क्षय इन भेदोंसे छः प्रकारका है ।

चिकित्सा [चव्यादिमोदक]

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिंतिडीककासीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ॥ चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्य्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ २ ॥

अर्थ–चव्य, अमलवेत, सोंठ, मिरच, पीपल, इमली, कसीस, जीरा, वंशलोचन और चित्रक ये समान भाग लेवे । इसमें दालचीनी, पत्रज और इलायची डाल तथा बराबरका गुड मिलायके गोली बनाय लेवे । यह स्वरभंग, पनिस, कफ और अरुचिरोगपर उत्तम है ।

बदरीपत्रवल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ॥ स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ॥ सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पंचविधम् ॥ ४ ॥

इति वृंदात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां स्वरभेदचिकित्सानामैकत्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ–बेरके पत्तोंके कल्कको घीमें भून सेंधा निमक मिलायके स्वरभंग, खांसी इनमें इसको चाटे । अथवा कटेरीके स्वरसमें रास्ना, खिरेटी, गोखरू और त्रिकुटा डालके घृत सिद्ध करे । यह स्वरभंग और पांच प्रकारकी खाँसीको दूर करे यह वृंदमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां स्वरभेदचिकित्सा नामैकत्रिंशस्तरंगः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशस्तरंगः ।

अरुचि ।

बस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे॥ कुर्यादरोचके बुद्धा हर्षणं मनसस्तथा॥ ॥ १ ॥ अम्लिका गुडतोय च त्वगेलामरिचान्वितम् ॥ अभक्तं छंदरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ २ ॥ जिह्वाकंठविशोधनं तदनु च स्याच्छृंगवेरान्वितं सिंधूत्थं हितमत्र वाथ मधुना शस्तो रसो दाडिमः ॥ अग्न्युद्बोधकराण्यजीर्णशमनान्याहुस्तथा भेषजान्यत्रारोचकरोगवत्यथ मुहुस्तत्तत्प्रदानानि च ॥ ३॥

अर्थ–वादीकी अरुचिमें बस्तिकर्म करे । पित्तमें जुलाब देय, कफकी अरुचिरोगमें वमन करावे, तथा अरुचिरोगमें मनको हर्षकारी कर्म करे । इमली, गुड, दालचीनी, इलायची इनका पना बनायके (अभक्तच्छंद) रोगमें यह प्राणी मुखमें कवल धारण करे । अथवा अदरखमें सेंधानिमक मिलाय सेवन करे तो जीभ और कंठ शुद्ध होय, अथवा अनारके रसमें सहत मिलायके सेवन करे तो अरुचि दूर हो अथवा जो पदार्थ अग्निके बोधन करानेवाले तथा अजीर्णके नाशक हैं वे सब इस अरुचिरोगमें देने चाहिये ।

अरुचिहर गुटिका ।

सूतगंधाभ्रमगधाम्लकामरिचसैंधवैः ॥ गुटिकारोचकहरी जिह्वावदनशुद्धिकृत्॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यामरोचकचिकित्सा नाम द्वात्रिंशस्तरंगः ॥ ३२ ॥

अर्थ–पारा, गंधक, अभ्रक, पीपल, इमली, कालीमिरच और सेंधानिमक इनकी गुटिका अरुचिको नष्ट करे तथा जीभ और मुखको शुद्ध करे है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां रोचकचिकित्सा नाम द्वात्रिंशस्तरंगः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशस्तरंगः ।

छर्दि ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ॥ छर्दयः पंच विज्ञेयास्ताः पृथग्लक्षणैर्मताः ॥ १ ॥

अर्थ–वातादि दुष्टदोषोंसे जैसे वात, पित्त, कफ और सन्निपात एवं बीभत्स पदार्थोंके देखनेसे छर्दि रोग पांच प्रकारका है इनको पृथक् लक्षणोंसे जानना चाहिये ।

चिकित्सा ।

दधित्थरससंयुक्तं पिप्पलीमाक्षिकान्वितम् ॥ मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ २ ॥

इति सुश्रुतात् ॥

कोमलकरंजपत्रं सलवणमम्लेन संयु-

क्रम् ॥ यः खादति दिनवदने छर्दि-कथा तस्य कुत्रेह ॥ ३ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–बिजौरेके रसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके वारंवार चाटे तो वमन होना बंद होय, यह सुश्रुतमें लिखा है। अथवा जो प्राणी कोमल कंजेके पत्तोंमें सेंधानिमक और नींबूका रस मिलायके प्रातःकाल खाय तो वमन होना दूर हो। यह सारसंग्रहमें लिखा है।

एलालवंगगजकेसरकोलमज्जालाजप्रियं-गुघनचंदनपिप्पलीनाम् ॥ चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहंति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ ४ ॥

इति योगरत्नात् ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ॥ रंभाकंदरसो वापि मधुना छर्दिनाशकृत् ॥ ५ ॥ अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले॥ तद्वारिपानतो नूनं छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ ६ ॥ पुराणसणगोण्या वा खंडे दग्ध्वा तदंबु वै ॥ पिबेच्छर्दिहरं किं वा मधुना मक्षिकामलम् ॥ ७ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–छोटी इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकी गुठली, खील, प्रियंगु, नागरमोथा, चंदन और पीपल इनके चूर्णमें सहत और मिश्री मिलायके चाटे तो कफ, वात और पित्तजन्य वमनको दूर करे। यह योगरत्नमें लिखा है। अथवा भूने मूंग और खीलके क्वाथमें सहत और मिश्री अथवा इस रोगमें केलेके कंदका रस सहत मिलाकर पीवे ता वमन होना दूर हो। अथवा पीपलकी सूखी छालको जलायके खाक कर लेवे उसको जलमें भिगोयके निथरे हुए जलको पीवे तो घोर वमन दूर हो। अथवा सनकी पुरानी गोन (टाट) के टुकडेको जलायके जलमें घोर देवे फिर जल निथारके पीवे तो वमन दूर हो। अथवा मक्खियोंके मल (बीट) को सहतमें मिलायके चाटे तो वमन होना दूर हो। यह वृंदमें लिखा है।

ईषद्भृष्टं करंजस्य बीजं खंडीकृतं पुनः ॥ मुहुर्मुहुनरो भुक्त्वा छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ ८ ॥ पर्पटक्काथमादाय शीतलं दापयेन्नणाम् ॥ वमिं हंति महाघोरां सपित्तभ्रमसंयुताम् ॥ ९ ॥ शंखपुष्पीरसं टंकद्वयं समरिचं मुदुः ॥ सक्षौद्रं मनुजः पीत्वा छर्दिभ्यः किल मुच्यते ॥ १० ॥ अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्रैः सकटुत्रिकैः ॥ एतैः सार्द्धं भस्म सूतः सद्यो वांतिं विनाशयेत् ॥ ११ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां छर्दिचिकित्सा नाम त्रयस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३३ ॥

अर्थ–कंजेके बीजको थोडा भूनके टुकडे २ करे उनमेंसे एक एक टुकडेको वारंवार मुखमें डालता रहे तो दुस्तर वमनका रोग दूर होय। अथवा पित्तपापडेका स्वरस पीवे तो महाघोर वमन और पित्तयुक्त भ्रम रोग दूर होय अथवा शंखपुष्पीका रस ८ मासे/ मिरचका चूरा ३ मासे सहत मिलायके पीवे तो वमन रोग अवश्य दूर होय। अथवा जीरा, धनिया, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, सहत इन सबके साथ पारदकी

भस्मका सेवन करे तो तत्काल वमन होना बंद हो । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां छर्दिचिकित्सा नाम त्रयस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशस्तरंगः ।

तृष्णा ।

सततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छाति- पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ १ ॥

इति वीरसिंहावलोकतः ॥

अर्थ-जो निरंतर जल पीवे तथापि प्यास न बुझे फिर जल पीनेकी इच्छा करे उसको तृषारोगसे पीडित जानना । यह वीरसिंहावलोकमें लिखा है ।

तृष्णाविवृद्धावुदरे च पूर्णे संछर्दयेन्मागधिकोदकेन ॥ विलेहनं चात्र हितं विधेयं स्याद्दाडिमाम्लातकमातुलुंगैः ॥ २ ॥ सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तैर्लोष्टैः कृतं वा सिकतोपलैर्वा ॥ जलं सुखोष्णं शमयेच्च तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा । ॥ ३ ॥ कशेरुशृंगाटकपद्मबीजबिसेक्षुसिद्धं ससितं च वारि ॥ तृषं क्षतोत्थामपि पित्तजातां निहंति पीतं शिशिरीकृतं च ॥ ४ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-यदि जल पीते २ पेट भरजावे और तृषा बढती जाय तो पीपलके क्राथको पिलाके वमन करावे, तथा अनारदाना, अंबाडा और बिजौरेके रसकी चटनी करके चाटे । अथवा सुवर्ण रूपे आदिको अग्निमें गरम करके, या मिट्टीके डलेको, या वालुका या पत्थरको गरम कर जलमें बुझावे इसमें मिश्री और सहत डाल शीतल करके देवे तो प्यास बंद होय. अथवा कशेरू, सिंघाडे, कमलगट्टा, कमलकी डंडी और ईख इनको औटावे शीतल होनेपर मिश्री मिलायके पीवे तो घावकी तृषा और पित्तकी तृषा दूर होय । यह वृंदमें लिखा है ।

अरुणचंदनचंदनबालकैर्नलदपद्मकतुल्यकृतांशकैः ॥ शिरसि लेपनमाचरतां नृणां तुडुपयात्युपशांतिमसंशयम् ॥ ॥ ५ ॥ नीलाब्जकुष्ठमधुलाजवटप्ररोहैः श्लक्ष्णीकृतैर्विरचिता गुटिका मुखस्था ॥ तृष्णां निवारयति तत्क्षणमेव तीव्रामंतः स्पृहामिव यतेः परमार्थचिंता ॥ ६ ॥

इतिराजमार्तंडात् ॥

अर्थ-लालचंदन, सपेद चंदन, नेत्रवाला, खस, पद्माख, ये समान भाग लेवे, इनको जलमें पीसके मस्तकपर लेप करे तो तृषा शांति होय । अथवा नीलकमल, कूठ, मुलहटी, खील, बडके अंकुर इनको जलसे बारीक पीस गोली बनाके मुखमें रखे तो तत्क्षण तीव्र तृषा दूर होय । यह राजमार्त्तंडमें लिखा है ।

तृषाहारी रस ।

रसगंधकर्कर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः ॥ ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं चूर्णमहर्मुखे ॥ ७ ॥ त्रिगुंजाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषितांबु च ॥ भृशतृष्णां निहंत्येवमाश्विनेयप्रकाशितम् ॥ ८ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-पारा, गंधक, कपूर, शिलाजीत. खस, कालीमिरच और मिश्री ये क्रमसे अधिक भाग

लेवे, बारीक चूर्ण कर प्रातःकाल ३ रत्ती रसको बासी जलसे खाय तो तृषा दूर होय । यह सार-संग्रहमें लिखा है ।

सक्षौद्रमाम्रजंबूत्थं पिबेत्क्वाथं रसान्वितम् ॥ सतृष्णो मधुना कुर्याद्गंडूषाञ्छिशिरस्थितः ॥ ९ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–आम और जामुनकी छालके क्वाथमें पारा और सहत डालके पीवे अथवा शीतल स्थानमें बैठकर सहत मिले जलके कुल्ले करे । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुंचति॥ अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते ॥ १० ॥ पानीयं प्राणिनां प्राणो विश्वमेतच्च तन्मयम् ॥ अतोऽत्यंतनिषेधेऽपि न क्वचिद्वार्यते जलम् ॥ घोरोपद्रवसंयुक्ता तृष्णा मरणमादिशेत् ॥ ११ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां तृष्णाचिकित्सा नाम चतुस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३४ ॥

अर्थ–तृषा (प्यास) के कारण यह प्राणी बेहोश होता है और अत्यंत बेहोशीसे प्राण त्यागता है इसीसे रोगावस्थामें याने रोग्यवस्थामें जब प्यास लगे तभी जल पीनेको देवे । जल न देना ऐसा कहीं नहीं लिखा । यह जल सब प्राणियोंका प्राण है और यह विश्व जलरूपी है अतएव अत्यंत निषेध करनेपरभी जल देना बंद न करे (परंतु जहां देना निषेध होय तहां थोडा २ जल देवे) यदि सर्वथा जल न देवे तो वह तृषा घोर उपद्रवोंके साथ इस प्राणीको मारडाले ।

इति श्रीयोगतरंगणीभाषाटीकायां तृष्णाचिकित्सा नाम चतुस्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशस्तरंगः ।

मूर्च्छा ।

सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ–सुख दुःखके दूर होनेसे यह प्राणी लकडीके समान गिरपडे इस रोगको मूर्च्छा वा मोह कहते हैं । यह छः प्रकारका है ।

चिकित्सा ।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीतोपचारा व्यजनानिलाश्च ॥ पुष्पाण्यनेकानि च गंधवंति बिसानि शस्तानि च मूर्च्छितेषु ॥२॥ सिताप्रियालेक्षुरसप्लुतानि द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ॥ खर्जूरकाश्मर्यरसैः शृतानि सिद्धानि सर्पींषि सजीवनानि ॥ ३ ॥ सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥ तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः ॥ ४ ॥ नासावदनरोधैस्तु नस्यैर्मरिचनिर्मितैः ॥ नरं जागरयेद्धमौ मूर्च्छितं मंदमारुतैः ॥ ५ ॥ तीक्ष्णांजनाभ्यंजनधूमयोगैस्तथा नखाभ्यंतरतोत्रपातैः वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विस्मापनैर्गुप्तफलावघर्षैः ॥ ६ ॥ आभिः क्रियाभिर्यदि

नाप्तसंज्ञः सानाहलालाश्वसतश्च वर्ज्यः ॥ प्रबुद्धसज्ञ वमनानुलोमैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्ययुक्तम् ॥ ७ ॥ यथास्वं च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ॥ सर्वमूर्च्छापरीतानां विषजानां विषापहम्॥८॥

इति वीरसिंहावलोकतः ॥

अर्थ-शीतल जलका डालना, शीतल जलसे स्नान, हीरा पन्ना आदि मणियोंको तथा मणियाके हार, शीतल उपचार (क्रिया) पंखेका पवन, सुगंधित अनेक प्रकारके फूल और कमलकी डंडी ये सब मूर्च्छारोगमें उत्तम हैं। मिश्री, चिरोंजी, ईखका रस, दाख, मुलहटीके स्वरस, खिजूर, कंभारी इनके रस और जीवनीयगणकी औषधोंके क्वाथ इनसे सिद्ध करे घृत मूर्च्छारोगको नष्ट करे हैं। अथवा काकोली आदि मधुरवर्गसे सिद्ध करे दूध, अनार, जंगली जीवोंका मांसरस, जौ, लाल चावल और तीनी धान्य ये सब मूर्च्छारोगमें पथ्य हैं अथवा नाक मुखको रोककर प्राणपवनको वंद करना। काली मिरच आदि तीक्ष्ण वस्तु (श्वासकुठारादि) की नस्यसे और शीतल मंद २ पवनसे पृथ्वीमें मूर्च्छित मनुष्यको जगावे अर्थात् सावधान करे। अथवा तीक्ष्ण अंजन, धूमपान तथा नखोंके बीचमें कील आदिके चुभानेसे, बाजे बजाना, गीत गाना, अद्भुत प्रकारके कर्म, विस्मापन (आश्चर्यित करना) कौंचकी फली लगाना इनसे मूर्च्छितको जगावे । यदि इन सब कर्मोंके करनेसे भी मूर्च्छित न जगे और अफरा, लारका गिरना और श्वास होय तो उस मूर्च्छारोगीको त्याग देवे। जो प्राणी मूर्च्छासे जगे उसको वमन अनुलोमन और तीक्ष्ण कर्मसे शुद्ध करे तथा हलका और पथ्य सेवन करे अथवा सब मूर्च्छारोगियोंको दोषोंके अनुसार ज्वरनाशक क्वाथ देवे, तथा विषजन्य मूर्च्छामें विषनाशक औषध देनी चाहिये ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत् ॥ शीतसेकावगाहानि सर्वैर्वा पीडनं हठात् ॥ ९ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मूर्च्छाचिकित्सा नाम पंचत्रिंशस्तरंगः ॥ ३५ ॥

अर्थ-पीपलका चूर्ण सहत इनके साथ पारदके भस्मका सेवन करे तथा शीतल जलके तरडे स्नान, ये सब मूर्च्छामें करे तो मूर्च्छा दूर हो। यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मूर्च्छाचिकित्सा नाम पंचत्रिंशस्तरंगः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशस्तरंगः ।

पानात्यय ।

अयुक्त्या मद्यपानेन बहुना स्यान्मदात्ययः ॥ दाहमूर्च्छावमिभ्रांतिवैकल्यविषचेष्टितैः ॥ १ ॥

अर्थ-अयुक्तिपूर्वक मद्यपानके करनेसे अथवा बहुत मद्यपानके करनेसे मदात्यय रोग होता है इस रोगमें दाह, मूर्च्छा, वमन, भ्रांति, विकलता और विष खानेकीसी चेष्टा होती हैं।

चिकित्सा ।

मंथः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिमैः ॥ परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥२॥ मथितं गोदधि ससितं सैलं कर्पूरसंमिश्रम् ॥ आस्वाद्य पीतमाशु क्षपयति पानात्ययं रोगम् ॥ ३ ॥

समरिचघनसारं वारि मीनांडिकायाः परिमिलितममंदैर्दाडिमीबीजतोयैः ॥ पिबति य इह मर्त्यस्तस्य पानात्ययाख्यो विरमति मदिराक्षीचुंबनाश्लेषभाजः॥४॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां पानात्ययचिकित्सा नाम षट्त्रिंशस्तरंगः ॥ ३६ ॥

अर्थ-खिजूर, मुनक्का, कोकम, इमली, अनार, फालसे और आमले इनका मंथ मद्यविकार (नसे) को दूर करे अथवा मथे हुए गौके दहीमें खाँड इलायची और कपूर (बरास) मिलायके सेवन करे तो तत्काल नसा दूर होय, अथवा काली मिरच, कपूर, जल, सपेद खाँड इनमें अनारदानेका रस मिलाके पीवे तो मद्यकी नसा दूर हो अथवा स्त्रीके चुंबन तथा आलिङ्गनसे मदात्यय दूर हो।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां पानात्ययचिकित्सा नाम षट्त्रिंशस्तरंगः ॥३६ ॥

सप्तत्रिंशस्तरंगः ।

दाह ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ॥ दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ-मद्यपानकी गरमी पित्तरक्तसे कुपित होकर जब त्वचामें आती है तब इस प्राणीके घोर दाहका रोग करे है. इसमें पित्तके समान चिकित्सा करनी ।

शतधौतघृताभ्यक्तो लिह्यात्सक्तुसिताघृतम् ॥ कोलामलकसंयुक्तैर्दाडिमाम्लैश्च बुद्धिमान् ॥ २ ॥ छादयेत्तस्य सर्वांगमारनालार्द्रवाससा ॥ लामज्जेनाथ युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ ३ ॥ चन्दनांबुकणस्यंदितालवृंतोपवीजनैः ॥ शैवालकदलीपत्रोशीरतल्पे शयीत वा ॥ ४ ॥ अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥ फलिनीलोध्रसेव्यांबुहेमपत्रं कुटंनटम् ॥ ५ ॥ कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ह्रीबेरपद्मकोशीरचंदनोदकवारिणा ॥ संपूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ६ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां दाहचिकित्सा नाम सप्तत्रिंशस्तरंगः ॥ ३७ ॥

अर्थ-जलसे सौ बार धुले हुए घृतकी देहमें मालिश कराके सत्तु, घृत और खांड इनको मिलाके सेवन करे अथवा बेर, आमले और अनारदाने मिलाके सेवन करे, अथवा दाहरोगवालेको कांजीसे भींगा हुआ कपडा लपेटे, अथवा लामज्जक सुगंधित तृणके साथ चन्दन घिसके लगावे अथवा चन्दनके जलकण जिसमें झिरें ऐसे ताडके पंखोंसे पवन करना अथवा सिवार, केलेके पत्ते और खस इनकी शय्यापर सोवे, ये कहे हुए योग तथा अन्य शीतल योग अन्तर्दाहको शांत करते हैं अथवा फूलप्रियंगु, लोध, खस, नेत्रवाला, सुवर्णके वरख, गुडतजी इनमें अगरका रस मिलाय दाहमें लेप करना उत्तम है. अथवा सुगंधवाला, पद्माख, खस चन्दनके जलसे कोठीको भरके उसमें स्नान करे तो दाहरोग दूर होय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां दाहचिकित्सा नाम सप्तत्रिंशस्तरंगः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशस्तरंगः ।

उन्माद ।

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गगामिनः ॥ मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥ चौरैर्नरेंद्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ २ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ–जब वातादि दोष मनके बहनेवाली नाडियोंको त्याग दूसरे मार्गमें गमन करते हैं तथा मनसंबंधी व्याधि होनेसे इसको उन्माद कहते हैं । अथवा चोर, राजाका भृत्य (सिपाही) तथा शत्रु (दुश्मनों)के इसी प्रकार अन्य सिंह, व्याघ्र, भूत, प्रेतादिके भयसे भयभीत होनेसे तथा धन और बांधवों (माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि) के नष्ट होजानेसे एवं प्रियासे रमणकी इच्छा अर्थात् इश्कबाजीसे इस प्राणीको घोर मनका विकार प्रगट होता है।

चिकित्सा ।

वातिके स्नेहपानं च प्राग्विरेकश्च पित्तजे ॥कफजे वमनं कार्यं परो बस्त्यादिकक्रमः ॥ ३ ॥ यथा च वक्ष्यते किंचिदपस्मारे चिकित्सितम्॥ उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्यादोषदूष्ययोः॥४॥

अर्थ–वादीके उन्मादमें प्रथम स्नेहपान करावे, पित्तजन्यमें प्रथम विरेचन देवे और कफजन्य उन्मादरोगमें वमन करावे फिर बस्ती आदि क्रम करने चाहिये । अथवा आगे जो अपस्मार रोगमें चिकित्सा कहेंगे वही उन्मादरोगमें करे, कारण यह है कि अपस्मार और उन्माद रोग दोषदूष्य सामान्य हैं अतएव अपस्मारकी चिकित्सा करे ।

सिद्धार्थकादि अगद ।

सिद्धार्थको वचा हिंगु करंजो देवदारु च ॥ मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक्कटुत्रयम् ॥ ५ ॥ समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥६॥ नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा ॥ अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ७ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हंति राजद्वारे च शस्यते ॥ सर्पिरेतेन सिद्धं वा गोमूत्रेण तदर्थकृत् ॥ ८ ॥

अर्थ–सपेद सरसों, वच, हींग, कंज, देवदारु, मँजीठ, त्रिफला, सपेद कटभी वृक्षकी छाल, फूलप्रियंगु, शिरस, हलदी और दारुहलदी इनको समान भाग ले बकरेके मूत्रसे बारीक पीसे, इस अगदका पान, अंजन, नस्य, लेप, स्नान, मालिस इत्यादिमें प्रयोग करनेसे अपस्मार, विष, उन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी, ज्वर इनको दूर करे। भूतोंके भयको दूर करे, इसको राजद्वार अर्थात् राजामहाराजाओंको देवे अथवा इस पूर्वोक्त प्रयोगसे घृत बनाके देवे अथवा गोमूत्र सिद्ध करके देवे तो पूर्वोक्त गुण करे ।

दशमूलांबु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा ॥ ससिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं घृतम् ॥ ९ ॥ उन्मादशांतये पेयो रसो वा कालशाकजः ॥ प्रयोज्यं

सार्षपं तैलं नस्याभ्यंजनयोः सदा । ॥ १० ॥ आश्वासयेत्सुहृद्वाक्यैर्ब्रूयादिष्टविनाशनम् ॥ दर्शयेदद्भुतं कर्म ताडयेच्च कशादिभिः ॥ सुबद्धं विजने गेहे त्रासयेदहिभिर्धिया ॥ ११ ॥

अर्थ–दशमूलके क्वाथमें घृत मिलाके या मांसरस मिलाके पीवे, या सपेद सरसोंका चूर्ण मिलाके अथवा केवल नया घी पीवे तो उन्माद-रोग शांत होय अथवा कालशाकका रस पीवे तो उन्मादरोग दूर हो, अथवा इस उन्माद रोगीको सरसोंके तेलकी नस्य दे अथवा देहमें मालिश कर धूपमें बैठार देवे, अथवा हित-कारी मीठे २ वचनोंसे उन्मादरोगीको धीरज बँधावे, अथवा इस उन्मादरोगीसे इसके इष्ट धन, पुत्रादिका नष्ट होना कहे अथवा कोई अद्भुत चमत्कारी कर्म करके दिखावे, अथवा कोडे आदिसे मारदेवे, अथवा इसको एकांतमें लेजाकर बांध देवे, तथा साँप, विच्छू, हाथी आदिसे डरावे तो उन्मादरोग दूर होय ।

कल्याण घृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ॥ १२ ॥ स्थिरानतं हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥ नीलोत्पलैलामंजिष्ठादंतीदाडिमकेसरम् ॥ १३॥ तालीसपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम्॥ विडंगं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चंदनपद्मकौ । ॥ १४ ॥ एतैः कर्षमितैः कल्कैर्विंशत्यष्टाभिरेव च ॥ जले चतुर्गुणे पक्त्वा घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥ अपस्मारे ज्वरे कासे शोके मंदानले तथा ॥ वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके १६ ॥ वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ कंडूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेषु ज्वरेषु च ॥ १७ ॥ भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ शस्तं स्त्रीणां च वंध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥ १८ ॥ अलक्ष्मीपापरोगघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंस्त्वप्रसाधने ॥ १९ ॥

अर्थ–इन्द्रायणकी जड, त्रिफला, रेणुक, देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, तगर, हलदी, दारुहलदी, सारिवा, कालीसारिवा, फूलप्रियंगु, नील कमल, इलायची, मजीठ, दंती, अनार, केशर, तालीसपत्र, कटेरी, चमेलीके फूल, वायविडंग, पृष्ठिपर्णी, कूठ, चंदन और पद्माख ये प्रत्येक एक २ तोला ले सबको चौगुने जलमें औटावे, चतुर्थांश रहे तब उतार लेवे, फिर इसमें १ सेर घृत डालके सिद्ध करे। यह अपस्मार, ज्वर, खाँसी, मंदाग्नि, वातरक्त, सरेकमा, तिजारी और चातुर्थिक ज्वर, वमन, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पांडु, उन्माद, विषमज्वर, भूतोन्माद, गद्गदवाणी, मूर्च्छित, वंध्या स्त्री इनके रोगोंको दूर करे। आयु और बलको देवे, अलक्ष्मी, पापरोग तथा सर्व ग्रहोंको दूर करे । यह कल्याणकघृत पुरुषार्थ देनेवाला है।

ब्राह्मीरसः स्यात्सवचः सकुष्ठः सशंखपुष्पः ससुवर्णचूर्णः ॥ उन्मादिनामुन्मदमानसानामपस्मृतौ भूतहतात्मनां हि ॥ २० ॥ नस्येंजने पानविधौ च शस्तो ब्राह्मीरसोऽयं सवचादिचूर्णः२१॥

इति वीरसिंहावलोकतः ॥

अर्थ-ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, संखाहूली और सुवर्णका चूर्ण इनको सहतमें मिलाके चाटे तो उन्माद रोग और अपस्मार रोग ये दूर हों, अथवा ब्राह्मीके रसमें पूर्वोक्त वच आदिका चूर्ण मिलाके नस्य देवे अंजन लगावे और पीवे तो उन्माद रोग दूर होय ।

हिंग्वादि घृत ।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ २२ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-हींग, संचर निमक, सोंठ, मिरच, पीपल, प्रत्येक दो तोले, घृत ४ सेर इससे १६ सेर गोमूत्र मिलाय घृत सिद्ध करे तो उन्माद नष्ट होय । यह वृंदमें लिखा है ।

कृष्णधत्तूरजैर्बीजैः पंचभिः पर्पटीरसः ॥ साज्यो योज्यः प्रशांत्यर्थमुन्मादस्यास्य नाशने ॥ २३ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामुन्मादचिकित्सा नामाष्टत्रिंशस्तरंगः ॥ ३८ ॥

अर्थ-काले धतूरेके ९ बीज में पर्पटीरस और घृत मिलायके सेवन करे तो उन्माद रोग नष्ट होय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामुन्माद-चिकित्सा नामाष्टत्रिंशस्तरंगः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशस्तरंगः ।

अपस्मार ।

तमःप्रवेशसंरंभो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ॥ अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥ इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ-अंधकारमें प्रवेश करासा प्रतीत हो और नेत्रोंका चलाना, हाथ पैरोंका पटकना, वातादि दोषोंके बढनेसे स्मृति(स्मरण, याददास्त) का नाश होना, इसको अपस्मार (मृगी) रोग कहते हैं यह रोग वात, पित्त, कफ और सान्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका है ।

चिकित्सा

पर्वं युंज्यादपस्मारे छर्दिरादीनि बुद्धिमान् ॥ वातिकं बस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ॥ २ ॥ कफजं वमनैः प्रायस्त्वपस्मारमुपाचरेत् ॥ ततस्तीक्ष्णं प्रयुंजीत भिषक्सम्यक्प्रवर्तनम् ॥ सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया ॥ ३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-प्रथम अपस्मार रोगीको वमन विरेचनादि कर्म करावे तहां वातिकमें बस्तिकर्म करे, पित्तकेमें विरेचन और कफजन्य अपस्मारमें वमन करावे. जब ये कर्म करचुके तब उसको संज्ञा करानेको तीक्ष्ण पदार्थोंकी नस्य देवे । सर्व देह शुद्ध होनेपर उन्मादहरण कर्ता विधि करे।

करंजादिप्रयोग ।

करंजदारुसिद्धार्थकटभीरामठं वचा ॥ समंगा त्रिफला व्योषं प्रियंगुश्च समांशतः ॥ ४ ॥ बस्तमूत्रेण संपिष्य नस्यपानांजनादिभिः ॥ योज्यो योगोऽयमुन्मादेऽपस्मारे भूतरोगिषु ॥ ५ ॥

इति वीरसिंहावलोकतः ॥

अर्थ-करंजेके फल, देववारु, सपेद सरसों, मालकाँगनी, हींग, वच, लज्जालू, त्रिफला, त्रिकुटा, फूलप्रियंगु ये समान भाग लेवे सबको बकरेके मूत्रसे पीसके नस्य, पान और अंजन

द्वारा उन्माद अपस्मार तथा भूतोन्मादरोगियोंको देवे ।

पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमंजनात्॥ तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् । ॥ ६ ॥ यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ॥ अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

इति योगरत्नावलीतः ।

अर्थ–पुष्य नक्षत्रमें कुत्तेका पित्ता ले इसका अंजन अपस्मारको नष्ट करे। यदि इसी पित्तमें घृत मिलायके धूनी देवे तो अपस्मार दूर होय अथवा जो प्राणी दूध और भातके पथ्यपर सहतके साथ वचका चूर्ण खाय तो बहुत दिनका घोर अपस्मार रोग दूर होय।

भूतभैरव रस ।

रसः सतालः सशिलः सलोहास्रोतोंजनं सार्कमिदं सगंधम् ॥ पिष्टं नृमूत्रेण समं समस्ताद्देयो द्विभागोऽथ बलिः पचेच्च ॥ ८ ॥ लोहेक्षणं हंति घृतेन माषोऽपस्मारमस्योन्मदमानसत्वम् ॥ पिबेदनु त्र्यूषणहिंगुयुक्तं सर्पिर्नृमूत्रं रुचकेन सार्द्धम् ॥९॥भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ स्वर्णजैः पंचभिर्बीजैर्देयः सर्पिर्विमिश्रितः ॥ १० ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामपस्मारचिकित्सा नामैकोनचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ३९ ॥

अर्थ–पारा, हरताल, मनसिल, लोहभस्म, सपेद और काला सुरमा, ताम्रभस्म और गंधक इन सबको बराबर ले बैलके मूत्रमें पीसे और इसमें दूनी गंधक डालके लोहेके कडछुलेमें पचावे तो सिद्ध होय इसमेंसे १ मासा रस घृतके साथ सेवन करे तो अपस्मार और उन्मादपना दूर होय । इसके ऊपर त्रिकुटा, हींग, घी, बैलका मूत्र और कालानिमक मिलाके पीवे । यह सर्वभूतोन्मादोंपर पांच धतूरेके बीज और घृतमें मिलाके देवे । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखाहै।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामपस्मारचिकित्सा नामैकोनचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशस्तरंगः ।

वातव्याधि ।

स्वहेतुकुपितो वातो यद्यदंगग्रहो बली॥ तत्तदाख्यो बहुरुजः कुरुतेऽशीतिमामयान् ॥ १ ॥

अर्थ–अपने हेतुओंसे कुपित वात बलवान् होकर जिस २ अंगको पकडके पीडा करे वह उसी २ नामसे विख्यात होता है तहां वातके ८० रोग हैं ।

चिकित्सा ।

अभ्यंगः स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम् ॥ स्निग्धाम्ललवणस्वादु वृष्यं वातामयापहम्॥ २ ॥ माषात्मगुप्तैरंडवाट्यालकशृतं पिबेत् ॥ हिंगुसैंधवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥३॥ पंचमूलीकृतः क्वाथो दशमूलीकृतोऽथ वा ॥ रूक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तंभे प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–तेलकी मालिश, स्वेदन (बफारा) बस्तिकर्म, नस्य, विरेचन, चिकने, खट्टे, निम-

कीन, मीठे, वृष्य और वातनाशक पदार्थका वैद्य प्रयोग करे । अथवा उडद, किंवाच, अंडका जड और खिरेंटी इनका क्वाथ करके उसका हींग और सेंधानिमक मिलाके पीवे तो पक्षाघात रोग दूर होय । मन्यास्तंभ रोगमें लघुपंचमूलका वा दशमूलका क्वाथ देवे और रूक्ष स्वेद और नस्य कर्म करे. यह योगरत्नावलीमें लिखा है ।

माषादिसप्तक ।

वाजिगंधाबलाशिग्रुदशमूलीमहौषधैः ॥ द्वे गृध्रनख्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः ॥ ५ ॥ माषबलाशुकशिंबीकत्तृणरास्नाश्वगंधोरुबूकाणाम् ॥ प्रातःक्काथः पीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥६॥ अपनयति पक्षघातं मन्यास्तंभं सकर्णनादरुजम् ॥ दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ–असगंध, खिरेटी, सहँजना, दशमूलकी १० औषधी, कटेरी, बडी कटेरी और रास्ना यह वातनाशक गण है । अथवा उडद, खिरेटी, किंवाच, सुगंधितृण, रास्ना, असगंध और एरंडकी जड इनके क्वाथमें हींग और निमक मिलाके गरम २ पीवे तो पक्षाघात, मन्यास्तंभ, कानमें शब्द होना, कानकी पीडा, घोर आर्दितवात ((लकवा) इनको सात दिनमें अवश्य दूर करे. यह माषादिसप्तक है ।

रसोनसप्तक ।

पलमर्धपलं वापि रसोनस्य सुकुट्टितम्॥ हिंगुजीरकसिंधूत्थैः सौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ८ ॥ चूर्णितैर्माषमात्रैस्तद्विलोड्य च विचूर्णितैः ॥ यथाग्नि भक्षितं प्रातररंडस्नेहसंयुतम् ॥ ९ ॥ दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरंतरम् ॥ वातरोगं निहन्त्येवमर्दितं चापतंत्रकम् ॥ सर्वांगैकांगरोगं च गृध्रस्याक्षेपकावपि॥१०॥

अर्थ–१ पल वा आधे पल लहसनको कूटके हींग, जीरा, सेंधानिमक, संचरनिमक, त्रिकुटा इनका चूर्ण कर इसमेंसे १ मासा ले उसमें अंडीका तेल मिलाके जठराग्निका. बलाबल विचारके खाय । इस प्रकार १ महीने पर्यंत नित्य भक्षण करे तो आर्दित, अपतंत्र, सर्वांगवात, एकांगवात, गृध्रसी और आक्षेपक ये वादीके रोग दूर हों ।

रसोनपंचक ।

कंदः सार्षपतैलं च लशुनं शृंगबेरकम् ॥ सर्वाष्टमांशं सिंधूत्थं संधितं दिनसप्तकम् ॥ ११ ॥ संचूर्ण्य घर्ममध्ये तु प्रातः खादेद्यथाबलम् ॥ एष निर्गंधतामेत्य सर्ववातामयाञ्जयेत् ॥ १२ ॥ स्निग्धभोजी मासमात्रं सेवनाद्वातजिद्भवेत्॥ अजीर्णमातपं रोषमतीनीरं पयोगुडम् । ॥ १३ ॥ रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ॥मद्यं मांसं तथाम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ १४ ॥

अर्थ–प्याज, सरसोंका तैल, लहसन, सोंठ इन सबका अष्टमांश सेंधानिमक, इन सबको एकत्र करके सात दिनतक ढक करके रख देवे, घर्म (धूप) में सुखाय चूर्ण करै इस चूर्णको प्रातःकालमें अपने बलानुसार भक्षण करै, यह चूर्ण निर्गंध होकर सर्व वातरोगोंको दूर करता है, इसके उपर स्निग्धान्न भोजन करै यह चूर्ण एक मासतक सेवन करनेसे वातको जीतता है

इस रसोनपंचक चूर्णका सेवन करनेवाला मनुष्य अजीर्णपर भोजन न करै, और उष्ण सेवन, क्रोध, बहुत जल, दूध, गुड इनका निरंतर त्याग करै. और नित्य प्रति मद्य मांस तथा अम्लपदार्थ और रसपदार्थका सेवन करै।

आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लंघनं दीपनपाचने च ॥ प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं च पुराणमुद्गा यवशालयश्च ॥१५॥ पूतीकपथ्यासठिपुष्कराणि बिल्वं गुडूची सुरदारु शुंठि ॥ विडंगवासातिविषाकणाह्वाः क्वाथास्त्रयः साम समीरणघ्नाः। ॥ १६ ॥ चित्रकेंद्रयवौ पाठा कटुकाऽतिविषाऽभया ॥ वातव्याधिप्रशमनो योगः षट्चरणाः स्मृतः ॥ १७ ॥ आमाशयगते वाते छर्दितापौ यथाक्रमम् ॥ देयः षट्चरणो योगः सप्तरात्रं सुखांबुना ॥ १८ ॥ सर्वथा कोष्ठगो वातः प्रशमं याति देहिनः ॥ कार्यो बस्तिगते वाते विधिर्बस्तिविशोधनः। ॥ १९ ॥श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यश्चानिलहा क्रमः॥ त्वङ्मांसासृक्छिरा-प्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥ २० ॥ स्वेदोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च॥ स्नायुसंध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणाः ॥ २१ ॥ निगूढेऽस्थिगते वाते पाणिमंथेन दारिते ॥ नाडीं दत्त्वास्थनि भिषक्चूषयेत्पवनं बली ॥ २२ ॥ शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥ २३ ॥

अर्थ-यदि वादी आमाशयमें होय तो प्रथम लंघन तथा दीपन पाचन देवे, वमन करावे, तीक्ष्ण जुल्लाब देवे, पुराने मूँग, जौ और शाली चावल खानेको देवे अथवा कंजा, हरड, कचूर, पुहकरमूल अथवा बेलगिरी, गिलोय, देवदारु और सोंठ, अथवा वायविडंग, अडूसा, अतीस और पीपल ये तीन क्वाथ हैं. किसी एकको देवे तो आमवातको नष्ट करे, अथवा चित्रक, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस, हरड यह षट्-चरणयोग वातव्याधिको नष्ट करे। आमाशयगत वादीमें वमन करावे और स्वेदन करे। तथा ऊपर लिखा हुआ षट्चरणयोग ७ दिन गरम जलसे देवे तो सर्वथा कोष्ठगत वात दूर होय बस्तिगतवातमें बस्तिका शोधन करना चाहिये। कर्ण आदिमें वादी होय तो वातनाशक यत्न करना चाहिये। त्वचा, मांस, रुधिर, नाडी इनमें यदि कुपित वादी होय तो फस्त खोले तथा स्वेदन, उपनाहन, दागना, बांधना और मालिश करना इत्यादि कर्म स्नायु, संधि और हड्डी इनमें वात होय तो करे। यदि वादी छिपकर हड्डीमें प्राप्त होय तो पाणिमंथ शस्त्रसे चीरा देकर और नली लगाके वैद्य उसको चूस लेवे। यदि शुक्रगत वात होय तो शुक्रदोष हरणकर्त्ता कर्म करे।

कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरंडाधिमाषातसीवर्षाभूसणबीजकांजिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ॥ स्वेदः स्यादिति कूर्परोदरहनुस्फिक्पाणिपादांगुलीगुल्फस्तंभकटीरुजो विजयते सामाः समीरोद्भवाः ॥२४ ॥ नवनीतेन संयुक्ताः खादेन्माषेंडरीर्नरः ॥ दुर्वीरमर्दितं हंति सप्तरात्रान्न संशयः ॥ २५ ॥

अर्थ-विनोले, कुलथी, तिल, जौ, अर-

डकी जड, उडद, अलसी, पुनर्नवा, सनके बीज इन सबको एक करके या अलग २ कांजीमें पीसके कलाई, पेट, ठोडी, कूला, पैर, पैरकी उँगली, टकनोंका रहजाना, कमरका दर्द, तथा आमवातके विकारको दूर करे। अथवा उडदकी पकौडी माखनके साथ खाय तो सात रात्रिमें दुर्निवार लकवेके रोगको दूर करे।

माषादितैल ।

माषातसीयवकुरंटककंटकारी गोकंटटुंटुकजटाकपिकच्छुतोयैः ॥ कार्पासकांस्थिशणबीजकुलत्थकोलक्काथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ २६ ॥ शुंठ्या च मागधिकया शतपुष्पया च सैरंडमूलसपुनर्नवया सरण्या ॥ रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्कं माषाख्यमेतदपबाहुकहारि तैलम् ॥ २७॥ अर्द्धांगशोषमपतानकमाढ्यवातमाक्षेपकंसभुजकंपशिरःप्रकंपम् ॥ नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात्कटीजघनजानुशिरःसमीरान् ॥ २८ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–उडद, अलसी, जौ, पियावाँसा, कटेरी, गोखरू, टैंटूकी जड, कौंछ इनके क्काथसे तथा बिनोले, सनके बीज, कुलथी, बेर इनके क्काथसे तथा बकरेके मांसरससे सोंठ, पीपर, सौंफ, अंडकी जड, पुनर्नवा, सरणी, रास्ना, खिरेटी, गिलोय और कुटकी इन सबके क्काथसे तेल बनावे। यह माषादि तैल अपबाहुक, अर्द्धांगशोष, अपतानक, आढ्यवात, आक्षेपक, भुजा और शिरका हिलना इनको नस्य, वस्ति और शरीरपर डालनेसे कमर, जंघा, जानु और मस्तककी वादी दूर करे। यह वृंदमें लिखा है।

महाबलातैल ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ॥ यवकोलकुलत्थानां क्काथस्य पयसस्तथा ॥ २९ ॥ अष्टावष्टौ सुभागास्ते तैलादन्यैस्तदेकतः ॥ पचेदवाप्य मधुरं गणं सैंधवसंयुतम् ॥ ३० ॥ तथागुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ॥ मंजिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालां च सारिवाम् ॥ ३१ ॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् ॥ शतावारीमश्वगंधां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ ३२ ॥ तत्साधु सिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽथ वा ॥ प्रक्षिप्य सकलं सम्यक्सुगुप्तं स्थापयेद्बुधः ॥ ३३ ॥ बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ यथाबलं भिषङ्मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ क्षीणे वाते मर्महते मथिते पीडिते तथा ॥ ३५ ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैनं प्रयोजयेत् ॥ सर्वाङ्गाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ ३६ ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ॥ राज्ञामेतद्धि कर्तव्यं राजमान्यैस्तथा नरैः ॥ ३७ ॥

अर्थ–खिरेटीका क्काथ, दशमूलका क्काथ, जौ, बेर, कुलथी इनका क्काथ और दूध ये प्रत्येक आठ भाग लेवे और मीठा तेल एक भाग ले, फिर इसमें (काकोली आदि) मधुरगणकी औषधी, सेंधानिमक, अगर, राल,

सरलकाष्ठ, देवदारु, मजीठ, चन्दन, कठ, इलायची, काली सारिवा, जटामांसी, छारछबीला, पत्रज, तगर, सपेद सारिवा, वच, सतावर, असगंध, सौंफ और पुनर्नवा इनका कल्क डालके तेल सिद्ध करे, इसको सुवर्ण चांदी, अथवा मिट्टीके बरतनमें भर मुख बंद कर यत्नसे रख देवे, यह बलातैल, सब वातके विकारोंको नष्ट करे। इसकी यथायोग्य मात्रा वैद्य प्रसूता स्त्रीको देवे, जो स्त्री गर्भकी इच्छा करनेवाली है, और जो क्षीणशुक्र पुरुष है, क्षीण वात, मर्महतवात, मथित और पीडित, भग्नवात, श्रमजन्यवात इनमें सर्वथा इस तेलको देवे, यह सर्व आक्षेपकादि वातव्याधियोंको नष्ट करे । इससे सर्व धातु बढके स्थिरयौवन होय। यह राजा महाराजा और राजमान्य सेठ साहूकारोंके योग्य तेल है ।

मध्यम नारायणतैल ।

बिल्वोऽग्निमंथः स्योनाकः पाटला पारिभद्रकः ॥ प्रसारिण्यश्वगंधा च बृहती कंटकारिका ॥ ३८ ॥ बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणांभसा पचेत् ॥ ३९ ॥ पादशेषं परिश्राप्य तैलपात्रे प्रदापयेत्॥ शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ४० ॥ चंदनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम् ॥ रास्ना तुरगगंधा च सैंधवं सपुनर्नवम् ॥ ४१ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ शतावरीरसं चैवं तैलतुल्यं प्रदापयेत्॥४२॥ अंजनाय दिवा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ पाने बस्तौ तथाभ्यंगे भोज्ये नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥ अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ॥ पंगुर्वा भग्नहस्तो वा भग्नपादोऽथ वा नरः ॥४४॥ अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये । दंतशूले हनुस्तंभे मन्यास्तंभेऽपतंत्रके ॥ ४५ ॥ एकांगग्रहणे वापि सवार्गग्रहणें तथा ॥ क्षीणेंद्रिया नष्टशुक्रा ज्वरग्रस्ताश्च ये नरः ॥ ४६ ॥ लालाजिह्वाश्च बधिरा विस्वरा मंदमेधसः मंदप्रजा च या नारि या च गर्भ न विंदति ॥ ४७ ॥ वातार्तौ वृषणौ येषामंत्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ एतन्नारायणं तैलं शस्तं सर्वत्र सर्वदा ॥ ४८ ॥

अर्थ–बेल, अरनी, टैंटू, पाढर, फरहदप्रसारणी, असगँध, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, बला, अतिबला, गोखरू, पुनर्नवा, ये प्रत्येक दश दश पल ले. सबको ६४ सेर जलमें डालके औटावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब छानके दूसरे कढावमें चढावे और तेल ४ सेर मिलावे फिर कल्कके वास्ते सौंफ, देवदारु, जटामांसी, छारछबीला, वच, चंदन, तगर, कूठ, इलायची, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, रास्ना, असगंध, सेंधानिमक और पुनर्नवा ये प्रत्येक दो दो पल लें कल्क करके मिलाय देवे सतावरका रस ४ सेर मिलावे, और दिव्यपाक करनेको गौका दूध १६ सेर डाले, यह पीनेमें, बस्तीमें, मालिश, भोजन और नस्यमें देवे, घोडा और हाथी, अथवा मनुष्य बादीसे पीडित हो पांगुरा, टूटे हाथका, टूटे पैरका, शरीरके नीचे भागमें जो वादी है, तथा मस्तककी वादी, दंतशूल, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, अपतं

त्रक, एकांग, सर्वांग, क्षीणेन्द्रिय, नष्टशुक्र, ज्वर रोगी, लार गिरती हों, जीभ रहगई हो, बहरे, स्वरभंगवाले, जिसके अल्पसंतान हो तथा जिसके गर्भ न रहता हो ऐसी स्त्री, जिसके अंडकोशोंमें बादी रहती है, दारुण अंत्रवृद्धिवाले सब इस नारायण तेलसे अच्छे हों ।

प्रसारणीतैल ।

समूलपत्रामुत्पाट्य जातासारां प्रसारिणीम् ॥ कुट्टयित्वा पलशतं कटाहे समधिश्रपेत् ॥ ४९ ॥ वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ॥ कषायसममात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत् ॥ ५० ॥ दध्नस्तत्राढकं दद्याद्द्विगुणं चाम्लकांजिकम् ॥ भेषजानि तु पेष्याणि तत्रेमानि समावपेत् ॥ ५१ ॥ शुंठीपलानि पंचैव रास्नायाश्च पलद्वयम् ॥ यवक्षारपले द्वे च सैंधवस्य पलद्वयम् ॥ ५२ ॥ द्विपलं पिप्पलीमूलं चित्रकस्य पलद्वयम् ॥ प्रसारणीपले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥५३॥ एतत्सर्वं समालोड्य शनैर्मृद्वग्निनापचेत्। एतत्प्रभंजने श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शस्यते ॥५४॥ पाने बस्तौ च दातव्यं न कचित्प्रतिषिध्यति ॥ अशीतिं वातरोगाणां तैलमेतद्व्यपोहति ॥५५॥ एकांगग्रहणं वापि सर्वांगग्रहणं तथा ॥ अपस्मारं तथोन्मादं विद्रधिं मंदवह्नितराम् ॥५६॥ त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसंधिगता अपि ॥ अस्थिसन्धिगता ये च ये च शुक्रांतरे स्थिताः ॥ ५७ ॥ सर्वान्वातामयान्नूनं नाशयत्येव सर्वथा ॥हयं गजं नरं वापि वातजर्जरितं भृशम् ॥५८॥ सद्यः प्रशमयेत्तैलमेतन्नात्र विचरणा ॥ इंद्रियस्य प्रजनन वंध्यानां च प्रजाकरम् ॥ ५९ ॥ वृद्धानां बालकानां च स्त्रीणां राज्ञां हितं परम् ॥ पंगुर्वा पृष्ठभग्नो वा पीत्वैतत्संप्रधावति ॥ ६० ॥

अर्थ–जब पकजावे तब मूल पत्र सहित प्रसारणी खीप ५ सेर लेवे, इसको कूटके कढावमें डाल १६ सेर जलमें डालके औटावे जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे, फिर ४ सेर मीठा तेल डाले, दही ४ सेर, खट्टी कांजी ८ सेर मिलावे, फिर सोंठ ५ पल, रास्ना २ पल, जवाखार २ पल, सेंधानिमक २ पल, पीपरामूल २ पल, चित्रक २ पल, प्रसारणी २ पल और महुआ २ पल इन सबको एकत्र कर धीरे २ मंदाग्निसे पचावे, इसको बादीके रोगमें पीने और बस्ती इनमें देवे तो अस्सी प्रकारकी वादी, अपस्मार, उन्माद, विद्रधि, मंदाग्नि, त्वचाके रोग, यह हाथी, घोडा, मनुष्यको अच्छा करे, इन्द्रियोंको दृढ करे, वंन्ध्यास्त्रियोंको संतान देवे, बुड्ढे, बालक, स्त्री, और राजा इनको हितकर्त्ता है. जो पंगु है या पीठ जिनकी नम गई है वह इसके पीतेही दौडने लगें ।

महानारायण तैल ।

बलाश्वगंधा बृहती श्वदंष्ट्रा स्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम् ॥ क्षुद्राकठिल्लातिबलाग्निमंथरास्नारणी वै कपिकच्छुरा च ॥६१॥ निर्गुंडिकैरंडकुरंटकानां मूलानि वर्षासरणीयुतानि ॥ मूलं विदध्यादथ पाटलानां संकुट्य पादांशतयोद्धृता-

नाम् ॥६२॥ द्रोणैरपामष्टाभिरेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ तैलाढका-भ्यां सह दुग्धमत्र गव्यं विदध्यादथवा-जदुग्धम् ॥ ६३ ॥ दद्याद्रसं चैव शता-वरीणां तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र ॥ पक्त्वा दिनैकं कृतवस्त्रपूतं कल्कानि चैषां च समावपेच्च ॥ ६४॥ रास्नाश्व-गंधामिसिदारुकुष्ठपर्णीतुरुष्कागुरुकेस-राणि॥ सिंधूत्थमांसीरजनीद्वयं च शैलेयकं पुष्करचंदनानि ॥ ६५ ॥ एला सयष्टी तगराब्दपत्रं भृंगाष्टवर्गं च जया-पलाशम् ॥ वृश्चीवधौणेयकचोरकाख्यं मूर्वा त्वचा कट्फलपद्मकं च ॥ ६६ ॥ मृणालजातीफलकेतकी च सनागपुष्पं सरलं मुरा च ॥ जीवंतिका चंदनकं ह्युशीरं दुरालभा वानरिका नखं च ॥ ॥ ६७ ॥ कैवर्तिकं तालशिरः सतिक्तं खर्जूरमुस्तं समभागमेषाम् ॥ एतैः समे-त्यार्द्धपलप्रमाणैर्भागानथाष्टौ किल कालमेष्याः ॥ ६८ ॥ एणः कुरंगो हरिणो मयूरो गोधा शशः शल्लक-चक्रवाकौ ॥ वर्तीरलावौ वरतित्तिरी च ससारसक्रौंचककंबुपर्णाः ॥ ६९ ॥ अजा सकूर्मा इह मांसयूषं क्रमात्क्षिपे-च्चात्र यथैव लाभम् ॥ रोहीतकोत्था-सवनेत्रनामा कंसाढकौ मुद्गरशृंगिके च ॥ ७० ॥ पाठीनकालीयकतोणिका च सशेखरा ये कुरुरादयश्च ॥ ये चापि तोये शिशुमारमुख्या लभ्याश्च ये श्वभ्र-गता भुजंगाः ॥ ७१ ॥ अन्येऽपि ये भूचरखेचराश्च यूषा अमीषां क्रमशोऽत्र

योज्याः ॥ सुताम्रपात्रेप्यथ मृत्तिकाजे कर्पूरकाश्मीरमृगांडजं च ॥ ७२ ॥ दद्यात्सुगंधानि वदंति केचित्प्रस्वेद-दौर्गंध्यविनाशनाय ॥ वदंति केचिद्भि-षजः समेतं शुभे तथा ऋक्षमुहूर्तलग्ने । ॥ ७३ ॥ संतोष्य विप्रान्भिषजोऽर्थि-नश्च सुभाजने यत्नधृतं तथैव ॥ पाने च नस्ये च निरूहणे च भोज्ये प्रयोज्यं तत एव नूनम् ॥ ७४ ॥ अभ्यंगमादौ च सदा प्रशस्तं निर्वाप्यते कर्मसु केषु-चिन्न ॥ उन्मादशोषक्षतरक्तपित्तश्वास-भ्रमच्छर्दिषु मूर्च्छितेषु ॥ ७५॥ कासा-मिवाताहतशूलदंतकृमीन्पृथुप्लीहसतोद-दाहान् ॥ सतालुशूलश्रवणाक्षिशूलं बा-धिर्यमुच्चैर्ज्वरपीडितं च ॥ ७६ ॥ मंदें-द्रियत्वं च यथाग्निमांद्यं प्रणष्टशक्रत्वम-थांगकंडूः ॥ निहत्य सत्यं स्वगुणप्रभा-वात्कटिग्रहापस्मृतिगृध्रसीं च ॥ ७७ ॥ पक्षाभिघातं चरणाभिघातं हस्ताभिघातं च शिरोग्रहं च ॥ कुष्ठानि सर्वाणि च सर्वगुल्मान्भगंदरं शूलमुरःक्षतं च ॥ ॥ ७८ ॥ यक्ष्माणमुग्रं सकलप्रमेहान्ना-साक्षिकर्णप्रभवान्विकारान् ॥ वातादि-जातान्किल भूतजातान्कृत्यादिजाता-न्ग्रहजान्विकारान् ॥ ७९ ॥ रोगः स नास्त्येव नरस्य देहे नानेन शांतिं समु-पैति यो हि ॥ सद्योव्रणानास्थिविचूर्णितं वा नाडीव्रणान्वापि च योजयित्वा । ॥ ८० ॥ सुवर्णवर्णं वितनोति रूपं नारायणाख्यः किल तैलराजः ॥ वंध्या पुमान्वापि वरांगना वा सुपुत्रमाप्नोति

विलेपतोस्य ॥ ८१ ॥ सिध्यत्यनेनैव नियोजितेन निदाघदग्धःप्रहतोऽपि वृक्षः॥ अल्पस्य का वा भणितिर्नरस्य रोगस्य जंतोरपरस्य वापि ॥ ८२॥ नारायणोक्तं यदिदं सुतैलं नारायणं नाम ततः प्रसिद्धम् ॥ ८३ ॥

अर्थ–खिरेंटी, असगंध, बडी कटेरी, गोखरू, टैंटू, बरिआरा, नीम, छोटी कटेरी, करेले, अतिबला, अरनी, रास्ना, पृष्ठपर्णी, कौंछके बीज, निर्गुंडी, अरंडकी जड, पियावाँसा, पुनर्नवा और दशमूलकी १० औषधी ये प्रत्येक दश दश तोले ले सबको कूटके १०८ सेर जलमें औटावे जब चतुर्थांश रहे तब ४ सेर तिलका तेल, गौका अथवा बकरीका दूध ४ सेर, तथा सताबरका दूध ४ सेर, सबको एकत्र कर १ दिन आग्नि देवे, फिर अग्निसे उतारके कपडेमें छान लेय और आगे लिखी औषधोंका कल्क मिलावे, जैसे रास्ना, असगंध, सौंफ, देवदारु, कूठ, साल पर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अगर, केशर, सेंधानिमक, जटामांसी, हलदी दारुहलदी,छारछबीला, पुहकरमूल, चंदन, एलायची, मुलहटी, तगर, नागरमोथा, पत्रज, भांगरा, अष्टवर्गकी आठ औषधी, भांग, पलास, सपेद पुनर्नवा, थुनेर, कचूर, मूर्वा, दालचीनी, कायफल, केतकी, नागकेशर, सरल, मुरा, मांसी, जीवंती, चंदन, उसीर, धमासा, किवांछ, नखद्रव्य, केवटीमोथा, तालफल, कुटकी, खजूर और भद्रमोथा ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, काले मेंढेका मांस ४ पल, काला हिरण, कुरंग, हिरण मोर, गोह, ससा, सेह, चकवा, बटेर, लवा, तीतर, सारस, ढेंक, वनका कबूतर, बकरी, कछवा इनके मासका यूष जो मिले सो इस तेलमें डाले, रोहीतकमछली, आसवनेत्र नामक मछली, कंस, आढक, मद्गुर, शृंगी, पाठीन, कालीयक, तोणिका और मुरगा, कुरर तथा जलमें रहनेवाले सूस, मगर आदि तथा बिलमें रहनेवाले सांप इसी प्रकार पृथ्वी और आकाशमें रहनेवाले जीव इनके मांसका यूष बनाय तेलके साथ पकावे । इसको तयार होनेपर तामें या मिट्टीके पात्रमें भरके रक्खे, तथा इसकी दुर्गंध दूर करनेको इसमें कपूर, केशर और कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्य डाले तथा शुभलग्न मुहूर्त्तमें ब्राह्मण और वैद्य तथा अन्य जो याचक हैं उनका पूजन कर इसको पीनेको नस्यमें निरूहणबस्ति और भोजनमें देवे । तथा सब कर्मोंको त्यागके प्रथम इस तेलकी मालिश करे तो उन्माद, शोष, उरःक्षत, रक्तपित्त, श्वास, भ्रम, वमन, मूर्च्छा, खाँसी, मंदाग्नि, वात, शूल, दंतकृमि, पुष्टता, पिलही, चोटनी, दाह, तालुशूल, कान और नेत्रका शूल, बहरापना, ज्वर पीडा, इद्रियोंका मंद होना, क्षीण शुक्र, खुजली, कमरकी पीडा, अपस्मार गृध्रसी, आधे अंगका माराजाना, पैर रहजावे, हाथोंका रहजाना, शिरका दर्द, कुष्ठ, सब गलेके रोग, भगंदर, शूल, राजरोग, सब प्रमेह इन सब विकारोंको दूर करे । वातजन्य रोग, भूतजन्य, कृत्याके विकार, ग्रहविकार ऐसा कोईसा रोग नहीं हैं कि, जो इस तेलके लगानेसे नहीं जावे । सद्योव्रण, हड्डियोंका चूरा होजाना, नाडी व्रण इनको नष्ट कर सुवर्णके समान देहका वर्ण करे, यह नारायण सब तैलोंका राजा लगानेसे वंध्याके पुत्र होय और पुरुष वीर्ययुक्त हो. जिस वृक्षको गरमीने पजार दिया हो वहभी इस तेलके

लगानेसे हरा हो जावे फिर मनुष्यका तो कहना ही क्या है ? यह नारायणके कहनेसे इसे नारायण तेल कहते हैं ।

बृहन्माषतैल ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नायां दशमूलजे ॥ यवकोलकुलत्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥ ८४ ॥ प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ रास्नात्मगुप्तासिंधूत्थशताह्वैरंडमुस्तकैः॥८५॥ जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षमितैर्भिषक् ॥ हस्तकंपे शिरःकंपे बाहुकंपेऽपबाहुके ॥ ८६ ॥ बस्त्यभ्यंजनपानेषु नावनेषु प्रयोजयेत् ॥ माषतैलमिदं श्रेष्ठं मूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ८७ ॥

अर्थ–उडदके क्काथमें व खिरेटीके क्काथमें रास्ना और दमूलकी दश औषध, जौ, बेर, कुलथी और बकरेके मांसरस इनमें १ सेर तेल डालके पृथक् २ पचावे और ४ सेर दूध डाले. तथा रास्ना, कौंछ, सेंधानमक, सतावर, अरंड, नागरमोथा, जीवनीय गणकी सब औषध, खिरेटी, सौंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक एक एक तोला ले कल्क करके पचावे । यह तैल हाथका काँपना, शिर काँपे, भुज काँपे, अपबाहुक इसमें, बास्ति, मालिश, पीना और नस्य इनमें देवे । यह माषतैल हसलीके ऊपर होनेवाले रोगोंको नाशकर्ता है ।

रास्नादि गूगल ।

रास्नामृतैरंडसुराह्वविश्वं तुल्येन गाढं पुरुणा विमर्द्य ॥ खादेत्समीरी सशिरोगदी च नाडीगदी चापि भगंदरी च ॥ ८८ ॥

अर्थ–रास्ना, गिलोय, अंडकी जड, देवदारु और सोंठ ये समान और सबकी बराबर शुद्ध गूगल लेवे तो बादी शिररोग व्रणरोग और भगंदर दूर होय ।

द्वात्रिंशको गुग्गुलुः ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ ॥ वचैलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ ८९ ॥ तुवरं पुष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्वयम् ॥ बाष्पिका जीरकं शुंठी पत्रं च सदुरालभम् ॥ ९० ॥ सौवर्चलं विडंचैव क्षारौ द्विरदपिप्पली॥ सैंधवं च समानेतांस्तुल्यं दद्याच्च गुग्गुलुम् ॥ ९१ ॥ साधयित्वा विधानेन कोलमात्रां वटीं चरेत् ॥ घृतेन मधुना वापि भक्षयेत्तामहर्मुखे॥ ९२ ॥ आमं हन्यादुदावर्तमंत्रवृद्धिगुदक्रुमीन्॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् । ॥ ९३ ॥ आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि गुदजानि च ॥ शोफं प्लीहामयं देहे कामलामपचीं तथा ॥ ९४ ॥ नाम्ना द्वात्रिंशको ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान् ॥ धन्वंतरिकृतो योगः सर्वरोगनिषूदनः ॥ ९५ ॥

अर्थ–त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चित्रक, बच, इलायची, पीपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, धनिया, पुहकरमूल, कूठ, अतीस, हलदी, दारुहलदी, सौंफ, जीरा, सोंठ, पत्रज, धमासा, संचरनिमक, बिडनिमक, सज्जीखार, जवाखार, गजपीपल और सेंधानिमक ये समान भाग लेवे और इन सबकी बराबर गूगल मिलावे विधिपूर्वक गोली

आठ २ मासेकी बनावे इसको प्रातःकाल घृतसे अथवा सहतसे खाय तो आमवात, उदावर्त्त, अंत्रवृद्धि, गुदाके कृमि, घोर ज्वर, भूतोन्माद, अफरा, उन्माद, कुष्ठ, बवासीर, सूजन, प्लीह, कामला, अपची, इन सब रोगोंको यह द्वात्रिंशक गूगल नष्ट करे यह सर्वरोगनाशक योग धन्वंतरिने कहा है ।

त्रयोदशांग गूगल ।

आभाश्वगंधा हपुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकं च रास्ना ॥ श्यामा शठीघोषवती यवानी सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥ ९६ ॥ तुल्यं वरं कौशिकमत्र देयं गव्यं च सर्पिश्च ततोर्द्धभागम् ॥ अक्षार्द्धमात्रां तु ततः प्रयोगस्तत्रानुपानं सुरया च यूषैः ॥ ९७ ॥ कोष्णांबुना वा पयसा रसेन मांसस्य वा कोमलवस्तुजस्य ॥ कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठहनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे । ॥ ९८ ॥ संधिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जागते कोष्ठगते तथापि॥रोगाञ्जयेद्वातकफानुविद्धान्वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खंडजाते त्रयोदशांगं प्रवदंति सिद्धाः॥९९॥

अर्थ–बबूल, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, गोखरू, रास्ना, निसोथ, कचूर, सनके बीज, अजमायन और सोंठ, ये समान भाग लेवे, सबकी बराबर शुद्ध गूगल मिलावे तथा गौका घी आधा भाग डालके कूट पीस ८ मासेकी गोली बनावे । इसको मद्य, यूष, गरम जल, दूध, मांसरस अथवा, कोई कोमल औषधके साथ इसे देवे, कमरकी बादी, गृध्रसी, अवबाहुक, पीठकी वादी, हनुस्तंभ, घोटुओंका रहजाना, पैरोंका रहजाना, संधिस्थित वादी, हड्डीगत बादी, मज्जागत कोष्ठगत वात तथा वात कफके रोगोंको जीते, हृदयरोग, योनिदोष हड्डीका टूटना, खंजवात इनपर यह त्रयोदशांग गुगल उत्तम है ।

योगराज गूगल ।

नागरं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकौ॥भ्रष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपा जीरकद्वयम् ॥ १०० ॥ रेणुकेंद्रयवा पाठा विडंगं गजपिप्पली ॥ कटुकाऽतिविषाभार्ङ्गी वचा मूर्वेति भागतः ॥ १ ॥ प्रत्येकं शाणमात्राणि द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् ॥ २ ॥ एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः॥ एकं पिंडं ततः कृत्वा धारयेद्घृतभाजने ॥ ३ ॥ गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः ॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥४॥ मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते ॥ सर्वान्वातामयान्कुष्ठमर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥ ५ ॥ प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगंदरम् ॥ उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम्॥ ६॥ मंदाग्निश्वासकासांश्च नाशयेदरुचिं तथा॥ रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाः॥७॥ पुंसामपत्यजनको वंध्यानां गर्भदस्तथा॥ रास्नादिक्काथसंयुक्तो विविधं हंति मारुतम् ॥ ८ ॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना दार्वीशृतेन मेहांश्च

गोमूत्रेण च पांडुताम् ॥ ९ ॥ मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निंबशृतेन च ॥ छिन्नाक्काथेन वातास्रं शोथं मूलकजाद्धृतात् ॥ १० ॥ पाटलाक्काथसहितो विषं मूषकजं जयेत् ॥ त्रिफलाक्काथसहितो नेत्रार्तिं हंति दारुणाम् ॥ पुनर्नवादिकाथेन हन्यात्सर्वोदराणि च ॥ ११ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ-सौंठ, पीपरामूल, पीपर, चव्य, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुक, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडंग, गजपीपर, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, मूर्वा ये बीस दवाई प्रत्येक चार २ मासे लेवे और सब दवाइयोंसे द्विगुणी त्रिफला लेवे संबकी बराबर शुद्ध गूगल मिलावे, सबको कूटपीस एकजीव कर गोला बनाके घीके चिकने बासनमें भरके धर रक्खे, इसमेंसे चार २ मासेकी गोली बनाय खावे, यह योगराज गूगल त्रिदोषनाशक रसायन है। इसपर जैसे अन्य गूगल खानेमें मैथुन, आहार और पीनेका निषेध करा है इस प्रकार इसपर निषेध नहीं है । सब वातके विकार, कुष्ठ, बवासीर, ग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षय, गोला, अपस्मार, उरोग्रह, मंदाग्नि, श्वास, खाँसी अरुचिको दूर करे, पुरुषोंके वीर्यके दोष और स्त्रियोंके रजोदोष, पुरुषोंको संतानका देनेवाला, वंध्याओंको गर्भदाता है। रास्नादि क्काथके साथ सेवनसे वादीके रोग, काकोल्यादि क्काथके साथ पित्तको, अमलतासके क्काथसे कफको, दारुहलदीके क्काथसे प्रमेहको, गोमूत्रसे पांडुरोगको, सहतसे मेदोवृद्धिको, नीमके क्काथसे कुष्ठको, गिलोयके क्काथसे वातरक्तको, मूलकघृतसे सूजनको, पाटलाके क्काथसे मूषेके विषको, त्रिफलेके क्काथसे दारुण नेत्रकी पीडाको, पुनर्नवादिके क्काथसे तथा सर्व उदरविकारोंको नष्ट करे है ।

योगेराज गूगल ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा ॥ विडंगान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ १२ ॥ चव्यैला सैंधवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् ॥ त्रिफला मुस्तकं व्योषं त्वक्क्षीरं तु यवाग्रजम् । ॥ १३ ॥ तालीसपत्रं पत्रं च लवंगं सर्जिका शठी ॥ दंती गुडूची हपुषा वाजिगंधा शतावरी ॥ १४ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं स्याच्चतुःकर्षमयाऽमृता ॥ एतानि सुभिषक्पिष्ट्वा सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १५ ॥ यावंत्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रो हि गुग्गुलुः ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धभांडे निधापयेत् । ॥ १६ ॥ ततो मात्रां प्रयुंजीत यथेष्टाहारवानपि ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १७ ॥ आमवातादिवातादीन्कृमीन्दुष्टव्रणानपि ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥१८॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥ वातरोगाञ्जयत्याशु संधिमज्जागतानपि ॥ १९ ॥ पादग्रहं क्रोष्टुशीर्षं मन्यास्तंभं गलग्रहम् ॥बाहुग्रहं पक्षघातं हृद्ग्रहं च कटिग्रहम्॥२०॥ दुष्टशुक्रं च दुष्टास्रं गृध्रसीमक्षिनिग्रहम्॥ कर्णग्रहं कर्णशूलं शिरःशूलं मरुत्कृ-

तम् ॥२१॥ रास्नाक्वाथेन हंत्येष केवलो वा प्रशस्यते ॥ २२ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ–चित्रक, पीपरामूल, अजमायन, सौंफ, वच, वायविडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधानिमक, कूठ, रास्ना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकुटा, वंशलोचन, जवाखार, तालीसपत्र, पत्रज, लौंग, सज्जी, कचूर, दंती, गिलोय, हाऊबेर, असगंध और सतावरी प्रत्येक, एक एक कर्ष लेवे, गिलोय ४ तोले, इनका बारीक चूर्ण करे और जितना तोले चूर्ण होय उतनाही शुद्ध गूगल मिलावे घृतसे खरल पोतके सब कूट एक जीव करे, इसको चिकने बरतनमें रखदेवे, यह योगराजगूगल अमृतके तुल्य है । यह आमवात, वादी, कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीह, गोला, उदर, अफरा, बवासीर, अग्निको दीपन करे, तेज बढावे, बल बढावे, संधिगत, मज्जागत, वात, पादग्रह, क्रोष्टुशीर्ष, मन्यास्तंभ, गलग्रह, बाहुग्रह, पक्षाघात, हृदयरोग, कमरकी वात, दुष्टशुक्र, दुष्टरुधिर, नेत्रोंका रोग, कर्णका बंद होना, कर्णशूल इन सबको रास्नादि क्वाथके साथ अथवा केवल गूगल सेवन करनेसे दूर करे। यह सारसंग्रहमें लिखाहै ।

महारास्नादि।

रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्तथापरे॥ धन्वयासबलैरंडदेवदारुशठीवचाः ॥ २३ ॥ वासकं नागरं पथ्या चव्यमुस्तापुनर्नवाः ॥ गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरम् ॥ २४ ॥ अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥ कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम्॥२५॥ एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं शुंठीचूर्णेन संयुतम् ॥ कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुना समम् ॥ २६ ॥ अजमोदादिना वापि तैलेनैरंडजेन वा ॥ सर्वांगकंपे कुब्जत्वे पक्षाघातापबाहुके ॥२७॥ गृध्रस्यामामवातेषु श्लीपदे चापतानके॥ अंत्रवृद्धौ तथाध्माने जंघाजानुगतेर्दिते ॥ २८ ॥ शुक्रामये मेढ्ररोगे वंध्यायोन्यामयेषु च ॥ महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ॥ २९ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ–रास्ना २ भाग (अथवा १ भाग), धमासा, खिरेटी, अंड, देवदारु, कचूर, वच, अडूसा, सोंठ, हरड, चव्य, मोथा, पुनर्नवा, गिलोय, विधायरा, सौंफ, गोखरू, असगंध, अतीस, अमलतास, सतावर, पीपल, कटसैरया, धनिया, छोटी और बडी कटेरी, ये समान भाग ले १ तोलेका क्वाथपर सोंठका चूर्ण मिलायके, या पीपलका चूर्ण मिलाके अथवा योगराज गूगलके साथ, या अजमोदादिचूर्णसे अथवा अंडीके तेलसे पीवे तो सर्वांगवात, कंपवात, कुबडापना, पक्षाधात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक, अंत्रवृद्धि, अफरा, जंघा, जानुकी वायु और अर्दितवायु, शुक्ररोग, लिंगरोग, वंध्यायोनिके रोग, इनपर गर्भ देनेवाला यह महारास्नादि क्वाथ कहा है ।

वातनाशनरस ।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ॥ तालं नीलांजनं तुत्थमहिफेनं समांशकम् ॥ ३० ॥ पंचानां लवणानां

च भागमेकं विमर्दयेत् ॥ वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाऽधो भूधरे पचेत् ॥ ३१ ॥ माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥ पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ ३२ ॥ सर्ववातविकारांश्च निहंत्याक्षेपकादिकान् ॥ ३३ ॥

अर्थ-पारा, सुवर्ण, हीरा, तामा, लोह. सुवर्णमाक्षिक, हरताल, इनकी भस्म, नीला सुरमा, लीलाथोथा. अफीम, ये समान भाग लेवे और पांचों निमक मिलाके १ भाग ले इन सबको थूहरके दूधसे १ दिन खरल करे फिर मूध रयंत्रमें धरके फूँकदेवे । इसकी मात्रा १ मासेकी अदरखके रससे लेय और ऊपरसे पीपरामूलका क्वाथ पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो आक्षेपकादि सर्ववातके विकारोंको नष्ट करे ।

स्वच्छंदभैरवरस ।

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम् ॥ पथ्याग्निमंथनिर्गुंडीत्र्यूषणं टंकणं क्षिपेत् ॥ ३४ ॥ तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः। मुंडीद्रवैर्दिनैकं तु द्विगुंजो वटकीकृतः ॥ ३५ ॥ भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छंदभैरवः ॥ रास्नामृतादेवदारुशुंठीवातारिजं शृतम् ॥ ॥ ३६ ॥ सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां वातरोगचिकित्सा नाम चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४० ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, लोह, सुवर्णमाक्षिक इनकी भस्म, गंधक, हरताल, हरड, अरनी, निर्गुंडी, सोंठ, मिरच, पीपल और सुहागा प्रत्येक समान भाग ले खरलमें डाल एक दिन निर्गुंडीके रसमें और एक दिन गोरखमुंडीके रसमें खरल कर दो दो रत्तीकी गोली बनावे,यह स्वच्छंदभैरवरस वातरोगी भक्षण करे ऊपरसे रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और अंडकी जडका क्काथ गूगल डालके गरम २ पीवे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां वातरोगचिकित्सा नाम चत्वारिंशस्तरंः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशस्तरंगः ।

वातरक्त ।

वाहनाभिरतस्यासृग्दूषयित्वानिलो बली ॥ स्पर्शाज्ञत्वं मंडलानि स्फोटकानि विषूचिकाम् ॥ १ ॥ करोत्यंगुलिवैकल्यं वातरक्तमिदं स्मृतम् ॥ कालातिक्रांतमेतत्तु कुष्ठं भवति दुर्धरम् ॥ २ ॥ इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ-जो प्राणी हाथी घोडे आदिकी बहुत सवारी किया करे है उसके बलवान् पवन रुधिरको दूषितकर देहमें स्पर्श न मालूम हो ऐसे चकत्ते, फोडे, विषूचिका, उँगलियोंका टेढा बांका हो जाना इस रोगको करे. इसको वात रक्त ऐसा कहते हैं इसकी कुछ दिन चिकित्सा न करी जावे तो यही बढकर घोर कुष्ठ रोग करे है । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

चिकित्सा ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ॥ अल्पाल्पं रक्षता युक्तं यथादोषं यथा बलम् ॥ ३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-वातरक्तवाले प्राणीको प्रथम चिकने पदार्थ भोजन कराके बहुतसा रुधिर निकाले

परंतु थोडा २ शेष छोड दिया करे युक्तिपूर्वक दोषोंके अनुसार और बलके अनुसार निकाले ।

वासागुडूचीचतुरंगुलानामेरंडतैलेनपिबेत्कषायम् ॥ क्रमेण सर्वांगजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ४ ॥

अर्थ–अडूसा, गिलोय, अंडकी जड इनके क्काथको अंडीके तेलसे पीवे यह क्रमसे सर्वांगजन्य वातरक्तके विकारको दूर करे ।

नवकार्षिक क्काथ ।

त्रिफलानिंबमंजिष्ठावचाकटुकरोहिणी॥ वत्सादनी दारुनिशा कषायं नवकार्षिकम् ॥ ५ ॥ वातरक्तं तथा कुष्टं पामानं रक्तमंडलम् ॥ कृच्छ्रं कापालिकं कुष्टं पानादेवापकर्षति ॥ ६ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–हरड, बहेडा, आँवला, नीम, मँजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहलदी यह नवकार्षिक क्काथ वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, खूनके चकत्ते, घोर कापालिक, इनको पीते ही दूर करे ।

कैशोरगुग्गुल ।

वनमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ॥ प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ ७ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नतो विबुधैः ॥ मृद्वग्निनाथ विपचेद्दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ ८ ॥ अर्द्धक्कथितं तोयं जातं ज्वलनस्य संपर्कात् ॥ अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संपाचयेदयःपात्रे ॥ ९ ॥ सांद्रीभूते तस्मिन्नवतार्य्यांहिमोपलप्रस्थे ॥ त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ १० ॥ कृमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दंत्योः ॥ पलमेकं तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥ ११ ॥ उपयुंज्यात्त्वनुपानं यूषं तोयं सुगंधि सलिलं च ॥ इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुंज्यात्सर्वकालमिदम् ॥ १२ ॥ तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ द्वंद्वजं च सुचिरोत्थम् ॥ जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितमाजानुगं चापि ॥ १३ ॥ व्रणकासगुल्मकुष्ठश्वयथूदरपांडुमेहांश्च॥ मंदाग्निं च चिरोत्थं प्रमेहपिडिकांश्च नाशयत्याशु॥ १४ ॥ सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धंति सर्वगदान् ॥ अभिभूय जरादोषं वितरति कैशोरकं रूपम् ॥ १५ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–भैंसा गूगल १ सेरको १६ सेर जलमें भिगोवे तथा १ सेर त्रिफला डाले. गिलोय ३२ पल कूटके डाले अग्निपर चढायके मंदाग्निसे पचावे और बारंबार कलछीसे चलाता रहे जब आधा रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे, फिर इसको दूसरे कढावमें भरके औटावे जब गाढा हो जावे तब उतार ले शीतल हो जावे तब त्रिफलेका चूर्ण २ तोले, त्रिकुटा चूर्ण ६ तोले वायविडंगका चूर्ण २ तोले, निशोथ और दंतीका चूर्ण एक एक कर्ष लेवे, गिलोयका चूर्ण ४ तोले सबका चूर्णकर क्काथमें मिलाय देवे, सबको कूट एक जीव करलेवे एक एक तोलेकी गोली बनावे, तीन मासेसे लेकर तोले पर्यंतकी मात्रा है, इसे यूष, जल, सुगंधित जल गुलाब जल आदि इनके साथ

खाय और यथेष्ट आहार और विहार करे, तथा सदैव औषध सेवन करा करे तो वातरक्त, एकज, द्वंद्वज, बहुत दिनका, सूखा, घोटूपर्यंत जो फटगया है, व्रण, खाँसी, गोला, कुष्ठ, सूजन, उदर, पांडुरोग, प्रमेह, मंदाग्नि, बहुत दिनकी प्रमेहपिटिका इनको नष्ट करे । सदैव इसका सेवन करा करे तो थोडे दिनमें सब रोगोंको नष्ट करे और वृद्धावस्थाको दूर कर तरुण अवस्था करे ।

बृहन्मंजिष्ठादि ।

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ॥ भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंबनिशाद्वयफलात्रिकैः। पटोलकटुकामूर्वाविडंगाऽसनचित्रकैः । ॥ १६ ॥ शतावरीत्रायमाणाकृष्णेंद्रयववासकैः॥भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ॥ १७ ॥ त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषांबुभिः ॥ १८॥ इंद्रवारुणिकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥ एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं कणागुग्गुलुसंयुतम् । ॥१९ ॥ अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तेर्दिते तथा ॥ उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तो पक्षघातके ॥ मेदोदोषे नेत्ररोगे मंजिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ २० ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अर्थ—मँजीठ, नागरमोथा, कुडाकी छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेरीका पचांग, वच, नीम, हलदी, दारुहलदी, हरड, बहेडा, आँवला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग. विजेसार, चित्रक, सतावर त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसा, भाँगरा, देवदारु, पाढ, खैरसार, चन्दन, निसोथ, बरना, चिरायता, बावची. अमलतास, सहोडा, बकायन, कंजा, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायनकी जड, धमासा, सारिवा और पित्तपापडा प्रत्येक समान भाग ले इनके क्वाथमें पीपल और गूगल मिलाके पीवे । अठारह प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, लकवा, उपदंश, श्लीपद, सुन्नबहरी, अर्द्धांगवात, मेदोरोग, नेत्ररोगपर यह मंजिष्ठादि दियाजाता है ।

लघुमंजिष्ठादि ।

मंजिष्ठोग्रावरातिक्तानिशानिंबामृतामरैः॥ सत्रिवृत्खदिरैः क्वाथः सर्वकुष्ठानिलाशुजित् ॥ २१ ॥

अर्थ—मँजीठ, वच, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, हलदी, नीमकी छाल, गिलोय, देवदारु, निसोथ, खैरसार इनका क्वाथ सर्व प्रकारके कुष्ठ और वादीको जीते ।

दूसरा मध्यमंजिष्ठादि ।

मंजिष्ठारिष्टवासात्रिफलदहनकं द्वे हरिद्रे गुडूची भूनिंबो रक्तसारः सखदिरकटुका वाकुचीव्याधिघातः ॥ मूर्वादंतीविशालाकृमिरिपुजटिलावायसीरासपाठाश्यामानन्तापटोलैः समरिचमगधैः साधितोऽयं कषायः ॥ २२ ॥ पीताहन्यात्समस्तान्सकलतनुगतात्रक्तजातान्विकारान् ॥ कंडूविस्फोटकादीनलसकविषमश्वित्रपामादिदोषान् ॥ २३ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ—मँजीठ, नीम, अडूसा, त्रिफला, चित्रक, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, चिरेता, विजेसार, खैरसार, कुटकी, बावची, अमलतास, मूर्वा, दंती, इन्द्रायन, वायविडंग, वच, कौआ

ठोढी, पाढ, निसोथ, जवासा, पटोलपत्र, मिरच और पीपल इनको समान भाग ले काथ कर पीवे तो समस्त रुधिरके विकार, खुजली, विस्फोटकादि, अलस और दुष्ट सपेद कुष्ठ और पामाआदि रोगोंको दूर करे । यह योगरत्नावलीमें लिखा है ।

महातिक्तकघृत ।

मूनिंबांबुदनिंबवत्सककणात्रायंत्यनंतामृतातिक्ताभीरुफलत्रिकप्रतिविषामूर्वाविशालाजलैः॥पाठापर्पटसारिवाद्वयनिशायुग्याष्टिकापद्मकैः सोशीरैः सपटोलचन्दनवचाशम्याकसप्तच्छदैः ॥ २४ ॥ इत्येभिर्गदितैर्जलाष्टगुणितैः प्रस्थं पचेत्सार्पिषो गव्यं सामलकीरसद्विगुणितं नाम्ना महातिक्तकम्॥ हंत्येतद्गलगंडमंडलरुजः कंडूं सपांड्वामयां शोफश्लीपदवातरक्तविकृतीः कुष्ठानि चाष्टादश २५

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, नीम, कुडाकी छाल, पीपर, त्रायंती, जवासा, गिलोय, कुटकी, सतावर, त्रिफला, अतीस, मूर्वा, इन्द्रायनकी जड, नेत्रवाला, पाढ, पित्तपापडा, सारिवा, कालीसारिवा, हलदी, दारुहलदी, मुलहटी, पद्माख, खस, पटोलपत्र, चन्दन, वच, अमलतास, सतोना ये चार चार तोले लेवे, सबसे आठगुने जलमें डालके काथ करे, जब चतुर्थांश रहे, तब इसके साथ १ सेर गौका घी, दो सेर आमलेका रस मिलायके घृत सिद्ध करे। यह महातिक्तकघृत है। इससे गलगंड, चकत्ते, खुजली, पांडुरोग, सूजन, श्लीपद, वातरक्त और अठारह प्रकारके कुष्ठ दूर हो । यह सारसंग्रहमें लिखा है ।

बृहन्मरिचादि तैल ।

मरिचं त्रिवृता दंती क्षीरमार्कं शकृद्रसः॥ देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचंदनम् ॥२६॥ विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला ॥ चित्रकं लांगली चापि विडंगं चक्रमर्द्दकम् ॥ २७ ॥ शिरीषं कुटजो निंबः सप्तपर्ण्यमृता स्नुही ॥ शम्याको नक्तमालश्च खदिरं पिप्पली वचा ॥ २८ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं मतम्॥आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥२९ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ एतत्तैलं विशेषेण नाशयेत्कुष्ठजान्व्रणान् ॥ ३० ॥ वातरक्तभवान्व्याधीन्पामाविस्फोटचर्चिकाः ॥ नश्यंत्यभ्यंजनादेव वलीपलितमेव च ॥ ३१ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ—कालीमिरच, निसोथ, दंती, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, जटामांसी, कूठ, चंदन, इन्द्रायनकी जड, कनेर, हरताल, मनसिल, चित्रक, कलियारी, वायविडंग, पमारके बीज, सिरसकी छाल, कुडाकी छाल, नीम, सतोना, गिलोय, थूहर, अमलतासका गूदा, कंजा, खैर, पीपल, बच, मालकांगनी ये प्रत्येक एक एक पल लेवे, सिंगिया विष २ पल, कडवा तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, इसको लोहेके पात्र या मिट्टीके पात्रमें मंदाग्निसे पचावे, यह तेल विशेष करके कोढके घावोंको, रक्तपितके रोग, पामा, विस्फोटक, विचर्चिकाको दूर करे । इसके लगानेसे देहकी गुलझट और सपेदबाल दूर हों । यह योगरत्नावलीमें लिखा ।

पिंडतैल।

सारिवासर्जमंजिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोन्वितैः॥ तैलं पक्त्वा प्रयोक्तव्यं पिंडाख्यं वातशोणिते॥ ३२॥

इति वृंदात्॥

अर्थ–सारिवा, राल, मजीठ, मुलहटी, मोम और दूध इनके साथ तैल सिद्ध करे। यह पिंडतैल वातरक्त रोगमें देवे।

सर्वेश्वर रस।

शुद्धं सूतं चतुर्गंधं पलं यामं विचूर्णयेत्॥ मृतताम्राभ्रलोहानां दरदं च पलं पलम्॥ ३३॥ सुवर्णं रजतं चैव प्रत्यकं दशनिष्ककम्॥ माषैकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम्॥ ३४॥ जंबीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः॥ मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनंदिनम्॥ ३५॥ एवं सप्तदिनं मर्द्य तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्॥ वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना॥ ३६॥ आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलिकं योजयेद्विषम्॥ द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रः सर्वेश्वरो रसः॥ ३७॥ द्विगुंजो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमंडलकुष्ठनुत्॥ बाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत्॥ लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्॥ ३८॥

इति शार्ङ्गधरात्॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ पल, गंधक ४ पल, दोनोंको १ प्रहर घोटके कजली करे फिर ताम्र, अभ्रक, लोह इनकी भस्म और सिंगरफ प्रत्येक एक २ पल ले, सुवर्ण और चांदीकी भस्म ये दश २ टंक लेवे, हीरेकी भस्म १ मासा, हरतालका सत्त्व २ पल लेवे, इनको जंभीरी, धतूरा, अडूसा, थूहर, आक, कुचला और कनेरके द्रावसे एक एक दिन इस प्रकार सात दिन घोटे, इसका गोला बनाय उसपर कपडमिट्टी कर फिर वालुकायंत्रमें रखके मंदाग्निसे तीन दिन स्वेदन करे, फिर इसका बारीक चूर्ण कर ४ तोले विष मिलावे, पीपलका चूर्ण ८ तोले मिलावे तो सर्वेश्वररस बने, इसकी २ रत्ती सहतके साथ चाटे तो सुप्ति (सुन्नबहरी) चकत्ते और कुष्ठको दूर करे। बावची, देवदारु ये तोले २ चूर्ण कर इसे अंडीके तेलसे मिलायके पीवे यह इसका सुखकारी अनुपान है।

कनकभुजगवल्लीमालतीपत्रमूर्वारसगदकुनटीभिर्मर्दितस्तैलयोगात्॥ अपहरति रसेंद्रः कुष्ठकंडूविसर्पस्फुटितचरणरंध्रश्यामलत्वं त्वचायाः॥ ३९॥ अस्य तैलस्य लेपेन वातरक्तं प्रशाम्यति॥ ४०॥

इति रसेंद्रचिंतामणेः॥

अर्थ–धतूरा, पान, चमेलीके पत्र, मूर्वा, पारा, कूठ, मनसिल इनको तैलसे पीसके लगावे तो यह रसेन्द्र कुष्ठ, खुजली, विसर्प, पैरोंका फटना, त्वचाका कालापन तथा वातरक्तको दूर करे।

वातरक्तमें अपथ्य।

दिवास्वप्नाग्निसंतापं व्यायामं मैथुनं तथा॥ कटूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत्॥ ४१॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां वातरक्तचिकित्सा नामैकचत्वारिंशस्तरंगः॥ ४१॥

अर्थ–दिनमें सोना, अग्निसे तापना, दंड कसरत करना, मैथुन करना, चरपरे गरम भारी

अभिष्यंदी पदार्थ निमक और खटाई खाना वातरक्तमें वर्जित है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां वातरक्तचिकित्सा नाम एकचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशस्तरंगः ।

आमवात ।

वृद्धेन वायुना नुन्न आमो याति कफाशयम् ॥ लभते स च नाडीभिरामवातोऽयमीरितः ॥ कटयूरुजानुजंघासु पृथुशोथरुजाकरः ॥ १ ॥

अर्थ–बढी हुई बादीसे प्रेरित आम जब कफाशयमें जाती है वहाँ जायके नाडियोंमें जब प्रवेश करे है तब इसको आमवात रोग कहते हैं । यह कमर, जाँघ, घोटू और जंघाओंमें अत्यंत सूजन तथा पीडा करता है ।

चिकित्सा ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तदीपनानि कटूनि च ॥ २ ॥ विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चाममारुते ॥ रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ ३ ॥ उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ शठीशुंठ्यभया चोग्रा देवदारु विषाऽमृता ॥४ ॥ कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ चित्रकं कटुका पाठा कलिंगाऽतिविषामृता ॥ ५ ॥ देवदारु वचा मुस्तं नागराऽतिविषाऽभया ॥ पिबेदुष्णांबुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ ६ ॥

अर्थ–लंघन, स्वेदन, कडवे, दीपन, चरपरे पदार्थोंका सेवन, जुल्लाब लेना, स्नेहपान और बस्तीकर्म ये आमवातमें करने चाहिये । इस आमवातमें रूक्ष स्वेद करे, जैसे वालूसे सेकना और उपनाहस्वेद जो करे जावे सोभी चिकनाईरहित होने चाहिये, पाचन, कचूर, सोंठ, हरड, बच, देवदारु, अतीस, गिलोय इनका क्वाथ आमवातको पाचन करे, तथा रूक्ष पदार्थ भोजन करे अथवा चित्रक, कुटकी, पाढ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनके चूर्णको गरम जलसे पीवे तो आमवात दूर हो ।

रास्नादिपंचक ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् ॥ पिबेत्सर्वांगगे वाते सामे संध्यस्थिमज्जगे ॥ ७ ॥

अर्थ–रास्ना, गिलोय, अंड, देवदारु और सोंठ इनके क्वाथसे सर्वांगवात, साम और संधित हड्डी तथा मज्जागत वात दूर हो ।

रास्नादिसप्तक ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकंटकैरंडपुनर्नवानाम् ॥ क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ ८ ॥

अर्थ–रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, अंडकी जड और पुनर्नवा इनका क्वाथ सोंठका चूर्ण डालके पीवे तो जंघा, ऊरु, पीठ, त्रिक और पसलीके शूलको दूर करे ।

रास्नादि ।

रास्नैरंडशतावरीसहचरादुःस्पर्शवासामृता देवाह्वातिविषाभयाघनवचाशुंठीकषायः कृतः ॥ पीतः सोरुबुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनिलेकटयूरुत्रिकपार्श्वपृष्ठजठरे कोष्ठेषु वातार्तिजित् ॥९॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-रास्ना, अंड, सतावर, पियावासा, धमासा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरडे, नागरमोथा, वच और सोंठ इनके क्वाथमें अंडीका तेल डालके पीवे तो साम और शूलसहित बादी, कमर, ऊरु, त्रिक, पसली, पीठ, उदर और कोठेकी वातपीडाको दूर करे ।

सिंहनादगूगल ।

पिंडित गुग्गुलोः प्रस्थं कटुतैलं पलाष्टकम् ॥ प्रत्येकं त्रैफलं प्रस्थं सार्धद्रोणजले पचेत् ॥ १० ॥ पादशेषं ततः पूतं पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडंगं सुरदारु च ॥ ११ ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दंतिवचासूरणमाणकम् ॥ पारदं गंधकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसंमितम् ॥ १२ ॥ शुद्धं सहस्रं प्रत्यग्रं जैपालस्य फलं बुधः ॥ त्वगंकुरविनिर्मुक्तं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् ॥ १३ ॥ ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं प्रलयानलसंनिभम् ॥ १४ ॥ धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं च विपुलं तथा॥ आमवातं शिरोवातं कटिवातं भगंदरम् ॥ १५ ॥ जानुजंघाश्रितं वातं सकटिग्रहमेव च ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च साध्मानं तिमिरं तथा । सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा॥ १६॥

इति वृंदात् ।

अर्थ-उत्तम गूगल १ सेर, कडवा तेल ३२ तोले, हरड १ सेर, बहेडा १ सेर और आमले एक सेर इनको २४ सेर जलमें पचावे, जब चतुर्थांश रहे तब छान दूसरे कढावमें चढाके इसमें त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, बायविडंग, देवदारु, गिलोय, चित्रक, निसोथ, दंती, वच, जमीकंद, मानकंद, पारा, गंधक प्रत्येक दो दो तोले ले शुद्ध और उत्तम जमालगोटेके बीज १००० इन त्वचा और अंकुर रहितोंको कूट पीस उस क्वाथमें डाल देवे, सबको एकजीव कर इसमेंसे २ मासे खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे. यह अग्निको दीपन करे, धातु, अवस्था और बलको बढावे, आमवात, मस्तकवात, कमरकी वात, भगंदर, जानु जंघाकी वात, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अफरा, तिमिर इन सब रोगोंको यह सिंहनाद गूगल दूर करे । यह वृंदमें लिखा है ।

महारसोनपिंड ।

तुलाक्षुण्णरसोनस्य तदर्द्धं लुंचितास्तिलाः ॥ पात्रे तु गव्यतक्रस्य पिष्टद्रव्यैः समं क्षिपेत् ॥ १७ ॥ त्र्यूषणं धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली ॥ अजमोदा त्वगेला च ग्रंथिकं च पलाशकम् । ॥ १८ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ पंचाजाज्याः पलानि च ॥ कृष्णाजाज्याश्च चत्वारि राजिकायास्तथैव च ॥ १९ ॥ पलं प्रमाणं दातव्यं हिंगु लोणानि पंच च ॥ आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोऽष्टौ पलानि च ॥२०॥ तिलतैलस्य तावंति शुक्तस्यापि च विंशतिः ॥ सिद्धार्थकस्य चत्वारि द्विगुणं मधुनस्तथा ॥ २१ ॥ एकीकृत्य दृढे भांडे धान्यमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ द्वादशाहात्समुद्धृत्य प्रातः खादेद्यथाबलम् ॥ २२ ॥ सुरां सौवीरकं चापि मधुनापि पिबेत्ततः ॥ जीर्णे

यथेप्सितं भोज्यं दधिपिष्टकवर्जितम् । ॥ २३ ॥ एष मासोपयोगेन सर्वव्याधिहरो भवेत् ॥ अशीतिवातरोगाश्च चत्वारिंशच्च पित्तजाः ॥२४ ॥ विंशतिः श्लेष्मजास्तद्वन्नश्यंते तस्य सेवनात् ॥ योनिशूलं प्रमेहांश्च कुष्ठोदरभगंदरान् । अर्शोगुल्मक्षयांश्चापि जयेद्बलरुचिप्रदः ॥ २५ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–छिली और कुटीहुई लहसन ५ सेर, कुटे तिल २॥ सेर इनको गौके छाछके पात्रमें डालदे तथा त्रिकुटा, धनियां, चव्य, चित्रक, गजपीपल, अजमोद, तज, इलायची, पीपरामूल प्रत्येक चार २ तोले लेवे, मिश्री ३२ तोले, जीरा २० तोले लेवे, काला जीरा १६ तोले, राई १६ तोले, हींग और पांचों निमक प्रत्येक चार तोले, अदरख १६ तोले, घी ३२ तोले, तिलका तेल १६ तोले, सिरका ८० तोले, सपेद सरसों १६ पल, सहत ३२ तोले, सबको एकत्र कर पक्के बासनमें रखके धान्यके बीचमें गाड देवे जब १२ दिन व्यतीत हो जावें तब निकालके बलाबल विचार प्रातःकाल खाय, इसके ऊपर मद्य, सौवीर (मद्यका भेद), सहत ये पीवे, जब यह पचजाय तब दही और पिष्ट पदार्थोंको त्यागके यथेष्टभोजन करे, इस प्रकार १ महीनेके प्रयोग करनेसे सर्व रोगोंको नष्ट करे, ८० बादीके रोग, ४० पित्तके और २० कफके रोग नष्ट हों. योनिशूल, प्रमेह, कुष्ठ, उदर, भगंदर, बवासीर, गोला, क्षय इनको नष्ट करे तथा बल और रुचिको देय ।

महारास्नादिना जग्धो योगराजो हि गुग्गुलुः ॥ आमवातं कटीपृष्ठजानुजंघाग्रहं जयेत् ॥ २६ ॥

अत्रापि वातनाशनो रसो योज्यः ॥

अर्थ–इस रोगमें भी महारास्नादि क्वाथके साथ योगराज गूगल देवे तो आमवात, कमर, पीठ, जानु और जंघाओंका रहजाना नष्ट होय. इस आमवातमें भी वातनाशनरस देना चाहिये ।

आमवातमें अपथ्य ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकी माषपिष्टकम्॥ वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपजं च यत् ॥ २७ ॥ अभिष्यंदकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छलाः ॥ वर्जनीयाः प्रयत्नेन ह्यामवातार्दितैर्नरैः ॥ २८ ॥

अर्थ–दही, मछली, गुड, दूध, पोईका साग, उडद, पिष्टपदार्थ (मैदाचून) और जलके समीप रहनेवाले जीवोंका मांस एवं अभिष्यंदी पदार्थ भारी लिबलिबा पदार्थ आमवात रोगीको यत्नपूर्वक वर्जित है ।

आमवातमें पथ्य ।

हितं यूषं च कौलत्थं कलायहरिमंथयोः। यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ २९ ॥ लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् ॥ पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेलकम् ॥ वास्तुकं शाकमारीषं शाकं पौनर्नवं हितम् ॥ ३० ॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यामामवातचिकित्सा नाम द्विचत्वारिंशस्तरंगः ॥४२॥

अर्थ–आमवात रोगीको कुलथीका यूष, मटर, चना, जौ, कोदों, पुराने शालि(चावल),

साँठी चांवल, लवाका मांस जो छाछमें डालके बनाया गया हो, परवल, गोखरू, वरना, करेला, बथुआ, मरसेका साग और पुनर्नवा (सांठीका) साग ये सब पदार्थ आमवात रोगीको पथ्य है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामाम-
वाताधिकारो नाम द्विचत्वारिं-
शस्तरंगः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशस्तरंगः।

शूल।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्॥ सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनो बली ॥ १ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–वातज, पित्तज, कफ, संनिपात, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज और आमजन्य इस प्रकार शूलरोग आठ प्रकारका है। इन आठोंमें वादीका शूल बलवान् है। यह वृदमें लिखा है।

भवेच्छिबीधान्यातिशयभजनाच्छूलम-निलप्रधानं तान्यष्टौ त्रिभिरथ समस्तैश्च युगलैः ॥ अजीर्णेऽन्ने त्वस्मिन्भवति जठरे कुक्षियुगले हृदि प्रौढाटोपो रुगति न मलानां विसरणम् ॥ २ ॥

अर्थ--सेमसे प्रकट (उडद, मूँग आदि) धानोंके अत्यंत सेवनसे, वादी जिनमें प्रधान ऐसा आठ प्रकारका शूल प्रकट होताहै जैसे पृथक् २ तीन, दो दो मिलनेसे तीन, समस्त दोषोंके कोपसे १ और एक अन्नके न पचनेसे अर्थात् आमसे इस प्रकार आठ प्रकारका शूल होता है। जिसके ये लक्षण हैं कि, पेट, दोनों कूख, हृदय इनमें अत्यन्त अफरा हो और दर्द हो, तथा दस्त होवे ये लक्षण जानने।

चिकित्सा।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः॥ क्षारचूर्णानि गुटिकाः शस्यंते शूलशांतये ॥ ३ ॥ आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ वातस्यानुजयेत्पित्तं पित्तस्यानुजयेत्कफम् ॥ ४ ॥ वातात्मकं हंत्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्त स्तु कुलत्थयूषः ॥ ससैंधवव्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाद्यः ॥ ५॥

अर्थ–शूलरोगीको वमन (रद्द) और लंघन करावे, बफारे दे, पाचक फलवर्त्ती जो पिछाडी कही है वह देवे, जवाखार आदि क्षार चूर्ण गोली ये शूलरोग शांतिके वास्ते वैद्यको करने चाहिये। इस शूलरोगमें शीघ्रता अर्थात् तत्काल मारण-कर्त्ता बादी है, इस वास्ते प्रथम शीघ्र इसीको जीते जब वात नष्ट होजाय तब पित्तको और पित्त जीतनेपर कफको जीतना चाहिये। कुलथीके यूषमें तेल डालके पीवे तो बादीका शूल तत्काल दूर हो, अथवा सेंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, लावपक्षीका मांसरस, हींग, कालानिमक और दाडिम आदिको मिलाके देवे तो वातका शूल दूर हो।

लघुवैश्वानराष्टक।

विश्वमेरंडजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ६ ॥ वामयेत्पित्तशूलार्तं पटोलेक्षुरसादिभिः॥ पश्चाद्विरेचयेत्सम्य-

क्पित्तहृद्भिर्विरेचनैः ॥ ७ ॥ गुडशालियवक्षारं सर्पिर्दुग्धं विरेचनम्॥ जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः॥८॥ धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायंतीगोस्तनांबुना ॥ पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिवारणम् ॥ ९ ॥ श्लेष्मशूलहरी पेया पंचकोलेन साधिता॥विदारी दाडिमरसः सव्योषलवणान्वितः ॥ १० ॥ क्षौद्रयुक्तो निहंत्याशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥ आमशूले प्रदातव्यं लघुवैश्वानराष्टकम् ॥११॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–सोंठ और अंडकी जडका क्वाथ करके उसमें हींग, संचरानिमक, डाल काढा बनाके पीवे तो शूलरोग तत्काल नष्ट होवे. पित्तशूलसे पीडित रोगीको परवल और इक्षुरसादिकोंकरके वमन करावे, फिर पित्तहारी विरेचनोंकरके अच्छी प्रकार विरेचन करावे । गुड, शालि (पुराने चावल) गाईका घी, गाईका दूध इन पदार्थोंसे विरेचन कराना उचित है । पित्तजन्य शूलरोगवालेको जांगल जीवोंके मांस औषधीरूप हैं । आंवलेके रस, अथवा विदारीकंदके रसको त्रायमाण, मुनक्का और जलके साथ शक्कर मिलाकर पिलावे तो तत्काल पित्तशूल दूर होवे । पञ्चकोल (पिप्पलीमूल, पिप्पली, चव्य, चीता, सोंठ) से बनाई हुई पेयाके पीनेसे कफशूल दूर होताहै, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानिमक इन करके सहित बिदारीकंद और अनारदानोंके रसको सहत मिलाकर पीनेसे त्रिदोषजनित शूल रोग दूर होता है और आमशूल रोगमें लघुवैश्वानराष्टक देना उचित है । यह वृन्दनामक ग्रन्थमें कहा है ॥

खंडपिप्पली ।

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा॥ पलषोडशकं खंडं शतावर्य्याः पलाष्टकम् ॥१२॥ पलषोडशकं चैव शिवायाः स्वरसस्य च ॥ क्षीरप्रस्थद्वये सार्द्धे लेहीभूतं तदुद्धरेत् ॥ १३ ॥ त्रिजातमुस्तधान्याकं शुंठी मांसी द्विजीरकम्॥अभयामलकं चैव चूर्णं द्वादशकार्षिकम् । ॥१४॥ तदर्द्धं मरिचं भागं सारं खदिरमेव च॥ मधुत्रिफलसंयुक्तं खादेत्सिद्धं यथाबलम् ॥ १५ ॥ शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लरोगनुत् ॥ अग्निसंदीपनी हृद्या खंडपिप्पलिका मता ॥ १६॥

अर्थ–एक कुडव पीपलीका चूर्ण, छः पल गाईका घी, सोलह पल खांड, आठ पल शतावरी और हरडका स्वरस सोलह पल इन सब चीजोंको ढाई प्रस्थ दूधमें डालकर तपावे, जब अवलेहके समान गाढा होजावे तब उसे आँचसे उतारकर उसमें दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्ता, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, जटामांसी, काला जीरा, सफेद जीरा, हरड, आंवले इन सबका चूर्ण १२ कर्ष, उसका आधा भाग मिर्चका चूर्ण खैरसार, सहत, त्रिफला, इन सब पदार्थोंको छोडकर जो बलके अनुसार खावे तो शूल, अरोचक, हृल्लास, (उबकाई आना), छर्दि (वमन), अम्लपित्त ये रोग दूर होवें और यह खंडपिप्पली अग्नि प्रदीप्त करनेवाली है ।

त्रिपुरभैरवरस ।

भागो रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टिं विधाय च ॥ तया द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि

लेपयेत् ॥ १७ ॥ ऊर्ध्वाधो गंधकं दत्त्वा पलमात्रं समंततः ॥ क्षारस्य मृगशृंगस्य चूर्णं योज्यं समंततः ॥१८॥ सिंचेन्मत्स्याक्षिनीरेण पक्त्वा यामचतुष्टयम्॥ पिबेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः॥१९॥ माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे ॥ अन्येष्वैरंडतैलेन हिंगुत्रययुतो हितः ॥ २० ॥

अर्थ-१ भाग पारा और १ भाग सोना लेकर पिष्टि (पीठी) बनाकर इसकरके १२ भाग तांबेके पत्रोंपर लेप करे, नीचे ऊपर चारों ओर १ पल गंधक लगाकर क्षार और मृगशृंगके चूर्णको चारों तरफ बुरका देवे और मत्स्याक्षी नामक औषधिके रससे चार पहर पकावे तो त्रिपुरभैरव नामक रस तैयार होजाता है. इसका पान करनेसे शूलरोग दूर होताहै. घी और सहतके साथ इसकी एक मासेकी मात्रा परिणामजशूल रोगमें देनी उचित है, और अन्य शूलोंमें एरण्डतैल और हिंगुत्रयसहित हितकर है ।

शार्दूलगुटिका ।

हिंगूग्राजंब्वरिश्रीपटुजरणजगत्कृष्णकृष्णाभयार्याविह्निश्रीदीप्यचूर्णं प्रथमत उपरिष्टाल्लवेनाविवृद्धम्॥ सेव्यं तप्तांभसैतद्विगुणगुडयुतं हंतिवातार्शसी हृत्पीडां शूलप्रमेहारुचिगरगलरुक्कुष्ठगुल्मांश्च कासम् ॥ २१ ॥ सेयं शार्दूलगुटिका धन्वंतरिकृता हरेत् ॥ रक्षःपिशाचाहिभयक्लैब्यश्वासामपांडुताः ॥ २२ ॥

अर्थ-हींग, कूठ, जामुनकी छाल, तिक्ता खदिर (कडुआ खैर), बेल, पटु, पांशुलवण, सफेद जीरा, काला जीरा, त्रिफला, चीता, बेल, अजमायन इन सब औषधियोंके क्रमशः एक २ लव बढाये हुए चूर्णको इन सबके दूने गुड और गरम जलके साथ सेवन करे तो बादीकी बवासीर हृदयव्यथा, शूल, प्रमेह, अरुचि, विषविकार, गलरोग, कुष्ठ, गुल्म, खांसी, राक्षसभय, पिशाचभय, सर्पभय, नपुंसकता, श्वासरोग, आमरोग, पांडुरोग इन सबको धन्वन्तरिकी बनायी हुई शार्दूलगुटिका दूर कर देतीहै ।

शिवावचाहिंगुविषाकलिंगं रुचकं समम् ॥ कर्षमुष्णांबुना पेयमनुपानं हि शूलिभिः२२

अर्थ-हरड, वच, हींग, अतीस, इन्द्रजौ, सौंचरनमक इन सबको बराबर लेकर प्रतिदिन एक कर्षके प्रमाणसे गरम जलके साथ शूलरोगवाले मनुष्योंको पीना चाहिये ।

शूलगजकेसरी रस ।

क्षारं कपर्दाद्विषसैंधवौ च व्योषं च संमर्द्य भुजंगवल्ल्याः ॥ रसेन गुंजाप्रमितः प्रदिष्टः समीरशूलेभहरिः प्रचंडः ॥२४॥

अर्थ-जवाखार, कौडी, विष, सेंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल इन सबको समान भाग ले पीसकर १ रत्ती पानके रसके साथ लेनेसे शूलरोगको ऐसे नष्ट करता है कि जैसे सिंह हाथीको। यह रस बहुत प्रचण्ड है ।

अथ रत्नप्रदीपग्रंथसे उद्धृत अग्निमुखरस ।

रसबलिगगनार्कं वेतसाम्लं विषं स्यात्सममिति पृथगेतद्भावयेद्धस्रमेतैः ॥ कनकभुजगवल्लीकंटकारीजयाद्भिः सकमलतिलवासामुष्टिराष्ट्रचंबुपूरैः ॥ २५॥ अरुणसदृशशाकैर्मातुलान्या यथाज्यः

पटुगणरसवल्ल्या भावयेदार्द्रकाद्भिः ॥ दहनवदनसंज्ञो वल्लमात्रो निहंति प्रबलपवनशूलं तद्विकारानशेषान् ॥ २६ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, अभ्रक, तांबा, अमलबेत, वच्छनाग बिष ये सब चीजें बराबर लेकर धतूर, पान, छोटी कटेली, जया (नीलदूर्वा), अरणी, कमल, तिल, अरूस, कुचला, बडीकटेली, सुगन्धवाला, अगर, लाल साग, अदरख, कुचला इन औषधियोंके रसकी एक २ भावना एक २ दिन घोटै तो अग्निमुख नामक रस होजाता है. १ पल मात्र प्रमाणसे इसका सेवन करनेसे वातशूल रोग और समस्त वातरोग दूर होते हैं ।

सूर्यप्रभा वटी ।

व्योषग्रंथिवचाग्निहिंगुजरणद्वंद्वंविषं निंबुकद्रावैरार्द्रकजै रसैर्विमृदितं तुल्यं मरीचोपमा॥ कर्त्तव्या गुटिकाथ सा दिनमुखे भुक्ता कवोष्णांबुना शूलं त्वष्टविधं निहंति सहसा सूर्यप्रभानामतः ॥२७॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, भद्रमुस्त, बच, चीत, हींग, दोनों जीरे, बच्छनाग इन सबको निंबू और अदरखके रसमें मर्दन करके मिर्चकी बराबर गोली बना लेवे, इस गोलीको प्रातःकाल कुछ गरम अर्थात् गुनगुने जलके साथ खावे तो आठों प्रकारका शूलरोग तत्काल दूर हो । इस गुटिकाका सूर्यप्रभा नाम है ।

पथ्य ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च॥ वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २८ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां शूलचिकित्सानाम त्रयश्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४३ ॥

अर्थ—कसरत, मैथुन, मधु, लवण, कटु ये पदार्थ, मूत्रादि वेगोंका रोकना, शोक, क्रोध, इन बातोंका सेवन शूलरोगी मनुष्य कभी न करे । इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां शूलचिकित्सा नाम त्रयश्चत्वारिंशस्तरंगः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशस्तरंगः ।

परिणामशूल ।

अन्ने जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥ साऽध्मानाऽऽटोपविण्मूत्रबंधमष्टविधं तथा ॥ १ ॥

इति अलंकारात् ॥

अर्थ—भोजन करे अन्नके पचनेपर जो शूल प्रगट होय उसको परिणामशूल कहते हैं. यह भी आठ प्रकारका है, इसके लक्षण ये हैं कि पेटमें अफरा गुडगुडाहट हो तथा मलमूत्रके वेगोंका नहीं होना ।

परिणामशूलका यत्न ।

लंघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम् ॥ बस्तिकर्मापरं चात्र पक्तिशूले प्रशस्यते ॥ २ ॥

अर्थ—परिणामशूलवालेको वैद्य प्रथम लंघन करावे फिर वमन कराके जुल्लाब देवे. इसके पश्चात् बस्तिकर्म (गुदामें पिचकारी मारना) करे. यह परिणामशूलपर साधारण चिकित्सा कही है ।

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ॥ उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहान्नाशमायाति ॥ ३ ॥

अर्थ—सोंठ, तिल काले और गुड इनका कल्क बनायके दूधके साथ जो प्राणी पीता है

उसका ७ दिनमें कैसाही उग्र परिणामशूल हो नष्ट होजाता है ।

तीसरा यत्न ।

शंबूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ॥ पक्तिजं विनिहंत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ४ ॥

अर्थ–छोटे २ शंख जो नदीकी रेतमें होते हैं उनकी भस्म करके गरम जलके साथ पीवे तो तत्क्षण परिणामशूलको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे विष्णु असुरोंको ।

क्षीरमंडूर ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्राढ्ढांढके पचेत् ॥ क्षीरप्रस्थे च तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं परम् ॥ ५ ॥

अर्थ–लोहकी ८ पल कीटीको २ सेर गौके मूत्रमें औटावे फिर उसमेंसे निकाल शुद्ध करके १ सेर गौके दूधमें पक्क कर उस दूधको पीवे तो यह परिणामशूलको नष्ट करे । यह सब यत्न वैद्यालंकारग्रंथमें लिखे हैं ।

योगांतर ।

कृष्णाभयालोहचूर्णं लिह्यात्समधुशर्करम् ॥ परिणामभवं शूलं सद्यो हंति न संशयः ॥ ६ ॥

अर्थ–पीपल, छोटी हरडकी छाल और लोहभस्म इनको समान भाग ले सहत मिश्री मिलाके सेवन करे तो परिणामशूल तत्काल नष्ट होय ।

तारामंडूर ।

विडंगं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ॥ नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥ ७ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्राद्द्विगुणको गुडः ॥ शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिंडतां गतम् ॥ ८ ॥ स्निग्धभांडे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ॥ प्राङ्मध्यांते क्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ९ ॥ योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ॥ कामलां पांडुरोगं च शोफं मेदोनिलार्शसी ॥ शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया प्रकटीकृतः ॥ १० ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–वायविडंग, चित्रक, चव्य, त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल ये नौ औषध नौ भाग ले और इनकी बराबर लोहकीटी लेवे फिर इसको दूने गोमूत्रमें डालके और गोमूत्रसे दूना गुड मिलाय मंद २ अग्निसे पकावे जब गोलासा बँधने लगे तब जाने यह सिद्ध हो गया. इसको निकालके चिकने बासनमें भरके धर देवे. इसको ६ मासेके अनुमान सेवन करे परंतु इसको भोजनके प्रथम और मध्य तथा अंतमें तीन बार सेवन करना चाहिये, यह प्रयोग घोर परिणामशूलको नष्ट करता है, तथा कामला, पांडुरोग, सूजन, मेदरोग, बादी, बवासीर इनको दूर करे । यह शूलरोगियोंपर कृपा करनेके विचारसे ताराभगवतीने प्रगट करा है । यह वृंदग्रंथमें लिखा है ।

शूलदावानल रस ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं पलांशं मर्दयेद्दृढम् ॥ मरिचं पिप्पली शुंठी हिंगु चैव द्वयं द्वयम् ॥ ११ ॥ पलाष्टकं पटूनां च चिंचाक्षारं पलाष्टकम् ॥ सप्तवारं शंखभस्म जम्बीराम्लेन सेचयेत् ॥ १२ ॥ पलाष्टकं च संयोज्यं तत्सर्वं निंबुकः

द्रवैः ॥ दिनं मर्द्य कोलमात्रं भक्षये-त्सर्वशूलनुत् ॥ १३ ॥ अजीर्णोदरमं-दाग्निमसाध्यमपि नाशयेत् ॥ शूल-दावानलाख्योऽयं रसो जीर्णशिरो-ग्रहान् ॥ १४ ॥

इति संग्रहात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां परिणामशूलचि-कित्सा नाम चतुश्चत्वारिंशस्तरंगः॥४४॥

अर्थ–शुद्ध पारा, विष, गंधक प्रत्येक चार चार तोले ले खरल करे फिर मिरच, पीपल, सोंठ, हींग ये दो दो पल लेवे. लवण सब मिलायके आठ पल, इमलीका क्षार ८ पल तथा जंभीरीके रसमें ७ वार बुझाकर भस्म करै। शंख ८ पल ले सबको नींबूके रससे१ दिन खरल करे फिर६ मासेके अनुमान इसमेंसे सेवन करे तो यह शूलदावानल रस सर्वप्रकारके शूल अजीर्ण उदररोग मंदाग्नि इन असाध्य रोगोंको भी नष्ट करे, यह प्राचीन मस्तक रोगको भी नष्ट करे है। यह सारसंग्रह ग्रंथमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां परि-णामशूलचिकित्सा नाम चतुश्चत्वारिं-शस्तरंगः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशस्तरंगः ।

उदावर्त ।

वातविण्मूत्रजृंभाश्रुक्षवोद्गारवमींद्रियैः॥ क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसं-भवः ॥ १ ॥

अर्थ–अधोवायु, मल, मूत्र, जँभाई, आंसू, छींक, डकार, वमन, कामदेव, भूंख, प्यास, श्वास और निद्रा इनके रोकनेसे इस प्राणीके उदावर्त रोग प्रगट होता है।

उदावर्तका यत्न ।

हरीतकी यवक्षारपीलुनी त्रिवृता तथा ॥ साज्यं चूर्णं पिबेदेषामुदावर्तनिवर्तकम्२

अर्थ–हरडकी छाल, जवाखार, निसोथ इनके चूर्णमें घी मिलायके पीवे तो उदावर्त रोग नष्ट होय।

हिंगु कुष्ठं वचा स्वर्जि विडं चेति द्विरु-त्तरम् ॥ पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ ३ ॥

अर्थ–हींग, कूठ, बच, सर्ज्जी, विडनिमक प्रत्येक एकसे दूसरा दूनालेवे, इस चूर्णको मद्यके साथ या गरम जलके साथ पीवे तो उदावर्त्त दूर होय।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः॥ गुडक्षारसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते॥४॥

अर्थ–मैनफल, पीपल, कूठ, बच, सपेद सरसों, गुड, जवाखार इनको एकत्र कूटकर फलवर्त्ती बनावे। इसको गुदामें रखनेसे उदावर्त्त रोग दूर होता है।

नाराचचूर्ण ।

खंडपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचू-र्णितं श्लक्ष्णम् ॥ प्राग्भोजनस्य समधु बिडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ५ ॥ एत-द्गाढपुरीषे पित्ते च कफे च विनियो-ज्यम् ॥ स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नारा-चको नाम्ना ॥ ६ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–मिश्री ४ तोले, निसोथ ४ तोले, पीपल १ तोला सबका बारीक चूर्ण कर सहतमें

मिलाके सेवन करे तो यह अत्यंत गाढे मल, पित्त और कफके रोगोंको नष्ट करता है । यह स्वादिष्ठ चूर्ण राजाओंके योग्य है, इसको नाराच चूर्ण कहते हैं । यह वृंदग्रंथमें लिखाहै ।

मूत्ररोधपर ।

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥ पंचमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीबंधे प्रयुंजीत । भिषग्वरः ॥ ७ ॥

अर्थ-जिस प्राणीके मूत्रका उदावर्त होय अर्थात् मूत्र रुक रहा होय उसको मद्यमें सोरा मिलाके पिलाना चाहिये अथवा लघुपंचमूलका क्वाथ दूध मिलाके पीवे अथवा दाखका रस पीवे तो पेशाब उतरे । यह प्रयोग मूत्रकृच्छ्र और पथरीके रुकनेमें देना चाहिये ।

जृंभा रुकनेपर ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृंभाजं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-जिसके जँभाई रुकनेका उदावर्त्त होय उसके देहमें प्रथम स्नेहन (तैल लगाना, घृतपान आदि) फिर स्वेदन (बफारा) देना इनसे दूर करे ॥ ८ ॥

आंसू रोकनेपर ।

मरिचाद्यंजनैर्धूमैर्निर्निमेषावलोकनैः ॥ अस्रमोक्षोऽस्रजे कार्यः स्निग्धस्नेहनयत्नतः ॥ ९ ॥

अर्थ-काली मिरचआदिको घिसके अंजनादि करने, धूमपान, एकटकी लगाके एक वस्तुको बहुत देरतक देखते रहना और जिस प्रकार आंसू आवे वह सब यत्न आंसूके उदावर्त्तपर करे परंतु प्रथम स्निग्ध स्नेहादिक मालिस करके करने चाहिये ।

छींक रुकनेपर ।

क्षवजे सूत्रवर्त्या च घ्राणचर्या नयेत्क्षवम् ॥

अर्थ-छींक रुकने पर सूतकी वर्त्ती बनाके नाकमें डाले और उसको भीतर घुसेरे तथा बाहर निकाले तो छींक आवे ।

डकार रुकनेपर ।

उद्गारजे क्रमश्चात्र स्नैहिकं धूममाचरेत् १०

अर्थ-डकारके रुकनेपर स्नैहिक धूमपान, करावे तो डकार आवे ।

वमन रुकनेपर ।

छर्दिघाते यथादोषं नालं स्नेहादिभिर्जयेत् ॥

अर्थ-वमनके रुकनेपर यथा दोषानुसार स्नेहादिक पान कराके फिर नरम अंडके पत्तेकी नाल कंठमें डालके वमन करावे ।

शुक्रोदावर्त्त ।

शुक्रोदावर्तिनं वैद्यो रमयेत्सह कांतया ११

अर्थ-जिसके वीर्यके रुकनेसे उदावर्त्त रोग हुआ होय उसको सुंदर स्त्रीके संग रमण करावे तो उदावर्त्त दूर होय ।

क्षुधा रुकनेपर ।

क्षुद्विघाते हि सस्निग्धं वृष्यमल्पं च भोजनम् ॥

अर्थ-जिसके भूँख रोकनेसे उदावर्त्त हुआ होय उसको घृतसे तरबतर वीर्यवर्द्धक और अल्प भोजन कराना चाहिये ।

तृषा रुकनेपर ।

तृष्णाघाते पिबेन्मद्यं यवागूं स्वादुशीतलाम् ॥ १२ ॥

अर्थ-प्यासके रुकनेसे जो उदावर्त्त हुआ

उसमें मद्य पीवे तथा स्वादु और शीतल यवागूको पीवे ।

श्रमका श्वास रोकनेपर ।

रसेनाद्यात्तु विश्रान्तः श्रमश्वासार्दितो नरः ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस प्राणीके श्रम (परिश्रम) का श्वास रोकनेसे उदावर्त्त हुआ हो वह मांसरसके साथ भात आदि हलके पदार्थोंका सेवन करे और विश्राम ले अर्थात् सुस्ताय ।

निद्रा रोकनेपर ।

निद्राघाते पिबेत्क्षीरं माहिषं रजनीमुखे ॥ तिलतैलेन संमृज्य पत्तले शयनं चरेत् १४

अर्थ–निद्रा रोकनेके उदावर्त्तमें सायंकालमें भैंसके दूधको मिश्री मिलाय गरम २ पीवे, फिर तिलका तैल देहमें मालिश कराके केले आदिके बहुत नरम पत्तोंपर सोवे तो नींद आनेसे उदावर्त्त दूर होय ।

राढधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता ॥ गुदेंगुष्ठसमावर्त्तिर्विबंधनाहमूलनुत् १५ ॥

अर्थ–मैनफल, धमासा, विडनिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, गुड इन सबको समान भाग ले गोमूत्रमें पचावे फिर अँगूठेके परिमाण मोटी बत्ती बनाके गुदामें रक्खे तो मलकी रुकावट अफरा और शूल इनको दूर करे ।

उदावर्त्तके उपद्रव ।

आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लास उद्गारविघातनं च ॥ स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतो वमिश्च । श्वासश्च पक्वाशयजे भवंति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥ १६ ॥

अर्थ–आमाशयमें शूल चले देहका भारी रहना, सूखी रद्द, डकारोंका न आना, कमर और पीठ रहजावे, तथा मलमूत्र उतरते समय शूल होय, मूर्च्छा आवे तथा वह प्राणी मलमिश्रित रद्द करता है, श्वासका रोग हो तथा पूर्वोक्त अलसरोगमें जो लक्षण लिख आये हैं वे सब उदावर्त्ती रोगीके पक्वाशयमें होते हैं ।

असाध्यलक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ॥ शकृद्वमिनं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १७ ॥

अत्र क्रव्यादो रसो देयः ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामुदावर्तचिकित्सा नाम पंचचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४५ ॥

अर्थ–जिसको अत्यन्त प्यास हो, जो अत्यन्त खेदयुक्त हो क्षीण हो गया हो और शूलकरके उपद्रवयुक्त हो, तथा जिसके वमन करनेमें मल निकले उस उदावर्तरोगीको वैद्य त्याग देवे ।

इस उदावर्त्त रोगमें क्रव्यादरस जो अजीर्णरोगमें लिख आये हैं सो देनेसे उदावर्त दूर होता है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामुदावर्त्तचिकित्सावर्णनं नाम पंचचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशस्तरंगः ।

गुल्मरोग ।

हृद्वस्त्योरंतरे ग्रंथिर्जायते यश्चलाचलः ॥ नाभेरधस्तात्संजातः संचारी

यदि वाऽचलः ॥ स गुल्मः पंचधा दोषैः सर्वैश्चासृग्भवोऽपि सः ॥ १ ॥

अर्थ-हृदय और बस्ति इन दोनों स्थानोंके बीचमें चलायमान या निश्चल गाँठ प्रगट होय, किसीका मत है कि नाभीके नीचे चल वा अचल जो गाँठ प्रगट होती है, उसको गुल्म अर्थात् गोलेका रोग कहते हैं । वातादि दोषभेदसे पांच प्रकारका है, जैसे वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रुधिरसे होता है, यह पांच भेद जानने ।

गुल्मरोगकी चिकित्सा ।

लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ॥ बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ २ ॥

अर्थ-लंघन करना, अग्नि दीपनकर्त्ता औषध खाना, चिकना पदार्थ गरम पदार्थ तथा और जो वातके अनुलोम गति करनेवाले पदार्थ हैं एवं बृंहणपदार्थ जो अन्न है सब गुल्मरोगवालोंको परम हितकारी हैं ।

वातगुल्मरोगकी चिकित्सा ।

सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोपि वा ॥ पीतस्तैलेन शमयेद्गुल्मं पवनसंभवम् ॥ ३ ॥

अर्थ-सज्जी, कूठ इनके साथ अथवा तेलके साथ केतकीके क्षारको पीवे तो बादीका गोला दूर हो ।

गुल्मरोगपर पान ।

सुखोष्णजांगलरसः सुस्निग्धो व्यक्तसैंधवः ॥ कटुत्रिकसमायुक्तो हितः पानेषु गुल्मिनः ॥ ४ ॥

अर्थ-जंगली जीवोंके मांसरस (सारुआ) को किंचित् गरम कर घृतसे चिकना करके और थोडासा सेंधानिमक डालके तथा सोंठ, मिरच, पीपल डालके पीना गुल्मरोगवालोंको परम हितकारी है ।

पित्तगुल्मपर ।

काकोल्यादिसुसिद्धेन सर्पिषा पित्तगुल्मकम् ॥ जयेच्च शीतलैरेवोपचारैः पित्तनाशनैः ॥ ५ ॥

अर्थ-काकोलयादिकके काढेमें घी डालके पीवे तो पित्तगुल्म दूर होय, तथा इस पित्तके गुल्मरोगमें सर्व शीतल पित्तनाशक उपचार करनेसे शांति होती है ।

मिश्रग स्नेह ।

त्रिफला त्रिवृता दंती दशमूलं पलोन्मितम् ॥ जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागस्थिते रसे ॥ ६ ॥ सर्पिरैरंडजं तैलं क्षीरं चैकत्र साधयेत्॥ संसिद्धो मिश्रकः स्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ ६ ॥ कफवातविकारेषु कुष्ठप्लीहोदरेषु च ॥ प्रयोज्यो मिश्रकस्नेहो योनिशूलेषु चाधिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आँवला, निसोथ, दंती, दशमूलकी दश औषध प्रत्येक चार २ तोले लेवे. चौगुने जलमें डालके क्वाथ करे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब इसमें घी, अंडीका तेल और दूध एकत्र करके औटावे जब घृतमात्र रह जाय तब उतारके छान लेवे. इसमें सहत मिलायके पीवे तो यह कफगुल्मरोगको दूर करे तथा कफ वादीके विकार,कोढ, प्लीह, उदर इन सब रोगोंपर तथा योनिशूलपर अत्यन्त गुण करनेवाला है ।

सर्वगुल्मोंपर चूर्ण ।

क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपंचकम् ॥ चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

अर्थ–सज्जीखार, जवाखार, चित्रक, सोंठ, मिरच, पीपल, नील, पांचों निमक इन सबका चूर्ण कर घृतके साथ पीवे तो सर्व प्रकारके गुल्मरोगोंको नष्ट करे ।

रक्तगुल्मपर ।

तिलक्वाथो गुडव्योषहिंगुभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥ पीतो रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ १० ॥

अर्थ–गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग और भारंगी इनको तिलके क्वाथमें डालके पीवे तो रक्तगुल्म नष्ट हो तथा जो स्त्री रजोधर्मवाली न होती हो उसके रजोदर्शन होय ।

सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मनुत् ॥ पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ ११ ॥

अर्थ–सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार इनको मद्यमें डालके पीवे तो रक्तगुल्म दूर होय । अथवा पलाशके क्षारजलसे सिद्ध करा घृत पीवे तो रक्तगुल्म दूर होय ।

नादेयी क्षार ।

नादेयीकुटजाऽर्कशिग्रुबृहतीस्नुग्बिल्वभल्लातकव्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटाऽपामार्गनीपाऽग्निकान् ॥ वासामुष्ककपाटलान्सलवणान्दग्ध्वा रसं पाचितं हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुदितं गुल्मोदराष्ठीलिषु ॥ १२ ॥

इति नादेयीरसः ॥

अर्थ–अरनी, कुडाकी छाल, आककी जड, सहजनेकी छाल, भटकटैया, थूहर, बेलगिरी, भिलावे, छोटी कटेरी, ढाक, नीमकी छाल, जटामांसी, ओंगा (चिरचिटा), कदंबकी छाल, चित्रककी छाल, अडूसेके पत्ते, मोखा वृक्षकी छाल, पाढल इनमें नीमका चूर्ण बुरकके संपुटमें रख फूंक देवे, फिर इसमें हिंग्वादिगणोक्त औषधोंको मिलाके सेवन करनेसे गुल्म, उदररोग और अष्ठीला आदि रोग दूर होते हैं ।

वज्रक्षार ।

क्षीरं वज्रतरूद्भवं दशपलं तावत्पयोऽर्कजं प्रत्येकं पलपंचकं च लवणं क्षारं च पश्चात्मकम्॥विंशत्यार्कदलैर्युतं पवितरोर्भिन्नैश्चतुर्भिः पलैर्मृद्भांडे गुरुमार्गतो गजपुटे वह्नौ विपक्वीकृतम् ॥१३॥ संचूर्ण्याथ कटुत्रयं त्रिफलमप्येकं पलं रामठं सर्वं वस्त्रपुनीतमेतदमले पात्रे सुखं स्थापयेत् ॥ वज्रक्षारमिदं निहंति सकलान्गुल्मानुदग्रान्नृणां पीतं तक्रयुतं प्रभातसमये कर्षप्रमाणं क्रमात् ॥ १४ ॥ मंदाग्निं सविषूचिकामरुचितामापांडुतां क्षीणतां श्वासं कासमजीर्णशैत्यपवनव्याधीन्बलासोद्भवान् ॥ वज्रक्षारमिदं निवार्य भिषजां कीर्तिं विधत्तेतरां मांसं द्रावयति स्फुटं घटिकयोर्द्वंद्वे किमन्नं पुनः ॥ १५ ॥

अर्थ–थूहरका दूध ४० तोले, आकका दूध ४० तोले, पांच निमक प्रत्येक २० तोले, सज्जीखार और जवाखार बीस २ तोले, आकके पत्ते ८० तोले और थूहरके पत्ते १६ तोले, सबको एकत्र कर मिट्टीके पात्रमें रखकर गजपुटकी आंच देवे, भस्म हो जानेपर खरलमें डाले

और इससें त्रिकुटा, त्रिफला और हींग ये सब चार २ तोले मिलावे, सबका बारीक चूर्ण कर कपडछान कर लेवे और उत्तम शीशी आदि पात्रमें भरके रखदेवे, यह वज्रक्षार सर्व प्रकार घोर गुल्म रोगोंको नष्ट करे है, इसको १ तोला ले छाछमें मिलाके प्रातःकाल पीवे तो मंदाग्नि, विषूचिका, अरुचि, पांडुरोग, क्षीणता, श्वास, खांसी, अजीर्ण, शीत, बादी और कफसे होनेवाले रोगोंका निवारण करके वैद्यकी अतुल कीर्ति करनेवाला है. यह दो घडीमेंही मांसको गलाय देता है फिर अन्नको पचाय देना तो कौन बडी बात है. इसको गुरुके बतानेके अनुसार बनाओगे तो धोखा नहीं पडेगा ।

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिंगुग्रंथिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशठीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुजं क्षारद्वयं दाडिमम् ॥ पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषाऽजाज्यस्तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसे स्याद्बीजपूरस्य च ॥ १६ ॥ आध्मानग्रहणीविकारगुदजान्गुल्मानुदावर्तिकान्प्रत्याध्मानगुदोदराश्मरियुतांस्तूणीद्वयारोचकान् ॥ ऊरुस्तंभमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकिकामथापहरते प्राक्पीतमुष्णांबुना ॥ १७ ॥ हृत्कुक्षिवंक्षणकटीजठरांतरेषु बस्तिस्तनांत्यफलकेषु च पार्श्वयोश्च ॥ शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वादि मांद्यमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥ १८ ॥

अर्थ-हींग, पीपरामूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य, चित्रक, पाठा, कचूर, वृक्षाम्ल, तीनों निमक, त्रिकुटा, सज्जीखार, जवाखार, अनारदाना, हरडकी छाल, पुहकरमूल, अमलवेत, हाऊवेर, जीरा ये समानभाग ले चूर्ण करे इसमें अदरखके रसकी और बीजौरेके रसकी भावना देवे ।

गुण-यह अफरा, संग्रहणी, गुदाके विकार, गुल्म, उदावर्त्त, प्रत्याध्मान, गुदोदर, पथरी, तूणी, प्रतूणी, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, अत्यंत मनका भ्रम, बहरापना, अष्ठीलिका, प्रत्यष्ठीला इन सबको प्रातःकाल गरम जलके साथ पीनेसे दूर करे है । हृदय, कूख, पेडू, कमर, उदर, बस्ती, स्तनका, अंड कोशका, दोनों पसलीमें होनेवाला शूल और वायगोलेका शूल नष्ट होय । यह हिंग्वादि चूर्ण मंदाग्निको नष्ट करनेवाला आश्विनीकुमारसंहितामें लिखा है ।

गुल्मरोगमें अपथ्य ।

वल्लरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि द्वैदलम् ॥ न खादेद्वास्तुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ १९ ॥

अर्थ-सूखा मांस, मूली, मछली, सूखे साग, उडद, अरहर आदिकी दाल, बथुआ और मिष्ट पदार्थ इन वस्तुओंको गोलेवाला रोगी कदापि सेवन न करे ।

प्रयोगांतर ।

विश्वहिंगुविडैः सार्द्धं क्रव्यादो भक्षितो रसः ॥ गुल्मानशेषान्प्लीहांश्च विद्रधीनपि नाशयेत् ॥ २० ॥ शंखद्रावो जयत्याशु पथ्यासैंधवसंयुतः ॥ दुःसाध्यानपि गुल्मांश्च पृथुलोपद्रवोत्कटान् ॥ २१ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां गुल्मचिकित्सा नाम षट्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४६ ॥

अर्थ-सोंठ, हींग, विडनिमक इनके चूर्णमें क्रव्यादरस (जो प्रथम अजीर्णरोगमें कह आये हैं) भक्षण करे तो संपूर्ण गुल्म, प्लीहा और विद्रधिको नष्ट करे है, अथवा हरडकी छाल और सेंधानिमक इनके चूर्णको डालके शंखद्राव पीवे तो दुःसाध्य, बडे भारी उपद्रवयुक्त घोर गुल्म रोगोंको नष्ट करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां गुल्मचिकित्साकथनं नाम षट्चत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशस्तरंगः ।

हृदयरोग ।

शोषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ॥ हृदि बाधां प्रकुर्वंति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ १ ॥

अर्थ-कुपित वातादि दोष हृदयमें प्राप्त हो, उस जगह स्थित रसको सुखाके हृदयमें पीडा करते हैं उस रोगको हृद्रोग कहते हैं ।

हृद्रोगका यत्न ।

घृतेन दुग्धेन गुडांभसा वा पिबंति चूर्णं ककुभत्वचो ये ॥ हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ २ ॥

अर्थ-घीके, दूधके, अथवा गुडके जलके साथ जो प्राणी कोहवृक्षकी छालके चूर्णको पीते हैं उनका हृदयरोग, जीर्णज्वर, रक्तपित्त दूर होकर वे दीर्घ जीवनवाले होते हैं ।

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥ पिबेच्च सौवर्चलपौष्कराढ्यं यवांभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ ३ ॥

अर्थ-हींग, वच, विडनिमक, सोंठ, पीपल, कूठ, हरडकी छाल, चित्रककी छाल और जवाखार इनमें संचरनिमक और पुहकरमूलको मिलाय चूर्ण करे । इसे रात्रिमें जो भिगोये हुए जलके साथ पीवे तो शूल और हृदयके रोगोंको नष्ट करे ।

कृमिजन्य हृदयरोगपर ।

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडंगामयसंयुतम् ॥ हृदि स्थिताः पतंत्येव मध्यस्थाः कृमयो नृणाम् ॥ ४ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ-यदि हृदयमें कीडोंके पडनेसे हृदय दुखता होय तो वायविडंग और कूठके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीवे तो सब हृदयकी कृमि गिर जावें । यह वृंदग्रंथमें लिखा है ।

बाह्लीकादि योग ।

बाह्लीकविश्वदहनामययावशूकपथ्यावचाविडकणारुचकैर्निहन्यात् ॥ सूतः सपुष्करजटो यववारिपीतो हृद्रोगमग्निविकलत्वमतिप्रवृद्धम् ॥ ५ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां हृद्रोगचिकित्सा नाम सप्तचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४७ ॥

अर्थ-हींग, सोंठ, चित्रक, कूठ, जवाखार, हरड, वच, वायविडंग, पीपल, सेंधानिमक, शुद्ध पारा (या रससिंदूर) और पुहकरमूल इनको जौकी काँजीके साथ पीवे तो हृदयरोग, मंदाग्नि ये दूर होंय । यह रसरत्नप्रदीप ग्रंथमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां हृदयरोगचिकित्सावर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशस्तरंगः ।

मूत्रकृच्छ्र ।

पृथक्समस्तैस्तैः शुक्रविड्रोधादभिघाततः ॥ अश्मर्याश्चाष्टधेति स्यान्मूत्रकृच्छ्रो रुजाकरः ॥ मूत्रकृच्छ्रः स यः कृच्छ्रान्मूत्रयेद्बस्तिरोधकृत् ॥ १ ॥

अर्थ-तहां प्रथम मूत्रकृच्छ्रका निदान कहते हैं । बातसे, पित्तसे, कफसे, संनिपातसे, शुक्रके रोकनेसे, मलमूत्रादिके वेगके रोकनेसे, चोटके लगनेसे और पथरीके होनेसे, इस प्रकार मूत्रकृच्छ्ररोग आठ प्रकारका है, यह मूत्रकृच्छ्र अत्यंत पीडाकर्त्ता रोग है, तहां जो मूतते समय बडी कठिनतासे मूते और बस्ती (मूत्रकी थैली) का संकोच होय उसको मूत्रकृच्छ्ररोग जानना ।

मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यंजनस्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ॥ स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥२॥

अर्थ-मालिस करना, स्नेहपान, निरूहणबस्ति, स्वेदन, बफारा, उत्तरवस्ति, तरडा देना, तथा वातहरणकर्त्ता शालपर्णी आदिके क्काथसे सिद्ध करे रस घृत आदि वातके मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करते हैं ।

अमृता नागरं धात्री वाजिगंधा त्रिकंटकम् ॥ प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ ३ ॥

अर्थ- गिलोय, सोंठ, आँवला, असगंध और गोखरू इनका क्काथ करके वातरोगी, शूलरोगी और मूत्रकृच्छ्रवाला रोगी पीवे ।

पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहाः श्रेष्ठो विधिर्बस्तिपयोविकाराः ॥ द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतं च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ-शीतल जलकी लिंगकी मणिपर धार डालना, शीतल जलसे न्हाना, शीतल चंदन आदिके लेप, बस्तिकर्म, दूधके बने पदार्थ (ल्हस्सी आदि), दाख, विदारीकंद, ईखका रस और गौका घी इत्यादि पदार्थ पित्त (गरमी) के मूत्रकृच्छ्रमें देने चाहिये ।

तृणपंचक ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम ॥ पित्तकृच्छ्रहरं पंचमूलं बस्तिविशोधनम् ॥ एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हंति शोणितम्॥ ५ ॥

अर्थ-कुशा, कास, सरपता, डाभ और ईख इनकी जडको तृणपंचक कहते हैं । पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्रको हरण करे और बस्तीको शुद्ध करे है । यदि इस तृणपंचककरके सिद्ध करे दूधको पीवे तो लिंगमें जो रुधिर एकत्र होरहा है उसको दूर करे ।

कफकृच्छ्र ।

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ॥ कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्ट्वा त्रुटीं पिबेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-छोटी इलायचीका बारीक चूर्ण कर गोमूत्रके साथ, मद्यके साथ, अथवा केलेके स्वरसके साथ पीवे तो कफका मूत्रकृच्छ्र दूर होय ।

यवक्षारसमायुक्तं पिबेत्तक्रं प्रकामतः ॥ मूत्रकृच्छ्रविनाशाय तथैवाश्मरिनाशनम् ॥ ७ ॥

अर्थ–छाँछमें जवाखार डालके पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग नष्ट हो ।

चोटके मूत्रकृच्छ्रपर ।

तत्राभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥

अर्थ–जिस प्राणीके चोटके लगनेसे मूत्र उतरना बंद होगया होय उसकी सद्योव्रणपर जो चिकित्सा लिखी है सो करें ।

शुक्रजन्य मूत्रकृच्छ्रपर ।

लेह्यं शुक्रविबंधोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वीर्य रुकनेसे जिसके मूत्रकृच्छ्र हो गया होय वह सहतमें शिलाजीत मिलायके सेवन करे ।

सर्वजन्यपर ।

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तंदुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ॥ दद्याद्गुडेन सहितान्यवलोड्य धीमानासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥९॥

अर्थ–इलायचीके दाने, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल इनका समान भाग चूर्ण कर चावलोंके धोवनमें मिलाय और गुड डालके पीवे तो मूत्रकृच्छ्री आसन्नमृत्युवाला भी हो वह भी जी उठे ।

निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः ॥ १० ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–कटेरीका स्वरस सहत डालके पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर हो, अथवा मिश्रीके बराबर जवाखार मिलाके जलसे पीवे तो सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर हों । यह वृंदग्रंथमें लिखा है ।

महाचन्द्रकलारस ।

प्रत्येकं तोलमादाय सूतं ताम्रं तथाऽभ्रकम् ॥ द्विगुणं गंधकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥ ११ ॥ मुस्तादाडिमतोयेन केतकीपुष्पवारिणा ॥ सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटोशीरयोरपि॥१२॥ तालमूल्याश्च वर्याश्च भावयित्वा दिनंदिनम् ॥ तिक्तागुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमागधी ॥ १३ ॥ श्रीखंडं सारिवा चैषां समानं चूर्णकं क्षिपेत् ॥ द्राक्षापलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥ १४ ॥ छायाशुष्कं विधायाथ वटी कार्या चणोपमा॥ महाचन्द्रकला नाम्ना रसेंद्रोऽयं निरूपितः ॥ १५ ॥ अम्लपित्तप्रशमनः प्रदरध्वंसकारकः ॥ अंतर्बाह्यमहादाहविध्वंसनघनाघनः ॥ १६ ॥ ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ रक्तमूर्च्छारक्तपित्ततापज्वरवनानलः ॥ १७ ॥ मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि प्रमेहानपि दुस्तरान् ॥ हरत्येष रसो नूनं महाचंद्रकलाभिधः ॥ १८ ॥

इति सारसंग्रहात् ।

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नामाष्टचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४८॥

अर्थ–शुद्ध पारा, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक एक एक तोला लेवे, सबसे दूनी गंधक लेकर कजली करे, फिर नागरमोथा, अनारदाना, केतकीके फूलोंका जल, सहदेई, घीगुवार, पित्तपापडा, खस, मुसली और सतावर इन प्रत्येकके रसकी एक एक दिन भावना देवे

फिर कुटकी, गिलोयसत्त्व, पित्तपापडा, खस, पीपल, चंदन, सारिवा इनका समान भाग चूर्ण करके मिलाय देवे. फिर १ पल दाखके क्वाथसे सात भावना देवे. फिर छायामें सुखा चनेके बराबर गोली बना लेवे। यह महाचंद्रकलानामक रसेन्द्र अम्लपित्त, प्रदर, देहके भीतर बाहरके दाहको नष्ट करनेमें मेघके समान है। इसका ग्रीष्मऋतु और शरदृतुमें विशेष करके सेवन करना चाहिये। यह रुधिरकी मूर्च्छा, रक्तपित्त, पित्तज्वररूप वनके जलानेमें दावानल (अग्नि) के समान है तथा सब मूत्रकृच्छ्र और घोर प्रमेहीका हरण करे है, ऐसा उत्तम यह महाचंद्रकलाभिध रस है। यह सारसंग्रहमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा वर्णनं नामाष्टचत्वारिंशस्तरंगः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशस्तरंगः।

मूत्राघात।

मूत्रनाडीगतैर्दोषैरल्पमल्पं सवेदनम् ॥ यदा प्रवर्तते मूत्रं मूत्राघातः स उच्यते ॥ १ ॥

अर्थ–जब कुपित वातादि दोष मूत्रके बहनेवाली नाडियोंमें चले जाते हैं तब इस प्राणीके मूत्र थोडा २ पीडाके साथ उतरता है इस रोगको मूत्राघात ऐसा कहतेहैं।

भेद।

तद्भेदा वातकुंडलिकादयस्त्रयोदश ॥

अर्थ–इस मूत्राघातके वातकुंडलिका आदि १३ भेद हैं वे सब बृहद्भावप्रकाश आदिके देखनेसे आपको ज्ञात निश्चय हो जायँगे।

मूत्राघातकी चिकित्सा।

पटोलाद्यावशूकाच्च पारिभद्रानिलादपि ॥ क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषणसंयुताम् ॥ २ ॥

अर्थ–पटोलपत्र, जवाखार, नीमकी छाल इनका क्वाथ मूत्राघात (वातकुंडलिका) आदि रोगोंको दूर करे। अथवा जवाखारके जलकी मद्यमें मिलाके और उसमें दालचीनी, इलायची, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण डालके पीवे।

पिबेद्गुडोदकं सम्यग्लिह्यादेतान्पृथक्पृथक् ॥ त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं चापि यः पिबेत् ॥ ३ ॥ निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वातांतवत्स्नुतम् ॥ जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ ४ ॥

अर्थ–गुडके जलसे भी मूत्राघात जाय। अथवा पूर्वोक्त योगोंकाही पृथक् २ सेवन करे। अथवा त्रिफलेके कल्कमें निमक डालके पीवे अथवा कटेरीके स्वरसको सहत डालके पीवे। अथवा केशरके कल्कको रात्रिमें छानके किसी कोरे पात्रमें भरके ओसमें रखदेवे प्रातःकाल सहत मिलाके पीवे तो मूत्राघात रोग दूर होय।

अत्यंतस्त्रीप्रसंगजन्य मूत्राघातपर।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥ मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणीयो विधिर्हितः ॥ ५ ॥

अर्थ–जिस प्राणीके अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे लिंगके द्वारा रुधिर गिरने लगे तो वैद्य उसको स्त्रीसंगसे रोक देवे, फिर वीर्यके पुष्ट करनेवाली और बढानेवाली औषध देवे।

चित्रकादिघृत ।

चित्रकं सारिवा चैव बला कालापि सारिवा ॥ द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा च त्रिफला भवेत् ॥ ६ ॥ तथैव मधुकं दद्यात्पुष्टान्यामलकानि च ॥ घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ७ ॥ क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत्॥ शीतं परिश्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ॥ ८ ॥ तुगाक्षीर्या च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् ॥ ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ ९ ॥ वातरेताः पित्तरेताः श्लेष्मरेताश्च यो नरः ॥ रक्तरेता ग्रंथिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम्१०॥ सर्पिरेतत्प्रयुंजीत स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥ असृग्दोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च ॥ प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाद्यं सदा बुधैः ॥ ११ ॥

इति चरकात् ॥

अत्रापि चंद्रकलारसः प्रशस्यते ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मूत्राघातचिकित्सा नामैकोनपंचाशस्तरंगः ॥४९॥

अर्थ–चीतेकी छाल, सारिवा, खिरेंटी, काली सारिवा, दाख, इन्द्रायणकी जड, छोटी पीपल, हरड,बहेडा, आमला, मुलहटी और मोटे आमले इन सब औषधोंको एक २ तोला लेकर कल्क करके फिर इसमें ४ सेर घी डालके पचावे और १६ सेर दूध तथा १६ सेर जल मिलावे, जब सब जलकर घृत मात्रशेष रहे तब उतार लेवे, शीतल होनेपर इसमें १ सेर मिश्री मिलावे, तथा वंशलोचन ८ तोले मिलावे फिर रोगका बलाबल विचारके इसकी मात्राका सेवन करे, इसे वातवीर्यवाला, पित्तरेतवाला, कफरेतवाला, रक्तरेतवाला, गांठदार वीर्यवाला आरोग्य होनेकी इच्छासे पीवे, यादि इस घृतको स्त्री पीवे तो बहुत जल्दी गर्भवती हो और उसके रक्तके विकार, योनिके दोष, मूत्रके दोष इन सबमें इस चित्रकादिघृतको देवे। यह चरक ग्रंथमें लिखाहै । इस मूत्राघात रोगमें भी पूर्वोक्त चंद्रकलारस देना चाहिये ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मूत्राघातचिकित्सावर्णनं नामैकोनपञ्चाशस्तरंगः ॥ ४९ ॥

पंचाशस्तरंगः ।

अश्मरी (पथरी) ।

निरुध्य मूत्रमार्गं या यातनां जनयेद्भृशम् ॥ कटिबस्तिप्रदेशेषु साऽश्मरीति निगद्यते ॥१ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–जो मूत्रके मार्ग (लिंग) को रोककर कमर और बस्ति आदि स्थानोंमें घोर पीडाको उत्पन्न करे उस रोगको अश्मरी अर्थात् पथरी कहते हैं । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

अश्मरीकी संप्राप्ति ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ॥ यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥२॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ–जब कुपित वादी पित्तके साथ हो वीर्य मूत्र और कफका शोषण करलेती है अर्थात्

सुखादेती है, तब इस प्राणीके क्रमसे धीरे २ पथरी प्रगट होती है, जैसे गौके पित्तमें गोरोचन प्रगट होता है, इस प्रकार यह पथरी इस प्राणीके मूत्रस्थानमें प्रगट होती है। यह माधवनिदानमें लिखा है।

पथरीकी चिकित्सा ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुंठीगोक्षुरसंयुताम् ॥ यवक्षारगुडं दत्त्वा क्काथयित्वा तु तं पिबेत् ॥ अश्मरीं वातजां हंति चिरकालानुबंधिनीम् ॥ ३ ॥

अर्थ-बरनेकी छाल, सोंठ, गोखरू और जवाखार इनका क्काथ कर गुड डालके पीवे तो बहुत दिनकी वातजन्य पथरी दूर होवे।

वीरतर्वादिक्काथ ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुंद्रानलकुशकाशाश्मिमंथमोरटावसुकवसिरभल्लककुरंटकेंदीवरकपोतचक्राश्वदंष्ट्रा चेति॥ वीरतर्वादिरित्येष गणो मारुतनाशनः॥ अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमूत्राघातरुजापहाः ४ इति सुश्रुतात् ॥

अर्थ-वीरतरु (निर्जल देशका एक छोकरके समान वृक्ष), पीले और लाल रंगकी कटसरैया, डाभ, बांदा, गुंद्रा (तृणविशेष), नरसल, कुश, कांस अरनी, मोरट, वसुक वृक्ष, वासिर, भल्लूक, कुरंटक, नीलकमल, कपोतचक्रा और गोखरू । यह वीरतर्वादि गण कहाता है। गुण-यह वादीको नष्ट करे, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात इनकी पीडाको दूर करे है। यह सुश्रुत ग्रंथमें लिखा है।

पित्तपथरीकी चिकित्सा ।

वीरतर्वादिकं क्काथं तृणपंचसमन्वितम् ॥ भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरी क्षिप्रमेवतु५॥

अर्थ-ऊपर लिखे वीरतर्वादिके क्काथमें तृणपंचक मिलाय क्काथ करके देवे तो पित्तकी पथरी दूर होय।

प्रयोगांतर ।

वरुणत्वक्छिलाभेदशुंठीगोक्षुरकैः कृतः ॥ कषायः क्षीरसंयुक्तः शर्करां प्रभिनत्त्यरम् ॥ ६ ॥

अर्थ-बरनेकी छाल, पखानभेद, सोंठ, गोखरू इनके क्काथमें दूध और मिश्री डालके पीवे तो पित्तकी पथरी दूर होय।

तीसरा प्रयोग ।

क्षारो निपीतस्तिलनालजातः समाक्षिकः क्षीरयुतस्त्रिरात्रात् ॥ हंत्यश्मरीं सीधुविमिश्रितं वा निपीयमानं रुजकं प्रयत्नात् ॥ ७ ॥

अर्थ-तीन रात्रि तिलनालके बनेहुए क्षारको दूध और सहतके साथ पीवे तो पथरीका रोग अवश्य नष्ट होय। अथवा काले निमकको सिरकेमें डालके पीवे तो पथरी दूर होय।

पथरीका निकालना ।

गोपालकर्कटीमूलं पिष्टं पर्युषितांभसा॥ पीयमानं त्रिरात्रेण पातयेच्चाश्मरीं हठात् ॥ ८ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ-कचरियाकी जडको बासी जलमें पीसके तीन रात्रि बराबर पीवे तो पथरीको बलत्कारसे निकालके पटक देवे। यह राजमार्तंडग्रंथमें लिखाहै।

---

१ वीरतर्वादिका पाठ हमारे बनाये बृहन्निघंटुरत्नाकरके तीसरे भागमें सब औषधोंके साफ २ नामसहित लिखे हैं सो देख लेना।

पथरी मूत्रकृच्छ्र और शर्करापर ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौंतीश्वदंष्ट्रा-
वृषकोरुबूकैः ॥ शृतं पिबेदश्मजतु
प्रगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ९ ॥
इति योगशतात् ॥

अर्थ–छोटी इलायची, पीपल, मुहलटी, पखानभेद, रेणुक, गोखरू, अडूसा और अंडकी जड इनके क्वाथमें शिलाजीत डालके पीवे तो शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्को दूर करे । यह योगशतग्रंथमें लिखा है ।

दूसरा प्रयोग ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्व-
यवासकानाम् ॥ क्वाथं पिबेच्छर्करया-
वगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥१०॥

अर्थ–हरड, गोखरू, अमलतासका गूदा, पाषाणभेद, धमासा इनके क्वाथमें मिश्री मिलाके पीवे तो शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र दूर होय ।

त्रिविक्रम रस ।

निर्गुंडिकाभिर्बलिसूतताम्रं विमर्द्य गोलं
सिकताख्ययंत्रे ॥ पक्त्वास्य वल्लः
किल मातुलुंगीजलैर्निहंत्यश्मरिरो-
गमुग्रम् ॥ ११ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ।

अत्रापि चंद्रकलैव रसो योज्यः ॥
इति श्रीयोगतरंगिण्यामश्मरीचिकित्सा
नाम पंचाशस्तरंगः ॥ ५० ॥

अर्थ–पारा, गंधक और चंद्र, ताम्र भस्म इनको निर्गुंडीके रसमें खरल कर गोला बनालेवे, इसको संपुटमें बालुकायंत्रमें पचावे तो सिद्ध होजाय तब उतारके खरल कर शीशीमें भरके धरदे. इसमेंसे ३ रत्ती रसको बिजौरेके रसके साथ सेवन करे तो यह त्रिविक्रमरस घोर पथरी रोगको नष्ट करे । यह रसरत्नप्रदीप ग्रंथमें लिखा है । इस पथरीरोगमें भी चंद्रकला रस जो पूर्व कह आये हैं यह देना चाहिये ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामश्मरी-
चिकित्सा नाम पंचाशस्तरंगः ॥ ५० ॥

एकपंचाशस्तरंगः ॥

प्रमेह ।

दश षट् चापि चत्वारः कफपित्त-
समीरजाः॥साध्या याप्या असाध्यास्ते
प्रमेहाः क्रमशो नृणाम् ॥ १ ॥

अर्थ–कफके १० प्रमेह, पित्तके ६ प्रमेह और वादीके ४ प्रमेह हैं । उनमें कफके साध्य, पित्तके कृच्छ्रसाध्य और बादीके ४ प्रमेह असाध्य हैं ।

प्रमेहमें पथ्य ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढ-
की ॥ कुलत्थाश्च हिता भोज्ये मेहिनां
देहिनां सदा ॥ २ ॥

अर्थ–सामखिया, कोदों, उद्दालक (कोदोंका भेद), गेहूँ, चना, अरहर ये सब प्राचीन अन्न प्रमेहरोगीको नित्य सेवन करने चाहिये ।

प्रमेहमें अपथ्य ।

सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं गुडं
घृतम् ॥ अम्लेक्षुरसपिष्टान्नं मेहे ह्येता-
नि वर्ज्जयेत् ॥ ३ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–बेर, दारु, शुक्त (सिरका), तेल,

दूध, गुड, घी, खटाई, ईखका रस और सब मिष्ट पदार्थ प्रमेहरोगवालेको सेवन करना वर्जित हैं । यह वृंदग्रंथमें लिखा है ।

फलत्रिकादि क्वाथ ।

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्तां च निष्क्वाथ्य निशासु कल्कम् ॥ पिबेत्कषायं मधुसंयुतं च सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ ४ ॥

इति योगशतात् ॥

अर्थ–हरड, बहेडा, आँवला, दारुहलदी, इन्द्रायनका गूदा और नागरमोथा इनका काढा कर इसमें हलदीका कल्क और सहत डालके पीवे तो सर्वप्रकारके प्रमेह दूर हों । यह योगशतग्रंथमें लिखा है ।

न्यग्रोधादि क्वाथ ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम् ॥ आम्रं कपित्थं जंबू च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ५ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ॥ पटोलं मेषशृंगी च दंती चित्रकमानकम् । ॥ ६ ॥ करंजं त्रिफला शक्रं भल्लातकफलानि च ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ॥ फलत्रयं चानुपिबेत्तेन मूत्रं विशुध्यति ॥ ८ ॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥ प्रशमं यांति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ९ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–बड, गूलर, पीपल, टेंटू, अमलतास, त्रिजेसार, आम्र, कैथ, जामन, चिरोंजी, कोह, धौ इनकी छाल, महुआ, मुलहटी, लोध, बरनेकी छाल, नीमकी छाल, पटोलपत्र, मेढासिंगी, दंती, चित्रक, मानकंद, कंजा, हरड, बहेडा, आँवला, इन्द्रजौ और भिलावेंके फल ये समान भाग लेवे. सबका बारीक चूर्ण करे, यह न्यग्रोधादिचूर्ण है, इसे सहतके साथ चाटे, इसके ऊपर त्रिफलेका क्वाथ पीवे तो मूत्र शुद्ध होय, इससे २० प्रकारके प्रमेह और जितने मूत्रकृच्छ्र हैं ये सब दूर होयँ और उसके इसी चूर्णके प्रभावसे प्रमेहपिडिका नहीं हो । यह वृंदग्रंथमें लिखा है ।

शिलाजतुप्रयोग ।

शिलाजतु नरः पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् ॥ मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिसप्तदिवसैर्नरः ॥ १० ॥

अर्थ–शिलाजीतको दूध और मिश्रीके साथ प्रातःकाल पीवे तो २१ दिनमें सर्व प्रकारके प्रमेह दूर होयँ ।

प्रमेहपिटिकाओंकी चिकित्सा ।

शराविकाद्याः पिडिकाः शोधयेच्छोथवद्भिषक् ॥ पक्त्वा चिकित्सेद्व्रणवत्संधिमर्मसमुद्भवाः ॥ ११ ॥

अर्थ–प्रमेहकी शराविका आदि जो पिडिका (फुंसी) होती हैं इनका यत्न शोथ रोगके समान शोधन करे, जब पकजावें तब व्रणके समान (दारण, रोपणादि क्रिया) करनी चाहिये ।

चन्द्रप्रभा गुटिका ।

वेल्लव्योषफलत्रयत्रिलवणद्विक्षारचव्यानलश्यामापिप्पलिमूलमुस्तकशठीमाक्षीकधातुत्वचः ॥ षड्ग्रंथामरदारुवारण-

कणाभूनिंबदंतीनिशापत्रलातिविषापि-
चुप्रमितयो लोहस्य कर्षाष्टकम् ॥१२॥
त्वक्क्षीरी पलिका पुरोर्दश पलानष्टौ
शिलाजन्मनो मीनांडयाः कुडवः कृते-
ति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ॥
तत्रैकां प्रतिवासरं हि सघृतक्षौद्रेण
लिह्यादिमां तक्रं मस्तु पयो घृतं मधु-
रसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥ १३ ॥
अर्शांसि प्रदरं ज्वरं च विषमं नाडी-
व्रणानश्मरीं कृच्छ्रं विद्रधिमाग्निमांद्यमु-
दरं पांड्वामयं कामलाम्॥यक्ष्माणं सभ-
गंदरं सपिडिकागुल्मप्रमेहारुची रेतोदो-
षमुरःक्षतं कफमरुत्पित्तार्तिमुग्रां जयेत्
॥१४॥ वृद्धं संजनयेद्युवानमसमौजस्कं
बलं वर्द्धयेदेतस्या न निषिद्धमन्नमसकृ-
न्नाध्वागमं मैथुनम्॥ विख्याता गुटिकेय-
मर्चिततरा चंद्रप्रभा नामतः सांद्रानंद-
करी तनोति च रुचिं चंद्रेण तुल्यां
तनौ ॥ १५ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, तीनों निमक, दोनों क्षार, चव्य, चित्रक, पीपल, पीपरामूल, मोथा, कचूर, सुवर्णमाक्षिक, दालचीनी, गजपीपर, देवदारु, चिरायता, दंती, हलदी, पत्रज, इलायची, अतीस ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे, लोह-भस्म ८ तोले, वंशलोचन ४ तोले, गूगल शुद्ध ४० तोले, शुद्धशिलाजीत ३२ तोले और सपेद चीनी (खाँड) पावभर, सबको एकत्र कूट पीस गोली बनाय लेवे, १ गोली नित्य घी और सहतके साथ सेवन करे, और रोगानुसार छाछ, दहीका जल, दूध, घृतः और सहत ये इसके ऊपर पीवे, यह छः प्रकारके प्रमेह, प्रदर, ज्वर, विषमज्वर, नाडीव्रण, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, विद्रधि, मंदाग्नि, उदररोग, पांडुरोग, कामला, यक्ष्मारोग, भगंदर, प्रमेहपिडिका, गोलेका रोग, प्रमेह, अरुचि, वीर्यके दोष, उरः क्षत तथा घोर कफ, पित्त और बादीकी पीडा इनको हरे और यह बुड्ढेको जवान करे, बल बढावे । इसपर किसी प्रकारके अन्न खानेकी, रास्ता चलनेकी और मैथुन करनेकी नाहीं नहीं है। ये (यथेच्छ खटाई, मिरचाई आदि खाय और स्त्रीसंग) करे । यह चंद्रप्रभा नामक गुटिका विख्यात है, आनंददायक, रुचिकरती, तथा देहको चंद्रमाके तुल्य सुंदर करे है । यह योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

पूगीपाक ।

हेमांभोधरचंदनं त्रिकटुकं धात्री प्रियालं
कुहूमज्जानास्त्रिसुगंधि जीरकयुतं शृंगा-
टकं वंशजम् ॥ जातीकोनलवंगधान्य-
कयुतं प्रत्येककर्षद्वये पूगस्याष्टपलं विचू-
र्ण्य च पयःप्रस्थत्रये सर्पिषः ॥ १६ ॥
दद्याद्रोःकुडवं सितार्धकतुलां धात्रीवरी
द्व्यंजली मंदाग्नौ विपचेद्भिषक्छुभदिने
सुस्निग्धभांडे क्षिपेत् ॥ यः खादेद्दिनशः
प्रभातसमये मेहांश्च जीर्णज्वरं पित्तं
साम्लमसृक्स्रुतिं गुदहशोर्वक्राक्षिनासा-
सु च ॥१७॥ मंदाग्निं च विजित्य पुष्टि-
मतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदं पूगं गर्भकरं
परं यदहरं स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥१८॥

इति योगरत्नावलीतः ।

अर्थ-धत्तूरके शुद्ध बीज, नागरमोथा, चंदन, सोंठ, मिरच, पीपल, आमले, चिरोंजी, बेरकी गुठली, त्रिसुगंधि, जीरा, सिंघाडा, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग और धनिया प्रत्येक दो दो तोले, दक्षिणी सुपारी (चिकनी सुपारी) ३२ तोले इन सबका चूर्ण कर ३ सेर दूधमें डालके खोहा करे फिर १ सेर गौके घीमें डालके खोहेको भूने फिर २॥ सेर खांडकी चासनीमें सबको एक जीव कर लेवे और आंवले तथा सतावर दो अंजली डाले। जो प्राणी प्रातःकाल इस सुपारीपाकका सेवन करेगा उसके प्रमेह, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, गुदा, नेत्र, मुख और नाकसे रक्तका गिरना, मंदाग्नि इनको दूर कर अत्यंत पुष्टि करे और वीर्य बढाता है, स्त्रियोंके गर्भ करे. तथा स्त्रियोंके रक्तप्रदर आदि सब रोगोंको नष्ट करे। यह योगरत्नावलीमें लिखा है।

दूसरा पूगपाक।

श्रीखंडं त्रिसुगांधिकेशरकणाः शुंठी वरी चांबुदं शृंगाटं जलजं प्रियालवदरीधा- त्र्यब्जवीजं तुगा॥ द्राक्षाजिरिकधान्यकं ससुमनःपुष्पं च जातीदलं शुद्धारं दरदं पलार्धकमिदं सन्नारिकेलांत्रमत्॥ १९॥ पूगं चाष्टपलं च सौरभपयःप्रस्थत्रये संपचेत्पश्चादामलकी वरी जलशरावा- र्धेऽथ पिष्टीकृतम्॥ शुष्कीकृत्य कटा- हके च सघृते मंदाग्निना चूर्णयुग्वंगव्यो- मपलार्द्धकं तु तुलया खंडेन पाकीकृतम्। ॥२०॥भुक्तं प्रातरिदं प्रमेहपवनाध्मा- नानि शूलानि च क्षैण्यं दैन्यमसृक्स्रुतिं मुखगुदश्रोत्राक्षिलोमोद्भवाम्॥ हन्या- द्रोगजराविपत्तिशमनं मंदाग्निहृद्बृंहणं बल्यं वृद्धिकरं प्रमोदजनकं पूगं न किं सेव्यते॥ २१॥

इति सारसंग्रहात्॥

अर्थ-चंदन, त्रिसुगंधी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, सतावर, नेत्रवाला, सिंघाडे, नागरमोथा, चिरोंजी, बेर, आँवले, कमलगट्टेकी मिंगी, वंश- लोचन, दाख, जीरा, धनिया, लौंग, जायफल, जावित्री, शुद्ध लोहेकी भस्म हींगुल ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, गिरीका गोला २ तोले, दक्षिणी सुपारी ३२ तोले, गौके दूध ३ सेरमें पचाके खोहा करे फिर इस खोहेको गौके घीमें मंदाग्निसे भूने, फिर ९ सेर मिश्रीकी चासनीमें इसको डाले और वंग, अभ्रक ये दो दो तोले मिलाके पाक बना ले प्रातःकाल सेवन करनेसे प्रमेह, बादीके विकार, अफरा, शूल, क्षीणता, दीनता, मुख, गुदा, कान, नेत्र, और रोमांओंसे रुधिरका गिरना, संपूर्ण रोग, बुढापा और विपत्तिका शमन करे, मंदाग्निको तेज करे, बृंहण है, बल करे, आनंद बढावे, इस वास्ते हे प्राणियो! तुम इस पूगपाकका क्यों नहीं सेवन करते?।

धन्वन्तरिघृत।

दंतीदारुशठीशिलाह्वदहनैर्भल्लातकाको भयास्नुग्वर्षाभ्रकरंजयुग्मवरुणैर्युक्पंच- मूलीयुतैः॥ इत्येभिर्दशपालिकैः शृत- मपां द्रोणे पृथक्प्रस्थिकैरेभिश्चाभिकुल- त्थकोलकयवैः पादावशेषीकृते॥ २२॥ अस्मिन्नीपकिरातरोहिषकणार्कपिल्लवि- श्वौषधैर्भार्ङ्गीचव्यगजाह्वपिप्पलियुतैरे- भिश्च सिद्धं घृतम्॥ एतन्मेहहरं क्षयक्ष-

यकरं हिक्कापहं गुल्मजित्पांडुत्वक्प्रति-
घाति हृद्गुदरुजः प्रध्वंसि धान्वंतरम् २३॥
इति चिकित्सातः ॥

अर्थ-दंती, देवदारु, कचूर, मनासिल, चित्रक, भिलावा, आक, हरड, थूहरका दूध, विषखपरा, कंजा छोटा और कंजाबडा, बरना, लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल ये प्रत्येक दश २ पल औषध लेवे इनको १६ सेर जलमें डालके औटावे फिर कुलथी, बेर और जौ इनका चतुर्थीशावशेष क्काथ २ सेर भरलेवे तथा इसमें जलकदंब, चिरायता, रोहिषतृण, पीपल, कवीला, सौंठ, भारंगी, चव्य, गजपीपल इनका कल्क मिलाय घृतको सिद्ध करे. यह प्रमेहको हरण करे, क्षयको क्षीण करे, हिचकीको नष्ट करे, गोला, पांडुरोग, कुष्ठ, हृदयके रोग, गुदाके रोगोंको यह धन्वंतरिघृत दूर करता है । यह चिकित्सार्णव ग्रंथमें लिखा है ।

मेघनादरस ।

सूतं कांतं गन्धतीक्ष्णे ताप्यं व्योषं
फलत्रिकम् ॥ शिलाजतु शिला कोल-
बीजं रात्रिः कपित्थजम् ॥ २४ ॥
त्रिःसप्तकृत्वो भृंगाद्भिर्भावयेन्निष्कसं-
ज्ञकः ॥ मेघनादाख्यसूतश्च सर्वमेहा-
न्प्रणाशयेत् ॥ २५ ॥

अर्थ-पारा, कांतलोहकी भस्म, गंधक, खेरी लोहकी भस्म, सुवर्णमाक्षिक, त्रिकुटा, त्रिफला, शिलाजीत, मनसिल, बेरकी मिंगी, हलदी, कैथका गूदा इसमें २१ भावना भांगरेके रसकी देवे, ४ मासेके अनुमान सेवन करे तो यह मेघनादरस सर्व प्रकारके प्रमेहोंको दूर करे है ।

महानिंबप्रयोग ।

महानिंबस्य बीजानि पेषयेत्तंडुलां
बुना ॥ सघृतान्यचिराद्धन्युः पानान्मे-
हांश्चिरंतनान् ॥ २६ ॥

अर्थ-वकायनके बीजोंको चांवलेंके धोवनमें पीस और इसमें घी मिलाके पीवे तो बहुत वर्षोंके पुराने प्रमेहोंको नष्ट करे ।

हरिशंकररस ।

सूताभ्रमामलजलैः सप्ताहं भावयेद्द-
सम् ॥ हरिशंकरसंज्ञः स्याद्धक्तः सर्व-
प्रमेहजित्॥ २७ ॥

अर्थ-पारा और अभ्रकको आमलेके रसमें ७ दिनतक घोटे तो यह हरिशंकर रस बने. सेवन करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करे है ।

वंगभस्मयोग ।

रसस्य भस्मना तुल्यं वंगभस्म प्रकल्प-
येत् ॥ अस्य गुंजाद्वयं हंति मेहान्क्षौद्र-
समन्वितम् ॥ २८ ॥

अर्थ-चन्द्रोदय १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, दोनोंको मिलाय सहतसे चाटे तो सर्व प्रकारके प्रमेह दूर होंय । यह वंगेश्वर रस है ।

प्रमेहकुठाररस ।

एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं
गोक्षुरशाल्मलीत्वक् ॥ सूताभ्रवंगायस-
भस्म सर्वमेतत्समानं परिमर्दनीयम् ॥
निष्कार्धमात्रो मधुनावलीढो निहंति
सर्वामयमेहजातम् ॥ २९ ॥
इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां प्रमेहचिकि-
त्सा नामैकपञ्चाशस्तरंगः ॥ ५१ ॥

अर्थ-छोटी इलायचीके दाने, भीमसेनी कपूर, मिश्री, आँवले, जायफल, गोखरू, सेमरका मूसरा, दालचीनी, पारा, अभ्रक, वंग और लोहभस्म ये सब समान लेवे सबको घोटके इसमेंसे ४ मासे रसको सहतमें मिलाके चाटे तो सर्व प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करे. यह प्रमेहकुठाररस रसरत्नप्रदीमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां प्रमेहचिकित्सावर्णनं नामैकपंचाशस्तरंगः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशस्तरंगः ।

मेदोरोग ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः॥ मधुरान्नरसात्प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते । ॥ १ ॥ मेदोमांसविवृद्धित्वात्स्थूलस्फिगुदरस्तनः ॥ अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ २ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ-दंड कसरत आदि श्रम न करना, दिनमें सोना, कफकारी भोजन करना तथा मिष्ट पदार्थ (अन्न जल) से और घृतादि चिकने पदार्थसे मेदा बढता है, मेदा और मांसके बढनेसे इस प्राणीके कूले, पेट और स्तन मोटे होकर थलर २ हलने लगते हैं और सब देहमें बेढब मुटापा हो उत्साह रहे नहीं, ऐसे पुरुषको अतिस्थूल कहते हैं ।

मेदोरोगकी चिकित्सा ।

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ॥ केवलं वा रजन्यंते पीतं मेदस्विनां हितम् ॥ ३ ॥ सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलाभयाः ॥ मस्तुना सक्तवः पीता मेदोवृद्धिविनाशनाः । ॥ ४ ॥ क्षारं वा तालपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः ॥ मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमंडसमन्वितम् ॥ ५ ॥

अर्थ-प्रातःकाल जलमें सहत मिलाकर पीनेसे अत्यंत स्थूलता दूर होय अथवा रात्रिके अंतमें केवल जल मात्र पीनेसेही स्थूलता दूर होय अथवा चव्य, जीरा, त्रिकुटा, हींग, संचरनिमक, हरड इनके साथ सत्तु मिलाके दहीके जलमें घोलकर पीनेसे स्थूलता दूर होय । अथवा तालपत्रकी छालको हींग डालके भातके मांडके साथ पीवे तो मेदाकी बढवार दूर होय ।

देहदुर्गंधहरणका यत्न ।

वासादलरसोपेतः शंखचूर्णेन संयुतः ॥ बिल्वपत्ररसो वापिगात्रदौर्गंध्यनाशनः॥६॥

इति श्रीयो० मेदचिकित्सा नाम द्विपंचाशस्तरंगः ॥ ५२ ॥

अर्थ-अडूसेके पत्तोंके रसमें शंखका चूर्ण डाले तथा बेलके पत्तोंका रस मिलाके देहपर मालिश करनेसे देहकी दुर्गंध नष्ट होय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मेदश्चिकित्सावर्णनं नाम द्विपंचाशस्तरंगः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशस्तरंगः ।

उदररोग ।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ॥ प्राणाग्न्यपानान्सदूष्य जनयंत्युदरं नृणाम् ॥ १ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–संचित हुए वातादि दोष जलके बहनेवाली नाडियोंको रोककर प्राण, अग्नि और अपान वायुको विगाडकर मनुष्योंके उदर रोग प्रगट करते हैं । यह वृन्दग्रंथमें लिखा है ।

उदररोगकी चिकित्सा ।

रक्तशालिर्यवा मुद्गा जांगलाश्च रसा हिताः ॥ विरेकास्थापनं शस्तं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥

अर्थ–लाल चावल, जौ, मूँग, जंगली जीवोंका मांसरस इनका खाना, विरेचन, आस्थापन बस्ति ये सब उदरके रोगमें उत्तम कहे हैं ।

क्षीरेणैरंडजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वासकृत् ॥

अर्थ–दूधमें मिलाके अथवा गोमूत्रमें मिलाके अंडीका तेल पीवे तो उदररोग दूर होय ।

ज्योतिष्मतीप्रयोग ।

ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा च विरेचनम् ॥ सर्वेभ्यो जठरेभ्यस्तु शीघ्रं मुच्येत मानवः ॥ ३ ॥

अर्थ–मालकांगनीका तेल दूधमें डालके पीवे तो दस्त होकर उदर रोग दूर होय । यह प्रयोग शीघ्र रोगनाशक है ।

वात-पित्त-कफ–जन्यपर ।

वातोदरी पिबेत्तैलं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ ४ ॥ शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ यवानीसैंधवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ ५ ॥

अर्थ–वातोदररोगी पीपल और सेंधानिमकका चूर्ण डालके तेल पीवे । पित्तोदरवाला खाँड और कालीमिरचका चूर्ण डाल स्वादिष्ट छाँछको पीवे। कफोदरवाला अजमायन, सेंधानिमक, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण डालके छाँछ पीवे ।

सन्निपातोदरपर ।

सन्निपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैंधवैः ॥

अर्थ–सन्निपातोदरी छाछमें सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और सेंधानिमक मिलाके पीवे ।

बर्द्धमानपिप्पली ।

त्रिभिरथ परिवृद्धं पंचभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥ इति पिबति पुमान्यस्तस्य न श्वासकासज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाः स्युः६॥

अर्थ–३–५–६ अथवा १० पीपलसे उपरांत एक एक पीपल बढायके बीसतक बढावे इस प्रकार नित्य घोटके पीवे तो उस प्राणीके श्वास, खाँसी, ज्वर, उदररोग, गुदाकी बवासीर और वातरक्त ये दूर हों ।

पिप्पली योग ।

स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां पयोऽश्नतः ॥ सहस्रमुपयुंजीत शक्तितो जठरामयी ॥ ७ ॥

अर्थ–प्रथम पीपलोंमें थूहरके दूधकी पुट देकर सुखा लेवे, फिर चूर्ण करके इसको रोगीका बलाबल विचार दूधके साथ देवे तो उदररोग दूर होय । यह हजार पीपलोंका प्रयोग है ।

पटोलादि चूर्ण ।

पटोलमूलं रजनीं विडंगं त्रिफलात्वचम्॥ कंपिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥ ८ ॥ षडाद्यान्कार्षिकान्भागानं त्यान्द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ श्लक्ष्णचूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ९ ॥ विरिक्तो जांगलरसैर्भुंजीत मृदुमोदनम्॥ मंडं पेयां च पीत्वा वा सव्योषं षडहं

पयः ॥ १० ॥ शृतं पिबेत्तु तच्चूर्णं पिबेदेवं ततः पुनः ॥ हंति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ कामलां पांडुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ११ ॥

अर्थ–पटोलकी जड, हलदी, वायविडंग, त्रिफलाकी छाल ये तोला २ लेवे, कबीला २ तोले जमालगोटा ३ तोले और निसोथ ४ तोले ले इनका चूर्ण कर ४ तोले चूर्णको गौक मूत्रसे पीवे । जब दस्त होजायँ तब यह प्राणी जंगली जीवोंके मांसरस (सोरुआ) मिला नरम भातका सेवन करे । अथवा मंड या पेया पीवे, अथवा छः दिनतक दूध पीवे, अथवा इस चूर्णका क्काथ करके पीवे, यह चूर्ण जिसके पेटमें जल प्रगट होगया हो उस उदरकोभी दूर करे, तथा कामला, पांडुरोग, सूजनको दूर करे ।

नारायण चूर्ण ।

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुंचिका ॥ कारवी पिप्पलीमूलमजगंधा शठी वचा ॥ १२ ॥ शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम्॥ द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपंचकम् ॥१३॥ विडंगं च समांशानि दंतीभागत्रयं तथा ॥ त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ १४ ॥ एवं नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ॥ तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदरांबुना ॥१५॥ आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ दधिमंडेन विट्संगे दाडिमांबुभिरर्शसि ॥ १६ ॥ परिकर्तेतिवृक्षाम्लैरुष्णांबुभिरजीर्णके ॥ भगंदरे पांडुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ १७ ॥ हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मंदानले ज्वरे ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे गरले कृत्रिमे विषे ॥ यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ १८ ॥

अर्थ–अजमायन, हाऊबेर, धनिया, त्रिफला, कलौंजी, सौंफ, पीपरामूल, असगंध, कचूर, वच, सतावर, जीरा, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), चौक, चित्रककी छाल, जवाखार, सज्जीखार, पुहकरमूल, कूठ, पांचों निमक, वायविडंग ये सब समान भाग लेवे दंती ३भाग, निसोथ २ भाग, इन्द्रायनकी जड २ भाग, थूहरका दूध ४ भाग ले सबको खरल करे, यह नारायण चूर्ण सर्वरोगनाशक है इसको छाछके साथ उदररोगी पीवे । बेरकी छालके क्काथसे गोलेका रोगी पीवे । आनद्धवातके रोगमें दारुके साथ पीवे । केवल बादीके रोगमें प्रसन्ना (मद्यका भेद है) के साथ पीवे, मलकी रुकावटमें दहीके मंडसे पीवे, बवासीरके रोगमें अनारके रससे पीवे, पेटमें कतरनीसी चलती होय तो तंतडीक खटाईके साथ पीवे, अजीर्ण रोगमें गरम जलके साथ पीवे । भगंदर, पांडुरोग, खाँसी, श्वास, गलग्रह, हृदयरोग, संग्रहणी, कुष्ठ, मंदाग्नि, ज्वर, बंदर आदिकी डाढका विष, मूलविष, गरल, कृत्रिमविष इन सबको यह दूर करे । प्रथम रोगीको घृतादि पान कराय स्निग्ध कोठा करके फिर इस चूर्णको देना चाहिये ।

बिन्दुघृत ।

त्रिवृता त्रिफला पाठा दंती कटुकरोहिणी ॥ चतुरंगुलमज्जा च तथा च कटुकत्रयम् ॥ १९ ॥ चित्रकं च बृहत्यौ च तथा च गजपिप्पली ॥

स्नुहीक्षीरं पलं दद्याद् घृतस्याष्टौ प्रदापयेत् ॥ २० ॥ यावत्पिबति तद्बिंदूस्तावद्वेगान्विरिच्यते ॥ एतद्बिंदुघृतं सिद्धमृषिभिः समुदाहृतम् ॥ २१ ॥

अर्थ–निसोथ, त्रिफला, पाढ, दंती, कुटकी, अमलतासका गूदा, त्रिकुटा, चित्रक, दोनों कटेरी, गजपीपल, ये सब एक २ तोला लेवे, थूहरका दूध ४ तोले, गौका घी ३२ तोले ले विधिपूर्वक इस घृतको बनाय लेवे । इस घृतकी जितनी बूंद डालके पीवे, उतनेही दस्त होयँगे इस वास्ते प्राचीन वैद्योंने इसको बिंदुघृत संज्ञा दीनी है । यह उत्तम घृत है ।

रोहीतक योग ।

रोहीतकाभयाशुंठीः पिबेन्मूत्रेण शक्तितः ॥ सर्वोदरहरः प्लीहमेहार्शः कृमिगुल्मनुत् ॥ २२ ॥

अर्थ–रोहीतककी छाल, हरडकी छाल, सोंठ इनके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीवे तो सब प्रकारके उदररोग, प्लीह, प्रमेह, बवासीर, कृमि और गोलेका रोग दूर होय ।

शुक्तिक्षार वा दुग्धपिप्पली ।

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ॥ पयसा च प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशांतये ॥ २३ ॥

अर्थ–समुद्रकी सीपके क्षारको बडी होशियारीसे दूधमें मिलाके पीवे अथवा पीपलोंको दूधमें पीसके पीवे तो प्लीह (तिल्ली) का रोग दूर होय ।

उदररोगमें अपथ्य ।

औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतास्तिलाः ॥ व्यायामाध्वदिवास्वापपानाजीर्णं विवर्जयेत् ॥ २४ ॥ अत्र क्रव्यादो रसो हितः ।

अर्थ–जलके जीवोंका मांस, जलके समीप रहनेवाले जीवोंका मांस, सर्व प्रकारके साग, पिष्टपदार्थ, तिल, दंड कसरत, मार्गगमन, दिनमें सोना, जलादिपान और जिनसे अजीर्ण होय ये सब उदररोगवालेको वर्जित हैं । इस उदरोगमें क्रव्यादरस देनाभी उत्तम है ।

उदरारि रस ।

सूतगंधकणापथ्यातुत्थारग्वधकाढकम्॥ मर्दयेद्वत्रिदुग्धेन तन्माषं खादयेद्दिनम् ॥ २५ ॥ नृणां जलोदरं हंति पथ्यं शाल्योदनं दधि ॥ चिंचाफलरसं चानुपानमत्र प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–पारद, गंधक, पीपल, हरड, लीलाथोथा, अमलतासका गूदा, ये समान भाग ले इनको थूहरके दूधसे खरल करे । इसमेंसे मासेकी गोली बनावे । एक गोली इमलीके रससे देवे तो यह उदररोगको नष्ट करे, इसपर पुराने बारीक चावलोंका भात और दही खाना पथ्य है ।

नाराच रस ।

भृष्टटंकणतुल्यं तु मरिचं च रसं समम्॥ गंधकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ २७ ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दंतीबीजं सर्वमकल्मषम् ॥ द्विगुंजं रेचनं चैतदुदराणि व्यपोहति ॥ २८ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामुदरचिकित्सा नाम त्रयःपञ्चाशस्तरंगः ॥ ५३ ॥

अर्थ–भूना सुहागा, काली मिरच और पारा समान भाग ले गंधक, पीपल और सोंठ ये दो दो भाग लेकर चूर्ण करे तथा सबकी

बराबर शुद्ध जमालगोटा मिलावे घोटकर दो दो रत्तीकी गोली बनाले । यह सब उदरके रोगोंको नष्ट करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामुदर-चिकित्सावर्णनं नाम त्रिपंचाश-स्तरंगः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशस्तरंगः ।

श्वयथु ।

रक्तपित्तकफाद्वायुः शिराः प्रापय्य बाह्यगाः॥ शोथं करोति नवधा दोषक्ष्वेडाभिघाततः ॥ १ ॥

अर्थ–रक्तपित्त और कफके कुपित हानस वादी बाहरकी नसोंमें प्राप्त होकर नौ प्रकारके शोथ (सूजन) रोगको प्रगट करे है (जैसे-बादी, पित्त, कफ, वातपित्त, वातकफ, कफ पित्त, संनिपात) विषजन्य और चोटके लगनेसे ।

श्वयथुकी चिकित्सा ।

शुंठीपुनर्नवैरंडपंचमूलीशृतं जलम् ॥ वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे२॥

अर्थ–सोंठ, पुनर्नवा, अंडकी जड, लघु पंचमूलकी पांच औषध इनका क्राथ करके पीवे, यह बादीकी सूजनमें उत्तम है, परंतु इसमें भोजन और पानका पथ्य करे ।

पित्तजन्य शोथका यत्न ।

पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीकाथः सगुग्गुलुः । हंति पित्तभवं शोथं तृष्णाज्वरसमन्वितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–पटोलपत्र, त्रिफला, नींबकी छाल, देवदारु इनके क्राथमें गूगल डालके पीवे तो तृषा और ज्वरयुक्त पित्तकी सूजन दूर होय ।

कफजन्य शोथपर ।

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूचीशम्याकपथ्यामरदारुकल्कम् ॥ शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं मूत्रं पिबेद्वा सलिलं तथैव ॥४॥

अर्थ–पुनर्नवा, सोंठ, निसोथ, गिलोय, अमलतासका गूदा, हरड, देवदारु इनका कल्क बनाय गूगल डालके कफकी सूजनमें देवे । अथवा गोमूत्रमें गूगल मिलाय अथवा जलके साथ पीवे तो कफकी सूजन जाय ।

कफे तु कृष्णा सिकता पुराणा पिण्याकशिग्रुत्वगभिप्रलेपः॥ गुडार्द्रकं वा गुडपिप्पलीं वा गुडाभयां वा गुडनागरं ॥ ५ ॥ कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ॥ ६ ॥ जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्हन्यात्तथान्यानपि वातरोगान् ॥ ७ ॥

अर्थ–कफजन्य सूजनमें पीपलका चूर्ण, पुरानी खांड, खल, सहजनेकी जड इनको जलसे बारीक पीस लेप करे । अथवा गुड और अदरख खाय अथवा गुड पीपल खाय । अथवा गुडमें हरडका चूर्ण मिलायके खाय । अथवा सोंठके चूर्णको गुडमे मिलायके खाय तो कफकी सूजन दूर होय । परंतु इन पूर्वोक्त चारों योगोंमेंसे जिसकी इच्छा होय उसको १ तोलेकी वृद्धिके हिसाबसे नित्य खाय इस प्रकार बारह तोले पर्यंत खाय तो १५ दिन या १ महीनेमें सूजन, सरेकमा, गलेके मुखके रोग, श्वास, खाँसी, अरुचि, पीनस आदि रोग, जीर्णज्वर, बवासीर संग्रहणी तथा औरभी वातजन्य रोगोंको नष्ट करे है ।

पाठादि चूर्ण ।

कृष्णाग्निविश्वघनजीरककंटकारीपाठा-निशाकरिकलामगधाजटानाम् ॥ चूर्णं कवोष्णसलिलेन विलोड्य पीतं नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ–पीपल, चित्रक, सोंठ, नागरमोथा, जीरा, कटेरी, पाढ, हलदी, गजपीपल, पीपरा-मूल इनके चूर्णको गरम जलमें मिलायके पीवे इससे बढकर सूजननाशक दूसरा प्रयोग नहीं है ।

सूजनरोगपर अपथ्य ।

स्त्रीतैलघृतमद्यानि गुर्वम्ललवणानि च॥ जांगलं च दिवास्वापं शोथवान्वर्जये-न्नरः ॥ ९ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां शोथचिकित्सा नाम चतुष्पंचाशस्तरंगः ॥ ५४ ॥

अर्थ–स्त्रीसंग, तेल, घृत, मद्य, भारी पदार्थ, खटाई, निमक, जंगली जीवोंका मांस और दिनमें सोना इन सबको शोथरोगी त्याग देय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां शोथ-चिकित्सा नाम चतुष्पंचाश-स्तरंगः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशस्तरंगः ।

मुष्कवृद्धिनिदान ।

अधोगतिर्वंक्षणतो मुष्कौ प्राप्य करोति हि ॥ दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः सप्तधांडोन्नतिं मरुत् ॥ १ ॥

अर्थ–बादी, वंक्षण (पेडुओं) से नीचेको जाय अंडकोषोंमें प्राप्त होकर सात प्रकारकी मुष्कवृद्धिको करे है। जैसे–१ बादीसे, २पित्तसे, ३ कफसे, ४ रुधिरसे, ५ मेदासे, ६ मूत्ररोधसे और आंतोंके उतरनेसे अंडकोश मोटे होते हैं ।

पित्तजन्यमुष्कवृद्धिका यत्न ।

यः पित्तदोषेण कुरंडरोगो भवेच्छिशो-र्दक्षिणमुष्कभागे ॥ ततोऽर्ध्वभागे श्रवण-स्य वेधं वामस्य कुर्यात्परतोऽपरत्र॥२॥

अर्थ–जिस बालकके पित्तके दोषसे कुरंड रोग हो उसका दहना अंड बढ जाता है । उसके ऊपरके भागमें बाएँ कानको वेधन करे । यदि वाम अंडकी वृद्धि होती दीखे तो दहने कानका वेध करना चाहिये ।

उपायांतर ।

पथ्याक्षबीजशुंठीनिर्गुंडीनां मिथः समै-श्चूर्णैः ॥ घृतमधुसहिता पिंडी न क्षमते मुष्कवृद्धिकथाम् ॥ ३ ॥

अर्थ–हरड, बहेडेकी मिंगी, सोंठ, निर्गुंडी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे, फिर सहत और घीके साथ गोली बनाय लेवे, इसको सेवन करनेसे कदापि अंडवृद्धि नहीं होय ।

वृषणजन्य वातशूलपर ।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतंद्रितः॥ कोष्ठवातोद्भवं शूलं निहन्याद्वृषणोद्भ-वम् ॥ कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचंदनम् ॥ ४ ॥

अर्थ–त्रिफलेका क्वाथ और गोमूत्र दोनोंको मिलाके प्रातःकाल पीवे तो कोष्ठजन्य बादीका दर्द जो पोतोंमें हुआ करे है वह दूर होय ।

चंदनादि ।

चंदनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ ५ ॥ क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्दाहशो-

थव्रणापहः ॥ पंचवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ॥ ६ ॥

अर्थ-चंदन लाल, महुआ, पद्माख, खस, नील कमल इनको दूधमें पीसके लेप करे तो दाह, सूजन और व्रणको नष्ट करे। अथवा पंच कल्कलके कल्कमें घी मिलायके लेप करे।

पित्तज और रक्तज।

सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम्॥

अर्थ-पित्तकी मुष्कवृद्धिमें सब कर्म पित्तहरणकर्त्ता करने चाहिये। और यदि वह मुष्कवृद्धि रुधिरके कारणसे होय तो दुष्ट रुधिरको निकाल डाले।

वचादि योग।

वचासर्षपतैलेन प्रलेपः शोथनाशनः७॥

अर्थ-वच और सरसोंके बने तेलका लेप करनेसे सूजन दूर होय।

एरंडतैलयोग।

तैलमेरंडजं पीतं बलासिद्धं पयोऽन्वितम् ॥ आध्मानशूलोपचितामंडवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ-बला औषध डालके सिद्ध करा अंडीका तेल दूध डालके पीवे तो अफरा शूल बढी हुई अंडवृद्धि इनको दूर करे।

हरीतकीयोग।

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैंधवचूर्णयुक्ताम् ॥ खादेन्नरः कोष्णजलानुपानान्निहंति कूरंडमातिप्रवृद्धम् ॥९॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यामंत्रवृद्धिचिकित्सा नाम पञ्चपंचाशस्तरंगः ॥ ५५ ॥

अर्थ-गोमूत्रमें औटाई गई और अंडीके तेलमें भूनी गई हरडोंके चूर्णको सैंधानिमकका चूर्ण मिलायके खावे और ऊपरसे गरम जल पीवे तो अत्यंत बढी हुई अंडवृद्धिको नष्ट करे।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामंत्रवृद्धिचिकित्सा नाम पंचपंचाशस्तरंगः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशस्तरंगः।

अथ ब्रध्न।

वंक्षणे दोषजः शोथो ब्रध्न इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

अर्थ-वंक्षण (पेडुओं) में जो वातादि दोषोंके कारण सूजन प्रगट होती है उसको ब्रध्न अर्थात् बद कहते हैं।

ब्रध्नरोगकी चिकित्सा।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरंजशिग्रुकतरुर्विश्वौषधारुष्करम् ॥ कृष्णाग्रंथिकचव्यपंचलवणक्षाराजमोदान्वितं पीतं कांजिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं ब्रध्नजित्२

अर्थ-बेलकी जड, कैथकी जड, टेंटू, चित्रक और दोनों कटेरी, पीपल, हरड, करंज, सहिंजना, सोंठ, भिलावा, पिपरामूल, चव्य, पांचों निमक, जवाखार, अजमोद इन सबका बारीक चूर्ण कर कांजीसे या गरम जलसे या छाछसे पीवे तो बदका रोग दूर होय।

पथ्यायोग।

भृष्टश्चैरंडतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ॥ कृष्णासैंधवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां ब्रध्नचिकित्सानाम षट्पञ्चाशस्तरंगः ॥ ५६ ॥

अर्थ–हरडके कल्कको अंडीके तेलमें भूने और उसमें पीपल तथा सेंधानिमक डालके देय तो यह ब्रध्नरोगको हरण करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां ब्रध्नचिकित्साकथनं नाम षट्पंचाशस्तरंगः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशस्तरंगः ।

अथ गंडमाला ।

गंडमालोरुभिर्गंडैः कंठदेशसमुद्भवैः ॥ एषैव चिरवृद्धा स्यादपचीव्रणसंज्ञिका ॥ १ ॥

अर्थ–कंठमें अनेक प्रकारकी छोटी बडी गांठ प्रगट होंय उसको गंडमाला रोग कहते है । यही गंडमाला बहुत दिनकी बढ जानेसे अपची नामका फोडा कहाता है ।

गंडमालाकी चिकित्सा ।

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्काथो वरुणमूलजः ॥ गंडमालां निहंत्याशु चिरकालानुबंधिनीम् ॥ २ ॥

अर्थ–वरनेकी जडके क्काथमें सहत डालके पीवे तो बहुत दिनकी गंडमाला दूर होय । यह एक वारहीमें अपना चमत्कार दिखाती है ।

तुंबीतैल ।

विडंगमलसिंधूत्थरास्नोग्राक्षारदारुभिः ॥ तैलं चतुर्गुणे सिद्धं कटुतुंबीरसे शुभे ॥ गंडमालाहरं श्रेष्ठं गलगंडेऽपि शस्यते॥३॥

अर्थ–वायविडंग, आमले, सेंधानिमक, रास्ना वच, जवाखार, देवदारु इनका कल्क करके और उसमें कडवी तूँबीका रस मिलाय चौगुने मीठे तेलको सिद्ध करे । यह तूंबीतेल गंडमालाका हरण करे तथा गलगंडपर भी इसका प्रयोग करा जाता है ।

व्योषादि तैल ।

व्योषं विडंगं मधुकं सैंधवं देवदारु च ॥ तैलमोभिः शृतं सम्यक्कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥ ४ ॥

अर्थ–सौंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलहटी, सेंधानिमक, देवदारु इनके कल्कसे तेलको सिद्ध करे । यह तेल कृच्छ्रसाध्य अपची रोगको नष्ट करे है ।

चुच्छुंदरी तैल ।

चुच्छुन्दर्या विपक्कं तु क्षणात्तैलं वरं ध्रुवम् ॥ अभ्यंगान्नाशयेन्नृणां गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ५ ॥

अर्थ–चकचून्दर (जो एक चूहेकी जात होती है कि, जिसको रात्रिमें दीखता है) उसका मांस डालके तेल बनावे इस तेलकी मालिशसे दारुण गलगंडरोग दूर होय ।

सौभांजनयोग ।

सौभांजनं देवदारु कांजिकेन प्रयोजितम् ॥ कोष्णप्रलेपतो हन्यादपचीं दुस्तरामपि ॥ ६ ॥

अर्थ–सहँजनेकी छाल, देवदारु इन दोनोंको कांजीमें पीस गरम २ लेप करे तो घोर अपची रोगको नष्ट करे ।

गलगंड ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥ महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगडं तमादिशेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–जिसके जड बद्ध होकर सूजन गलेमें-से नीचेको अंडकोशके समान लटक पडे, चाहे

वह छोटी हो या बडी होय उसको वैद्यजन गलगंड कहते हैं। भाषामें इसे घेंघा कहते हैं।

गलगंडकी चिकित्सा।

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैंधवसंयुतः ॥ नस्येन तरुणं हंति गलगंडं न संशयः८॥

अर्थ-पुराने ककोडेका रस, वायविडंग, सेंधानिमक इनको मिलाय नस्य देवे तो नवीन गलगंडको नष्ट करे।

अपराजितायोग

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः ॥ सर्पिषा नियताहारो गलगंडप्रशांतये ॥ ९ ॥

अर्थ-सपेद कोयलकी जडको पीस प्रातःकाल पीवे ऊपरसे शुद्ध गौका घी पीवे और पथ्यसे रहे तो गलगंड रोग नष्ट होय।

तिक्त अलाबूयोग।

तिक्तालाबूफले पक्कं सप्ताहमुषितं जलम् ॥ गलगंडं निहंत्याशु पानात्पथ्यानुशीलितम् ॥ १० ॥

अर्थ-सात दिनके वासी जलमें कडवी घीया डालके पकावे फिर थोडा २ इसको पीवे तो गलगंड रोग तत्काल दूर हो। इसपर पथ्य पदार्थ सेवन करे।

ग्रंथि।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः प्रदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥ वृत्तोन्नतं ग्रंथिमरुक्सशोफं कुर्वन्त्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ ११ ॥

अर्थ-वातादि दोष और मांस रुधिर ये मेदा और नसोंको दूषित कर गोल और ऊँची पीडारहित सूजनको प्रगट करे हैं उसको ग्रन्थी (गांठ) ऐसे कहते हैं।

वातग्रंथिकी चिकित्सा।

हिंसा सरोहिण्यमृताथ भार्ङ्गी स्योनाकबिल्वागुरुवाजिगंधा ॥ गोजीवपिष्टा सहतालपत्र्या ग्रंथौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ १२ ॥

अर्थ-हींस, कुटकी, गिलोय, भारंगी, अरलू, बेलगिरी, अगर, असगंध इनको गौके मूत्रमें पीसे और इसमें ताडका पत्ता और मिलाय लेवे और बादीकी गांठपर लेप करे।

पित्तग्रंथिकी चिकित्सा।

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ॥ द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम् ॥ १३ ॥

अर्थ-पित्तकी ग्रंथिमें जोंक लगाय रुधिर निकालना चाहिये तथा उसपर दूध और जलको मिलायके तरडा देवे. तथा दाख, अथवा ईखके रसमें हरडका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तकी ग्रन्थी दूर होय।

कफजन्यमें यत्न।

मधूकजंब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेच्च ॥ हितेषु दोषेषु यथा न पूर्वं ग्रंथौ भिषक्श्लेष्मसमुत्थितेषु ॥ १४ ॥

अर्थ-महुआ, जामन, कोह और बेत इनकी छालको पीसके गाढा २ लेप करे तथा दोषानुसार अन्य उपाय करने चाहिये।

पक्वग्रंथिका यत्न।

अमर्मजातं सममप्रपातं तत्पक्वमेवापहरेद्विचार्य ॥ देहस्थिते वाससि सिद्धकर्मा सद्यःक्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥ १५ ॥ शस्त्रेण चोत्पाट्य सुपक्वमाशु

प्रक्षालयेत्पथ्यतमैः कषायैः ॥ संशोधनैस्तं तु विशोधयेत्तु क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः ॥ १६ ॥

अर्थ–जो गांठ मर्मस्थलमें न हुई हो, समान होय, कहींसे दबी हुई न होय और यदि वह पक गई होय तो विचारपूर्वक चीरदेनी चाहिये। फिर जो सद्यःक्षतकी चिकित्सा लिखी उसके अनुसार घावके रोपणादि कर्म करे। तहां पकी हुई गांठको शस्त्रसे चीरा देकर दुष्ट मांसको निकाल लेवे फिर पथ्यतम (नीम बकायन) आदिके क्वाथसे धोय डाले फिर क्षार आदि और सहत घृत आदिसे संशोधन करे।

मेदोजन्यका यत्न।

सिद्धं च तैलं त्ववचारणीयं विडंगपाठारजनीविपक्वम्॥ मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धे कृत्वोपरिष्टाद्द्विगुणं पटांतम् १७

अर्थ–इसके पश्चात् मेदोजन्य गांठमें वायविडंग, पाढ, हलदी इनकरके पक्व करे तेलको लगावे तहां प्रथम तिलके कल्कसे लपेट देवे ऊपरसे उसके उस अंगसे दूनी कपडेकी पट्टीसे बांध देवे।

दंभ।

हुताशतप्तेन मुहुः प्रदद्याल्लोहेन धीमान्नववृद्धितायाम् ॥ प्रलिप्तदर्व्यात्त्वथ लाक्षया वा प्रतप्तया स्वेदनमस्य कार्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ–यदि नई गांठ प्रगट हुई होय तो लोहकी कलछीको गरम करके उस गांठकोदाग देना चाहिये अथवा लाखको गरम करके दाग देवे फिर इसको गरम कर बफारा देना चाहिये।

मेदोजन्यमें अन्य उपाय।

निपात्य वा शस्त्रमपाह्य मेदो दहेत्सुपक्वं त्वथवा विदार्य ॥ प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः सुवर्चलाद्यैर्हरितालमिश्रैः॥ १९॥ ससैंधवैः क्षारघृतप्रगाढैः क्षारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ॥ तैलं विदध्याद्धि करंजगुंजावंशावलेख्येंगुदमूत्रसिद्धम ॥ २० ॥ लिप्तं यवक्षारविडंगबीजगंधोपलैः स्यान्मसृणीकृतैर्यत् ॥ रक्तेन मिश्रैः सरटस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैतत् ॥ २१ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–अथवा मेदोजन्य गांठको शस्त्रसे चीरा देकर उसके भीतरकी मेदाको निकाल डाले, अथवा दाग देवे, या चीरा देकर राध रुधिरको निकाल शुद्ध जलसे धोय डाले, फिर सुवर्चलादि गण कि जिसमें हरताल मिली हो ऐसे पीसे हुए तिलोंकरके युक्त गोमूत्रसे उस व्रणका शोधन करे फिर सेंधानिमक, जवाखार, घी आदिसे शुद्ध करे, इसके बाद कंजा, घूँघची, बांसके अंकुर, इंगुदी (हिंगोट) इनके कल्क और गोमूत्रसे सिद्ध करे तेलसे लेपन करे। जवाखार, वायविडंग, गंधक डालके सबको बारीक घोट इसमें सरट (करकेंटे) के रुधिरको मिलाय इसका लेप करे तो अर्बुदरोग अवश्य दूर हो। यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा है।

वातार्बुदका यत्न।

वातार्बुदं क्षीरघृतांबुसिद्धैरुष्णैःसतैलैरुपनाहयेत्तु ॥ कुर्यात्तु मुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ॥ २२ ॥

अर्थ–वातजन्य अर्बुदरोग, घी, जल करके सिद्ध करे गरमागरम तेलसे उपनाहन स्वेद करनेसे तथा अन्य मुख्य उपनाहन कर्मोंके करनेसे तथा मांस और बेशवार (गरम मसाले-

आदिको डालके सिद्ध करे पदार्थोंसे उपनाहन स्वेद करे।

स्वेदं विदध्यात्कुशलश्च नाड्या शृंगेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्लवर्गैः सिद्धं सिताख्यां त्रिवृतां पिबेद्वा ॥ २३ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त उपनाहनकर्म कुशल वैद्य नाडीयंत्रद्वारा करे कि जिससे रोगके ठिकाने पसीना आवे अथवा सिंगी लगायके वातार्बुदका अधिक रुधिर निकाले। अथवा वातनाशक यूषोंको तथा दूध और अम्लवर्गकरके सिद्ध यूष पीवे, अथवा चीनी और निशोथ औटायके पीवे।

पित्तजन्यमें यत्न।

स्वेदोपनाहा मृदुवस्तुपथ्याः पित्तार्बुदे क्काथविरेचनं च ॥ विकृष्य सोदुंबरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिंपेत्॥२४॥

अर्थ-पित्तार्बुदमें उपनाहन स्वेद, नरम पथ्य दस्त लानेवाले क्काथ आदिका उपयोग करे, तथा गूलरका और गोजी पदार्थके पत्तेका रस निकाल उसमें सहत मिलाके पित्तजन्य अर्बुद रोगमें लेप करे।

कफजन्यमें यत्न।

शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे च रक्ते च सिक्ते स्रवतेऽर्बुदं यत् ॥ मेदःकृते मांसकृतेऽपि कार्यं व्रणोदितं सर्वचिकित्सितं च ॥ २५ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां गंडमालापचीगलगंडग्रंथ्यर्बुदचिकित्सा नाम सप्तपंचाशस्तरंगः ॥ ५७ ॥

अर्थ-कफवाले अर्बुदरोगीको प्रथम वमन बिरेचनादिसे शुद्ध करके उसके रुधिरको निकाले और जो अर्बुद टपकता हो तथा मेदोजन्य अर्बुद और मांसकृत अर्बुद रोगमें भी सर्व व्रणोक्त उपचार करने चाहिये।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां गंडमालापचीगलगंडग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सावर्णनं नाम सप्तपंचाशस्तरंगः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशस्तरंगः।

श्लीपद।

श्लीपदः पादशोथः स्यान्मेदःकफसमुद्भवः ॥ नासाकर्णाक्षिहस्तादावप्याहुः केऽप्यमुं पुनः ॥ १ ॥

अर्थ-मेद और कफसे प्रगट पैरकी सूजनको श्लीपद रोग कहते हैं। कोई कोई वैद्य नाक, कान, नेत्र, हाथ आदिमें भी श्लीपद रोग होता है ऐसा कहते हैं।

श्लीपदकी चिकित्सा।

धत्तूरैरंडवर्षाभूनिर्गुंडीशिग्रुसर्षपैः ॥ प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ २ ॥

अर्थ-धतूरेके पत्ते, अंडकी जड, पुनर्नवा, निर्गुंडी, सहँजनेकी छाल और पीली सरसों इनको पीस लेप करे तो बहुत दिनका दारुण श्लीपद नष्ट होय।

कृष्णादिमोदक।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम्॥ विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य च पलद्वयम्। मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हंति दुस्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ-पीपल १ तोला, चित्रक २ तोले,

दंती ४ तोले लेवे, हरडकी छाल २० पल ले, पुराना गुड ८ तोले सबको कूट पीस सहतसे गोली बनालेवे, इसके भक्षण करनेसे घोर श्लीपद दूर होय।

संपिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ॥ प्रलेपाच्छ्लीपदं हंति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ ४ ॥

अर्थ--रूपिका रूखडीकी जडके वल्कलको कांजीमें पीसके लेप करे तो जडबद्ध भी घोर श्लीपद दूर होय।

पिंडारकयोग।

पिंडारकतरुसंभवशिफा जयति सर्पिषा पीता ॥ श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जंघायाम् ॥ ५ ॥

अर्थ-पिंडारक वृक्षकी छालको बारीक पीसके गौके घृतके साथ पीवे तो श्लीपद रोग दूर होय अथवा जंघामें सूतके बाँधनेसे निश्चय उग्र श्लीपद रोग दूर होवे।

श्लीपदमें लेप।

हितश्च लेपने नित्यं चित्रकी देवदारु च ॥ सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ६ ॥

अर्थ-चित्रक और देवदारुका लेप अथवा पीली सरसों और सहँजनेका कल्क गोमूत्रमें पीस गरम कर सुहाता सुहाता लेप करनेसे श्लीपद रोग दूर होवे।

विडंगादि तैल।

विडंगमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ॥ भद्रदार्वेलकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च ॥ तैलं पक्कं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ७ ॥

अर्थ-वायविडंग, काली मिरच, आकके पत्ते, सौंठ, चित्रक, देवदारु और एलुआ तथा सब निमकोंमें पक्क करे तेलको सिद्ध करके पीवे तो श्लीपद रोग दूर होय।

साधारण क्रिया।

यवान्नं कटुतैलं च कूर्ममांसं च योजयेत् ॥ श्लीपदानां प्रशांत्यर्थमशांते दाहमग्निना ॥ ८ ॥

इति वृंदात् ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां श्लीपदचिकित्सा नामाष्टपंचाशस्तरंगः ॥ ५८ ॥

अर्थ-जौ, कडवा तेल, कछुवेका मांस इन पदार्थोंको श्लीपद रोगीके वास्ते देना चाहिये। इन सब कर्मोंके करनेपर भी यदि श्लीपद न शांत होय तो उसको अग्निसे दाग देना चाहिये। यह वृंदग्रंथमें लिखा है।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां श्लीपदचिकित्सावर्णनं नामाष्टपञ्चाशस्तरंगः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमस्तरंगः।

विद्रधि।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेन क्षतजेन च ॥ गुल्मवद्विद्रधिर्ज्ञेयः स्त्रीस्तने रक्तविद्रधिः ॥ १ ॥

अर्थ-वातसे, पित्तसे, कफसे, संनिपातसे, घावसे और चोटसे एवं स्त्रियोंके स्तनमें रुधिरसे गुल्मके समान विद्रधिरोग होता है इस प्रकार विद्रधिरोग छः प्रकारका है।

विद्रधिरोगका यत्न।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव वि-

द्रधौ ॥ मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २ ॥

अर्थ–सर्व प्रकारकी बिद्रधियोंमें जोंकका लगाना हितकारी है । हलका जुलाब, हलके अन्नका भोजन और वह पित्तजन्य होय तो स्वेदन ये कर्म सर्व विद्रधियोंमें करने चाहिये ।

वातविद्रधि ।

वातघ्नौषधिकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः॥ सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ३ ॥

अर्थ–वातजन्य विद्रधिमें वातनाशक औषधोंके कल्कोंको वसातैल और घृतमें सानके सुहाते सुहाते गरमागरम लेप करना चाहिये ।

अपक्क विद्रधि ।

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः ॥ यवगोधूममुद्गैश्च स्विन्नपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ विलीयते क्षणेनैवमपक्कश्चैव विद्रधिः ॥ ४ ॥

अर्थ–सहँजनेकी जडको मिलाय जौ, गेहूं, मूँग इनको उबालकर और पीसकर लेप लरे तो विना पकी विद्राधि उसी समय बैठ जावेगी ।

पित्तजन्य विद्रधि ।

पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः सारिवायुतैः ॥ ५ ॥ प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा वयस्योशीरचंदनैः ॥ पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृताकल्कसंयुतम् ॥ ६ ॥

अर्थ–खाँड, खील, मुलहटी, सारिवा इनको पीसके पित्तजन्य विद्राधिमें लेप करे । अथवा खस और चंदनको दूधमें पीस लेप करे । अथवा त्रिफलेके क्वाथमें निसोथका कल्क मिलाके पीवे तो पित्तजन्य विद्राधि दूर होय ।

कफजन्य विद्रधि ।

इष्टिकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांसुभिः॥ गोमूत्रपिष्टैः सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ७ ॥

अर्थ–ईट, बालू, लोह, गोबर, भुसका, तूषा और धल इनको गोमूत्रमें पीसके बार २ कफकी विद्रधिको बफारा देवे ।

दूसरा यत्न ।

सोभांजनस्य निर्यूहो हिंगुसैंधवसंयुतः॥ अचिराद्विद्रधिं हंति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ ८ ॥

अर्थ–सहँजनेके यूषमें हींग सैंधानिमक, मिलाय प्रातःकालमें नित्य पीवे तो कफकी विद्रधि बहुत शीघ्र दूर होय ।

अपक्व विद्रधि ।

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च ॥ जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ९

अर्थ–सफेद सांठकी जड और बरनेकी जड इनको जलमें औटाय काढा करके पीवे तो अपक्क विद्रधि नष्ट होय ।

उपायान्तर ।

कासीससैंधवशिलाजतुहिंगुचूर्ण मिश्रीकृतो वरुणवल्कलजः कषायः ॥ अभ्यंतरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं नॄणामयं जयति विद्रधिमुग्रशोफम् ॥ १० ॥ अपक्के त्वेतदुदितं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ११ इति श्रीयोगतरंगिण्यां विद्रधिचिकित्सा नामैकोनषष्टितमस्तरंगः ॥ ५९ ॥

अर्थ–कासीस, सेंधानिमक, शिलाजीत और हींग इनके चूर्णको बरनेके बक्कलके काढेमें मिलायके पिलावे तो यह भीतरकी जो विद्रधि

पकी नहीं हो परंतु फैल गई होय उसकी सूजनको दूर करे। यह सब अपक्क विद्रधियोंके यत्न कहे हैं। यदि विद्रधि पक जाय तो उसकी व्रणरोगके समान दारण शोधन रोपणादि क्रिया करनी चाहिये।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां विद्रधिचिकित्सावर्णनं नामैकोनषष्टितमस्तरंगः॥५९॥

षष्ठितमस्तरंगः ।

व्रणशोथ ।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ दोषैः पृथक्समस्तैस्तै रक्तजागंतुजौ च षट् ॥ १ ॥

इति रुग्विनिश्चयात् ॥

अर्थ–देहके किसी एक भागमें सूजनका प्रगट होना यह व्रण (फोडा) होनेका पूर्वरूप है, तहां वात, पित्त, कफ, संनिपात, रक्तज और आगंतुज इन भेदोंसे व्रणरोग छः प्रकारका है।

व्रणशोथचिकित्साक्रम ।

आदौ विम्लावनं कुर्याद्वितीयमथ सेचनम् ॥ तृतीयमुपनाहं च चतुर्थं पाटनक्रिया ॥ २ ॥ पंचमं शोधनं चैव षष्ठं रोपणमिष्यते ॥ एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ ३ ॥

अर्थ–व्रण होतेही प्रथम विप्लावन विधि करे, फिर सेचन (रुधिर निकालना), तीसरे उपनाहन (बफारा), चौथे चीरा देना, पंचम शोधन, छठे रोपण और सातवें सवर्ण करना ये सात क्रम व्रणके नाश करनेवाले हैं।

विम्लावन ।

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाडचा ततः शनैः ॥ विम्लावनार्थं गृह्णीयात्तलेनांगुष्ठकेन वा ॥ शोथे महति संरब्धे वेदनावति वा व्रणे ॥ ४ ॥

अर्थ–प्रथम व्रणको घृतादिसे चुपडे स्वेदन करे फिर बाँसकी नलीसे धीरे २ पकडे अथवा हथेली और अंगूठेसे विप्लावनके वास्ते पकडे। जिस फोडेमें सूजन भारी हो और जोरदार हो तथा उसमें पीडा होती हो।

सेचन (रुधिरमोक्ष) ।

यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः॥ सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ ५ ॥ एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ॥ रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे याति विक्रिया ॥ ६ ॥

अर्थ–जो फोडा लेपन, स्वेदन, सेक और अपतर्पण करनेसे भी न नष्ट होय वहभी रुधिरके निकालनेसे तत्काल नष्ट हो जाता है। व्रणकी सब चिकित्सा एक तरफ और रुधिरका निकलना एक तरफ है. इसका यह कारण है कि, रुधिरके बिगडनेसे ही फोडा आदि विकार होते हैं अतएव उस रुधिरके निकालनेसे वह रुधिरविकार शांत होजाता है।

तुंबीआदि लगानेका फल ।

हस्तयष्टांगुलं तुंबी शृंगं च द्वादशांगुलम्॥ शिरा सर्वांगजं रक्तं जलौका ग्रंथिमुद्धतम् ॥ ७ ॥ तुंबीं कफोत्थे वातोत्थे

श्रृंगीं पित्ते जलौकसः ॥ संनिपातोत्थिते नाडीं बहुदोषे प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–तूंबी ८ अंगुल तकके रुधिरको खींचके निकालती है, शिंगी १२ अंगुलके और फस्त खोलना सर्व देहके रुधिरको और जोंक बढी हुई गांठके रुधिरको निकाल देती है । कफजन्य फोडेमें तुंबी लगाना, वातजन्यमें शिंगी, पित्तजन्यमें जोंक और संनिपातके फोडेमें नली लगायकर अत्यंत बढे दोषोंको खींचना चाहिये ।

व्रणलेप ।

मातुलुंगाग्निमंथौ च सुरदारु महौषधम् ॥ अहिंसा चैव रास्ना च प्रलेपेनाशु शोथजित् ॥ ९ ॥

अर्थ–बिजौरकी छाल, अरनी, देवदारु, सोंठ, अहिंस्रा और रास्ना इन सबका गरम लेप करे तो तत्काल सूजनको नष्ट करे ।

पित्तजन्यमें यत्न ।

दूर्वानलकमूलं च मधुकं चंदनं तथा ॥ शीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ १० ॥

अर्थ–दूब, नरसलकी जड, मुलहटी, चंदन इन सब औषधोंको पीस शीतल लेप करे तो पित्तकी सूजन नष्ट होय ।

कफजन्यमें यत्न ।

अजगंधाऽश्वगंधा च कालासरलया सह॥ एकैषिका च श्रृंगी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ११ ॥

अर्थ–बनतुलसी, असगंध, काली सारिवा, सरल, एक एषिका और काकडासिंगी इनका लेप कफकी सूजनको नष्ट करता है ।

लेपके गुण ।

आलेपः पूतिमांसानां मांसस्थानमरोहताम् ॥ १२ ॥

अर्थ–सडे हुए मांसको निकालकर शुद्ध करे है और जो घाव मांसमें है परंतु जिनका रोपण नहीं होता उनको यह संरोपणलेप रोपण करे है ।

संरोपण लेप ।

लेपः संरोपणः कार्यस्तिलजो मधुसंयुतः ॥

अर्थ–तिलोंको पीस उसमें सहत मिलायके व्रणपर लेप करे यह रोपणकर्त्ता लेप है ।

शोथनिवारण लेप ।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिवारणः परः ॥ १३ ॥

अर्थ–बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेत ये पञ्चवल्कलसंज्ञक हैं इनके वक्कलको जलमें पीस घी मिलाय लेप करनेसे व्रणशोथ दूर होय ।

लेपके नियम ।

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥ न च पर्युषितं शुष्कं न वा संधारयेत्कचित् ॥ १४ ॥

अर्थ–रात्रिमें लेप न करे । यदि लेप करा हुआ गिर पडे तो फिर न करे । बासी औषध अर्थात् बहुत देरकी पिसी हुई औषधका लेप न करे । यदि लेप सूख जावे तो फिर उसको धारण न करे ।

उपनाहनमें यत्न ।

सतिलाः सातसीबीजा दध्यम्लसक्तु-

पिंडिकाः ॥सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरुपनाहने ॥ १५ ॥

अर्थ-तिल, अलसीके बीज, दही, खटाई, सत्तू, खल, कूठ और निमक इनको मिलायके उपनाहनसंज्ञक लेपमें लगाना चाहिये ।

पाचन ।

शणमूलकशिग्रूणां फलान्यसितसर्षपाः ॥ सक्तवः किण्वमुष्णानि द्रव्याण्येतानि पाचने ॥ १६ ॥

अर्थ-शन, मूली, सहिजना इनके फल, सरसों, सत्तू, और खल इनका गरम २ लेप पाचन अर्थात् व्रणके पचानेके वास्ते करे ।

पाचनभेदन लेप ।

हस्तिदंतं जले घृष्टं बिंदुमात्रप्रलेपनात्॥ अत्यर्थकठिने चापि शोथे पाचनभेदकम् ॥ १७ ॥

अर्थ-हाथीदांतको जलमें घिसके उसका बूँद अत्यंत कठिन सूजनपर करे तो सूजनको पचावे और फोड देवे ।

दारुण लेप ।

चिरबिल्वाग्निकौ दंतीचित्रकौ हयमारकः ॥ कपोतकंकगृध्राणां पुरीषाणि च दारणे ॥ १८ ॥

अर्थ-कंजा, चित्रक, दंती, चित्रक और कनेर अथवा पिडकिया, कंक, कबूतर, गीध इनकी बीटका लेप दारण अर्थात् फोडाके फोडनेके वास्ते करे ।

प्रक्षालनार्थ काथ ।

ततः प्रक्षालने काथः पटोलीनिंबपत्रजः॥ अविशुद्धे विशुद्धे वा न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ १९ ॥

अर्थ-पटोलपत्र और नीमके पत्तोंका काथ व्रणके धोनेके वास्ते कहा है । और न्यग्रोधादि गण (जो सुश्रुतमें लिखा है) उसकी छालका काथ दूषित व्रण अथवा शुद्ध व्रण हो दोनोंके धोनेमें हितकारी है ।

आलेपः पूतिमांसानां मांसस्थानामरोहणम् ॥ कल्कः संरोहणः कार्यस्तिलानां मधुनाऽन्वितः ॥ २० ॥

अर्थ-सडे मांसवाले घाव और जो नासमें हुए घाव नहीं भरते उनके भरनेको तिलके कल्कमें सहत मिलाके लेप करे ।

संशोधन लेप ।

निंबपत्रमधुभ्यां तु यतः संशोधनः परः॥२१॥निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेसरी ॥ २२ ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंका कल्क और सहत मिला लेप व्रणका शोधन करता है. अथवा नीमके पत्ते, तिल, दंती, निसोथ, सेंधानिमक और सहत इनको एकत्र पीसकर लेप करे। यह दुष्टव्रणके नष्ट करनेमें सिंहके समान है और सब शोधनोंमें श्रेष्ठ है ।

व्रणमें धूप ।

निंबपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसैन्धवैः ॥ धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकंडूरुजापहम्२३

अर्थ-निंबके पत्ते, वच, हींग, घी, सेंधानिमक इन सबको बारीक पीस धूनी देनेसे व्रणके कृमि, राक्षस नष्ट हों तथा घावकी खुजली और पीडाको शांत करे ।

अग्निदग्ध व्रणमें यत्न ।

अग्निदग्धे व्रणे सम्यक्प्रयुंजीत चिकि-

त्सितम् ॥ पित्तविद्रधिवीसर्प्पशमनं लेपनादिकम् ॥ २४ ॥

अर्थ-अग्निके जलनेसे जो घाव होगया होय उसमें पित्तविद्रधिमें जो चिकित्सा कही है तथा विसर्पमें जो शमन लेपनादि कहे हैं सो करे ।

धूपांतर ।

वाताभिभूतान्सर्वांश्च धूपयेदुग्रवेदनान् ॥ यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ॥ २५ ॥ श्रीवासगुग्गुल्वगुरुशालनिर्यासधूपिताः ॥ कठिनत्वं व्रणा यांति नश्यंत्यस्रावववेदनाः ॥ २६ ॥

अर्थ-जो व्रण अधिक वातसंबंधी आर जिनमें घोर पीडा होती है उन सब व्रणोंका चीढ, गूगल, अगर और राल, इनकी धूनी देनी चाहिये, इस धूनीसे व्रण कठोर हों और जिनमें स्राव और पीडा होती होय वह दूर हों ।

व्रणकृमिपर ।

करंजारिष्टनिर्गुंडीरसो हन्याद्व्रणकृमीन् । लशुनेनाथ वा दद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥ २७ ॥

अर्थ-कंजा नीमकी छाल और निर्गुंडी इनका रस व्रणके कृमियोंको नष्ट करे अथवा पूर्वोक्त कंजा आदि तीनों वस्तुओंको लहशन मिलाके लेप करे तो घावकी कृमि नष्ट हों‌य ।

त्रिफलागूगलके गुण ।

ये क्लेदपाकस्रुतिगंधवंतो व्रणा महांतः सरुजः सशोथाः ॥ प्रयांति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शांतिं त्रिफलारसेन२८

अर्थ-जो घाव क्लेद, पाक, चुचानेवाले, दुर्गन्धयुक्त, तथा पीडा और सूजनयुक्त बडे भारी हैं वे गूगलमिले त्रिफलेके रसके पीनेसे शांत होते हैं ।

अमृताद्य गूगल ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुकृमिघ्नानाम् ॥ समभागानि रजांसि कौशिकभागः समः सर्वैः ॥ २९ ॥ गोघृतबद्धां गुटिकां खादेदनुवासरं सदक्षमिताम् ॥ जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरश्वयथुपांडुरोगान्वै ॥ ३० ॥

अर्थ-गिलोय, पटोलकी जड, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, ये समान भाग लेवे और सबकी बराबर शुद्ध गूगल ले, गूगलकी विधिसे गौके घृतसे गोली बनाय ले, इसमेंसे नित्य प्रति १ तोला भक्षण करे, तो सर्व प्रकारके घाव, वातरक्त, गोलेका रोग, उदररोग, सूजन और पांडुरोग इन सबको यह अमृतादि गूगल दूर करे ।

जात्यादि घृत ।

जातीनिंबपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजः समैः ॥ सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गंभीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यंति शुष्यंति च ॥ ३१ ॥

अर्थ-चमेलीके पत्ते, नीम, पटोलपत्र, कुटकी, दारुहलदी, हलदी, सारिवा, मँजीठ, हरड, मोम, लीलाथोथा, मुलहटी, कंजाके बीज, ये समान भाग ले इनके कल्कसे घृत सिद्ध करे, इससे छोटे मुखवाले, मर्ममें होनेवाले, चुचानेवाले, गंभीर, पीडावाले और नाडीव्रण ऐसे सर्व प्रकारके घाव शुद्ध होते और सूखते हैं ।

स्वर्जिकादि घृत ।

स्वर्जिका च यवक्षारः कंपिल्लमहिछंदिका ॥ टंकणं श्वेतखदिरं तुत्थं चूर्ण च गोघृते ॥ ३२ ॥ सर्व समांशं संचूर्ण्य मर्द्दयेत्प्रहरं दृढम् ॥ स्वर्जिकादिघृतं चैव सर्वव्रणविशोधनम् ॥ पूरणं कृमिकंडूघ्नं शीघ्रं पाटवकृत्तथा ॥३३॥

अर्थ–सज्जी, जवाखार, कबीला, सांपकी कांचली, सुहागा, सफेद खदिर, लीलाथोथा इनके चूर्णको गौके घीमें डालके १ प्रहर खरल करे यह स्वर्जिकादि घृत सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करे और भरे, तथा फोडोंके कृमि खुजलीको नष्ट करे तथा शीघ्र परिपूर्ण करनेवाला है।

सवर्णकर लेप ।

मनःशिला समंजिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ॥ प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ ३४ ॥

अर्थ–मनसिल, मँजीठ, लाख, हलदी, दारुहलदी इनके चूर्णमें घृत और सहत मिलायके घोटे इसके लगानेसे फोडेकी गूंथका वर्ण देहके वर्णके समान होय ।

पुनर्नवाष्टकम् ।

पुनर्नवानिंबपटोलशुंठीतिक्तानिशादार्व्यभयाकषायः ॥ सर्वांगशोफोदरकासशूलश्वासान्वितं पांडुगदं निहंति ॥३५॥

अर्थ–पुनर्नवा, नीम, पटोलपत्र, सोंठ, कुटकी, हलदी, दारुहलदी और हरडकी छाल, इनका क्वाथ सर्वांगसूजन, उदर, खांसी, शूल, श्वास युक्त पांडुरोगको नष्ट करे ।

दूसरा लेप ।

अयोरजः सकासीसं त्रिफलाकुसुमानि च ॥ प्रलेपः कुरुते कार्ष्ण्यं सद्य एव नवत्वचि ॥ ३६ ॥

अर्थ–लोहचूर्ण, कासीस, त्रिफला, धायके फूल इनको पीसके लेप करनेसे तत्कालकी आई हुई त्वचाको तत्काल काली करे ।

तीसरा लेप ।

कालीयकफलाम्रास्थिहेमकालासुरोत्तमैः लेपः सगोमयरसस्त्वक्सवर्णकरः परः ३७

अर्थ–आमकी गुठली, नागकेशर, सारिवा, देवदारु, इनके चूर्णमें गोबरका रस मिलायके घोटे इसका लेप देहकी सवर्णता करनेवाला है ।

सद्योव्रणचिकित्सा ।

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ॥ यष्टीमधूकयुक्तेन किंचिदुष्णेन सर्पिषा ३८

अर्थ–जैसे घिस जानेसे, दबाजाने आदिसे जो तत्काल घाव होजाता है उसको वैद्यजन सद्योव्रण कहते हैं यदि उसमें पीडा होती हो तो उसपर मुलहटीमिले किंचित् गरम घीका तरडा देवे ।

आगंतुव्रण ।

बुद्ध्वागंतुं व्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ शीतां क्रियां प्रयुंजीत रक्तपित्तोष्मनाशिनीम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–वैद्य आगंतु (अकस्मात् चोट लगनेसे होनेवाले) व्रणको जान उसमें घृत और सहत मिलाके लगावे और रुधिर और पित्तकी गरमीको शांत करनेवाली सर्व शीतल क्रिया करे ।

आमाशय और पक्वाशयस्थ रुधिरका यत्न ।

आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते पक्वाशयस्थे दातव्यं रेचनं च समासतः ॥ ४० ॥

अर्थ-यदि चोटका रुधिर आमाशयमें संचित होय तो वमन कराना उसके वास्ते हित है और पक्काशयमें रुधिर जमगया होय तो उसको जुल्लाब देवे ।

कोष्ठस्थ रुधिर ।

क्वाथो वंशत्वगेरंडश्वदंष्ट्राश्मभिदाकृतः॥ सहिंगुसैंधवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥ ४१ ॥

अर्थ-बांसकी छाल, अंडकी छाल, गोखरू, पाषाणभेद इनका क्वाथ कर, हींग और सैंधानिमक डालके पीवे तो कोठेमें जमेहुए रुधिरको निकाले ।

पथ्य ।

यवकोलकुलत्थानां निस्नेहेन रसेन वा ॥ भुंजीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैंधवसंयुताम् ॥ ४२ ॥ इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ॥ सप्ताहात्परतः कार्याः शारीरव्रणवत्क्रियाः ॥ ४३ ॥

अर्थ-जौ, बेर, कुलथी इनके चिकनाई रहित रस, यूष आदि अन्न वा यवागूमें सेंधानिमक डालके पीवे यह सद्योव्रणमें सात दिन पर्यंतकी विधि कही है । और सात दिनके पश्चात् शारीरव्रणके समान सब शोधन रोपणादि विधि करे ।

व्रणमें कुपथ्यसे रोग ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥ तौ च रुक्च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ४४ ॥

अर्थ-व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन होय । रात्रिमें जागनेसे उसमें लालरंग होय । दिनमें सोनेसे दर्द प्रगट होय । और व्रणमें स्त्रीसंग करनेसे अवश्य मृत्यु होय ।

विपरीतमल्लतैल ।

सिंदूरकुष्ठविषहिंगुरसोनचित्रबाणांघ्रिलांगलिककल्कविपक्वतैलम्॥ प्रासादमंत्रयुतहुंकृतनुन्नफेनः ॥ छिन्नव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः॥४५॥खड्गाभिघातगुरुगंडमहोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ॥ एतानि हन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ४६॥ इति चक्रदत्तात् ॥

अर्थ-सिंदूर, कुठ, विष, हींग, लहशन, चित्रक, लघुपंचमूलकी पांच औषध और कलियारी इनका कल्क डालके तैल सिद्ध करे फिर प्रासादमंत्रमें हुंकार लगायके उस तेलके झागोंको विटाल दे तो यह व्रणनाशक विपरीतमल्ल तैल बने । यह तेल तलवारके घावको, बडीभारी गंडमाला, घोर उपदंश, नाडीव्रण, व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ, खुजली, यथेष्ट शयन, आसन, और भोजन करनेवाले पुरुषके इन रोगोंको दूर करे । यह चक्रदत्तग्रंथमें लिखा है ।

भग्नरोग ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतवारिणा ॥ पंकेनालेपनं कुर्याद्बंधनं च कुशान्वितम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-प्रथम टूटे हुए स्थानको शीतल जलकी धार देकर शीतल करे । फिर कीचका लेप करे फिर उस कीचके ऊपर कुशा लपेट कर बाँध देवे।

लेप ।

आलेपनार्थं मंजिष्ठा मधुकं रक्तचंद-

नम् ॥ शतधौतघृते मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ ४८

अर्थ–मँजीठ, महुआ और लाल चंदन इनको पीस सौ बार धुले घीमें मिलावे तथा इसीमें शाली चावलका चून मिलायके उस टूटे हुए स्थानको बाँध देवे ।

सचन

न्यग्रोधादिकषायस्तु सुशीतः परिषेचने ॥ पंचमूलीविपक्वं च क्षीरं दद्या-त्सवेदने ॥ ४९ ॥

अर्थ–न्यग्रोधादि क्काथको शीतल करके तरडा देवे । यादि उस टूटेहुए स्थानमें अधिक पीडा होती होय तो पंचमूलके क्काथमें दूध परिपक्व करके तरडा देवे ।

भग्नका अन्य यत्न ।

मूलं शृगालच्छिन्नायाः पीत्वा मांस-रसेन तु ॥ तच्चूर्णीकृत्य सप्ताहादस्थि-भंगं व्यपोहति ॥ ५० ॥

अर्थ–स्यारसिंगीकी जडके चूर्णको मांस-रसके साथ ७ दिन पर्यंत पीवे तो टूटी हुई हड्डी जुडजाय ।

दूसरा यत्न ।

बिल्वकर्णं मधुयुतमस्थिभंगे त्र्यहं पिबेत् ॥ पीत्वा चास्थि भवेत्सम्यग्व-ज्रसारनिभं दृढम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–बिल्वकर्णके चूर्णको सहतमें मिलाके तीन दिन चाटे तो टूटी हड्डी वज्रके समान दृढ होय ।

भग्नरोगमें यत्न ।

लवणं कटुकक्षारमम्लं मैथुनमात-पम् ॥ व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षा-न्नमेव च ॥ ५२ ॥

अर्थ–निमक, मिरच आदि चरपरे पदार्थ, खारा पदार्थ, खटाई, मैथुन, धूपमें डोलना, दंड, कसरत, और रूखे पदार्थोंका भोजन यह भग्न-रोगी (जिसकी हड्डी आदि टूट गई हो उस) को कदापि सेवन नहीं करनी चाहिये ।

नाडीव्रण ।

नाडीनां गतिमान्विष्य शस्त्रेणोत्पाट्य कर्मवित् ॥ सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ ५३ ॥

अर्थ–नाडी अर्थात् नासूरका घाव जाननेवाला वैद्य उसको शस्त्रद्वारा चीरा देकर फिर इसकी सब चिकित्सा शोधन रोपणादिक व्रणके समान करैं ।

वात पित्त कफ और शल्य जन्यका यत्न ।

नाडीं वातकृतां साधुपाटितां प्रलेपये-द्भिषक् ॥ प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ५४ ॥ पैत्तिकीं तिलमंजिष्ठानागदंतीनिशाद्वयैः ॥ श्लै-ष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वानिकुंभारिष्ट-सैंधवैः शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपये-त्पूयशोधनैः ॥ ५५ ॥

अर्थ–वातजन्य नासूरको उत्तम चीरा देकर फिर गोमाके फल और तिलको जलसे बारीक पीसके लेप करे । पित्तजन्यको तिल, मँजीठ, नागदौन, हलदी और दारुहलदीको जलमें पीस लेप करे । कफजन्य नाडीव्रणको तिल, मुलहटी, निसोथ, नीम और सेंधानिमक इनको एकत्र पीसकर लेप करे । तीर आदिके शल्यसे जो नाडीव्रण प्रगट हुआ होय उसको तिल, सहत और घृत तथा राधके निकालनेवाले औषधोंसे लेप करे ।

सूत्रवार्ति ।

आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षाद्रसंयुता ॥ सूत्रवार्तिर्व्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी ॥ ५६ ॥

अर्थ-अमलतास, हलदी इनके चूर्णको घृत और सहतमें सानके इसमें कच्चे सूतकी वार्ति भिगोयके नासूरके भीतर रखनेसे उसकी गतिको रोक दे और उस घावका शोधन करे ।

दूसरी वार्ति ।

घोंटाफलत्वङ्मदनाफलानि पूगस्य च त्वग्लशुनं च मुख्यम् ॥ स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैष कल्को वर्तीकृतो हंत्यचिरेण नाडीम् ॥ ५७ ॥ वर्त्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं च ॥ दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हंति ॥ ५८ ॥

अर्थ-बेरके फलकी छाल मैनफल, सुपारीकी छाल, लहसन, थूहरका दूध और आकका दूध इनके साथ पूर्वोक्त बेर आदिके कल्कको मिलायके कच्चे सूतकी बत्ती भिगोय नासूरमें रक्खे तो दूर होय ।

अथवा सहतमें और सैंधानिमकमें. बत्तीको भिगोयके नासूरमें रक्खे तो नाडीव्रण दूर होय । अथवा जो दुष्टव्रणोंके वास्ते तेल लिख आये हैं उनके लगानेसे तत्काल नाडीव्रण दूर होय ।

सिंधूत्थादि वार्ति ।

जात्यर्कशंपाककरंजदंतीसिंधूत्थसौवर्चलयावशूकैः ॥ वार्त्तिः कृता हंत्याचिरण नाडीं स्नुक्क्षीरलिप्ता सह सैंधवेन ॥ ५९ ॥

अर्थ-चमेली, आक, अमलतास, कंजा, दंती, सैंधानिमक, संचरानिमक और जवाखार इनको बारीक पीसे फिर सेंधानिमक और थूहरका दूध मिलाय बत्ती लपेटके नासूरमें रखनेसे नासूर दूर हो ।

कृशदुर्बलादिकोंका यत्न

कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रितापि च ॥ क्षारसूत्रेण तां छिंद्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ६० ॥

अर्थ-जो प्राणी कृश (लटेहुए), दुर्बल और डरनेवाले हैं, उनके मर्माश्रित नाडीको भी क्षार सूत्रसे काटे किंतु शस्त्रसे नहीं चीरना चाहिये ।

सप्तांग गूगल ।

गुगुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैश्चाज्ययोजितैः ॥ नाडीं दुष्टव्रणं चापि जयेदपि भगंदरम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-गूगल, हरड, बहेडा, आँवला, सौंठ, मिरच, पीपल ये सब समान भाग लेवे इनको घृतमें मिलाके सेवन करे तो नासूरका घाव दुष्टव्रण और भगंदरको दूर करे ।

निर्गुडीतैल ।

समूलपत्रां निर्गुडीं पीडयित्वा रसं हरेत्॥ तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ६२

इति श्रीयोगतरंगिण्यां शोथव्रणसद्योव्रणभग्ननाडीव्रणाचिकित्सा नाम षष्टितमस्तरंगः ॥ ६० ॥

अर्थ-जड पत्ते सहित निर्गुडीको कुचलके कपडेसे रस छान ले इसको तेलमें डालकर सिद्ध करे तो यह तेल नाडीव्रण दुष्टव्रणको नष्ट करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां शोथव्रणसद्योव्रणभग्ननाडीव्रणचिकित्सावर्णनं नाम षष्टितमस्तरंगः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमस्तरंगः ।

भगंदर ।

गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटकार्त्तिकृत् ॥ भिन्नो भगंदरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥

अर्थ–गुदाके समीप दो अंगुलके भीतर पीडा करनेवाली फुंसी प्रगट हों फिर उन्हीं फुंसियोंके फूट जानेसे भगंदर कहलाता है, वह पांच प्रकारका है ।

भगंदरके पांच भेद ।

वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः सन्निपाततः ॥ उन्मार्गगः पंचमः स्यादेवं पंचविधो मतः ॥ २ ॥

अर्थ–१ बादीसे २ पित्तसे ३ कफसे ४ संनिपातसे और पांचवाँ उमार्गग इस प्रकार भगंदर रोग पांच प्रकारका है ।

भगंदरका यत्न ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्यादौ विशोधयेत् ॥ रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ ३ ॥

अर्थ–गुदाकी सूजनको प्रथम सुखायके फिर उसका शोधन करे फिर जिस प्रकार वे फुंसिया पकने न पावें इस प्रकार रुधिर निकाल डाले ।

अन्यप्रयोग ।

खररुधिरसमेतं भूलतायाःशरीरं दृषदि सहितमस्थ्ना सारमेयस्य पिष्टम् ॥ भवति समुपलेपादाशु भागंदरीणामपि विषमतराणामापदां नाशहेतुः ॥ ४ ॥

अर्थ–कैंचुएको कुत्तेकी हड्डीके साथ गधेके रुधिरमें पीसके लेप करे तो यह घोर भगंदरको नष्ट करे ।

लेप ।

वटपत्रेष्टिकाशौंडीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ॥ सुपिष्टाः पिटकावस्थे लेपः शस्तो भगंदरे ॥ ५ ॥

अर्थ–बडके पत्ते, ईंट, पीपल, गिलोय और पुनर्नवा इनको बारीक पीस भगंदरपर लेप करे तो भगंदर दूर होय ।

अभिन्नपिटकाओंका यत्न ।

पिटकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ॥ कर्म कुर्याद्विरेकांतं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ६ ॥

अर्थ–विना पकी भगंदरकी पिडकाओंपर अपतर्पण पूर्वक विरेचन कर्म पर्यंत सब विधि करनी चाहिये । अब आगे जो पिडका फूट गई हों उनकी चिकित्सा कहते हैं ।

भिन्नभगंदरकी चिकित्सा ।

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ॥ भगंदरगतिं ज्ञात्वा दद्याद्दुष्टविशोधिनीम् ॥ दुष्टां सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यादसंशयम् ॥ ७ ॥

अर्थ–थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनको बारीक पीस उसकी बत्ती बनाय लेवे इसको भगंदरके घावके भीतर रखना चाहिये यह सर्व शरीरकी दुष्ट नाडीको शुद्ध करे ।

रूपराज रस ।

रसेंद्रभागद्वितयं म्लेच्छक्षारचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ काकजंघारसैर्मर्द्यं खल्वे दिवसपंचकम्॥ताम्रस्य संपुटे रुद्ध्वा सच्छिद्रे हंडिकांतरे॥९॥निवेश्य वालुकां दत्त्वा देयोऽग्निः प्रहराष्टकम् ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य मधुटंकणसंयुतम् ॥ १० ॥ धमेन्मूषागतं तावद्यावद्भ्रमति तारवत्॥

रूपराजरसः सोऽयं भगंदरविनाशनः ॥ ॥११॥ वल्लमात्रमिमं खादेत्रिफलामनुपाययेत् ॥ मुक्तः स्वल्पैरहोभिः स्याद्भगंदरमहागदात् ॥ १२ ॥

अर्थ—पारद २ तोले, सपेद सोमलखार ४ तोले, दोनोंको पीस काकजंघाके रसमें ९ दिन खरल करे फिर इसको तामेके संपुटमें बंद कर एक छिद्रदार हांडीमें रक्खे और उसमें वालू भरके आठ प्रहरकी अग्नि देय जब स्वांग शीतल हो जाय तब इसमेंसे निकाल सहत सुहागा मिलाय अंधमूषामें रख धौंकनीसे अग्नि देवे, जब चांदीके समान चक्कर खाने लगे तब जाने कि यह रस सिद्ध होगया । यह रूपराजरस भगंदरका नाशक है । ३ रत्तीकी मात्रा देय ऊपरसे त्रिफलाको पीसकर पिलावे तो थोडेही दिनमें यह प्राणी भगंदर रोगसे छूट जाय ।

नवकार्षिक गुग्गुलु ।

त्रिफलापुरुकृष्णानां त्रिपंचैकभागयोजिता गुटिका ॥ कुष्ठभगंदरनाडीदुष्टव्रणविशोधिनी कथिता ॥ १३ ॥

अर्थ—हरड १ तोला, बहेडा १ तोला आमला, १ तोला गूगल ५ तोले और पीपल एक तोला ले सबको बारीक पीस गोली बनाय ले यह कुष्ठ, भगंदर, नासूर, दुष्टघाव इनको शुद्ध करनेवाली है ।

शोधनरोपण ।

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रंनिशावचाकुष्ठमगारधूमः ॥ भगंदरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ १४ ॥

अर्थ—तिल, हरडकी छाल, लोध, नीमके पत्ते, हलदी, वच, कूट, घरका धूमसा इनको बारीक पीसके लगावे तो भगंदर, नासूर, उपदंश और दुष्टव्रणपर यह शोधन रोपण करे ।

दूसरा यत्न ।

त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम् ॥ भगंदरं निहंत्याशु दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—त्रिफलेके रसमें बिलावकी हड्डी घिसके लेप करे तो भगंदर दूर होय और दुष्टव्रण शुद्ध होय है ।

चित्रकादि तैल ।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ॥ सुधां वचां लांगलीं च हरितालं मनःशिलाम् ॥ १६ ॥ ज्योतिष्मतीं च संहत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ एतद्विष्पंदनं नाम तैलं दद्याद्भगंदरे ॥ शोधनं रोपणं चैव दुष्टनाडीं व्यपोहयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—चित्रक, आक, निसोथ, पाठ, कठूमर, कनेर, चूना, वच, कलियारी, हरताल, मनसिल, मालकांगनी इन सबके कल्कसे तेल पचावे यह विष्पंदननामक तैल भगंदपर लगावे तो शोधन रोपण करे तथा दुष्टघावको नष्ट करे ।

करवीरादि तैल ।

करवीरनिशादंतीलांगलीलवणाग्निभिः॥ मातुलुंगार्कपयसा पचेत्तैलं भगंदरे १८॥

अर्थ—कनेर, हलदी, दंती, कलियारी, सेंधानिमक और चित्रक इनको बिजौरेके रस और आकके दूधमें तेल डालके पचावे तो यह भगंदरको नष्ट करे ।

रवितांडव रस ।

भागो रसस्य गंधस्य द्वौ कन्याद्भिर्विमर्दयेत् ॥ कृत्वा गोलं ताम्रपात्रं ताव-

त्तस्योपरि क्षिपेत् ॥ १९ ॥ भस्मना-पूर्य तद्भांडं वह्निं कुर्याद्दिनं तले ॥ शीतमुद्धृत्य जंबीरवारा तत्सप्तधा पुटेत् ॥ २० ॥ गुंजास्य मधुसर्पिभ्र्यां हंति सद्यो भगंदरम् ॥ तालमूलीं सलशुनां पिबेदनु सकांजिकाम् ॥ २१ ॥

अर्थ–पारा ४ तोले, गंधक ८ तोले, दोनोंको मिलाय घीगुवारके रसमें खरल कर गोला बनावे, इसको तामेके पात्रमें रखके हांडीमें रख ढकदे फिर उस पात्रको राखसे भरदेवे, उसको भट्टीपर चढाय १ दिन अग्नि देवे, जब शीतल होजावे तब निकालके जंभीरीके रसकी ७ पुट देवे। इसको १ रत्ती ले सहत घी मिलायके चाटे तो भगंदर दूर होय। इसके ऊपर मूसली और लहशनको कांजीमें पीसके पीवे।

भगंदरमें पथ्य।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥ संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ २२ ॥

अर्थ–दंड, कसरत, स्त्रीसंग, कुस्ती, घोडे आदिकी सवारी, भारी पदार्थोंका भोजन करना ये सब भगंदरका घाव भरजानेपर भी १ वर्ष पर्यंत त्याग देवे।

इति श्रीयोगतरंगिण्यां भगंदराचिकित्सा।

उपदंश।

हस्ताभिघातान्नखदंतघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा ॥ योनिप्रदोषाच्च भवंति शिश्ने पंचोपदंशा विविधोपचारैः ॥२३॥

अर्थ–हथरस आदिके करनेसे, हाथकी चोट लगनेसे, नाखून और दाँतकी चोटसे, लिंगको न धोनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, दुष्ट योनिके प्रसंगसे, इत्यादि अनेक कारणोंसे इस प्राणीके लिंगमें ५ प्रकारका उपदंश रोग प्रगट होय है।

उपदंशकी चिकित्सा।

जलौकापातनं च स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरश्च सः ॥ २४ ॥

अर्थ–प्रथम उपदंश रोगीके जोंक लगायके रुधिर निकाल डाले, फिर देहका ऊपर नीचेसे शोधन करे और जिस प्रकार पके नहीं वह उपाय करे क्योंकि पकनेसे लिंगक्षय होजाय है।

उपदंशहर प्रयोग।

पटोलनिंबत्रिफलागुडूचीक्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ॥ सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः२५

अर्थ–पटोलपत्र, नीम, त्रिफला, गिलोय, खैरसार और बिजेसार इनका क्वाथ पीवे अथवा गूगल मिला त्रिफला पीवे यह सर्व प्रकारके उपदंशको नष्ट करे है।

व्रणप्रक्षालन।

त्रिफलायाः कषायेण भृंगराजरसेन वा ॥ व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशांतये ॥ २६ ॥

अर्थ–त्रिफलोंके रससे या भांगरेके रससे उपदंशके घावको धोवे तो उपदंश शांत होय।

त्रिफलाप्रयोग।

दहेत्कटाहे त्रिफलां समांशमधुसंयुताम् ॥ उपदंशप्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ २७ ॥

अर्थ–त्रिफलोंकी छालको कडाहीमें डालके जलायले, फिर इसके समान सहत मिलाय लेपकरे तो उपदंशका व्रण तत्काल भरआवे।

लिंगपाकपर।

जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ॥ कृतं प्रक्षालने काथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-अरनी, चमेली, कनेर, आंक और अमलतास इनके पत्तोंको पृथक् २ उबालके घावको धोवे तो उपदंशजन्य लिंगका पकना दूर होय।

करंजादि घृत।

करंजनिंबार्जुनशालजंबूवटादिभिःकल्ककषायसिद्धम् ॥ सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं श्रुतिरागयुक्तम् ॥२९॥

अर्थ-कंजा, नीम, कोह, साल, जामन और बड इनकी छालका कल्क और क्काथ करके सिद्ध करा घी दाह, पाक, ललोही और चुचाते हुए उपदंशको नष्ट करे है।

अथ शूकदोष।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवांछति मूढधीः ॥ व्याधयस्तस्य जायंते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ ३० ॥

अर्थ-जो प्राणी क्रमको त्यागकर लिंगको बढानेके वास्ते औषध उपचार करे है उसके १८ प्रकारकी शूकजन्य व्याधि होय हैं।

चिकित्सा।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं वापि विरेचनम् ॥ हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥ ३१ ॥ शूकदोषे हरेद्रक्तं पक्के शोधनरोपणम् ॥ तिंदुकाः त्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम्॥३२॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां भगंदरोपदंशशूकदोषचिकित्सा नामैकषष्टितमस्तरंगः ॥ ६१ ॥

अर्थ-शूकदोषमें प्रथम घृतपान करावे फिर जुल्लाब देना पथ्य है। यदि सूजन बढती हुई दीखे तो रुधिर निकलवाय डालै और उस रोगीको हलके पदार्थ भोजनमें देवे। जहांतक होसके शूकदोषको पकने न देवे. अत एव सिंगी, जोंक आदिसे रुधिर निकलवाय देवे; यदि पकगया होय तो उसका शोधन कर पीछे रोपण करे और तैंदू, त्रिफला, लोध इनका लेप तथा इन्हीं द्रव्योंसे बने तेलसे रोपण करे।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां भगंदरोपदंशशूकदोषचिकित्सावर्णनं नाम एकषष्टितमस्तरंगः ॥ ६१॥

द्विषष्टितमस्तरंगः।

कुष्ठरोग।

अत्युग्रपातकाहारघर्मश्रमविरेकिणाम्॥ कुष्ठान्यष्टादश नृणां जायंते चोग्रकर्मणाम् ॥ १ ॥

अर्थ-ब्रह्महत्या आदि अत्युग्र पापोंके करनेसे, दुष्ट आहार (भोजन) से, स्वेदन परिश्रम और विरेचन इत्यादिके बिगड जानेसे तथा उग्र कर्मोंके करनेसे इस प्राणीके १८ प्रकारके कुष्ठ रोग प्रगट होते हैं।

कुष्ठरोगकी चिकित्सा।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु निर्दिष्टम् ॥ पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम्॥ २ ॥

अर्थ-वातजन्य कुष्ठ रोगमें घृतपान करावे। कफजन्योंमें वमन करावे और पित्तके कुष्ठरोगोंमें रुधिरका निकालना और दस्त कराना हितकर है।

लेप।

एलाकुष्ठविडंगानि निशाह्वा चित्रको

बला ॥ दंती रसांजनं चेति लेपः कुष्ठ-विनाशनः ॥ ३ ॥

अर्थ-इलायची, कूठ, वायविडंग, हलदी, चित्रक, खिरेंटी, दंती, रसोंत इनको बारीक जलमें पीस लेप करे तो कुष्ठ रोग दूर होय ।

महाकषाय ।

निंबभूनिंबपाटाब्दपटोलत्रिफलानलैः ॥ श्यामशम्याकगायत्रीभार्ङ्गीवासकचंदनैः ॥ ४ ॥ वचामृताकणाशुंठीशठी-द्राक्षानिशाह्वयैः ॥ वत्सकत्वक्फलानं-तामूर्वात्रायंत्यवल्गुजैः ॥ ५ ॥ ऐंद्री-गोपारुणाकट्वीवृषकृम्यरिपर्पटैः ॥ कल्क-चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाच-रेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-नीम, बकायन, पाढ, नागरमोथा, पटोलपत्र, त्रिफला, चित्रक, सारिवा, अमलतास, खैरसार, भारंगी, अडूसा, चंदन, वच, गिलोय, पीपर, सोंठ, कचूर, दाख, हलदी, कुडाकी छाल, कडवे इन्द्रजौ, धमासा, मूर्वा, त्रायमाण, बावची, इन्द्रायनकी जड, काकीसर, मैंजीठ, कुटकी, वासा, वायविडंग और पित्त-पापडा इन औषधोंके कल्कसे वा चूर्णसे क्काथ सिद्ध करे और सहत डालके रोगीका यत्न करे ।

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ त्वक्पाके स्पर्शहानौ च सेच-येन्मृदितं पुनः ॥ ७ ॥ बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ महाक-षायो गोमूत्रे सर्वकुष्ठान्तको भवेत् ॥८॥

अर्थ-जिसकी त्वचाकी संज्ञा नष्ट होगई होय उसपर पित्तविसर्पोक्त कर्म करे त्वचाके पाकमें और स्पर्शहानिमें सेचन करे । बलातैलको गरम करके मधुरद्रव्योंसे उपनाहन करे इस ऊपर कहे हुए महाकषायको गोमूत्रके साथ पीवे तो सर्व कुष्ठोंका नाश होय ।

दाद खुजली ।

दूर्वाह्वयासैंधवचक्रमर्दकुठेरकाः कांजि-कतक्रपिष्टाः ॥ त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां दद्रूं च कंडूं च निवारयंति॥९॥

अर्थ-दूब, हरड, सेंधानिमक, पमारके बीज और वनतुलसी समान भाग ले कांजी और छाछमें इनको पीसकर तीन बारके लेप करनेसे जडबद्ध भी दाद और खाज दूर हो ।

लेप।

गोमूत्रवारिसंपिष्टैः शिलातालांशतु-त्थकैः ॥ लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठना-शाय पूजितः ॥ १० ॥

अर्थ-मनसिल, हरताल और लीलाथोथा इनको गोमूत्रमें पीसके लेप करे तो किटिभ, विसर्प और कुष्ठ दूर होय ।

आरग्वधलेप ।

आरग्वधस्य पत्राणि कांजिकेन प्रलेप-येत् ॥ दद्रूकिटिभकुष्ठानि हंति सिध्मा-नमेव च ॥ ११ ॥

अर्थ-अमलतासके पत्तोंको कांजीमें पीस-कर लेप करे तो दाद किटिभ और विभूति आदि कुष्ठोंको नष्ट करे ।

खुजली और रुधिरविकारपर ।

स्थौडेयारुङ्निशादूर्वाः सप्तवारप्रले-पनात् ॥ धत्तूररसपिष्टाश्च कंडूरक्त-विनाशिकाः ॥ १२ ॥

अर्थ-थुनेर, कूठ, हलदी, दूब इनको धतूरेके जलमें पीस सात बारके लेप करनेसे खुजली और रुधिरके विकारको दूर करे।

कासमर्द लेप ।

कासमर्दकमूलं तु सौवीरेण प्रपेषितम् ॥ दद्रूकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १३ ॥

अर्थ–कसौंदीकी जडको कांजीमें पीस लेप करे तो दाद, किटिभ कुष्ठको दूर करे ।

अन्य लेप ।

एडगजस्तिलसर्षपकुष्ठं भागाधिकरजनीद्वयमुस्तम् ॥ पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धंति सकुष्ठविसर्पककंडूः ॥ १४ ॥

अर्थ–पमारके बीज, तिल, सरसों, कूठ, पीपल, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा इनको छाछमें पीसके लेप करे तो यह तीन दिनमें कोढ, विसर्प और खुजलीको दूर करे ।

सिन्दूरादि तल ।

सिंदूरगुग्गुलुरसांजनसिक्थतुत्थैस्तुल्यांशकै कटुकतैलमिदं विपक्वम् ॥ कच्छ्रां स्रवत्पिडकिनीमथवापि शुष्कामभ्यंजनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १५ ॥

अर्थ–सिंदूर, गूगुल, रसोत, मोम, लीलाथोथा ये समान भाग ले कल्क कर कडवे तेलमें परिपक्व करे इसके लगानेसे जिसमेंसे पानी झरता होय अथवा सूखी फुंसीवाली कच्छूको नष्ट करे ।

माहेश्वर घृत ।

कृत्वा कज्जलिकां रगौ च कुनटी द्वे जीरके द्वे निशे गोदंतोषणनाग एडगजिका बाकूचिका सर्पिषा ॥ लोहे लोहविमर्दितं दृढतरं माहेश्वराख्यं घृतं कंडूकुष्ठविचर्चिकादिशमनं पामाहरं स्वेदनात् ॥ १६ ॥

अर्थ–रांगके पत्र और मनसिल, जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी, गोदंती, हरताल, सोंठ, मिरच, पीपल, गजपीपल, पमारके बीज और बावची इनको समान भाग ले सबकी बराबर घी डाल लोहेकी कढैयामें लोहेके मुसलेसे घोटे जब बारीक कज्जलके समान होजाय तब निकाल ले यह माहेश्वरघृत खुजली, कोढ, विचर्चिका आदि तथा खाजको नष्ट करे । इस घृतको लगायके स्वेदन कर्म करे ।

खदिराष्टक ।

खदिरत्रिफलानिंबपटोलामृतवासकैः ॥ अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठं कंडूविस्फोटकानि च ॥ विसर्पपामाकिटिभरोमांतिकमसूरिकाः ॥ १७ ॥

अर्थ–खैरसार, हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, पटोलपत्र, गिलोय और बाँसा इन आठोंका क्वाथ करके पीवे तो कोढ, खुजली, विस्फोटक, विसर्प, पामा, किटिभ और रोमांतिक मसूरिकाको दूर करे ।

अर्कतैल ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ॥ नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ १८ ॥

अर्थ–आकके पत्तोंका रस और हलदीके कल्कको सरसोंके तेलमें पचावे । यह अर्कतेल पामा, कच्छू और विचर्चिकाको हरण करे ।

आदित्यपाकतैल ।

मंजिष्ठात्रिफलालाक्षाशिलागंधकरात्रिभिः ॥ तैलमादित्यसंपक्वं पामाकंडूविसर्पनुत् ॥ १९ ॥

अर्थ–मँजीठ, त्रिफला, लाख, मनसिल, गंधक और हलदी इनको पीसके कडवे तेलमें डाल देवे फिर इस तेलको धूपमें रख देवे यह

आदित्यपाक तेल पामा खुजली और विसर्पको दूर करे ।

लघुमरिचादि तैल ।

हरितालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत् ॥ शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचंदनैः ॥ २० ॥ कटु तलं पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः ॥ सगोमूत्रं तदभ्यंगाद्दद्रूकुष्ठविनाशकृत् ॥ सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–हरताल, मनसिल, नागरमोथा, आकका दूध, कनेरकी जड, निसोथ, गोबरका रस, इन्द्रायनकी जड, कूठ, हलदी, दारुहलदी, देवदारु और चंदन दो दो तोले ले इनके कल्कसे १ सेर कडवे तेलको पचावे तथा इस तेलमें ४ तोले सिंगिया विष और मिलाय देवे तथा गोमूत्र डालदे, इसकी मालिस करनेसे दाद, कुष्ठको नष्ट करे। यह सर्व कुष्ठोंको दूर करनेवाला तेल है।

श्वेत कुष्ठका यत्न ।

धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा वल्गुजसंयुतम् ॥ शखदुधवलं श्वित्रं हंति तूर्णं न संशयः ॥ २२ ॥

अर्थ–आमले और खैरसारके क्वाथमें बावचीका चूर्ण डालके पीवे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होय ।

दूसरा प्रयोग ।

मथितेन पिबेच्चूर्णं काकोदुंबरिवल्गुजम् ॥ तैलाक्तो घर्मसेवी स्यात्तक्राशी श्वित्रमुद्धरेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–कठूमर और बावचीके चूर्णको मथित (छाँछ) के साथ पीवे और देहमें तेलकी मालिश कर धूपमें बैठा रहे और केवल छाँछको पीवे तो सपेद कुष्ठ दूर हो ।

इन्द्राशनयोग ।

इंद्राशनं समाधाय प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ तच्चूर्णं मधुसर्पिभ्यां लिहेत्क्षीरं घृताशनः ॥ हत्वा स सर्वकुष्ठानि जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ २४ ॥

अर्थ–उत्तम दिनमें निमंत्रण (नौत) कर लाई हुई भांगको चूर्ण कर सहत और घृतमें मिलाय दे इसको खायके दूध और घृत सेवन करे तो वह पुरुष संपूर्ण कुष्ठोंको नष्ट कर तीन सौ वर्ष जीवे ।

दूसरा प्रयोग ।

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः ॥ वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥ २५ ॥

अर्थ–तिल, घी, त्रिफला, सहत, त्रिकुटा, मिलावे और मिश्री ये सात वस्तु समान भाग लेवे, यह बुद्धि बढावे, कुष्ठोंको नष्ट करे और कामवर्द्धक है ।

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि च॥ स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः२६ इति वृन्दात् ॥

अर्थ–जो प्राणी अभया (हरड) के अरिष्टको अथवा आमलेके अरिष्टको पीवे वह १ महीनेमें संपूर्ण कुष्ठोंको नष्ट करे, । यह वृंदग्रंथमें लिखाहै ।

सवर्णकर्त्ता लेप ।

कुडवोवल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ॥ मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः परः श्वित्रे ॥ २७ ॥

अर्थ–कुडाकी छाल, बावची ये समान भाग ले चतुर्थ भाग इनमें हरताल मिलावे गोमूत्रमें बारीक पीस सपेद दागपर लेप करे तो दाग देहके समान रंगवाला होजाय ।

बोल्लजल ।

चत्वारो बोल्लभागाः स्युर्द्वौ भागौ तु कुलिंजनात् ॥ मस्तकी चैकभागा स्याद्यवानीपोटलीयुते ॥ २८ ॥ जले समुचिते हंडयां घर्ममध्ये दिनत्रयम् ॥ संस्थाप्य तज्जलं लेपाद्धंति दद्रूं न संशयः२९

अर्थ-बीजबोल ४ तोले, कुलिंजन २ तोले, रूमी मस्तगी १ तोला और अजमायन १ तोला इनकी पोटली बांधकर एक हांडीमें जल भरके उसमें इस पोटलीको डाल दे और उस हांडीको धूपमें रखदेवे, इस प्रकार ३ दिन धरी रहने दे, फिर इस जलका लेप करनेसे दाद तत्काल दूर होय ।

दादपर दूसरा लेप ।

चंद्रशूराख्यबीजानि प्रपुन्नाटस्य तानि च ॥ कंकत्या अपि बीजानि समांशत्रितयं क्षिपेत् ॥ ३० ॥ सर्वद्विगुणतक्रेण सूक्ष्मं संपिष्य साधयेत् ॥ दिनत्रयं ततो वन्यगोमयेन प्रघर्षयेत् ॥ तं कल्कं लेपयेत्पश्चाद्दद्रूर्गच्छति निश्चितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-हालो, पमारके बीज, कँगहीके बीज ये तीनों समान भाग लेवे. सबसे दूनी छाछ लेके ३ दिन पीसे. फिर दादको प्रथम आरने उपलेसे घिसके इसका लेप कर देय तो दाद निश्चय दूर हो ।

महाभल्लातकावलेह ।

निंबगोपारुणाकट्वीत्रायंतीत्रिफला घनम् ॥ ३२ ॥ पर्पटावल्गुजानंतावचाखदिरचंदनम् ॥ पाठाशुंठीशटीभार्ङ्गीवासाभूनिंबवत्सकम् ॥ ३३ ॥ श्यामेंद्रवारुणीमूर्वाविडंगेंद्रविषानलम् ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेष्का पटोलं रजनीद्वयम् । ॥ ३४ ॥ कणारग्वधसप्ताह्वं कृष्णामूलोच्चटाफलम् ॥ मंजिष्ठा लांगली रास्ना नक्तमालः पुनर्नवा ॥ ३५ ॥ दंती बीजकसारश्च भृंगराजः कुरंटकः॥ एषां द्विपालिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् । ॥ ३६ ॥ अष्टभागावशिष्टं च कषायमवतारयेत्॥ भल्लातकसहस्राणि क्षिप्त्वा त्रीण्यर्मणेंऽभसि ॥ ३७ ॥ चतुर्भागावशिष्टं च कषायमवतारयेत् ॥ तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत् । ॥ ३८ ॥ एकीकृत्य कषायौ तौ पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ गुडस्यैकतुलां दत्त्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् ॥ ३९ ॥ भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैंधवानां पलंपलम् । ॥ ४० ॥ विडंगं चित्रकं कुष्ठं चंदनं च पलंपलम् ॥ सौगंधिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥ दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलंपलम्॥ संमेल्य प्रक्षिपेत्कोष्णे घृतभांडे निधापयेत् । ॥ ४२ ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥ प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव तु ॥ ४३ ॥ चित्रमौदुम्बरं दद्रूमृक्षजिह्वं सकाकणम्॥ पुंडरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् । ॥ ४४ ॥ कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम्॥ वातरक्तमुदावर्तं पांडुरोगं वमिं कृमीन् ॥ ४५ ॥ अर्शांसि षट्प्रकाराणि श्वासं कासं भगन्दरम्॥ अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन वा भिषक् ॥ भोजने न सदा योज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥ ४६ ॥

अर्थ–नीमकी छाल, सारिवा, मँजीठ, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पित्तपापडा, बावची, जवासा, वच, खैरसार, लालचन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी, अडूसा, चिरायता, कुडाकी छाल, निसोथ, इन्द्रायन, मूर्वा, वायविडंग, इन्द्रजौ, अतीस, चित्रक, बस्तिकर्ण (शालका भेद), गिलोय, पटोलपत्र, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सतोनेकी छाल, पीपलामूल, घूँघची, मँजीठ, कलिंयारि, रास्ना, कंजा, पुनर्नवा, दंती, विजेसार, भांगरा और पियाबासा, ये सब औषध आठ आठ तोले ले सबको १ द्रोण जलमें डालके पचावे, जब अष्टमांश क्काथ शेष रहे तब उतारके छान लेय फिर ३ द्रोण जलमें १००० हजार भिलाये डालके औटावे जब क्काथ चतुर्थ भाग शेष रहे तब उतारलेय फिर इन दोनों क्काथोंको कपडेमें छान मिलायले और फिर भट्टीपर चढावे फिर इसमें गुड ४०० तोले डालके अवलेह करे और इसमें भिलाएँकी १००० हजार गुठली डाले, त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा और सेंधानिमक चार २ तोले, वायविडंग, चित्रक, कूठ और चंदन प्रत्येक चार चार तोले ले अजमायन ४ तोले चातुर्जात ४ तोले इनका चूर्ण करके अवलेहमें डालके मिलाय देवे फिर उतारके शीतल होनेपर घीके चिकने पात्रमें भरके रखदेय । यह महाभल्लातकावलेह महादेवने कहा है, यह चित्र, उदुंबर, दाद, ऋक्षजिह्व, काकण, पुंडरीक, चर्माख्य, विस्फोटक, खूनके चकत्ते, कृच्छ्र, कापालिक, कुष्ट, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पांडुरोग, वमन, कृमिरोग, छः प्रकारकी बवासीर, श्वास, खाँसी, भगंदर इन रोगोंको अनुपानके साथ खानेसे दूर करे इसके ऊपर गरम और (खारा) खट्टा पदार्थ कदापि भोजनको न देवे ।

मुंडीरसेन संसिद्धं घृतं हंति विपादिकाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ–मुंडीरससे सिद्ध करे घृतकी मालिशसे विपादिका (विभूत) रोग दूर होय ।

बृहन्मंजिष्ठादि क्काथ ।

मंजिष्ठा कुटजो घनामृतवचा शुंठी हरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलकुष्ठकटुकाभार्ङ्गीविडंगाग्निकम् ॥ मूर्वादारुकलिंगभृंगमगधात्रायंतिपाठावरी गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिंबासनारग्वधम्॥४८॥ श्यामावल्गुजचंदनं सवरुणं पूतीकशाखोटकं वासापर्पटसारिवाप्रतिविषानंताविशालाजलम् ॥ मंजिष्ठादिरयं कषायविधिना नित्यं पुमान्यः पिबेत्त्वग्दोषास्त्वचिरेण यांति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ ४९ ॥ वातरक्ते प्रसुप्तौ च विसर्पे विद्रधौ तथा ॥ सर्वेषु रक्तदोषेषु मंजिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ ५० ॥

अर्थ–मँजीठ, कुडाकी छाल, नागरमोथा, गिलोय, वच, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कूठ, कुटकी, भारंगी, वायविडंग, चित्रक, मूर्वा, देवदारु, इन्द्रजौ, भांगरा, पीपल, त्रायमाण, पाढ, सतावर, खैरसार, त्रिफला, चिरायता, बकायन, विजेसार, अमलतासका गूदा, सारिवा, बावची, लालचंदन, वरनाकी छाल, करंज, अतीस, सिंघाडा, बासा, पित्तपापडा, कालीसर, अतीस, धमासा, इन्द्रायनकी जड और सुगंधवाला ये समान भाग ले क्काथ करे, जो प्राणी नित्यप्रति इस मंजिष्ठा-

दिक्काथको नित्य पीवे उसके त्वचाके रोग और अठारह प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, प्रसुप्तवात, विसर्प, विद्रधि और सब रुधिरके विकारोंको यह दूर करे है ।

पामाका यत्न ।

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं रविकिरणसुतप्तः पामलो यः पलार्द्धम् ॥ त्रिदिवसमभिषिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं भवति कनकदीप्तिः कामयुक्तो मनुष्यः ॥ ५१ ॥

अर्थ–जो प्राणी २ तोले गंधकके चूर्णको कडवे तेलके साथ पीवे फिर धूपमें बैठ जाय इस प्रकार तीन दिन करे और केवल दूध पीवे तो उस खाजवालेकी देह सुवर्णके समान उज्ज्वल होय ।

कुष्ठकालानल तैल ।

क्षारास्त्रयस्त्रिकटुकं पंचैव लवणानि च॥ वचा कुष्ठं हरिद्रे द्वे विडंगं चित्रकं विषम् ॥ हरितालशिलागंधसिंदूरं तुत्थखर्परम् ॥ ५२ ॥ रामठं च रसोनश्च मदनं च रसाञ्जनम् ॥ भल्लातकं वाकुचिका चोकं कर्पूरकं तथा ॥५३ ॥ लांगली च पटोली च हंसपादी तथैव च ॥ तेजनी सुरमांसी च कंपिल्लं खदिरांतरम् ॥ ५४ ॥ एतच्चूर्णं समांशेन वज्र्यर्कपयसा प्लुतम् ॥ षड्गुणं सार्षपं तैलं कारंजं वा विशेषतः ॥ ५५ ॥ तैलं गंधर्वजं वापि तिलतैलं तथैव च ॥ तैलाच्चतुर्गुणं मूत्रं गोमहिष्यश्वसंभवम् ॥ ५६ ॥ हस्तिगर्दभजं वापि तथोष्ट्राजाविजं क्षिपेत् ॥ सर्वमेकत्र संपक्वं कटाहे मंदवह्निना ॥ ५७ ॥ तैलावशेषं संगृह्य रुजामभ्यंगमाचरेत् ॥ वातरक्तविनाशाय दद्रूकंडूविचर्चिकाः ॥ ५८ ॥ अष्टादशानि कुष्ठानि मांसमेदोगतानि च ॥ दुष्टव्रणानि सर्वाणि जीर्णनाडीव्रणानि च ॥ ५९ ॥ भगंदरं च दुर्नामलूतागर्दभजालकम् ॥ एतत्तैलं सदाभ्यंगात्सर्वकुष्ठं व्यपोहति ॥ ६० ॥

अर्थ–सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल, पांचों निमक, बच, कूठ, हलदी, दारुहलदी, वायविडंग, चित्रक, सिंगियाविष, हरिताल, मनसिल, गंधक, सिंदूर, तूतिया, खपरिया, हींग, लहशुन, मैनफल रसोंत, भिलावे बावची, चोक, कपूर, कलियारी, पटोलपत्र,हंसपदी, मुरामांसी, कवीला और खैरसार ये समान भाग लेवे, सबका चूर्ण कर थूहर, आक इनके दूधमें सान लेय, फिर छः गुना सरसोंका तेल और कंजेका तेल, अंडीका तेल और तिलका तेल ये तथा तेलसे चौगुना गोमूत्र, भैंसका मूत्र, घोडा, हाथी, गधा, ऊँट और बकरीका मूत्र लेय सबको एकत्र कर कढावमें मंद २ अग्निसे पाक करै जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारलेय इसकी मालिस वातरक्त, दाद, कंडू, विचर्चिका, अठारह प्रकारके कुष्ठ, दुष्टघाव, जीर्ण और नाडीव्रण, भगंदर, बवासीर, लूता, गर्दभजालकरोग इन सर्व रोगोंको नष्ट करे।

बृहत्सिंदूरादि तैल ।

सिंदूरं चंदनं मांसी विडंगं रजनीद्वयम् ॥ प्रियंगु पद्मकं कुष्ठं मंजिष्ठा खदिरं वचा ॥ ६१ ॥ जात्यर्कत्रिवृतानिंबाः करंजो विषमेव च ॥ कृष्णचित्रकलोध्रं च प्रपुंनाटं च संहरेत् । ॥ ६२ ॥ श्लक्ष्णं पिष्टानि सर्वाणि योज-

येत्तैलमात्रया ॥ अभ्यंजने प्रयुंजीत सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ६३ ॥ पामा-विचर्चिकाकच्छूविसर्पादिहरं परम् ॥ रक्तपित्तोत्थितान्हंति रोगनिवंविधान्बहून् ॥ ६४ ॥

अर्थ-सिन्दूर, लालचंदन, जटामांसी, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, पद्माख, कूठ, मँजीठ, खैरसार, वच, चमेली, आक, निसोथ, नींब, कंजा, सिंगिया विष, पीपल, चित्रक, लोध, और पमारके बीज इन सबको बारीक पीस कल्क करे, इसके साथ तेल सिद्ध करे, इस तेलके लगानेसे सर्व कुष्ठ नष्ट होय, पामा, विचर्चिका, कच्छू, विसर्प, रक्तपित्त-जन्य रोग इस प्रकारही अनेक रोग नष्ट होय ।

सैंधवादि तैल ।

सैंधवं मदनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडम् ॥ गैरिकं स्फुटितौ पादौ लिप्तौ पंकजसन्निभौ ॥ ६५ ॥

अर्थ-सैंधानिमक, मैनफल, राल, सहत, घी, गूगल और गुड, गेरू इनके कल्कसे तेल सिद्ध करे इसके लगानेसे स्फुटित (फटे हुए) पैर कमलके समान नरम होंय।

सिध्मपर लेप ।

कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजंघाकृतो मूलकबीजयुक्तः ॥ तक्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-कपासके पत्र, काकजंघा और मूलीके बीज इनको छाछमें पीस मंगलवारके दिन लेप करे तो तत्काल विभूतका रोग नष्ट होय।

धत्तूरतैल।

उन्मत्तकस्य बीजानि मानकक्षारवारिणा ॥ कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हंति विपादिकाम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-धतूरेके बीजसे मानकंदके क्षारके जलद्वारा कडवे तेलको पकावे, यह तत्काल विभूत रोगको दूर करे ।

तालकभस्म ।

जंबीरद्रवमध्ये तु प्रक्षाल्य नटमंडनम् ॥ दशांशं टंकणं दत्त्वा खंडशः परिमेलयेत् ॥ ६८ ॥ चतुर्गुणे गाढपटे निबध्य प्रहरद्वयम् ॥ दोलायंत्रेण संस्वेद्यं प्रदीपप्रमितेऽनले ॥ ६९ ॥ चूर्णतोये कांजीके च कूष्माडांबुनि तैलके ॥ त्रिफलांबुनि तत्पश्चात्क्षालयित्वाम्लवारिणा॥७०॥ततः पलाशमूलत्वग्वारिपिष्टं प्रशोषयेत् ॥ महिषीमूत्रसंपिष्टं पुनस्तं परिशोषयेत् ॥ ७१ ॥ तं गोलकं शरावाभ्यां संपुटीकृत्य यत्नतः॥ खाते गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ७२ ॥ अजादुग्धैः पुनः पिष्ट्वा शोषयेद्गोलकीकृतम् ॥ आढकं भस्म पालाशं हंडिकायां दृढं क्षिपेत् ॥७३॥ सम्यक्चूर्णस्य कुडवं दत्त्वा तत्र विचक्षणः ॥ स्थापयेद्गोलकं तत्र पुनश्चूर्णं च भस्म च ॥ ७४ ॥ यथा धूमो बहिर्याति न तथा तां हि मुद्रयेत्॥ द्वात्रिंशत्प्रहरांश्चुल्ल्यां वह्निं भक्तवदर्पयेत् ॥ ७५ ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य संचूर्ण्य नटमण्डनम्॥ हिमकुंदेंदुसंकाशं निर्धूमं कृष्णवर्त्मनि ॥७६॥ रक्तिकाऽस्य प्रदातव्या पुराणगुडयोगतः॥ पथ्यं च चणकस्योक्तं रोटिका षष्टिकौदनम् ॥ ७७ ॥ निर्लोणं किं च नाप्यन्यत्र खादेदेकविंशतिम् ॥ दिना निर्वा-

तगतिकः सर्वव्यापारवर्जितः ॥७८ ॥ गलत्कुष्ठं पुंडरीकं श्वित्रं कापालिकं तथा ॥ औदुंबरं रूक्षजिह्वं काकणं स्फोटमुल्बणम् ॥ ७९ ॥ वातरक्तं पांडुरोगं दद्रूं पामां विचर्चिकाम् ॥ विसर्पमर्शांसि तथा विपादीं च भगंदरम् ॥८० ॥ सर्वथा क्रमशो हंति सेवितं हरितालकम् ॥ अन्यानपि व्रणान्सर्वानंधकारमिवांशुमान् ॥ ८१ ॥

अत्र नागोऽपि ॥

अर्थ–तबकिये हरतालको जंभीरीके रसमें धोय लेवे, फिर हरतालका दशवाँ भाग सुहागा ले उसके ऊपर उन हरतालके टुकडोंको रख देय फिर चौगुने लम्बे चौडे मोटे कपडेमें पोटली बांध दोलायंत्रमें डालके दो प्रहर मंद २ अग्निसे स्वेदन करे फिर चूनेके जलमें कांजीमें पेठेके पानीमें त्रिफलाके क्वाथमें धोवे फिर नींबूके रसमें धोवे फिर पलाशके जडके छालके जलमें पीसके सुखा लेवे फिर इसको भैंसके मूत्रमें हरतालको पीसके सुखायलेवे फिर गोला बनाय शरावसंपुटमें रख आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे जब स्वांगशीतल होजावे तब बकरीके दूधमें पीसके गोला बनाय सुखायले फिर ४ सेर पलासकी भस्म लेकर दृढ हांडीमें बिछाय बीचमें उस हरतालके गोलेको रख तावकर फिर उस भस्मको भर देवे और पावभर चूनेको हरतालके ऊपर विखेर देवे और प्रथम चूना फिर पलाशकी भस्म इस प्रकार भरे फिर उस हाँडीको भट्ठीपर चढावे और जहां जहांसे धूआँ निकले उसी २ जगह राखसे उसको बंद कर देवे, इसमें ३२ प्रहर भात करनेके समान अग्नि देय जब स्वांगशीतल होजाय तब संपुटमेंसे हरतालको निकाल पीसडाले तो सफेद निर्धूम तोलमें पूरी ऐसी हरतालकी भस्म होय इसकी १ रत्तीकी मात्रा पुराने गुडके योगसे रोगीको देनी चाहिये इसके ऊपर चनेकी रोटी और सांठी चावलका भात पथ्य देना चाहिये परंतु इसपर निमक खाय नहीं. इस प्रकार २१ दिन पथ्यसे रहे, हवामें डोले नहीं और इस देहसे कोई परिश्रमका काम न करे यह गलत्कुष्ठ, पुंडरीक, चित्र, कापालिक, औदुंबर, ऋक्षजिह्व, काकण, घोर विस्फोटक, वातरक्त, पांडुरोग, दाद, पामा, विचर्चिका, विसर्प, बवासीर, विपादिका, भगंदर इन सब रोगोंको दूर करे और भी सर्व प्रकारके घावोंको यह हरताल दूर करे है जैसे अंधकारको सूर्य नष्ट करे । इस रोगमें नागेश्वरभी ग्रंथांतरोक्त देना चाहिये ।

महातालेश्वर ।

तालताप्यशिलासूतं शुद्धं सैंधवटंकणम् ॥ समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगंधकम् ॥ ८२ ॥ गंधतुल्यं मृतं ताम्र जंबीरैर्दिनपंचकम् ॥ मर्दितं षड्पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे ॥ ८३॥ पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्य सर्वमेतत्तु षट्पलम् ॥ द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुःपलम्॥८४॥ जंबीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्य पुटेल्लघु॥ त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ॥ ८५ ॥ माहिषाज्येन संमिश्र्य निष्कार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥ मध्वाज्यैर्वाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु ॥ सर्वकुष्ठं निहंत्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ ८६ ॥

अर्थ–हरिताल, सुवर्णमाक्षिक, मनासिल, पारा, सेंधानिमक, सुहागा ये समान भाग ले और पारेसे दूनी गंधक लेवे सबको खरलमें

डाले तथा तामेकी भस्म गंधकके बराबर मिलावे, सबको जंभीरीके रससे ५ दिन खरल करे फिर भूधरयंत्रमें छः वार पचावे प्रत्येक पुटमें उसी जंभीरीके ६ पल रसमें घोटे और अग्नि देय मारा हुआ तामा २ पल और लोहकी भस्म ४ पल मिलावे फिर जंभीरीके रसमें १ दिन खरल कर संपुटमें रखके फूंक देवे फिर सब औषधका ३० वाँ भाग सिंगिया विष डालके चूण करे और भैंसके घृतमें मिलाके २ मासेके अनुमान भक्षण करे इसके ऊपर सहत, घी और बावचीका चूर्ण १ तोला चाटे तो यह महातालकेश्वर रस सर्व प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करे ।

श्वित्रकुष्ठपर लेप ।

गुंजाफलानि चूर्णानि लेपयेच्छ्वेतकुष्ठनुत् ॥ शिलापामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ–घूंघचीके फलोंका चूर्ण कर पानीमें पीस लेप करे तो सफेद दाग दूर होय । अथवा मनशिल और ओंगेकी भस्मका लेप श्वित्रकुष्ठको नष्ट करे है ।

कुष्ठकुठार रस ।

भस्म सूतसमो गंधो मृतायस्ताम्रगुग्गुलु॥ त्रिफला च महानिंबाश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥ ८८ ॥ इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं शाणषोडशम् ॥ चतुःषष्टिकरंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ८९ ॥ चतुःषष्टिं मृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् ॥ स्निग्धभांडे धृतं खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ॥ रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठविनाशनः ॥ ९० ॥

अर्थ–पारदकी भस्म, गंधक, लोहेकी भस्म, ताम्रभस्म, गूगल, त्रिफला, बकायन, चित्रक, और शिलाजीत ये प्रत्येक १६ शाण लेवे, कंजाके बीज ६४ शाण ले और ६४ शाणही अभ्रकको भस्म लेय सबको एकत्र खरल कर घृत और सहतमें मिलाके घीके चिकने पात्रमें भरके रख देवे। इसमेंसे ८ मासेके अनुमान भक्षण करे तो यह कुष्ठकुठार रस गलत्कुष्ठ तथा सर्व प्रकारके कुष्ठोंको दूर करे ।

कुष्ठरोगमें कुपथ्य ।

मांसेक्षुतैलांबुकुलत्थमाषविदाह्यभिष्यंदिपयोदधीनि ॥ निष्पावपिष्टाध्यशनादिनिद्रां त्वग्दोषवान्स्त्रीं लवणं च जह्यात् ९१

इति श्रीयोगतरंगिण्यां कुष्ठचिकित्सा नाम द्विषष्टितमस्तरंगः ॥ ६२ ॥

अर्थ–मांस, ईखके पदार्थ, तेल, अत्यंत जल, कुलथी, उडद, विदाही तथा अभिष्यंदी पदार्थ, दूध, दही, चौरा, पिष्टपदार्थ, अध्यशन, दिनमें सोना, स्त्रीसंग और निमकका खाना इन सब वस्तुओंको त्याग देना चाहिये ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां कुष्ठचिकित्सावर्णनं नाम द्विषष्टितमस्तरंगः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमस्तरंगः ।

शीतपित्तोदर्दोत्कोठ ।

वरटीदंशवद्देहे कंडूलः शीतपित्ततः ॥ उदर्दः स पृथुः प्रोक्त उत्कोठो भूरितोदवान् ॥ १ ॥

अर्थ–वरटी (पीले रंगकी ततैया) के काटनेके समान चकत्ते शरदी गरमीके योगसे देहमें उठ खडे हों उसको उदर्द कहते हैं यह चकत्ते मोटे होते हैं और यदि उनमें अत्यंत चभका चले तो उसीका नाम उत्कोठ कहा है ।

शीतपित्त और उदर्दका यत्न ।

गैरिकं सैंधवं चैव कुसुंभं कुंकुमं समम्॥ घृतलिप्ता अमी घ्नंति शीतपित्तमुदर्दकम्२

अर्थ-गेरू, सेंधानिमक, कुसुंभ, केसर ये समान भाग ले घीमें मिलायके लेप करे तो शीतापित्त और उदर्द दूर होय ।

गुडपिप्पलीयोग ।

सगुडां पिप्पलीं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ् नरः ॥ तस्य नश्यंति सप्ताहादुदर्दाः सर्वदेहजाः ॥ ३ ॥

अर्थ-जो प्राणी पिप्पलीके चूर्णको गुडमें मिलाके खाय और पथ्यसे रहे तो ७ दिनमें सर्व देहका उदर्द दूर होय ।

उबटना ।

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह ॥ कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ शीतपित्त उदर्दार्ते उत्कोठे च विशेषतः ॥ ४ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां शीतपित्तोदर्दोत्कोठचिकित्सा नाम त्रिषष्टितमस्तरंगः ॥ ६३ ॥

अर्थ-सफेद सरसों, हलदी, पमार और तिल इनके कल्कमें कडवा तेल मिलाके उबटना करे तो शीत पित्त उदर्द और विशेष करके उत्कोठ रोग दूर हो ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां शीतापित्तोदर्दोत्कोठचिकित्सावर्णनं नाम त्रिषष्टितमस्तरंगः॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमस्तरंगः ।

अम्लपित्त ।

अत्यम्लकटुकाहाराद्दंतकाष्ठातिघर्षणात् ॥ दिवास्वप्नाद्रसस्तिक्तोऽम्लोह्यास्याद्द्रवते बलात् ॥ १ ॥ अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥ हृत्कंउदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अर्थ-अत्यंत खट्टा और चरपरा भोजन करनेसे,दतूनसे दांतोंको अत्यंत घिसनेसे, दिनमें सोनेसे इत्यादि कारणोंसे इस प्राणीके मुखसे तिक्तरस अत्यंत गिरने लगता है । भोजन पचे नहीं, क्लम, उत्क्लेद, कडवी और खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय, कंठमें दाह हो और अरुचि इन सब लक्षणोंसे वैद्य रोगीके देहमें अम्लपित्तका रोग कहे ।

अम्लपित्तचिकित्सा ।

वमनानंतरं तत्र विरेकं मृदु कारयेत् ॥ सम्यग्वांतविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ ३ ॥ तिक्तभूयिष्ठमाहारं पाचनं चापि कल्पयेत् ॥ यवगोधूमविकृतिं तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताम् ॥यथास्वं लाजसक्तूंश्च सितामधुयुतॉंल्लिहेत् ॥४॥

अर्थ-वमनके पश्चात् हलका जुलाब देना चाहिये उत्तम प्रकारसे वमन विरेचनके होजाने पर सुस्निग्ध करके फिर इसके अनुवासन बस्ती देय और प्रायः इसके वास्ते कडवे पदार्थ जिनमें मुख्य हों वही भोजनमें देवे और पाचन द्रव्य देवे जैसे जौ, गेहूंके पदार्थ हैं ये देय परंतु तक्ष्ण (मरिच आदि) संस्कारसे वर्जित हों । तथा खीलके सत्तूमें मिश्री और सहत मिलायके देवे ।

क्वाथ ।

निस्तुषयववृषधात्रीक्वाथस्त्रिसुगंधिमधुयुतः पीतः ॥ अपनयति चाम्लपित्तं यदि भुंक्ते मुद्गयूषेण ॥ ५ ॥

अर्थ-तुषरहित जौ, अडूसा आमले इनके

क्वाथमें त्रिसुगंधि और सहत मिलायके पीवे तो अम्लपित्त दूर हो. इसके ऊपर मूंगका यूष पथ्य कहा है ।

चूर्ण ।

एलातुगाचोचशिवाभयानां त्वग्ग्रंथिपाटीरदलोदकानाम् ॥ चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति प्रौढाम्लपित्तं दिवसाष्टभुक्तम् ॥ ६ ॥

इति बौद्धसर्वस्वात् ॥

अर्थ–छोटी इलायची, वंशलोचन, हरड, तेजपत्ता, छोटी बडी दोनों दालचीनी, पीपरामूल, चंदन, नागकेशर इनका चूर्ण कर समान भाग मिश्री मिलायके सेवन करे तो घोर अम्लपित्तको आठ दिनमें दूर करे । यह बौद्धसर्वस्वमें लिखा है ।

नालिकेरखंड ।

कुडवमितमिह स्यान्नालिकेरं सुपिष्टं पलपरिमितसर्पिःपाचितं खंडतुल्यम् ॥ निजपयसि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं गुडवदथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च । ॥ ७ ॥ धान्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरैः साकं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्ण्य ॥ हंत्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ ८ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–नारियलकी गिरी पिसीहुई पावभर, घी १ छटाकमें पचावे तथा इन दोनोंके समान खांड लेवे, फिर नारियलका १ सेर जल डालके पाक करे जब गुडके समान कलछीसे चिपटने लगे तब उतारले और शीतल होनेपर धनिया, पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन, जीरा, काला जीरा, त्रिजातककी तीन औषध और नागकेशर इन प्रत्येकका चार २ मासे चूर्ण डालके मिलाय देवे, यह अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल और वमनका होना बंद करनेवाला तथा मनुष्योंके पुरुषार्थका बढानेवाला है । यह योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

लीलाविलास रस ।

शुद्धसूतसमं गंधं मृतताम्राभ्ररूप्यकम् ॥ तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ ९ ॥ अक्षधात्रीहरीतक्यः क्रमवृद्ध्या विपाचयेत् ॥ जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषकम् । ॥ १० ॥ अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वं सूतं पुनः पुनः ॥ पंचविंशतिवारं तु तावता भृंगजैर्द्रवैः ॥ ११ ॥ शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पंचगुंजं मधुप्लुतम् ॥ रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति॥१२॥

अर्थ–शुद्ध पारा, गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रक, रूपेकी भस्म ये सब समान भाग लेवे सबको १ प्रहर खरल कर संपुटमें बंद करके लघुपुटमें[1] फूंक देवे, फिर बहेडा, आमला और हरड इनको वृद्धिक्रमसे लेकर जल डालके पचावे, जब अष्टावशेष क्वाथ रहे तब उतार छानके इनकी भावना देय, इस प्रकार इस पारदकी भस्ममें २५ भावना देय और पच्चीसही भावना भांगरेके रसकी देय, फिर सुखायके धर रक्खे, इसमेंसे ५ रत्ती रस सहतमें मिलायके चाटे । यह लीलाविलास रस अम्लपित्तको नष्ट करे ।

कूष्मांडावलेह ।

कूष्मांडस्य रसो ग्राह्यः पलानां शत-

---

१ साधारण आरने उपलोंकी अग्नि देवे ।

मात्रकम् ॥ रसतुल्यं गवां क्षीरे धात्रीचूर्ण पलाष्टकम् ॥१३॥ लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिंडितम् ॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेत्सदा ॥ अम्लपित्तं वातपित्तं मूर्च्छां श्वासं च नाशयेत् ॥ १४ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ–पके पेठेका रस ४०० तोले, गौका दूध ४०० तोले, आमलेका चूर्ण ३२ तोले इन सबको एकत्र कर अग्निपर पचावे जब गोलासा होने लगे तब ३२ तोले सपेद चीनी खांड मिलाय दे इसमेंसे २ तोले नित्य प्रातःकाल खाय । यह अम्लपित्त, वातपित्त, मूर्च्छा और श्वासको नष्ट करे । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

खण्डपिप्पली ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं वृतस्य कुडवद्वयम् ॥ पलषोडशकं खंडाच्छतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १५ ॥ शिवायाः स्वरसस्यापि पलषोडशकं मतम् ॥ क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूतेत्र निक्षिपेत् ॥ १६ ॥ त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्ताशिवातुगाः ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्धं कृष्णजीरकम् ॥ १७ ॥ नागरं नागकं जातीफलं समरिचं हिमम्॥ दत्त्वापलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धभांडे निधापयेत् ॥१८॥ प्रातर्यथाबलं लिह्यादम्लपित्तप्रशांतये ॥ हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ शूलहृद्रोगशमनं हृद्यं चेदं रसायनम् ॥ १९ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–छोटी पीपलका चूर्ण पावभर, गौका घी आधसेर, सपेद मिश्री १ सेर, शतावर आधा सेर, आमलेका स्वरस १ सेर इन सबको २ सेर गौके दूधमें औटावे जब अवलेह होजाय तब इसमें त्रिजातक, हरड, जीरा, धानिया, नागरमोथा, आमले, वंशलोचन ये प्रत्येक एक २ तोला ले कालाजीरा ६ मासे, सोंठ, नागकेशर, जायफल, काली मिरच और भीमसेनी कपूर, प्रत्येक छः छः मासे पीसके डाले और तैयार होनेपर ३ छटांक सहत इसमें मिलाय चिकने बासनमें भरके रख देय । इसको अम्लपित्त दूर करनेके वास्ते प्रातःकाल बलाबल विचारके मात्रा देवे । यह हल्लास, अरुचि, छर्दि, प्यास, दाह, शूल, हृदयरोगको नष्ट करे । हृदयको हितकारी और रसायन है । यह खंडपिप्पलीपाक योगरत्नावलीमें लिखा है ।

द्राक्षादिगुटिका ।

द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां क्षिपेत् ॥ संकुट्याक्षद्वयमितां तत्पिंडीं रचयेद्भिषक् ॥ २० ॥ तां खादेदम्लपित्तार्तो हृत्कंठदहनापहाम् ॥ तृण्मूर्च्छाभ्रममंदाग्निनाशिनीमामवातहाम् ॥ २१ ॥

अत्रापि चन्द्रकलारसः ॥

अर्थ–दाख, हरड दोनों समान भाग लेय, दोनोंके समान मिश्री डाले सबको कूटकर दो दो तोलेकी गोली बनायले, इसको अम्लपित्तरोगी खाय, यह हृदय, कंठके दाहको नष्ट करे, तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, मंदाग्नि और आमवातको नष्ट करे । इस रोगपर चंद्रकलारस देना चाहिये ।

रसामृत चूर्ण ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगदहनाः समाः ॥

एतेषां चूर्णितानां च प्रत्येकं च पलं भवेत् ॥ २२ ॥ कर्षद्वयं गंधकस्य तदर्द्धं पारदस्य च ॥ बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्समधुसर्पिषा ॥ २३ ॥ शीतोदकं चानुपिबेत्क्रमाद्यूषं पयस्तथा ॥ अम्लपित्तं चाग्निमांद्यं परिणामरुजं तथा ॥ कामलां पांडुरोगं च हन्यादत्र न संशयः ॥ २४ ॥

अर्थ–त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चित्रक ये चार चार तोले लेय, गंधक २ तोले, पारा १ तोला, सबको कूट पीस एकत्र करलेवे फिर इसमें सहत और घी मिलायक चाटे ऊपरसे शीतल जल पीवे तथा क्रमसे यूष और दूध पीवे तो अम्लपित्त, मंदाग्नि, परिणामशूल, कामला और पांडुरोगको नष्ट करे ।

शतावरीघृत ।

शतावरीमूलकल्के घृतं सिद्धं पयोऽन्वितम् ॥ पचेन्मृद्वग्निना गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥ नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तभवान्गदान् ॥ रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं संतापमेव च ॥ २६ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–शतावरके कल्कमें चौगुना दूध मिलाय घीको सिद्ध करे, यह मंदाग्निसे पचावे तो अम्लपित्त, वातपित्तके रोग, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास और संतापको नष्ट करे । यह योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

प्रयोगांतर ।

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ नाशयेदम्लपित्तं च वमिं चारुचिमेव च ॥ २७ ॥ अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ॥ गुडकूष्मांडकं चैव तथा खंडामलक्यपि ॥ गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिर्वात्र प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यामम्लपित्तचिकित्सा नाम चतुःषष्टितमस्तरंगः ॥ ६४ ॥

अर्थ–इन्द्रजौ, पीपल और पटोलपत्र इनके क्काथमें सहत डालके पीवे तो अम्लपित्त, वमन और अरुचिको नष्ट करे । अम्लपित्तमें वैद्य सर्व कफपित्तहरण कर्त्ता प्रयोग करे । तथा गुड, कूष्मांड, खंडामलक, गुड, दूध और पीपल इनसे सिद्ध करे घृतको देना चाहिये ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायामम्लपित्तचिकित्सा नाम चतुःषष्टितमस्तरंगः ॥६४॥

पंचषष्टितमस्तरंगः ।

विसर्प ।

क्षुद्रपामाकृतिर्देहे परितः परिसर्पणात् ॥ विसर्पो जायते जंतोस्तोदस्रावरुजाकरः १

अर्थ–प्रथम छोटी पामा (खाज) के समान सूजन होकर सर्व देहमें फैले, इसमें चोटनी, स्राव और पीडा होय है । इस रोगका नाम विसर्प है ।

विसर्पकी चिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेवनासृग्विमोक्षणात् ॥ उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः २

अर्थ–जुल्लाब देना, वमन कराना, लेप, रुधिर निकालना ये कर्म दोषानुसार करे. परंतु जिनमें दाह न होता होय उनमें ये सब यत्न करे।

दशांग लेप ।

सिरीषयष्टीनवचंदनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालः ॥ लेपो दशांगः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पदुष्टव्रणशोथहारी ॥ ३ ॥

अर्थ-सिरस, मुलहठी, छड, चंदन, इलायची, मांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और सुगंधवाला इनको पीस घृत मिलाय लेप करे। यह विसर्प, दुष्टव्रण और सूजनको दूर करे।

वासादि घृत।

वृषखदिरपटोलपत्रनिंबामृतमामलकीकषायकल्कैः ॥ घृतमभिनवमेतदाशुपक्वं जयति सदास्रविसर्प्पकुष्ठगुल्मान्॥४॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां विसर्पचिकित्सा नाम पञ्चषष्टितमस्तरंगः ॥ ६५ ॥

अर्थ-अडूसा, खैरसार, पटोलपत्र, नीमकी छाल, गिलोय और आमले इनके क्काथ और कल्कसे घृत सिद्ध करे तो यह रुधिरविकार, विसर्प, कुष्ठ और गुलमको नष्ट करे।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां विसर्पचिकित्सा नाम पंचषष्टितमस्तरंगः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमस्तरंगः ।

विस्फोट ।

अग्निदग्ध इव स्फोटा विस्फोटाः स्युर्ज्वराननाः ॥ क्वचित्सर्वत्र देहेषु रक्तपित्तसमुद्भवाः ॥ १ ॥

अर्थ-रक्तपित्तसे उत्पन्न अग्निदग्धके समान जले हुएसे सर्वत्र देहमें फोडे होयँ और उनके होनेसे ज्वर होय, उनको विस्फोट कहते हैं।

विस्फोटककी चिकित्सा ।

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वांबुदवासकम् ॥ पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितम् ॥२॥ किरातादिरयं प्रोक्तो गणो विस्फोटनाशनः ॥ ३ ॥

अर्थ-चिरायता, कुटकी, नीमकी छाल, मुलहटी, नागरमोथा, बांसा, पटोलपत्र, पित्तपापडा, खस और त्रिफला, इन्द्रजौ यह किरातादिगण विस्फोटकका नाशक है।

पंचतिक्त घृत।

पटोलसप्तच्छदनिंबवासफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम् ॥ तत्पंचतिक्तं घृतमाशु हन्यात्रिदोषविस्फोटविसर्पकंडूः ॥ ४ ॥

अर्थ-पटोलपत्र, सतिवन, नीमकी छाल, अडूसा, हरड, बहेडा, आमला और गिलोय इनके काढेमें पकाया हुआ घी 'पञ्चतिक्त' कहाता है। यह घी त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प और कण्डू इनको दूर करता है।

पटोलादि क्काथ।

पटोलामृतभूनिंबवासकारिष्टपर्पटैः ॥ खदिराह्वयुतैः क्काथो विस्फोटज्वरशांतये ॥ ५ ॥

अर्थ-पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, वासा, नीमकी छाल, पित्तपापडा और खैरसार इनका क्काथ विस्फोटक और ज्वरको शांत करे।

चंदनादि लेप।

चंदनं नागपुष्पं च तंडुलीयकवारिणा ॥ शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ ६ ॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां विस्फोटचिकित्सा नाम षट्षष्टितमस्तरंगः ॥ ६६ ॥

अर्थ-चंदन, नागकेशर, चौंलाईका रस, सिरसकी छाल और चमेलीके पत्ते, इनको बारीक पीस लेप करे तो विस्फोटकका दाह नष्ट होय।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां विस्फोटचिकित्सा नाम षट्षष्टितमस्तरंगः ॥६६॥

सप्तषष्टितमस्तरंगः ।

स्नायुक ।

शाखासु कुपिता दोषाः शोफं कृत्वा विसर्पवत् ॥ कुर्युस्तंतुनिभान्कीटान्स्नायवस्ते निरूपिताः ॥ १ ॥

अर्थ–शाखा(हाथ पैरों) में दोष (वातादि) कुपित हो विसर्पके समान प्रथम सूजन प्रगट करें फिर तंतूके समान लंबे कीडे प्रगट करें उनको स्नायु (नहरुआ) कहते हैं ।

स्नायुककी चिकित्सा ।

कुष्ठरामठशुंठीभिः कल्कं शिग्रुसमन्वितम् ॥ पानलेपनयोगेन तंतुकीटविनाशनम् ॥ २ ॥

अर्थ–कूठ, हींग, सोंठ और सहँजना इनका कल्क करे, इसके पीने और लगानेसे तंतुकीट (नहरुआ) नष्ट होय ।

प्रयोगांतर ।

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुंडीस्वरसं त्र्यहम् ॥ पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं निहंत्येव न संशयः ॥ ३ ॥

अर्थ–गौका घी तीन दिन पीवे अथवा निर्गुंडीका स्वरस तीन दिन पीवे तो अत्युग्र स्नायुक रोग निश्चय दूर होय ।

द्वितीय योग ।

शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः कांजिकेन ससैंधवैः ॥ लेपनं स्नायुरोगाणां शमन परमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–सहँजनेकी जड और पत्तोंको सेंधानिमक मिलाय कांजीमें पीसके लेप करे तो स्नायुके रोगोंको नष्ट करता है ।

मसूरिका ।

मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ आसां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभंगोऽरतिर्भ्रमः ॥ ५ ॥

अर्थ–देहमें मसूरके समान छोटी २ फुंसी हों उनको वैद्य मसूरिकारोग कहते हैं । मसूरिका होनेके प्रथम ज्वर, खुजली, अंगमर्द, अरति और भ्रम होता है ।

अमृतादि क्वाथ ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितनेत्रं निंबपत्रं हरिद्रे ॥ विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीः शीतपित्तं ज्वरं च ॥ ६ ॥

अर्थ–गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतवन, खैर, काली बेत, नीमके पत्ते, हलदी और दारुहलदी इनका क्वाथ अनेक प्रकारका विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली, मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर इनको दूर करे ।

दशांग लेप ।

कपीतनक्लीतकरात्रियुग्ममांसीनतैलामयवारिशीतैः ॥ लेपः ससर्पिः प्रणुदत्यवश्यं विस्फोटदाहज्वरकान्विसर्पान् ॥ ७ ॥

अर्थ–सिरस, मुलेठी, हलदी, दारुहलदी, जटामांसी, छड, इलायची, कूठ, सुगंधवाला और कपूर इनके चूर्णमें घृत मिलायके लेप करे तो विस्फोट, दाह, ज्वर और विसर्पोंको दूर करे ।

पटोलादि क्वाथ ।

पटोलमूलारुणतंडुलानां तथैव धात्रीखदिरेण संयुतम् ॥ पिबेज्जलं सुक्वथितं सुशीतं मसूरिकारोगविनाशनं परम ॥ ८ ॥

अर्थ–पटोलपत्र, मूली, मँजीठ, चावल, आमले और कत्था इनको औटायके और शीतल करके पीवे तो मसूरिका रोग नष्ट होय ।

कोद्रवमसूरिकाका यत्न ।

यस्तु कोद्रवको नाम कफमारुतकोपजः ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वा स्वयमेवोपशाम्यति ॥ ९ ॥

अर्थ–कफवातसे जो कोद्रव नामकी शीतला प्रगट होती है वह सात दिनमें या दशवें दिन अपने आप शांत होजाती है ।

दिवसैरेकविंशत्या शाम्यंति च मसूरिकाः ॥ स्तोत्रपाठग्रहजपैर्धर्मपावनकर्मभिः ॥ १० ॥ शीतलाराधनैश्चंडीपाठैश्चैता उपाचरेत् ॥ ११ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मसूरिकाचिकित्सा नाम सप्तषष्टितमस्तरंगः ॥ ६७ ॥

अर्थ–मसूरिकाकी २१ दिनमें शांति होती है. तथा स्तोत्रपाठ ग्रहोंका दान वा गायत्री आदिका जप, धर्म और पवित्र करनेवाले कर्मोंसे एवं शीतलाके आराधन और चंडीपाठ (दुर्गापाठ) आदिसे शीतलाओंकी शांति करै ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मसूरिकाचिकित्सावर्णनं नाम सप्तषष्टितमस्तरंगः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमस्तरंगः ।

क्षुद्ररोग ।

क्षुद्ररोगाः समासेन चतुस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ ग्रंथभूयस्त्वभीत्या च वक्ष्यामि कियतोऽत्र तान् ॥ १ ॥

अर्थ–संक्षेपसे क्षुद्ररोग ३४ हैं परंतु हम ग्रंथ बढनेके भयसे उन ३४ मेंसे जो जो कितनेक मुख्य रोग हैं उनकोही कहते हैं ।

अजगल्लिकादिकी चिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिः समाचरेत् ॥ विवृत्तामिंद्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभीम् ॥ २ ॥ इरवेल्लीं गंधनाम्नीं जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥ मधुरौषधिसिद्धेन सर्पिषा च जयेद्व्रणम् ॥ ३ ॥

अर्थ–अजगल्लिका कच्चीको जोंक लगायके दूर करे । विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभी, जालगर्दभी, इरवेल्ली और गंधनामक फुंसियोंको पित्तविसर्पके समान चिकित्सासे दूर करे और इनके घावोंको मीठी औषधोंसे सिद्ध करे हुए घृतद्वारा दूर करे ।

रक्तावशेषैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ॥ जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥ ॥ ४ ॥ पनसिकां कच्छपिकां तेनैव विधिना जयेत् ॥ साधयेत्कठिनानन्यान्छोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ ५ ॥

अर्थ–वहुतसा रक्त निकालना स्वेदन और लेपसे सहँजना और देवदारुके लेपसे विदारिका फुंसीको दूर करे । और इसी विधिकरके पनसिका, तथा कच्छपिका फुंसीको नष्ट करे । और जो अन्य दोषोंके प्रभावसे कठिन फुंसी सूजनयुक्त हों उनकोभी इसी विधि करके जीते ।

अंधालजी आदिका यत्न ।

अंधालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभीम् ॥ सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥. कफमारुतसंभूते लेपः पाषाणगर्दभे ॥ शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–अंधालजी, कच्छपिका और पाषाण-

गर्दभी इनको प्रथम स्वेदन (बफारा) देकर फिर देवदारु, मनसिल और कूठका लेप करे। कफवातसे प्रगट पाषाणगर्दभीपर लेप करे। वल्मीकफुंसीको शस्त्रसे उखाडकर क्षार और अग्नि अर्थात् दागना इनसे साधन करे।

निंबतैल ।

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचंदनैः ॥ जातीपल्लवयुक्तैश्च निंबतैलं विपाचयेत्॥ वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ ८ ॥

अर्थ-मनसिल, हरताल, गिलोय, छोटी इलायची, अगर, चंदन और चमेलीके पत्ते इनके कल्कसे नीमके तेलको पचावे । यह जिसमें बहुतसे छिद्र और बहुत राध लोही निकलता हो ऐसी वल्मीकफुंसीको नष्ट करे

पाददारी ।

शिरां च पाददारीषु वेधयेत्तलशोधनीम् ॥९॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादावालेपयेन्मुहुः ॥ मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतक्षीरैर्विमिश्रितैः ॥ १० ॥ सर्ज्जाह्वसिंधूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् ॥ निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥११ ॥

अर्थ-पाददारीमें तलुओंको शोधन करनेवाली नसको वेधकर रुधिरको निकाले । प्रथम स्वेदन और स्नेहन करके फिर मोम, बकरेकी वसा, मज्जा, घृत, दूध इनको एकत्र मथके पैरोंमें लेप करे अथवा राल सेंधानिमक इनके चूर्णको सहत और घीमें सान फिर कडवे तेलमें मथकर पैरोंमें लगावे तो पाददारी दूर हो ।

अलस कदर ।

करंजबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु॥ रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ १२ ॥

अर्थ-कंजाके बीज, हलदी, कासीस, मुलहटी, सहत, गोरोचन, हरताल, इनको जलसे पीस अलसपर लेप करे। प्रथम कदरको उखाडके गरम तेल अथवा अग्निसे दाग देवे ।

चिप्य ।

चिप्यमुष्णांबुना स्विन्नमाकृष्याभ्यज्य तं व्रणम् ॥ दत्वा सर्जरसं चूर्णं बुद्ध्या व्रणवदाचरेत् ॥ १३ ॥ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ॥ संस्थाप्य तज्जकल्केन लिंपेच्चिप्यं मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

अर्थ-चिप्यको गरम जलसे स्वेदन करके उसको खींचकर और घृतादिसे चिकनी उसमें रालका चूर्ण मिलायके व्रणके समान क्रिया करे हलदीके स्वरसमें हरडको डाल लोहके पात्रमें भिगोय दे इस कल्कसे चिप्यको बारम्बार लेप करे

पद्मिनीकंटक ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकंटके हितम्॥ निंबोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ १५ ॥

अर्थ-पद्मिनीकंटक रोगमें नीमका जल पिलाय वमन करावे। तथा नीमका रस डालके घृत सिद्ध करे और सहत डालके पान करे।

अहिपूतना ।

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत् ॥ १६ ॥ त्रिफलाखदिरक्काथो व्रणानां पूर्वधावने ॥ रसांजनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ॥ १७ ॥

अर्थ-अहिपूतना रोगमें बालककी धायके प्रथम स्तनसंबंधी दूधका शोधन करे, तथा त्रिफला, कत्था इनके क्वाथसे प्रथम अहिपूतनाके व्रणको धोयडाले तथा रसोतका पान और लेप करना हित है ।

गुदभ्रंश ।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत् ॥ प्रविष्टं स्वेदयंश्चापि बद्धं गोफणया दृढम् ॥ १८ ॥ कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ॥ एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः । ॥ १९ ॥ मूषकानां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम् ॥ स्विन्नमूषकमांसैर्वा स्वेदान्न गुदनिर्गमः ॥ २० ॥

अर्थ-जिसकी कांछ निकल आती होय उसकी गुदाको चिकनी करके धीरे धीरे भीतर प्रवेश कर देवे, जब गुदा (कांछ) भीतर चली जाय तब स्वेदन करके उसको गोफनीसे दृढ बाँध देवे । जो प्राणी कोमल कमलिनीके पत्रको शर्कराके साथ मिलायके खाय तो कदापि गुदा बाहर नहीं निकले । अथवा मूँषेकी चरबीसे गुदाको लिप्त करे अथवा मूँषेके मांसको पकायके स्वेदन करनेसे कदापि गुदा नहीं निकलेगी ।

चर्मकीलादि ।

चर्मकीलं जतुमणिं माषकं तिलकालकम् ॥ उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ २१ ॥

अर्थ-चर्मकील, जतुमणि, मस्सा, तिल इनको शस्त्रसे उखाडके क्षारसे या अग्निसे सबको दाग देवे तो सब नष्ट होंय ।

मुहांसे न्यच्छादि ।

युवानपिडिकान्यच्छनीलिकाव्यंगशर्करा । शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यंजनैस्तथा ॥ लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडिकापहः ॥ २२ ॥

अर्थ-जवानीके मुहांसे, न्यच्छ, नीलिका, व्यंग और शर्करा इनमें फस्त खोले, लेप करे और उबटना करे । लोध, धनिया, वच इनका लेप तरुणताकी फुंसी (मुहांसों) को नष्ट करेहै ।

व्यंग ।

व्यंगेषु चार्जुनत्वक्च मंजिष्ठावृषमाक्षिकैः ॥ लेपः सनवनीतो वाश्वेताश्वखुरजा मसी ॥२३॥ रक्तचंदनमांजिष्ठा कुष्ठं लोध्रं तथैव च ॥ वटांकुराश्च व्यंगघ्ना बहुकांतिप्रदास्तथा ॥ २४ ॥

अर्थ-कोहकी छाल, मँजीठ, अडूसा, सहत और नवनीत (मक्खन) इनका लेप अथवा सपेद घोडेके खुरको जलायके उसका चूर्ण कर घृतमें सानके लेप करे तो व्यंग (झाँई) दूर हो और मुखकी अत्यन्त कांति बढे ।

केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छाल्मलिकंटकान् ॥ आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ २५ ॥

अर्थ-तीखे सेमरके कांटोंको जलमें पीसके लेप करे तो तीन दिनमें मुख कमलके समान हो और व्यंग दूर होय ।

अरुंषिका ।

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ॥ २६ ॥ मूत्रपिष्टप्रलेपोयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ लेपयेत्परितः कल्कैस्तैलमभ्यंजने हितम् ॥ २७ ॥

अर्थ-पुरानी खल और मुरगेकी बीठ इनको गोमूत्रमें पीसके लेप करनेसे शीघ्र अरुंषिक

दूर होय । तथा अरुंषिकाको कल्कोंसे लेप करे और तेलका मालिश करना हित है ।

हरिद्रादि तैल ।

कुटंनटशिखीजातीकरंजकसतुत्थकैः ॥ हरिद्राद्वयमंजिष्ठात्रिफलारिष्टचदनैः ॥ एतत्तैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यंजनेहितम्२८

अर्थ–हरताल, चित्रक, चमेलीके पत्ते, करंज, लीलाथोथा, हलदी, दारुहलदी, मँजीठ, त्रिफला, नीमकी छाल और चंदन इनका कल्क डालके तेल सिद्ध। करे यह मालिस करनेसे अरुंषिकाको दूर करे है ।

इन्द्रलुप्त ।

इंद्रलुप्ते शिरां विद्धा शिलाकासीसतुत्थकैः ॥ लेपयेत्परितः कल्कैस्तैलमभ्यंजने हितम् ॥ २९ ॥ कुटंनटशिखाजातीकरंजकरवीरकैः॥ अवगाढं पदं चापि प्रच्छाद्य च पुनःपुनः ॥ ३० ॥ गुंजाफलैश्चिरं लिंपेत्केशभूमिं समंततः॥ इंद्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः॥३१॥

अर्थ–इन्द्रलुप्तरोगमें फस्त खोले, फिर मनसिल, कासीस और तूतिया इनके कल्कको लगावे और तेलकी मालिस करे । हरताल, चित्रक, चमेलीके पत्ते, कंजा और कनेर इनका लेप घोर इन्द्रलुप्तको दूर करे । केशोंकी जगहको घूंघचीके फलसे लिप्त करे । अथवा बडी कटेरीका रस और सहत इनका लेप इन्द्रलुप्तको दूर करे ।

पलित ।

हस्तिदंतमषीं कृत्वा छागक्षीरी रसांजनम् ॥ रोमाण्यनेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ ३२ ॥

अर्थ–हाथीदांतको जलाय बकरीका दुध और रसौंत इनको पीस लेप करे तो हाथकी हथेलीमें भी बाल ऊग आवें ।

लोहमलामलकल्कैः सजपाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी ॥ पलितानीह न पश्यति गंगास्नायीव नरकाणि ॥ ३३ ॥

अर्थ–लोहकी कीटी, आमले और गुडहरके फूलोंके कल्कसे जो प्राणी नित्य स्नान करताहै उसके सर्वथा पालितरोग (बालोंका गिरजाना) नहीं होय जैसे गंगास्नान करनेवालोंको नरक नहीं होते ।

मंजिष्ठादि तैल ।

मंजिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुंगश्च यष्टिका॥ कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा । ॥ ३४ ॥ आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ नीलिकां पिडिकां व्यंगमभ्यंगादेव नाशयेत् ॥ ३५ ॥ मुखं प्रसादोपचितं नीलिकार्कश्यवर्जितम् ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसुन्दरम्॥३६॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां क्षुद्ररोगचिकित्सा नामाष्टषष्टितमस्तरंगः ॥ ६७ ॥

अर्थ–मँजीठ, महुआ, लाख, बिजौरा, मुलहठी प्रत्येक एक २ तोला पावभर मीठा तेल आधसेर बकरीके दूधमें मिलाय मंदाग्निसे पचावे. यह तेल नीलिका, पिडिका, व्यंग इनको नष्ट करे । इसका प्रयोग करनेसे मुख उजला हो नीलिका कर्कशता ये दूर हों ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां क्षुद्ररोगचिकित्सावर्णनं नामाष्टषष्टितमस्तरंगः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमस्तरंगः ।

मुखरोग ।

सरक्तः कुपितः श्लेष्मा करोत्यास्ये गदा-

न्बहून् ॥ दौर्गंध्यपिडिकापाकोपजिह्वादीन्समासतः ॥ १ ॥

अर्थ–रुधिरसहित कफ कुपित होकर मुखमें दुर्गंध, पिडिका, छाले और उपजिह्वा आदि अनेक मुखके रोगोंको करे है ।

खदिरादितैल ।

अब्दोर्णाद्यरिमेदवल्कलशतात्क्वाथे चतुर्थांशके गोदुग्धे सजतूद्रवे च विपचेदेभिश्च कल्कीकृतैः ॥ पत्तंगागुरुगैरिकैः सखदिरैः कंकोलजातीफलन्यग्रोधः सलवंगपुष्यजतुभिः कर्पूरलोध्रान्वितैः ॥ ॥ २ ॥ मंजिष्ठामधुकाब्दपद्मकत्रुटित्वग्धातकीकेसरैस्तैलं कट्फलसंयुतैरिति कृतं वक्त्रेण धार्यं नृभिः ॥ शीतार्दादिषु दंतजेषु मुखजेष्वन्येषु रोगेषु च प्रोक्तं मज्जनकात्मजेन तदिदं रोगापहं प्राणिनाम् ॥ ३ ॥

अर्थ–नागरमोथा, ऊन, अरिमेद (दुष्टखदिर) इनके वल्कलको चतुर्थांश ले इसको गौके दूध, लाखका रस और आगे लिखी हुई औषधोंके कल्कसे पचावे, जैसे पतंग, अगर, गेरू, कत्था, कंकोल. जायफल, बडकी छाल, लौंग, लाख, कपूर, लोध, मजीठ, महुआ,नागरमोथा,पद्माख, इलायची, दालचीनी, धायके फूल, नागकेशर और कायफल इनमें मीठा तेल डालके सिद्ध करे इस तेलको यह प्राणी मुखमें धारण करा करे तो शीतार्दसे लेकर अन्यमुखके रोग और संपूर्ण रोगोंको नाश करे । यह विदेहसंहितामें लिखाहै ।

रोगेषु वक्त्रगलतालुसमुत्थितेषु क्वाथः फलत्रिककटुत्रयकट्फलानाम् ॥ स्याद्वाथ पर्पटककट्फलविश्वभार्ङ्गीभूतीकधान्यघनदारुवचाभयानाम् ॥ ४ ॥

इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–मुख, गला और तालुके रोगोंमें त्रिफला, त्रिकुटा, कायफल इनका क्वाथ अथवा पित्तपापडा, कायफल, सौंठ, भारंगी, कंजा, धनिया, नागरमोथा, देवदारु, वच और हरड इनका क्वाथ देय तो उक्त रोग दूर हो । यह चिकित्साकालिका ग्रंथमें लिखा है ।

संचर्वितैर्वक्त्रधृतैः प्रशांतिं वक्त्रामयो गच्छति जातिपत्रैः ॥ दंताश्च बीजैर्बहुलद्रुमस्य स्थानच्युता अप्यचला भवंति५

अर्थ–यदि यह प्राणी चमेलीके पत्तोंको चबावे तो मुखके रोग सब दूर हों. और मोरसरीके बीजोंको नित्य चबावे तो हलते हुए दांत दृढ होजाय ।

दंतमूलपर ।

माक्षिकं पिप्पलीसर्पिर्विमिश्रं धारयेन्मुखे। दंतशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥ दंतचालेषु गंडूषो बब्बूलत्वक्कृतो हितः ॥ ६ ॥

अर्थ–सहत, पीपल, घृत इनको मिलाके यदि मुखमें भरे यह दांतके दुःख दूर करनेकी प्रधान औषध है, बबूलके छालकी क्वाथके कुल्ले करना हलते दांतोंके दृढ करे है ।

कालकचूर्ण ।

गृहधूमयवक्षारपाठाव्योषरसांजनैः॥७॥ तेजोधा त्रिफला लोध्रश्चित्रकश्चेति चूर्णितः ॥ सक्षौद्रं धारयेदास्ये गलरोगविनाशनम् ॥ ८ ॥

अर्थ–घरका धूमसा, जवाखार, पाढ, त्रिकुटा, रसौंत, तेजवलकल, त्रिफला, लोध और

चित्रक इनके चूर्णमें सहत मिलाय मुखमें रक्खे तो गलेके सब रोग दूर हों ।

दंतशूल और पीडापर ।

सिंधूत्थं केवलं धार्यं दंतशूलविनाशनम्॥ जैपाललेपो दंतानां पीडाक्रिमिविनाशनः९

अर्थ–केवल सेंधानिमक मुखमें रक्खे तो दंतशूल दूर होय । इसी प्रकार जमालगोटेका लेप दांतोंकी पीडा और दांतके कीडाओंको नष्ट करे है ।

दंतरोगमें कुपथ्य ।

फलान्यम्लानि शीतांबु रूक्षान्नं दंतधावनम् ॥ तथातिकठिनं भक्ष्यं दंतरोगी विवर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–खट्टे फल, शीतल जल, सूखा अन्न, दांतुन करना और कठोर पदार्थका भोजन ये दांतके रोगवाले प्राणीको त्याग देने चाहिये ।

पीतकचूर्ण ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैंधवम् ॥ दार्वी त्वक्चेति संचूर्ण्य माक्षिकेण समन्वितम्॥११॥ मूर्च्छितं घृतमंडेन कंठरोगेषु धारयेत् ॥ मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ १२ ॥

अर्थ–मनसिल, जवाखार, हरताल, सेंधानिमक, दारुहलदी और दालचीनी इनका चूर्ण कर सहतमें मिलायके और घृतके मंडसे मूर्च्छित कर कंठरोगोंमें धारण करे । यह पीतक नामक चूर्ण सर्व मुखरोगोंपर उत्तम है ।

लेप ।

जीवंतिकामदनतुत्थकचित्रवह्णमेदायुतं कमलशालिसमन्वितं वा ॥ दुग्धं शृतं शमयति स्फुटितोपसर्गमालेपनादधरसंस्रवमाशु हन्यात् ॥ १३ ॥

अर्थ–डोडी, मैनफल, तूतिया, चित्रक, मेदा, कमलगट्टा, शाली चावल इनको दूधमें डालकै औटावे शीतल होनेपर लेप करनेसे होठोंके फटनेसे जो स्राव होय है उसको दूर करे।

अधरके घावपर ।

सघृतफाणिततैलविमिश्रितं कनकगैरिकसर्जसमन्वितम् ॥ सलवणं मदनं विनिवारयत्यधरजान्स्फुटितांश्च महाव्रणान् ॥ १४ ॥

अर्थ–घृत, फाणित (गुडका भेद), तेल, धतूरा, गेरू, राल, निमक और मैनफल इनको एकत्र पीस लेप करनेसे होठोंका फटना दूर होय ।

जात्यादियोग ।

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकोरंटकुष्ठं वचा शुंठीदीप्यहरीतकीसमकृतं चूर्णं मुखे धारितम् ॥ वातघ्नं क्रिमिदंतशूलशमनं दुर्गंधदोषापहं शैथिल्यक्षयकारि दंतपटुताबीजं च जात्यादिकम् ॥ १५ ॥

इति योगरत्नावल्याः ॥

अर्थ–चमेलीके पत्ते, पुनर्नवा, तिल, पीपल, पियाबाँसा, कूठ, वच, सोंठ, अजमायन, हरड इनका समान भाग चूर्ण कर मुखमें रक्खे तो बादी, क्रामि, दंतशूल, मुखकी दुर्गंध, दांतोंका ढीला पडजाना दूर करे है। यह योगरत्नावलीमें लिखा है ।

जीभकी पीडापर ।

कांचनारत्वचः क्वाथः प्रातर्गंडूषकैर्धृतः ॥ जिह्वादरदरं हंति स्फोटानपि रुजाकरान् ॥ १६ ॥

इति वृंदात् ॥

अर्थ–कचनारकी छालको औटायके प्रातः-

काल कुल्ले करे तो जीभकी खरखराट और पीडाको दूर करे।

मुखदुर्गंधपर।

कुष्ठैलवालुकैलासमधुकधान्याकयष्टि- मधुकवलः ॥ हरति मुखपूतिगंधं रसो- नमदिरादिगंधं च ॥ १७ ॥

अर्थ-कूठ, एकवालुक, इलायची, महुआ, धनिया, मुलहटी, खिरेटी यह लहसन और मदिराके कारण जो मुखमें दुर्गंध आवे उसको दूर करे।

मुखकांतिकारक लेप।

प्रियंगुकाश्मीरजकोलमज्जाहीबेरकैश्चं- दनभागयुक्तैः ॥ पिष्टैः प्रलेपो विहितो मुखस्य द्युतिं शशांकादधिकां विधत्ते १८

अर्थ-फूलप्रियंगु, केशर, बेरकी गुठली, सुगंधवाला और चंदन ये समान भाग ले जलमें पीस मुखपर लेप करे तो चंद्रमाके समान मुख-कांति होय।

चूनेसे मुख जलनेपर।

तांबूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित् ॥ तैलेन गंडूषमसौ विदध्यादम्लारनालेन पुनः पुनर्वा॥१९॥ इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ-पानके बीडामें यदि अधिक चूना लगगया होय तो यह मुखको जलाय देता है उसकी शांति करनेको तेलके कुल्ले करे, अथवा बारंबार कांजीके कुल्ले करे. यह राजमार्त्तंड ग्रंथमें लिखा है।

कंठ सुधारनेको अवलेह।

जातीदलैलामधुमातुलुंगपत्रैः सलाजै- र्युतपिप्पलीकैः ॥ कृतोऽवलेहः कुरुते नराणां कंठे ध्वनिं किन्नरनादतुल्यम्॥२०॥

अर्थ-चमेलीके पत्ते, छोटी इलायची, सहत, बिजौरेकी छाल, पत्रज, खील और पीपल इनका अवलेह करके पीवे तो उसके कंठकी ध्वनि किन्नरोंके समान होय।

कुंकुमादि तैल।

कुंकुमं चंदनं पत्रमुशीरं कमलोत्पलम्॥ गोरोचना हरिद्रे द्वे मंजिष्ठामधुयष्टिका ॥ २१ ॥ सारिवालोध्रपत्तंगाः कुष्ठं कैरिककेसरे ॥ स्वर्णवल्ली प्रियंगुश्च कालेयं रक्तचंदनम् ॥ २२ ॥ एभिरक्ष- मितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ अभ्यं- ङ्गाद्राजपत्नीनां ये चान्ये धनिनो नराः ॥ २३ ॥ तिलकाः पिडिका व्यंगा नीलिका मुखदूषिकाः ॥ नश्यंत्यनेन मेहस्य दुश्छाया च विवर्णता ॥ २४ ॥ नाशयित्वा च जनयेद्रूपं चातिमनोहरम्॥ पद्मकेसरवर्णाभं मुखं भवति कांतिमत् ॥ २५ ॥

इति वैद्यालंकारात् ॥

अर्थ-केशर, चंदन, पत्रज, खस, कमल-गट्टा, कमलकी केशर, गोरोचन, हलदी दारु-हलदी, मजीठ, मुलहटी, सारिवा, लोध, पतंग, कुष्ठ, गेरू, नागकेशर, सोनजुही, प्रियंगू, काले-यक (पीलाचंदन), लालचन्दन प्रत्येक एक एक तोला ले मीठा तेल १ सेर डालके पचावे। यह तेल राजस्त्रियोंके और अन्य जो सेठ साहू-कार हैं उनके योग्य है, यह तिल, फुंसी, झांई, नीलिका, मुहांसे, देहकी दुष्ट छाया और विव-र्णताको दूर कर उत्तम रूप करे है, यह कम-लकी केशरके समान मुखकी कांति करे। यह वैद्यालंकार ग्रंथमें लिखा है।

मुखके छालोंपर ।

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः ॥ क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गंडूषान्मुखपाकजित् ॥ २६ ॥

अर्थ–चमेलीके पत्ते, गिलोय, दाख, जवासा, दारुहलदी, हरड, बहेडा, आमला इनके क्वाथमें सहत डालके शीतल होनेपर कुल्ले करनेसे मुखके छाले दूर हों ।

दूसरा प्रयोग ।

पटोलनिंबजंब्वाम्रमालतीनां च पल्लवैः॥ कृतः क्वाथः प्रयोक्तव्यो मुखपाकस्य धावने ॥ २७ ॥

अर्थ–पटोलपत्र, नीम, जामुन, आम इनके पत्ते और चमेलीके पत्ते इनका क्वाथ कर मुखको धोवे अर्थात् कुल्ले करे तो छाले दूर हों ।

तीसरा प्रयोग ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्ताहरीतकीमुस्तकरोहिणीभिः ॥ यष्ट्याह्वराजद्रुमचंदनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥२८॥

अर्थ–सतोना, खस, पटोलपत्र, नागरमोथा, हरड, भद्रमोथा, कुटकी, मुलहटी, अमलतास और चन्दन इनका क्वाथ करके पीवे तो मुखके छाले दूर हों ।

खदिरगुटी ।

खदिरस्य तुलां तोयद्रोणे पक्त्वाष्टशेषिते ॥ जातीकोशेंदुपूगाम्राचातुर्जातमृगांडजैः ॥ २९ ॥ पृथक्कर्षमितैः पिष्टैर्मेलयित्वा चणोपमाम् ॥ गुटीं कृत्वा मुखे धृत्वा सा निहंत्यखिलान्गदान् ॥ जिह्वादन्तोष्ठवदनगलताल्वसमुद्भवान् ॥ ३० ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां मुखरोगचिकित्सा नाम एकोनसप्ततितमस्तरंगः ॥ ६९ ॥

अर्थ–खैरसारको १०० पल ले जलमें क्वाथ करे जब अष्टमांश शेष क्वाथ होजाय तब इसमें जावित्री, कपूर, चिकनी सुपारी, आमकी गुठली, चातुर्जात और कस्तूरी, ये प्रत्येक एक एक तोला लेय सबको पीस चनेके प्रमाण गोली बनावे, १ गोली मुखमें रखे तो मुखके सर्व रोग दूर हों, जीभ, दांत, होंठ, मुख, गले और तालुएके रोग दूर हों ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां मुखरोगचिकित्सा नाम एकोनसप्ततितमस्तरंगः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमस्तरंगः ।

कर्णरोग ।

करोति विगुणो वायुर्मलं संगृह्य कर्णयोः ॥ सकफः पाकबाधिर्यशूलस्रावादिकान्गदान् ॥ १ ॥

अर्थ–कुपित हुई वात कानमें मलको एकत्र करके और कफको साथ लेकर कर्णपाक, बहरापना, कर्णशूल, और कर्णस्रावादि रोगको करे है ।

बाधिर्यनाशक तेल ।

तैलं कांजिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समुत्रैः शृतं स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकंदद्रवैर्वा समैः॥शुंठीतुंबुरुहिंगुभिः शृतमथ स्यात्कर्णशूलापहं सिद्धं बिल्वगणेन साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ २ ॥

अर्थ–मीठा तेल, कांजी, बिजौरेका रस, सहत और गोमूत्र इनसे तेल सिद्ध करे, अथवा सहत, अदरखका रस, सहजनेकी जड, केलेका कंद इनके रसको तेलके समान लेकर अथवा सोंठ, तुंबरू और हींग इनके क्वाथसे सिद्ध करा

हुआ तैल कर्णशूलको नष्ट करे अथवा बिल्वगणकी औषधी और बकरीका दूध तथा गोमूत्रसे सिद्ध करा तेल बहरेपनेको दूर करे।

कर्णरोगपर क्षारतैल।

हिंग्वब्ददारुमिसिमूलकभस्मभूर्जत्वक्क्षारसिंधुरुचकोद्भिदशिग्रुविश्वैः ॥ सस्वर्जिकाविडवचांजनमातुलंगरंभारसैः समधु शुद्धमिदं विपक्वम् ॥ ३ ॥ तैलं प्रसिद्धमपि तच्छ्रवणामयघ्नं कर्णप्रणादबधिरत्वहरं नराणाम् ॥ भ्रूमस्तकश्रवणशष्कुलिकांतरेषु शूलापहं चरकशास्त्रचिकित्सितोक्तम् ॥ ४ ॥

इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–हींग, नागरमोथा, देवदारु, सौंफ, मूलीकी भस्म, भूर्जपत्र, दालचीनी, जवाखार, सैंधानिमक, कालानिमक, रेहका खार, सहँजना, सोंठ, सज्जी, विड, वच, सुरमा, बिजौरा, केलाका रस, मदिरा इनके साथ तेलको सिद्ध करे यह सब कानके रोगोंको दूर करे, कर्णप्रणाद, बधिरताको हरण करे, भौंहके, मस्तकके, कानके, शष्कुलीके शूलको नष्ट करे। यह चरकशास्त्रमें कहा है।

कर्णामृत तैल।

रामठं निंबपत्राणि फेनं सागरसंभवम् ॥ एतानि समभागानि सद्भिर्देयं सितं विषम् ॥ ५ ॥ गोमूत्रेण समायुक्तं कटुतैलं विपाचयेत् ॥ तेनैव पूरयेत्कर्ण नरकुंजरवाजिनाम् ॥ ६ ॥ कर्णरोगं निहत्याशु लेपनाच्छिरसो गदान् ॥ नाम्ना कर्णामृतं तैलं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ ७ ॥

अर्थ–हींग, नींबकी छाल, समुद्रफेन ये समान भाग ले, एक भाग सोमलविष मिलावे इसमें गोमूत्र मिलाय कडवे तेलको सिद्ध करे, जब सिद्ध होजाय तब कडवे तेलसे मनुष्य, हाथी और घोडोंके कानको परिपूर्ण करे तो कानके रोग दूर हों और मस्तकपर लगानेसे सब मस्तकके रोग दूर हों। यह कर्णामृत तैल प्रथम ब्रह्मदेवने बनाया था।

कर्णशूलपर।

आर्द्रकसूर्यावर्तकसौभांजनकमूलकस्वरसाः ॥ मधुतैलसैंधवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ९ ॥

अर्थ–अदरख, हुलहुल, सहँजना, धतूरा और मूलीका स्वरस इन प्रत्येकमें सहत, तेल और सैंधानिमक मिलाय तेल सिद्ध करे, यह कर्णशूलका हरणकर्त्ता योग है।

अर्कपत्रयोग।

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिना च तप्तम् ॥ आपीड्य तोयं श्रवणऽभिषिक्तं निहंति शूलं बहुवेदनं च ॥ ९ ॥

अर्थ–पकेहुए आकके पत्तोंमें घी लगाय आगपर सेकलेय फिर पत्तोंको निचोड रस निकासलेय इसको कानमें डालदेय तो अत्यंत पीडायुत कानका शूल दूर होय।

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ॥ छागमूत्रं प्रशंसंति कोष्णं सैंधवसंयुतम् ॥ १० ॥

अर्थ–जिसके कानमें अत्यंत पीडा हो और शब्द हुआ करे एवं राध बहे उसमें बकरीके मूत्रमें सेंधानिभक डाल गरम कर सुहाता २ कानमें डाले।

हिंग्वादि तैल।

हिंगुतुंबुरुशुंठीभिः कटुतैलं विपाचयेत्॥

कर्णशूले प्रणादे वा पूरणं हितमुच्यते११
इति हिंग्वाद्यं तैलम् । चिकित्सातः ॥

अर्थ–हींग, तूमरु और सोंठ इनके कल्कसे कडवे तेलको पचावे यह कानकी पीडावाला, और जिसके कानमें शब्द हुआ करे उसके वास्ते हित है । यह चिकित्साग्रंथमें लिखा है ।

अपामार्ग तेल ।

अपामार्गक्षारजलेतत्कृतकल्केन साधितं विजलम् ॥ अपहरति कर्णनादं बाधिर्य्यं चापि पूरणतः ॥ १२ ॥

अर्थ–चिरचिटाके क्षारजलको औटायके कल्कके समान करले फिर इससे तेल सिद्ध करे इसको कानमें डाले तो कर्णनाद और बहरापन दूर हो ।

शंबूक तेल ।

शंबूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत्॥ तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

अर्थ–छोटे शंखके बीच रहनेवाले कीडेके मांससे कडवे तेलको पचावे, इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णनाडी (कानकी नासूरका घाव) दूर होय ।

गंधक तेल ।

चूर्णेन गंधकशिलारजनीभवेन मुष्टचंशकेन कटुतैलपलाष्टकं तु॥ धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ १४ ॥
इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–गंधक, मनसिल और हलदी ये तीनों मिलायके १ पल लेकर चूर्ण करे और कडवा तेल ८ पल तथा धतूरेके पत्तोंका रस ८ पल डालके तेल सिद्ध करे इसको कानमें डाले तो बहुत दिनकी कर्णनाडी रोग दूर हो । यह योगरत्नावलीमें लिखा है ।

लघुक्षार तेल ।

शुष्कमूलकशुंठीनां क्षारो हिंगु सनागरम् ॥ शुक्तं चतुर्गुणं दद्यात्तैलमेतद्विपाचयेत् ॥ १५ ॥ बाधिर्यं कर्णशूलं च पूयस्रावं च कर्णयोः॥ कृमयश्चापि नश्यंति तैलस्यास्य च पूरणात् ॥ १६ ॥
इति कृष्णात्रेयात् ॥

अर्थ–सूखी मूलीका और सोंठका खार, हींग, सोंठ इनके कल्कमें चौगुना सिरका मिलाय तेलको पचावे इससे बहरापना, कर्णशूल, राधका बहना और कानकी कृमि ये सब दूर हों । यह कृष्णात्रेयमें लिखा है ।

स्वर्जिका तेल ।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा महौषधम् ॥ शतपुष्पा च तैस्तैलं मस्तुपक्वं चतुर्गुणम् ॥ १७॥ कर्णनादं च बाधिर्यं शूलं चास्य व्यपोहति ॥ बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थं च विवर्ज्जयेत् ॥ स्नानं शीतांबुपानं च मैथुनं च विवर्जयेत्१८

अर्थ–सज्जी, सूखी मूली, हींग, पीपल, सोंठ, सौंफ इनके साथ चौगुना दहीका पानी डालके तेल पचावे, यह कर्णनाद, बहरापना और शूलको नष्ट करे । बालक और वृद्ध यदि बहरे होयँ तो असाध्य है और बहुत दिनका बाधिर्य रोग असाध्य है. कर्णरोगमें पथ्य-स्नान, शीतल जल पीना और मैथुन करना कर्णरोगमें वर्जित है ।

कर्णपालीका बढाना ।

महिषीनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् ॥ नवमुशलिकंदचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ १९ ॥

अर्थ-नई मूसली कंदके चूर्णको भैंसके मक्खनमें मिलाय सात दिन धानकी रासमें गाड देय । यह लगानेसे कानकी पालीको बढावे ।

शतावरी तेल ।

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरंडबीजकैः ॥ तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां वृद्धिकृत्परम् ॥ २० ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां कर्णरोगचिकित्सा नाम सप्ततितमस्तरंगः ॥७०॥

अर्थ-शतावर, असगंध, क्षीरकाकोली और अंडीके बीज इनके कल्कमें दूध डालके तेल पचावे यह तेल पालियोंको बढावे है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां कर्णरोगचिकित्सावर्णनं नाम सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमस्तरंगः ।

नेत्ररोग ।

अंजनं पूरणं क्वाथपानं मानेन शस्यते॥ आचतुर्थाद्दिनादाममभिष्यंदेऽपि लोचनम् ॥ १ ॥ गंडूषांजननस्यादिहीनानां कफकोपतः ॥ षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहाः स्युरुपेक्षिताः॥ २ ॥

अर्थ-नेत्ररोगमें अंजन आंजना, नेत्रोंको घृतादिसे भरना और क्वाथका पीना यह यथायोग्य मात्रासे देवे । परंतु यह जिसके नेत्र दूखने आये हों उसके चतुर्थ दिनके बाद भलेही अभिष्यंदी नेत्र हों तथापि उक्त कर्म करे । और यदि नेत्रमें कफका कोप होय तो गंडूष, अंजन और नस्य ये कफके क्षीण होनेपर करे । नेत्रके ७६ रोग हैं, यह नेत्र दूखते होयँ और अच्छे न करे तो होते हैं ।

रसादिवर्ति ।

रसटंकणसिंधूत्थव्योषखर्परतुत्थकैः ॥ सवेतसाम्लैः सक्षौद्रैर्वर्तिर्नेत्रगदापहा॥ ३॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ-पारा, सुहागा, सेंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, खपरिया, लीलाथोथा इनको अमलवेतके रसमें बारीक घोट और सहत मिलाय बत्ती बनावे । यह बत्ती नेत्ररोगनाशक है । यह रसरत्नप्रदीपमें लिखा है ।

जीवंत्यादि घृत ।

जीवंती मधुकं द्राक्षा कटुकस्य फलानि च ॥ शटी पुष्करमूलं च व्याघ्री गोक्षुरकं बला ॥ ४ ॥ नीलोत्पलं चामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतं चैव विपाचयेत् । ॥ ५ ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य रोगराजं समुच्छ्रितम ॥ रूपमेकादशविधं सर्पिरेष व्यपोहति ॥ ६ ॥

अर्थ-जीवंती (डोडी), मुलहटी, दाख, कुटकी, कचूर, पुहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खिरेटी, नीलकमल, भूयआवला, त्रायमाण, धमासा और पीपल ये समान भाग लेवे, सबका कल्क करके इसके साथ घृतको पचावे. यह रोगसमूहका नाशक है. ११ प्रकारके राजयक्ष्माको और नेत्रके समस्त रोगोंको यह जीवंत्यादि घृत दूर करे है ।

अभिष्यंदका यत्न ।

लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधनरेचनैः ॥ उपाचरेदभिष्यंदमंजनाश्च्योतनादिभिः७॥

अर्थ-लंघन, लेप, स्वेदन, फस्त खोलना, जुलाब, अंजन और आश्च्योतन (पोटलीका

निचोडना) इत्यादि नेत्र दूखनेको आये हों तो प्रथम करे ।

लंघन ।

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः॥ पंचैते पंचरात्रेण रोगा नश्यंति लंघनात् ॥ ८ ॥

अर्थ-नेत्रके, कूखके, सरेकमां, व्रण और ज्वर ये पांच रोग पांच रात्रि लंघन करनेसे नष्ट होते हैं ।

षट्सप्ततिर्लोचनजा विकारास्तेषामभिष्यंदसमुद्भवानाम् ॥ श्लेष्माश्रयत्वादिह लंघनं प्राक्प्रशस्यते मुद्गरसोदनं च ॥ ९ ॥

अर्थ--नेत्रके ७६ रोग हैं तिनमें अभिष्यंदी रोगोंको कफाश्रित होनेसे प्रथम लंघन करना फिर मूंगका रस और मांस पथ्य देना हित है ।

आश्च्योतन और लेप ।

आश्च्योतने सत्रिफला सलोध्रा सचंदना दारुनिशा प्रशस्ता ॥ आलेपने चंदनगैरिकं च सताक्ष्यशैलाभयमेतदिष्टम् ॥ १० ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, लोध, सफेद चंदन और दारुहलदी इनकी पोटली बनाय जलमें भिगोयके नेत्रोंमें निचोडे तथा चंदन, गेरू, रसौंत, मनसिल और हरड इनको पीसके नेत्रोंकी पलकोंपर लेप करे ।

अतः परं च त्रिफलाकषायः पाने पटोलाद्यफलत्रिकाद्ये ॥ घृते हिते कायविशोधनं च सरक्तसंशोधनमंजनादि ॥ ११॥

अर्थ-इसके उपरांत त्रिफलाके क्वाथका पीना तथा पटोलादि और फलत्रिकादिकमें घृत सिद्ध करके पीवे ऊपर नीचेसे वमनद्वारा देहको शुद्ध करे, रुधिर निकाले तथा अंजनादि आंजने चाहिये ।

अंजनकी विधि ।

ततः संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत्॥ हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽंजनमिष्यते ॥ १२ ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसंते तु सदैव हि ॥ १३ ॥ प्रथमं सव्यमंजीयात्पश्चाद्दक्षिणमंजयेत् ॥ शलाकया सांजनया तच्चांतर्नयनं स्पृशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-जब नेत्रके दोष पकजावें तब अंजन करे । हेमंत और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नके समय अंजन आँजे ।और ग्रीष्मऋतुमें तथा शरत् ऋतुमें प्रातःकाल और सायंकालमें अंजन आँजे, वर्षा ऋतुमें जब बद्दल न होवें तब और वसंतऋतुमें सदैव अंजन आँजना चाहिये । नेत्र आंजनेके समय वैद्यको उचित है कि प्रथम वामनेत्रमें अंजन लगावे फिर दहनेमें और सलाईको अंजनमें भरके नेत्रोंमें भीतरके भागको स्पर्श करता हुआ आँजे ।

पटोलादि घृत ।

अब्द्रोणे सपटोलनिंबकटुकात्रायंतिकाचदनैर्दार्वीयासवृषैः फलत्रयशतस्यार्द्धेन तुल्यैः शृतैः ॥ कृष्णाचन्दनकौटजाब्दमधुकैर्भूनिंबयुक्तैः शृतं श्रोत्रघ्राणमुखाक्षिरुक्प्रशमनं सर्पिः पटोलादिकम् १५ इति कालिकातः ॥

अर्थ-पटोलपत्र, नीमकी छाल, कुटकी, त्रायमाण, चंदन, दारुहलदी, धमासा, अडूसा, त्रिफला ये ५० पल ले और २० सेर जलमें डालके औटावे जब सिद्ध हो जावे तब पीपल,

चंदन, इन्द्रजौ, नागरमोथा, मुलहटी और चिरायता इनका क्काथ पूर्वोक्त क्काथमें मिलाय दे इनके साथ घृत सिद्ध करे । यह पटोलादि घृत कान, नाक, मुख, नेत्रोंके रोगोंको दूर करे । यह चिकित्साकलिकामें लिखा है ।

उपनाह ।

जात्याः पत्रैर्घृतैर्भृष्टैश्चक्षुष्यमुपनाहनम्॥ अथवा निंबपत्रैः स्यादुपनाहोऽक्षिरोगजित् ॥ १६ ॥

अर्थ-चमेलीके पत्तोंको घृतमें भूनके नेत्रोंमें उपनाहन करे अथवा नीमके पत्तोंका उपनाहन करना नेत्ररोगको दूर करनेवाला है ।

यष्ट्यादि क्काथ ।

यष्टीगुडूचीत्रिफलासदार्वीर्निष्क्काथ्य तत्क्काथमथ प्रभाते ॥ निपीय नेत्रे च निषिच्य तेन सद्योऽक्षिपाकं विजहाति जंतुः ॥ १७ ॥

अर्थ-मुलहटी, गिलोय, त्रिफला, दारुहलदी ये समान भाग ले क्काथ करे । प्रातःकाल पीवे और थोडे जलके छिनके नेत्रोंमें भी देवे तो नेत्रपाक तत्काल दूर होय ।

महात्रैफल घृत ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च ॥ वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ १८ ॥ आजं क्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ॥ उत्पलं मधुकं क्षीरं काकोली त्रिफला कणा । ॥१९ ॥ द्राक्षा सितोपला व्याघ्री चैषां कल्कैर्विपाचयेत् ॥ गव्यं घृतं च तत्सिद्धं महात्रैफलनामकम् ॥ २० ॥ ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते॥ यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्तावंतोप्यपकर्षति ॥ २१ ॥ नक्तांध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलेऽर्बुदे ॥ अभिष्यंदेऽधिमंथे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ २२ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु रक्तपित्तकफेषु च ॥ अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् । ॥ २३ ॥ स्रावतो वातपित्ताभ्यां सकंड्वासन्नदूरदृक् ॥ पटुदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम्॥ सर्वनेत्रामयं हन्यान्महात्रैफलकं घृतम् ॥ २४ ॥

इति योगरत्नावल्याः ॥

अर्थ-त्रिफलेका रस १ सेर, भांगरेका रस १ सेर, अडूसेका रस १ सेर, सतावरका रस १ सेर, बकरीका दूध, गिलोय, आमलेका रस प्रत्येक एक एक सेर ले तथा कमल, मुलहटी, क्षीरकाकोली, त्रिफला, पीपल, दाख, मिश्री और कटेरी इनके कल्कोंसे गौका घृत परिपक्क करे । यह महात्रैफल घृत ऊर्ध्वपान और अधःपान तथा मध्यपान करे तो यावन्मात्र नेत्रके रोग जैसे रतोंध, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यंद, आधिमंथ, पक्ष्मकोप और रक्त, पित्त, कफके दोष, वातकफके प्रभावसे नेत्रस्राव, खुजली, समीपका दूर दीखे इन सब रोगोंको नष्ट करे, दिव्य दृष्टि करे, तत्काल बल वर्ण और अग्निको बढावे यह महात्रैफलघृत सर्व नेत्रके रोगोंको दूर करे । यह योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

लघुत्रैफल घृत ।

क्काथेन कल्कविधिना च फलत्रिकस्य पक्कं घृतं जयति नेत्ररुजः समस्ताः ॥ कुष्ठप्रमेहमुखकर्णकपोलनासारोगान्भगंदरगतिव्रणगंडमालाः ॥ २५ ॥

इति कलिकातः ॥

अर्थ–त्रिफलेके काथ और कल्कसे घृत परिपक्व करे यह समस्त मुखरोगोंको दूर करे। कुष्ठ, प्रमेह, मुख, कान, कपोल, नाकके रोग, भगंदर, नाडीव्रण और गंडमालाको नष्ट करे। यह कलिकाग्रंथमें लिखा है।

करवीरयोग।

श्वेतकरवीरकिसलयविच्छेदरसेनपूरिताक्षस्य ॥ तत्कालसमुत्पन्नो नयने कोपः शमं याति ॥ २६ ॥

इति राजमार्त्तंडात् ॥

अर्थ–सपेद कनेरके नवीन कोमल पत्तोंको कूट रस निकाल आँखमें डाले तो तत्कालकी उत्पन्न हुई नेत्रपीडा तत्काल दूर हो। यह राजमार्त्तंड ग्रंथमें लिखा है।

आश्च्योतन।

ससैंधवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्॥आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कंडूरुजानाहविनाशहेतुः ॥ २७ ॥

अर्थ–सैंधानिमक और पठानी लोधको घीमें भून ले फिर कांजीमें पीस सपेद कपडेमें पोटली बांध नेत्रोंके ऊपर फेरे तो नेत्रोंकी खुजली दर्दको दूर करे।

पिंडी।

निम्बत्वचोदुंबरवल्कलेन वातारियष्टीमधुचन्दनेन ॥ पिंडी कृतातीव हिताक्षिकोपे वातेन पित्तेन कफेन वापि ॥२८॥

अर्थ–नीमकी छाल, गूलरका वकला, अंड, मुलहटी और चंदन इनकी पिंडी कर नेत्रोंपर रक्खे, यह बात, पित्त और कफके नेत्ररोगोंको नष्ट करे। प्रकारान्तर–खपरिया, बीजाबोल, शुद्ध लीलाथोथा, शंखकी नाभि इनको समान भाग ले नींबूके रससे बारीक पीस सरसोंके समान गोली बनावे इसे जलमें घिसके लगावे तो तिमिर, काच, पटल और खुजली आदि नेत्रके सर्व रोग निःसंदेह दूर हों।

लेप।

हरितकीसैंधवतार्क्ष्यशलः सगैरिकैः स्वच्छजलप्रपिष्टैः ॥ बाह्ये प्रलेपं नयनस्य कुर्यात्सद्योऽक्षिरोगोपशमार्थमेनम् २९॥

अर्थ–हरड, सैंधानिमक, रसोंत, इलायची और गेरू इनको स्वच्छ जलमें पीस नेत्रके बाहर लेप करे तो तत्काल नेत्रके रोग दूर हों।

वासादिक्काथ।

वासामृतावचाव्याघ्रीपटोलत्रिफलादलैः॥ मतिमान्पाययेत्काथं सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥ ३० ॥

अर्थ–अडूसा, गिलोय, वच, कटेरी, पटोलपत्र, त्रिफला और नीमके पत्ते इनका काथ सर्व नेत्रके अभिष्यदोंको नाश करे।

पूरण।

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुसमन्वितम् ॥ अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरं सुपूरितम् ॥ ३१ ॥

इति कृष्णात्रेयात् ॥

अर्थ–हलदी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहलदी, मिश्री और सहत इनमें स्त्रीका दूध डालके बारीक पीस इसके रसको नेत्रोंमें भरे। यह नेत्राभिघात, नेत्रशूलको नष्ट करै। यह कृष्णात्रेयका मत है।

प्रत्यक्पुष्पीमूलं ताम्रमये भाजने ससिंधूत्थम् ॥ मधुना सहितं घृष्टं चक्षुःकोपं हरत्याशु ॥ ३२ ॥

इति राजमार्त्तंडात् ॥

अर्थ–प्रत्यक्पुष्पी (चिराचिरा) की जड

और सेंधानिमकको तामेके पात्रमें पीसे इसमें सहत मिलायके नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रकोप दूर हो । यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा है ॥

वातारिपत्रयोग ।

वातारिपत्रे पुटपाचितानां द्रवं दलानां वरमल्लिकायाः ॥ संमर्दयेत्सिंधुफलेन कांस्ये तेनांजनेनांजितलोचनस्य ॥ सद्योऽक्षिनिष्पंदमकांडकंडूमथाधिमंथादिगदान्निहंति ॥ ३३ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-अरंडीके पत्तोंको और चमेलीके पत्तोंको पुटपाक कर रस निचोड लेवे, इस रसमें समुद्रफल डालके कांसेके पात्रमें डालके पीसे इसे नेत्रोंमें आँजे तो तत्काल नेत्रोंका दूखना, अकांड खुजली, अधिमंथादि रोगोंको दूर करे। यह सारसंग्रहमें लिखा है ।

वासकादि क्वाथ ।

अटरूषाभयानिंबधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ॥ स्रावरक्तकफं हंति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-अडूसा, हरड, नीमकी छाल, आमले, नागरमोथा, बहेडा, पटोलपत्र इनका क्वाथ रुधिरका स्राव और कफको नष्ट करे, नेत्रोंको हितकारी है ।

बृहद्वासादि ।

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृता चंदनवत्सकं च ॥ कालिंगदार्वीदहनं च शुंठी भूनिंबधात्रीविजया बिभीतम् ॥ ३५॥ तथा यवक्वाथमथाष्टशेषं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ॥ तैमिर्यकंडूपटलार्बुदं च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं वा ॥ दाहं सरागं सरुजं सपित्तं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् ॥ ३६ ॥

अर्थ-अडूसा, नागरमोथा, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, गिलोय, चंदन, कुडाकी छाल, दारुहलदी, चित्रक, सोंठ, चिरायता, आमले, भाँग, बहेडा और इन्द्रजौ इन सबका अष्टावशेष क्वाथ करके पीवे तो तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, व्रणयुक्त तथा व्रणरहित शुक्ररोग, दाह, नेत्रोंकी लाली, पीडा और पित्तसे आदि ले नेत्रोंके सकल रोगोंको दूर करे ।

पटोलादिगण ।

पटोलवासकारिष्टगुडूचीत्रिफलाघनम् ॥ पंचमूली सयष्ट्याह्वा चंदनं विश्वभेषजम् ॥ ३७ ॥ पलोलादिगणः प्रोक्तः सर्वनेत्रामयापहः ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥३८॥ स्रावं रक्तप्रकोपं च पटोलादिर्व्यपोहति ॥३९॥

अर्थ-पटोलपत्र, अडूसा, नीमकी छाल, गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा, लघुपंचमूल, मुलहटी, चंदन, सोंठ यह पटोलादि गण सर्व नेत्ररोगनाशक है. वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, जलका गिरना, रुधिरका कोप इन सबको पटोलादिगणका क्वाथ दूर करे ।

तिमिरपर ।

चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदंभः ॥ सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हंति ॥ ४० ॥

अर्थ-चित्रककी जडकी छाल, त्रिफला, पटोलपत्र और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें घी डालके पीवे तो नेत्रोंको हित करे और विशेष करके तिमिररोगको नष्ट करे ।

धात्र्यादिक्काथ ।

धात्रीफलं निंबकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च ॥ क्काथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनहंति शुक्रम् ४१॥

अर्थ–आमले, नीमकी छाल, कैथके पत्ते, मुलहटी, लोध, खैर, तिल इनके क्काथकी शीतल होनेपर धार नेत्रोंमें डाले तो नेत्रके सर्व प्रकारके शुक्ररोग नष्ट होंय ।

कर्पूरादि योग ।

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ॥ क्षिप्रमंजनतो हंति शुक्रं चातिघनोन्नतम् ॥ ४२ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–कपूरको बडके दूधमें पीस अंजन करे तो अत्यंत बढा हुआ नेत्रका शुक्र रोग नष्ट हो. यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा है ।

प्रयोगांतर ।

किंशुकस्वरसभावितं मुहुर्नक्तमालतरुबीजजं रजः ॥ वर्तियोगविधिना विनाशयत्याशु नेत्रगतपुष्पपांडुताम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–कंजाके फलको बारीक पीस उसमें पलासके रसकी भावना वारंवार देकर बत्ती बनावे. इसके लगानेसे नेत्रका फूला और नेत्रोंका पीलापना दूर हो ।

त्रिफलायोग ।

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्ज्जी सायं समश्नाति समाक्षिकाज्यम् ॥ स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥ ४४ ॥

इति मतिमुकुरात् ॥

अर्थ–जो प्राणी अपथ्यको त्यागकर सायंकालके समय सहत घृतमें मिलाके त्रिफलेका चूर्ण भक्षण करे वह इस प्रकार नेत्रोंके विकारसे छूटजाता है जैसे क्षीणधनवाला पुरुष नौकरोंसे। यह मतिमुकुरग्रंथमें लिखा है ।

प्रातर्धावनयोग ।

जातरोगा विनश्यंति न भवंति कदाचन ॥ त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ–जो प्राणी प्रातःकाल त्रिफलेके वासित जलसे नेत्रोंको धोया करता है उसके सर्व नेत्रके रोग नष्ट होते हैं ।

चंद्रोदया वर्ति ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ बिभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला ॥ ४६ ॥ सर्वमेतत्समीकृत्य छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ नाशयेत्तिमिरं काचं पटलान्यर्बुदानि च ॥ ४७ ॥ अधिकान्यपि मांसानि रात्र्यंधं पुष्पकं तथा ॥ वर्तिश्चंद्रोदया नाम्ना नृणां नेत्रप्रदायनी ॥ ४८ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–हरड, वच, कूठ, पीपर, कालीमिरच, बहेडेकी मिंगी, शंखकी नाभि और मनसिल इन सबको एकत्र कर बकरीके दूधमें पीस बत्ती बनावे, जलमें घिस नेत्रोंमें लगानेसे, तिमिर, काच, पटल, अर्बुद, अधिमांस, रतोंध, फूला इन सब रोगोंको दूर करे । यह चंद्रोदयावर्त्ती मनुष्योंके सर्व नेत्ररोगोंको हरण करे. यह योग रत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

सौगत अंजन ।

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णितैः । सर्वनेत्रामयान्हन्यादेतत्सौगतमंजनम् ४९

इति मतिमुकुरात् ॥

अर्थ–हलदी, दारुहलदी, हरड, जटामांसी, कूठ और पीपल इनको बारीक पीस अंजन

करे यह सौगत अंजन सर्व नेत्रविकारोंको दूर करे । यह मतिमुकुर ग्रंथमें लिखा है ।

नयनामृत अंजन ।

रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम्॥ ईषत्कर्पूरसंमिश्रमंजनं नयनामृतम् ॥ ॥ ५० ॥ तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्माबुदानि च ॥ क्रमात्पथ्याशिनो हंति तथान्यानपि दृग्गदान् ॥ ५१ ॥

अर्थ–पारा, शीशा ये समान भाग ले दोनोंसे दूना सुरमा लेवे और पारदका चतुर्थांश इसमें कपूर मिलावे यह नयनामृत अंजन तिमिर, पटल, काच, शुक्र, अर्मरोग, अर्बुद इन सबको क्रमसे पथ्यसेवन करनेसे नष्ट करे ।

प्रयोगांतर ।

हिंगुना द्रोणपुष्प्या वा रसेनांचितलोचनः ॥ अचिरात्कामलाव्याधिं नरो जयति निश्चितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ–हींगको गोमाके रसमें खरल कर नेत्रोंमें लगावे तो यह बहुत ही जल्दी कामला रोगको नष्ट करे ।

गुंजामूलयोग ।

गुंजामूलं बस्तमूत्रेण पिष्टं निर्घृष्टा वा वारिणा भद्रमुस्ता ॥ आन्ध्यं सद्यस्तैमिरं हंति पुंसामस्युद्गाढं नेत्रयोरंजनेन५३

अर्थ–घूँघचीकी जडको बकरेके पेशाबमें घिसके लगावे, अथवा भद्रमोथाको जलमें घिसके लगावे तो अंधापना और तिमिर रोग तत्काल दूर करें ।

प्रयोगांतर ।

कालितरुफलमज्जास्निग्धपट्टे प्रविष्टो हरति नयनपुष्पं स्तन्ययोगांजनेन ॥ श्रवणमलसमेतं मारिचं पंकमक्ष्णोः क्षपयति किल नैशीमंधतां स्त्रीप्रियोक्तम् ॥ ५४ ॥

इति वैद्यदर्पणात् ॥

अर्थ–बहेडेकी मिंगीको चिकने पत्थरपर पीस स्त्रीके दूधमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंका फूला दूर हो अथवा काली मिरच और कानका मैल दोनों जलमें घिसके लगावे तो रतौंध दूर होय । यह वैद्यदर्पणमें लिखा है ।

पिप्पल्यादि गुटिका ।

पिप्पली त्रिफला लाक्षा लोध्रकं च ससैंधवम् ॥ भृंगराजरसे घृष्टं गुटिकांजनमिष्यते ॥ ५५ ॥ अर्म सतिमिरं काचं कंडू शुक्रं तथार्जुनम् ॥ अंजनं नेत्रजात्रोगान्निहंत्येव न संशयः ॥५६॥

इत्यश्विनीकुमारसंहितायाः ॥

अर्थ–पीपल, त्रिफला, लाख, लोध, सेंधानिमक इनको भांगरेके रसमें घोटके गोली बनावे. जलमें घिसके लगावे तो अर्म, तिमिर, काच, खुजली, शुक्र, अर्जुन और यावन्मात्र नेत्रके विकारोंको नष्ट करे । यह अश्विनीकुमारसंहितामें लिखा है ।

नेत्रपीडापर ।

श्वेतस्य कांचनारस्य मूलं दुग्धेन पेषितम् ॥ घृष्टं ताम्रेंजनं हंति सद्यो नेत्ररुजं पृथुम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–सपेद कचनारकी जडको दूधसे तामेके पात्रमें घिसके अंजन करे तो तत्काल नेत्रपीडा दूर होय ।

प्रयोगांतर ।

तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसौ ग्राह्यौ समांशकौ ॥ ताभ्यां तुल्यं पयो नार्य्यास्त्रितयं कांस्यपात्रके ॥ ५८ ॥ अयःस्थं

त्रिफलाचूर्णं सर्पिषा सह योजितम् ॥ भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनांधोऽपि पश्यति ॥ ५९ ॥

अर्थ-तुलसी और बेलपत्रका समान भाग रस ले, इन दोनोंके बराबर स्त्रीका दूध लेवे, तीनोंको कांसेके पात्रमें खरल करे फिर त्रिफलेके चूर्णको लोहेके पात्रमें पीस उसमें घी मिलाय रात्रिके समय ब्यालू करने पश्चात् १ महीने पीवे तो अंधा भी देखने लगे।

हस्तयोग।

भुक्त्वा पाणितले घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥ अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ६० ॥

अर्थ-मध्याह्नके समय भोजन कर हाथ धोयके दोनों हाथोंको आपसमें रगडकर नेत्रोंमें फेरे तो यह हाथोंका जल तिमिर रोगोंको शीघ्र नष्ट करे है।

चंद्रकला वर्ति।

मुक्ताभस्मसिताभ्रपौररसकश्रोतोंजनैर्नांडजातुत्थांभोभवशंखनाभिचपलाभृंगोत्तमामज्जभिः ॥ वर्त्तिश्चंद्रकला निहंति तिमिरं चित्रं किमत्र स्फुटं कंडूमंडलकाचशुक्रतिमिरांभःस्रावपिल्लानपि॥६१॥

अर्थ-मोतीकी भस्म, मिश्री, अभ्रकभस्म, गूगल, खपरिया, सपेद सुरमा, कस्तूरी, लीलाथोथा, समुद्रफेन, शंखकी नाभी, पीपल, भांगरा और त्रिफलाकी गुठली इनको समान भाग ले पीसके बत्ती बनावे. इस चंद्रकलावर्त्तीसे तिमिर, खुजली, मंडल, काच, शुक्र, ढरका और पिल्ल ये नेत्रके सर्व रोग दूर हों।

प्रयोगांतर।

गजवल्ल्या द्रवं मर्द्य ताम्रेण प्रहरं पुनः ॥ कज्जलं तत्समुत्पाद्य तेनांजितविलोचनः ॥ सद्यो नेत्ररुजं हंति समूलां पाकसंभवाम् ॥ ६२ ॥

इति योगरत्नप्रदीपात् ॥

अर्थ-नागवेलके रसको तामेके पात्रमें डालके तामेसे १ प्रहर पर्यंत घिसे इससे जो कज्जल प्रगट होय उसको नेत्रोंमें लगावे तो तत्काल जडसहित पाकसंभव नेत्रकी पीडा दूर होय। यह योगरत्नप्रदीपमें लिखाहै।

रतौंधपर।

हरेणुकां सैंधवसंप्रयुक्तां श्रोतोंजयुक्तामुपकुल्यया च ॥ पिष्ट्वाजमूत्रेण कृता च वर्तिर्नक्तांध्यविध्वंसकरी नराणाम्६३॥

इति कलिकातः ॥

अर्थ-मटरको सेंधेनिमकके साथ सुरमामें घोटे अथवा पीपलके साथ बकरेके मूत्रसे घोटे फिर बत्ती बनायले यह मनुष्योंके रतौंधको दूर करे है। यह कलिकाग्रंथमें लिखा है।

नेत्रसंजीवनी शलाका।

निर्वापयेत्त्रैफलके कषाये नागं विधिज्ञः शतधा हुताशे ॥ संताप्य संताप्य ततः शलाकां कृत्वास्य शुद्धेन रसेन लिंपेत ॥ ६४ ॥ तयांजिताक्षो मनुजः क्रमेण सुपर्णदृष्टिर्भवति प्रसह्य ॥ जयेदभिष्यंदमथाधिमंथमर्मार्जुनौ वै तिमिरादिपिल्लान् ॥ ६५ ॥

इति सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-शुद्ध शीशेको आगमें गलाय २ के त्रिफलेके क्काथमें १०० बार बुझावे फिर इसकी सलाई बनावे इसको नेत्रोंमें फेराकरे तो गरुडके समान दिव्य दृष्टि होय और नेत्राभिष्यंद, अधिमंथ, अर्म, अर्जुन, तिमिर आदि पिल्ल रोगोंको दूर करे। यह सारसंग्रहमें लिखा है।

नेत्ररोगमें पथ्यापथ्य ।

शाकाम्लमद्यमत्स्यांश्च धूममैथुनमाषकान् ॥ तीक्ष्णानि घर्मं धूलिं च नेत्ररोगी विवर्जयेत् ॥ ६६ ॥ शालितंडलगोधूममुद्गसैंधवगोघृतम् ॥ गोपयश्च सिता क्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे हितम् ॥६७॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां नेत्ररोगचिकित्सा नामैकसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७१ ॥

अर्थ–सर्व प्रकारके साग, खटाई, मद्य, मछली, धूँआका लगना, मैथुन करना, उडदके पदार्थ, राई आदि और मिरचआदि तीक्ष्णवस्तु, धूप, तथा धूलका नेत्रोंमें जाना इन सबको नेत्ररोगवाला त्याग देय ।

बारीक और पुराने शाली चावल, गेहूं, मूंग, सेंधानिमक, गौका घी, गौका दूध, मिश्री और सहत इनका सेवन नेत्ररोगमें सदैव हित है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां नेत्ररोगचिकित्सावर्णनं नामैकसप्ततितमस्तरंगः ॥७१॥

द्विसप्ततितमस्तरंगः ।

नासारोग ।

अर्शांसि पीनसः स्रावः क्वचिच्छोणितपूययोः ॥ रोगा नासोद्भवास्तेषां क्षयो नस्यादिभिर्भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ–नासाकी अर्श, पीनस, नासिकास्राव, रुधिर और राधका स्राव इत्यादि नासाके रोगोंका नस्य आदिसे क्षय होता है ।

पीनसका यत्न ।

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ॥ यदि तु सघृतमन्नं क्षुण्णगोधूमचूर्णं त्यजति तदुपसेवी तत्कुतोऽस्यावकाशः ॥ २ ॥

अर्थ–गुड, कालीमिरच इनके चूर्णको डालके जो दहीको पीवे तो दुर्निवार भी पीनस दूर होय । अथवा दही, घृत, गेहूंका चूर्ण इनका विधिपूर्वक सेवन पीनसको दूर करे ।

शीतल जल ।

पिबति शिशिरमंभो यः प्रभूतं निशायां तदनु च शयनीयाधिष्ठितो याति निद्राम् ॥ ध्रुवमतिविषमोऽपि क्षीयतेऽस्य त्रिरात्रादधिगतपरिपाकः पीनसः श्वासहेतुः ॥ ३ ॥

अर्थ–जो प्राणी रात्रिके समय शीतल जल अधिक पीवे फिर अपनी शय्यापर सोय रहै तो उस प्राणीके अत्यंत विषम भी श्वासका हेतु पीनस तीन रात्रिमें नष्ट होय ।

नवोत्पन्नं प्रतिश्यायं स्नातस्य हरतेऽचिरात् ॥ मरिचं क्षौद्रसंयुक्तं सगुडं दधिमाक्षिकम् ॥ ४ ॥

अर्थ–जो प्राणी कालीमिरच, सहत, वा गुड, दही, सहत इनको एकत्र कर मस्तकसे स्नान करे तो नवीन सरेकमा दूर होय ।

चित्रकहरीतकी ।

चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुक्पंचमूलामृताधात्रीणामुदकार्मणैस्त्रिभिरपां द्रोणेन च क्वाथयेत् ॥ पादस्थे क्वथने गुडस्य च शतं पथ्याढकेनान्वितं पक्तव्यं शृतशीतले च मधुनः प्रस्थार्द्धमात्रं क्षिपेत्॥५॥ व्योषस्य त्रिसुगंधिकस्य च पलान्यत्रेव षट् प्रक्षिपेत्क्षारस्यार्द्धपलं

---

१ फूलेकी औषधि-निरमली, कस्तूरी, ममीरा, समुद्रफेन, लीलाथोथा, सुरमा, शंखनाभि, रसोत, रतनजोति, पीपर, बोरबाल इनको समान भाग ले नींबूके रसमें खरल कर गोली बाँधलेवे, जलमें घिसके आंजे तो फूला आदि नेत्रके सब रोग दूर होयँ ।

रसायनमिदं संसेव्यते सर्वदा ॥ शोषश्वासमलापकासवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभिः क्षीणोरःक्षतहिक्किभिः कफशिरोरुग्भिः प्रनष्टाग्निभिः ॥ ६ ॥

इति योगरत्नावलीतः ॥

अर्थ–चित्रककी छाल, लघुपंचमूल, गिलोय प्रत्येक सौ २ पल लेवे इनको २ मन जलमें औटावे और आवले १०० पलको ३ मन जलमें औटावे जब चतुर्थांश जल रहे तब छान ले दोनों क्वाथोंको मिलावे इसमें १०० पल गुड डाले ४ सेर बडी हरड डाले जब हरड फूल जावे तब उतार निकालके आध सेर सहत मिला देवे. फिर सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिसुगंधी प्रत्येक १ पल, जवाखार २ तोले मिलावे, यह रसायन सदैव सेवन करनेसे शोष, श्वास, प्रलाप, खाँसी, सरेकमा, कफजन्य सरदी, उरःक्षत, हिचकी, मस्तकके कफजन्य रोग और मंदाग्निको दूर करे । यह योगरत्नावली ग्रंथमें लिखा है ।

नस्य ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः॥ दंत्या च तैलं संसिद्धं नस्यतः पीनसापहम् ॥ ७ ॥

अर्थ–पाढ, हलदी, दारुहलदी, मरोडफली, पीपली, चमेलीके पत्ते और दंती इनके कल्कसे तेल सिद्ध करके नस्य देनेसे पीनस रोग दूर हो ।

हिंग्वादि तैल ।

हिंगुव्योषविडंगकट्फलवचारुक्तीक्ष्णगंधायुतैर्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाकुटजजैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः॥ इत्येभिः कटुतैलमेतदनले मंदे समूत्रं शृतं पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम्॥८॥

अर्थ–हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, कायफल, वच, कूठ, लाख, सपेद पुनर्नवा, इन्द्रजौ इनके कल्कसे कटुतैलको गोमूत्र डालके मंदाग्निसे सिद्ध करे, इसको नासिका द्वारा पीवे तो सर्व नाकके रोग दूर हों. यह हिंग्वादि तेल चिकित्साकलिका ग्रंथमें लिखा है ।

कट्फलादि चूर्ण ।

कट्फलं शृंगवेरं च पिप्पलीमरिचानि च ॥ शटीपुष्करमूलं च भार्ङ्गी मधुरसा वरा ॥ ९ ॥ अभया कृष्णलवणं शृंगी कर्कटकस्य च ॥ एतच्चूर्णवरं प्रोक्तं क्वाथो वा मूत्रमूर्च्छितः ॥१०॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके ॥ संनिपातेऽनिलकफे कासे श्वासे च शस्यते ११

अर्थ–कायफल, अदरख, पीपल, कालीमिरच, कचूर, पुहकरमूल, भारंगी, मूर्वा, त्रिफला, हरड, कालानिमक, काकडासिंगी इनके चूर्ण या क्वाथसे पीनस, स्वरभेद, तमक, हलीमक, संनिपात, बादी, कफके रोग, खाँसी और श्वासको दूर करे ।

नासावनाह और स्रावमें ।

नासावनाहे कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्पिषः॥ नासास्रावेऽतितीक्ष्णस्य नस्यं द्रव्यस्य कल्पयेत् ॥ १२ ॥ नासाशोषे क्षीरपानं शंसितं च प्रशस्यते॥प्रतिश्यायेषु सशिरः पीनसे नवसादरम् ॥१३॥ समानकाले चूर्णं च सूक्ष्मं संचूर्ण्य तद्द्वयम् ॥ गुंजामात्रं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत् ॥ १४ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां नासारोगचिकित्सा नाम द्विसप्ततितमस्तरंगः ॥७२॥

अर्थ-यदि नाक रुक रही होय तो गौका घी पीवे और नाकसे जल झडता होय तो तीक्ष्ण द्रव्य (मरिच, राई आदि) की नस्य देय। नासाशोषमें दूध, मिश्री मिला पीना अच्छा है, यदि सरेकमा और पीनस दोनों होयँ तौ नौसादर और कलीका चूना दोनों बारीक पीस १ रत्ती ले जलमें रगडके प्रधमननस्य देनी चाहिये। इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां नासारोगचिकित्सावर्णनं नाम द्विसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमस्तरङ्गः ।

शिरोरोग ।

अकालपलितं पीडासूर्यावर्तार्द्धभेदकाः॥ इत्यादयः शिरोरोगास्तान्यथादोषमाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ-विना समय सपेद बालोंका होना, मस्तकपीडा, सूर्यावर्त, अर्द्धभेद इन्यादि शिरके रोग हैं, इनकी जिस दोषसे जो रोग होय उसीके अनुसार चिकित्सा करे ।

मस्तकपीडापर ।

कुष्ठमेरंडजं मूलं लेपात्कांजिकपेषितम् ॥ शिरोऽर्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचकुंदजम् ॥ २ ॥

अर्थ-कूठ, अंडकी जड इनको कांजीमें पीस लेप करनेसे अथवा मुचुकुंदके फूल पीसके लेप करनेसे मस्तकपीडा दूर होय ।

दूसरा लेप ।

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ॥ लेपः कांजिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ॥ ३ ॥

अर्थ-देवदारु, छड, कूठ, नरसल और सोंठ इनको कांजीमें पीस तेल मिलाके लेप करे तो मस्तकपीडा दूर होय ।

सूर्य्यावर्त्त और अर्द्धावभेदपर ।

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ॥ सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ॥ ४ ॥

अर्थ-सारिवा, कमलगट्टा, कूठ, मुलहटी इनको खटाईमें पीस घृत और तेल मिलाके लेप करे तो सूर्यावर्त और अर्द्धावभेद दूर होय ।

आधाशीशीपर ।

सितोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयोन्वितम् ॥ नस्यतोऽनुदिते सूर्ये निहंत्येवार्द्धभेदयोः ॥ ५ ॥

अर्थ-मैनफल और मिश्रीको गौके दूधमें घिस नित्य सूर्योदयसे प्रथम नस्य लेवे तो आधासीसी दूर होय ।

स्मरफलादि प्रधमन ।

स्मरफलतिलपर्णीबीजसंयुक्तभूताकुशदलघटबीजत्वग्रजोऽर्द्धांशतुल्यम् ॥ प्रधमनविधिना तद्दत्तमात्रं शिरोरुक्प्रलपनकफतंद्रासन्निपातं निहन्यात् ॥ ६ ॥

अर्थ-मैनफल, तिलवनके बीज, भूतकेशी, कुशाके पत्ते, कुंभेके बीज इनका अर्द्धांश दालचीनी चूर्ण इनका प्रधमन नस्यकी विधिसे प्रयोग करे तो मस्तकपीडा, प्रलाप, कफ, तंद्रा और संनिपातको नष्ट करे ।

आधाशीशपिर ।

सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ॥ भ्रूकर्णनासाक्षिशिरोर्धशूले दिनादिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥ ७ ॥

अर्थ-केशरको घीमें भून कच्ची खांड मिलाय नस्य देय तो वातरक्तजन्य मस्तकपीडा,

भौंह, कान, नाक, नेत्र और आधे मस्तकका शूल और सूर्यावर्तरोग नष्ट होय ।

षड्बिंदुतैल ।

एरंडमूलं तगरं शताह्वा जीवंतिरास्ना सहसैंधवं च॥ भृंगं विडंगं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥८॥ आजं पयस्तैलचतुर्गुणं च चतुर्गुणं भृंगरसं च दत्त्वा ॥ पक्वं च षड्बिंदव एतदीया नस्येन हन्युः शिरसो विकारान् ॥ ९ ॥ च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दंतान्निबद्धमूलांश्च दृढीकरोति ॥ सुपर्णदृष्टिप्रतिमां च दृष्टिं बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं ददाति ॥ १० ॥

अर्थ-अंडकी जड, तगर, सतावर, जीवंती, रास्ना, सेंधानिमक, भांगरा, वायविडंग, मुलहटी, सोंठ, काले तिलोंका तेल तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध लेवे और इतना ही भांगरेका रस डालके तेल सिद्ध करै, इसकी छः बिन्दु नाकमें डाल नस्य देवे तो सर्व मस्तकके विकार, बालोंका झरना, दांतोंका हिलना दूर कर दृढ करे है, गरुडके समान दीर्घ दृष्टि तथा भुजाओंमें अधिक बल करे है।

केशवृद्धि ।

वटप्ररोहकेशिन्याश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ॥ गुडचीस्वरसैस्तैलमभ्यंगात्केशरोहणम् ११

अर्थ-बडके अंकुर बालछड इनका चूर्ण कर तेलमें डाले और इस तेलको धूपमें धरके पचावे और इसमें गिलोयका स्वरस मिलावे इस तेलकी मालिस करनेसे बाल ऊग आवें ।

दूसरा प्रयोग ।

मांसी कुष्ठं तिलाः कृष्णाः सारिवामूलमुत्पलम् ॥ सक्षौद्रक्षीरपिष्टानि केशसंवर्द्धनं परम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जटामांसी, कूठ, तिल, पीपल, सरिवन, कमलगट्टा और सहत इनको दूधमें पीसके लेप करे तो केशवृद्धि होय ।

तीसरा प्रयोग ।

मार्कवस्वरसभावितगुंजाबीजचूर्णपरिपाचिततैलम्॥ मिश्रितं त्रुटिजटासुरकाष्ठैः केशभारजननं जनतायाः ॥ १३ ॥

अर्थ-घूँघचीको भांगरेके रसकी भावना देकर तेलमें पचावे और इसमें छोटी इलायची, जटामांसी और देवदारुका कल्क मिलाय देवे, इसको मस्तकमें लगावे तो फिर बाल कदापि नहीं टूटे और अत्यन्त बालोंका भार मस्तकपर बढजावे ।

इन्द्रलुप्तपर ।

मांसीबलाबकुलजामलकैः सकुष्ठैः पिष्टैः प्रलिप्तशिरसो न पतंति केशाः ॥ स्निग्धायतातिकुटिलाकृतयो भवंति ये प्रच्युता अपि मिलिंदकुलप्रकाशाः ॥ १४॥

अर्थ-जटामांसी, खिरेटी, मौलसिरी, आमला और कुष्ठ इनको पीसके लेप करे तो बाल कदापि न झडें और चिकने, लंबे, कुटिल और काले भौंरेके समान होयँ ।

तथा दूसरा प्रयोग ।

बृहतीफलरसपिष्टं गुंजायाः फलमथापि वा मूलम्॥ हेमनि वृष्टं लिप्तं व्यपहरति महेंद्रलुप्ताख्यम् ॥ १५ ॥

अर्थ-घूंघचीके फलको अथवा जडको बडी कटेरीके रसमें पीसे फिर धतूरेके रसमें खरल कर मस्तकमें लगावे तो इन्द्रलुप्त (चाई) का रोग दूर होय ।

खालित्यपर प्रयोग ।

नीलोत्पलाक्षफलमज्जतिलाजगंधाःसार्द्धं प्रियंगुलतया समधूकवल्कैः ॥ संपेष्य यः प्रकुरुते बहुशः प्रलेपं खालित्यमस्य न पदं विदधाति मूर्ध्नि ॥ १६ ॥

अर्थ-नील कमल, बहेडेकी मिंगी, काले तिल, वनतुलसी, फूलप्रियंगु और महुएका वल्कल इनको जलमें पीस जो कई दफे बालोंपर लेप करे तो उसके मस्तकमें खालित्य रोग कदापि नहीं होय ।

केशकल्प ।

पलत्रयं माजुफलं हरितक्याः पलं तथा ॥ आमलक्यास्तु सप्तैव पलैकं खदिरस्य च ॥ १७ ॥ तुत्थस्यापि पलैकं तु नीलीवल्या दशैव तु ॥ नवसादरकस्यैकं लोहचूर्णस्य चैककम् ॥ ॥१८॥ तुवर्याः पलमेकं तु पलं ताम्रविशस्तथा ॥ अतिश्लक्ष्णमिदं घृष्टं भृंगराजरसैस्त्रिरम् ॥ १९ ॥ संधितं त्रिदिनं लोहे भिन्नांजनसमप्रभम् ॥ रूक्षीकृत्य कचानादौ पुनस्तेनावलेपयेत् ॥ २० ॥ वातारिपत्रैरावेष्ट्य सुप्तिं कुर्याद्विचक्षणः॥प्रातस्तैलामलैः स्नात्वा नरो जायेत निश्चितम् ॥ भिन्नकज्जलभृंगालीनिभकुंतलसंततिः ॥ २१ ॥

अर्थ-माजूफल १२ तोले, हरड ४ तोले, आमले २१ तोले, खैरसार ४ तोले, नीलाथोथा ४ तोले, लिलबरी १० तोले, नौसादर ४ तोले, लोहचूरा ४ तोले, फिटकरी ४ तोले, तामेका जहर ४ तोले इन सबको एकत्र कर भांगरेके रसमें ३ दिन खरल करे तो इसका काजलके समान काला रंग हो जायगा. प्रथम बालोंको साबुन आदिसे रूखे करके फिर इस कल्पको लगावे और अंडके पत्ते बांधके रात्रिमें सोय जावे प्रातःकाल उठकर तेल और आमलेको पीस मस्तकमें लगाय स्नान करे तो मस्तकके बाल काजलके और भौंरेके समान काले चिकने और नरम होवें ।

कृमिजन्यमस्तकरोगपर ।

कृमिजे च शिरोरोगे· व्योषनक्ताह्वशिग्रुजैः ॥ अजामूत्रेण संपिष्टैर्नस्यं कृमिहरं परम् ॥ २२ ॥

अर्थ-कृमिजन्य मस्तकरोगपर सोंठ, मिरच, पीपल, कंजा और सहँजना इनको बकरीके मूत्रमें पीस नस्य देनेसे मस्तकके कृमि दूर हों ।

विडंगादि तैल ।

विडंगसर्जिकादंतीहिंगुमूत्रेण संयुतम् ॥ विपक्कं सार्षपं तैलं कृमिघ्नं नस्यतः स्मृतम् ॥ २३ ॥

अर्थ-वायविडंग, सज्जी, दंती, हींग और गोमूत्र इनको सरसोंके तेलमें मिलायके परिपक्व करे, यह नस्य मस्तककृमिको दूर करे ।

भद्रादि तैल ।

भद्रं श्रियं पुंडरीकं मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ पद्माख्यं वेतसं मूर्वां लामज्जकमथापि वा ॥ २४ ॥ दार्वीहरिद्रामंजिष्ठाशारिवोशीरपद्मकम् ॥ एतैरालेपनं कुर्याच्छंखकस्य प्रशांतये ॥ २५ ॥

अर्थ-नागरमोथा, बेलगिरी, सपेद कमल, मुलहटी, नील कमल, पद्माख, बेत, मूर्वा, लामज्जक, दारुहलदी, हलदी, मजीठ, सारिवा, खस और कमल इनको जलसे पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा नष्ट होय ।

अनंतवातका यत्न ।

अनंतवाते कर्त्तव्यौ रक्तमोक्षः शिराव्यधैः ॥ २६ ॥

अर्थ–अनंतवातरोगमें फस्त खोलकर रुधिर निकलवाना चाहिये ।

आधाशीशीका मंत्र ।

उज्जैननगर देवपाल राजा जहां वसे महादेवको लिंग वहां जाय आधाशीशीकूं हरे आधाशीशी कहां चली नारी मानवीके माथेपरते कसे उतरा जसे उतारी तेसे उतरी गुरुकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां शिरोरोगचिकित्सा नाम त्रिसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७३ ॥

अर्थ–इस मंत्रको पढता जाय और चुकटीमें राख लेकर मस्तकमें लगायके मलता जावे तो निश्चय आधाशीशी दूर होय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां शिरोरोगचिकित्सावर्णनं नाम त्रिसप्ततितमस्तरंगः ७३

चतुःसप्ततितमस्तरंगः ।

प्रदर ।

अतिमार्गाश्वगमनप्रभूतसुरतादिभिः ॥ प्रदरो जायते स्त्रीणां योनिरक्तस्रुतिः पृथुः ॥ १ ॥

अर्थ–अत्यंत मार्ग चलनेसे, घोडेपर बैठनेसे, अथवा अत्यंत मैथुन करनेसे स्त्रियोंके प्रदररोग होता है । इस रोगमें योनिसे अत्यंत सपेद काला लाल रुधिर निकला करे है ।

प्रदररोगका यत्न ।

अशाकवल्कंज क्वाथं शृतं दुग्धं सुशीतलम् ॥ यथाबलं पिबेत्प्रातः शीघ्रासृग्दरनाशनम् ॥ २ ॥

अर्थ–अशोकवल्कलके क्वाथको औटाये हुए शीतल दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तप्रदरको तत्काल दूर करे । इसमें बलाबल विचार लेना चाहिये ।

जीरकावलेह ।

जीरकप्रस्थमेकं तु क्षीरस्याढकमेव च ॥ घृतप्रस्थार्द्धसंयुक्तं शनैर्मंदाग्निना पचेत् ॥ ३ ॥ सुशीते शर्कराप्रस्थं द्वयं चापि विनिक्षिपेत् ॥ चातुर्जातकणाविश्वमजाजी च घनं जलम् ॥४॥ दाडिमं रसजं धान्यं रजनी पटवासकम् ॥ वंशजातं यवक्षारं प्रत्येकं तु बलार्धकम् ॥ ५ ॥ जीरकस्यावलेहोऽयं प्रदरापहरः परः ॥ ज्वरप्रमेहतृड्दाहकृच्छ्रक्षैण्यविनाशनः ॥ ६ ॥

अर्थ–जीरा सपेद १ सेर, दूध गौका ४ सेर, घी आधसेर तीनोंको मिलायके मंदाग्निसे पचावे जब गाढा होजाय तब उतार शीतल कर ले फिर २ सेर खांडकी चासनीमें डालके इसमें चातुर्जातकी ४ औषध, पीपल, सोंठ, जीरा, नागरमोथा, नेत्रवाला, अनारदाना, रसज, धनिया, हलदी, पटवासक, वंशलोचन और जवाखार, प्रत्येक दो दो तोले सबका चूर्ण डालके अवलेह सिद्ध करे, यह जीरेका अवलेह सर्व प्रदरोंको नष्ट करे तथा ज्वर, प्रमेह, तृषा, दाह, मूत्रकृच्छ्र और क्षीणताको नष्ट करे ।

दार्वीक्वाथ ।

दार्वीरसांजनवृषाब्दकिराततबिल्वभल्लातकैरपि कृतो मधुना कषायः ॥ पीतो

जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ७ ॥

अर्थ-दारुहलदी, रसौंत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेलगिरी, भिलायें इनके क्वाथमें सहत डालके पीवे तो शूलसहित घोर पीले काले और लाल नीले और सपेद प्रदर रोगको नष्ट करे ।

कुशमूलयोग ।

कुश मूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तंदुलांबुना ॥ एतत्पीत्वा त्र्यहं नारि प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ-कुशकी जडको चाँवलके धोवनमें पीसके ३ दिन स्त्री पीवे तो प्रदर रोगसे छूट जाय ।

भूम्यामलकयोग ।

भूम्यामलकमूलं हि पीतं तंदुलवारिणा॥ दिनद्वयं त्रयं वापि स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥

अर्थ-भूयँआवलेकी जडको चाँवलके धोवनसे पीस २।३ दिन पीवे तो स्त्रीका प्रदररोग नष्ट होय ।

योनिदाह और प्रदरपर ।

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत्॥ शर्कराघृतसंयुक्तं लोध्रं प्रदरनाशनम्॥ १०॥

अर्थ-आमलोंके स्वरसमें मिश्री मिलायके पीवे तो योनिदाह नष्ट होय अथवा लोधके चूर्णमें खांड और घृत मिलाय सेवन करे तो प्रदर दूर होय ।

रक्तप्रदर और दाहपर ।

क्वाथस्तिलानां विनिधाय पीतः कटुत्रयं ब्राह्मणयष्टिचूर्णम् ॥ निहंति सद्यः कुसुमं सलोध्रं स्त्रीणामसृग्दाहमतिप्रवृद्धम्॥ ११॥

अर्थ-तिलके क्वाथमें त्रिकुटा, ब्रह्मदंडी, धायके फूल और लोध इनका चूर्ण मिलायके पीवे तो बढाहुआ रक्तप्रदर दाहयुक्त दूर हो ।

गुह्यरोगारि कल्पतरु ।

पारदं टंकणं गंधं पृथग्भागं समाहरेत्॥ शुष्कं कमलिनीकंदं वेदभागं विमर्दयेत् ॥१२॥ लिंगीरसेन तत्सर्वं दिवसत्रितयं बुधः ॥ मधुना भावितं पश्चात्खादेद्वल्लचतुष्टयम् ॥ १३ ॥ सिताकर्ष क्षीरपलमनुपानं पिबेदनु ॥ प्रदरं योनिशूलं च रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ १४ ॥ रक्तमेहं मूत्रकृच्छ्रं त्रिदिनान्नाशयेद्ध्रुवम्॥ १५॥ इति श्रीयोगतरंगिण्यां प्रदरचिकित्सा नाम चतुःसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७४॥

अर्थ-पारा, सुहागा, गंधक प्रत्येक समान भाग लेवे सूखी कमलिनीकी जड ४ भाग लेवे सबको शिवलिंगीके रसमें ३ दिन खरल करे फिर सहतकी भावना देय, इसमेंसे ८ रत्ती या १२ रत्तीके अनुमान खाय ऊपरसे ५ तोले दूधमें १ तोला मिश्री मिलायके पीवे। यह प्रदर, योनिशूल, घोररक्तातिसार, रक्तप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र इनको ३ दिनमें नष्ट करे ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां प्रदरचिकित्सा नाम चतुःसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमस्तरंगः ।

गर्भस्थिति ।

ऋतौः समेऽहनि सुतो विषमे च सुता मता ॥ अतः समदिने गच्छेत्पुत्रकामो वरांगनाम् ॥ १ ॥

अर्थ-स्त्री जिस दिन रजोदर्शनवाली हो उसके ४ दिनके बाद सम दिनमें पुरुष संग करे

तो पुत्र होय विषम दिनमें कन्या होय है अतएव यह पुत्रकी कांक्षावाला पुरुष सम दिनमें स्त्रीके समीप जाय ।

पुत्रकारक योग ।

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिबेत् ॥ पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामा सा कन्यकाप्रदा ॥ २ ॥

अर्थ–सपेद् कटेरीकी जडको गौके दूधमें पीस दहनी नाकके नथनेमें नस्य देवे तो पुत्र होय और बांईमें देवे तो कन्या हो ।

लक्ष्मणायोग ।

पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पत्तिस्थितिप्रदम् ॥ नासयास्येन वा पीतं वटशुंगाष्टकं नवम् ॥ वारिणा शुक्लपक्षे हि पुष्येण तु समाहृतम् ॥ ३ ॥

इति वाग्भटात् ॥

अर्थ–गौके दूधमें लक्ष्मणा रूखडीकी जडको पीस पूर्वोक्त क्रमसे नस्य देवे तो पुत्र प्रगट होय अथवा वडके नवीन आठ शुंग (बडकी कली) जलमें पीसे परंतु वह शुक्लपक्षमें पुष्य नक्षत्रमें ग्रहण करे गये हों उनका नस्य लेनेसे पुत्र होय । यह वाग्भटमें लिखा है ।

अन्य योग ।

एरंडस्य च बीजानि मातुलुंगस्य चैव हि ॥ सर्पिषा परिपिष्टानि पिबेद्गर्भप्रदानि तु ॥ ४ ॥

इति चक्रदत्तात् ॥

अर्थ–अंडीके बीज और बिजौरेके बीज गौके घृतमें पीसकर पीवे तो गर्भ रहे । यह चक्रदत्त ग्रंथमें लिखा है ।

नागकेसरयोग ।

गोघृतेन सह नागकेशरं श्लक्ष्णचूर्णितमृतौ नितंबिनी ॥ गव्यदुग्धनिरता पिबेद्यदा सा तदा नियतमेव वीरसूः ॥५॥

अर्थ–नागकेसरको गौके घीमें पीसके ऋतुके समय ४ दिन पीवे और गौका दूध भात भोजन करे तो निश्चय पुत्रको प्रगट करे ।

शिवलिंगीयोग ।

लिंगाकारं लक्ष्मणायाश्च मूलं योगे लब्धं सर्पिषा नस्ययोगात् ॥ पीत्वा सूते पुत्रमत्यंतवीर्यं पश्चादन्यानप्यमंदांगयष्टिः ॥ ६ ॥

अर्थ–शिवलिंगी और लक्ष्मणाकी जडको पुष्य नक्षत्र आदि शुभ योगमें ले घृतसे पीस नस्य लेवे तो अत्यन्त बलवान् पुत्रको और फिर कन्याओंको भी प्रगट करे ।

अन्य योग ।

बस्तमूत्रं च सघृतं नवनीतं च माहिषम् ॥ पलत्रयं पिबेन्नारी वंध्या सूते सुतोत्तमम् ॥ ७ ॥

अर्थ–बकरेका मूत्र, गौका ताजा मक्खन, भैंसका घी प्रत्येक १ पल ले मिलायके पीवे तो वंध्या स्त्रीभी उत्तम पुत्रको प्रगट करे ।

गर्भवारण ।

तैलाविलं सैंधवखंडमादौ निधाय रंडा निजयोनिमध्ये ॥ नरेण सार्द्धं रतमातनोति या सा नैव गर्भं लभते कदाचित् ॥ ८ ॥

अर्थ–तैलसे सनीहुई सेंधेनिमककी डलीको रंडा स्त्री प्रथम अपने भगमें थोडी देर रक्खे, फिर उसको निकाल पुरुषके साथ मैथुन करे तो कदापि गर्भ नही रहै ।

धत्तूरमूलयोग ।

धत्तूरमूलिका पुष्ये गृहीता कटिसं-

स्थिता गर्भं निधारयत्येव रंडावेश्यादि-
योषिताम् ॥ ९ ॥

अर्थ--पुष्य नक्षत्रमें धतूरेकी जडको लेकर स्त्रीकी कमरमें बांधे तो रंडा और वेश्यादि स्त्रियोंके गर्भ नहीं रहे।

तंदुलीयकमूलयोग।

तंदुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तंदुलवारिणा॥
ऋत्वंते तु त्र्यहं पीत्वा वन्ध्याः कुर्व-
न्ति योषितः ॥ १० ॥

अर्थ-चावलके धोवनसे चौंलाईकी जडको पीस ऋतुके अंतमें ३ दिन पीवे तो यह योग स्त्रीको वंध्या कर देवे।

निंबकाष्ठ धूप।

धूपिते योनिरंध्रे च निंबकाष्ठेन युक्ति-
तः॥ ऋत्वंते रमते या स्त्री न सा गर्भ-
मवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

अर्थ-नीमकी लकडीसे ऋतु होनेके बाद योनिको धूनी देवे और फिर पुरुषसंग करे तो कदापि गर्भ धारण नहीं करे।

गृंजनबीजयोग।

गृंजनबीजं टंकत्रितयं तावच्च दाडिमी-
मूलम् ॥ तुवरीटंकद्वितयं सिंदूरं टंक-
युगलं च ॥ १२ ॥ संमर्द्य खल्व-
मध्ये तु तोयेनैतान्निपीय गर्भवती ॥
रंडा योषिद्गर्भं वेश्या वा पातयत्वाशु१३

अर्थ-गाजरके बीज १२ मासे, अनारकी जड १२ मासे, फिटकरी ८ मासे, सिंदूर ८ मासे इन सबको खरलमें डालके जलसे पीस इसके पीनेसे गर्भ कदापि नहीं रहे। अर्थात् गर्भ गिरपडे यह रंडा और वेश्या स्त्रियोंके वास्ते प्रयोग कहा है।

पलाशबीजादि योग।

पलाशबीजमध्वाज्यलेपात्सामर्थ्ययो-
गतः ॥ योनिमध्ये ऋतौ गर्भं न धत्ते
स्त्री कदाचन ॥ १४ ॥

अर्थ-पलाश (ढाक) के बीजको सहत और घृत इनके साथ पीस ऋतुसमय योनिमें लेप करे तो इस लेपके प्रभावसे स्त्री कदापि गर्भ धारण नहीं करे।

तालीशगैरिकयोग।

तालीशगैरिके पीते बिडालपदमात्रके॥
शीतांबुना चतुर्थेऽह्नि वंध्या नारी
प्रजायते ॥ १५ ॥

इति गर्भनिवारणम् ॥

अर्थ-तालीशपत्र, गेरू, दोनों १ तोला ले बारीक पीस शीतलजलसे स्त्री रजोदर्शन होनेके ४ थे दिन पीवे तो वह वंध्या होजाय।

गर्भस्रावपर।

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु-
कम् ॥ अश्मंतकः कृष्णतिलास्ताम्र-
वल्ली शतावरी ॥ १६ ॥ वृक्षादनी
वयस्या च तथैवोत्पलसारिवा ॥ अनंता
शारिवा कृष्णा पद्मा मधुकमेव च ॥
॥ १७ ॥ बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरभृं-
गात्वचो घृतम् ॥ पृथक्पर्णीपलाशि-
ग्रुश्वदंष्ट्रामधुयष्टिकाः ॥ १८ ॥ शृंगा-
टकं विषं द्राक्षा कशेरुर्मधुकं सिता ॥
वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमा-
पनाः ॥ यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे
पयोयुताः ॥ १९ ॥

अर्थ-मुलहटी, सागौनके बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु अथवा अश्मंतक, काले तिल, ताम्रवल्ली और शतावर अथवा बांदा,

कमलगट्टा और सारिवा अथवा धमासा, सारिवा, पीपल, कमलिनी और मुलहटी अथवा छोटी कटेरी, बडी कटेरी, कंभारी, क्षीरकाकोली, भांगरा, दालचीनी और घृत अथवा पृष्ठिपर्णी, खिरेटी, सहँजना गोखरू और मुलहटी अथवा सिंघाडे, कमलकी जड, दाख, कसेरू, मुलहटी, और मिश्री ये आधे २ श्लोक करके सात योग कहे हैं ये क्रमसे प्रथम, द्वितीय और तृतीयादि माससे लेकर सात महीने पर्यंत दूधके साथ पीनेको देवे ।

अष्टम महीनेपर ।

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलं च निदिग्धिका ॥ मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥ २० ॥

अर्थ–कैथ, बेलगिरी, बडी कटेरी, पटोलपत्र, व्याघ्री इनकी जडोंको दूधमें औटायके वैद्य आठवें महीनेमें गर्भरक्षाके वास्ते देवे ।

नवम और दशम महीनेपर ।

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥ योजयेद्दशमे मासि क्षीरं सिद्धं पयस्यया ॥ २१ ॥

अर्थ–नवम महीनेमें गर्भरक्षाके वास्ते मुलहटी, धमासा, क्षीरकाकोली और सारिवाका क्वाथ पीवे । और दशवें महीनेमें क्षीरकाकोलीको दूधमें औटायके पीवे ।

गर्भपातपर ।

लज्जालुधातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोध्रकम् ॥ २२ ॥ जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ पततं स्तंभयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ॥ २३ ॥

अर्थ–लजालु, धायके फूल, कमल, मुलहटी और लोध इनको जलमें पीसके पीवे तो गर्भपात बंद होय । अथवा कुम्हारके हाथोंकी मिली मिट्टी जलमें घोरके पीवे तो गिरता हुआ गर्भ रुक जावे ।

अन्य योग ।

मधुच्छागीपयः पीतं किंवा श्वेताद्रिकर्णिका ॥ पारावतमलं पीतं त्र्यहं तंडुलवारिणा ॥ गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तंभयेन्निपतद्द्रुतम् ॥ २४ ॥

अर्थ–सहत और बकरीका दूध । अथवा सपेद् कोयल और कबूतरकी बीटको चावलके धोवनके साथ तीन दिन पीवे तो गर्भवतीके गर्भसे जो रुधिर बहता होय उसको बंद करे ।

शर्करादियोग ।

शर्कराबिसतिलं समांशकं माक्षिकेण सह भक्ष्यते यया ॥ नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया॥२५॥

अर्थ–कच्ची खांड, कमलकी जड, काले तिल ये समान भाग लेवे इसका चूर्ण कर सहतमें मिलाके चाटे तो गर्भ गिरनेका भय नहीं रहे जैसे तीर्थसेवनसे पापका भय नहीं रहे ।

शृंगाटकादियोग ।

शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कशेरुर्मधुकं सिता ॥ निवारयंत्यमी गर्भं पीताः परमवेदनाम् ॥ २६ ॥

अर्थ–सिंघाडे, कमलकी जड, दाख, कसेरु, मुलहटी और मिश्री इनको घोटके पीवे तो अत्यंत पीडायुक्त गर्भ पडनेको बंद करे ।

लोना ।

कंकतीमूलमाबद्धं कुमारीसूत्रकैर्दृढम् ॥ कटिदेशे नितंबिन्या गर्भं स्तंभयते ध्रुवम् ॥ २७ ॥

अर्थ–कँगही रुखडीकी जडको कन्याके काते सूतमें कसके स्त्रीकी कमरमें बाँधे तो गिरताहुआ गर्भ रुक जाय ।

गर्भस्तंभपर अन्य योग ।

कशेरुशृंगाटकजीवनीयपद्मोत्पलैरंडशतावरीभिः॥ सिद्धं पयः शर्करया समेतं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलम् ॥ २८ ॥

अर्थ–कसेरु, सिंघाडे, जीवनीयगणका औषध, कमल, नील कमल, अंडी, शतावर इनको दूधमें सिद्ध कर मिश्री मिलायके पीवे तो गर्भवतीके शूलको नष्ट करे ।

गर्भशूलका यत्न ।

कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ २९ ॥

इति गर्भसंरक्षणम् ॥

अर्थ–कुश, काँस, अंड और गोखरू इनकी जडको दूधमें औटाय मिश्री मिलायके पीवे तो गर्भवतीका शूल दूर होय ।

गर्भवतीके बालककी परीक्षा ।

उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमंडले ॥ पुत्रं प्रसूयते वामे कन्या क्लीबं समेऽङ्गना ॥ ३० ॥

अर्थ–जिस गर्भवतीकी दहनी कूख कुछ ऊंची होय और गर्भ गोल २ सा मालूम होवे वह पुत्र जनेगी । और बांई कूख ऊंची होय तो कन्या होय । और समान पेट होय तो नपुंसक बालक जनेगी ।

सुखप्रसूतिकरण ।

प्रत्यक्पुष्प्याः पारिभद्रस्य यद्वा मूलं यद्वा काकजंघासमुत्थम् ॥ कट्यां बद्धं योषितां सत्प्रसूतिं योगे युक्त्वा संहृतं साधु कुर्यात् ॥ ३१ ॥

अर्थ–औंधाफूलीकी या नीमकी अथवा काकजंघाकी जडको स्त्रीकी कमरमें शुभ नक्षत्रमें बाँधे तो पीडारहित बालक प्रगट होय ।

अन्ययोग ।

मूलं प्रत्यक्पुष्प्याः पाठाया वा निवेशितं तु मुखे ॥ स्त्रीणां दुष्प्रसवानां प्रसवं कुरुते सुखेनैव ॥ ३२ ॥

अर्थ–प्रत्यक्पुष्पी वा पाढ इनकी जडको योनिके मुखमें रखे तो जिसको जननेमें अत्यंत कष्ट होता है वह सुखपूर्वक जने ।

पुत्र कन्या होनेका शकुन ।

यदि तत्प्रत्यक्पुष्प्यास्त्रुट्यति मूलं तदर्थमुद्धरता ॥ कन्या भवति तदानीमत्रुटिते तत्र पुत्रः स्यात् ॥ ३३ ॥

अर्थ–यदि प्रत्यक्पुष्पीकी जड उखाडते समय आधी टूट आवे तो उसके कन्या होयगी और साबित उखडनेसे उसके पुत्र होयगा यह निश्चय है ।

विशल्याकारक योग ।

पुटदग्धभुजगकंचुककज्जलमधुपूरितेक्षणद्वंद्वा॥ सद्यो भवति विशल्या विमूढगर्भापि गर्भवती ॥ ३४ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–सांपकी कांचलीको आगमें जराय लेवे इसको सहतमें सानके कज्जल दोनों आंखोंमें लगावे तो मूढगर्भवाली स्त्रीभी विशल्या होय ।

प्रयोगांतर ।

पाठासुरसासिंहास्यमयूरकजटाः पृथक्॥ नाभिबस्तिभगे लिप्ताः सुखं नारी प्रसूयते ॥ ३५ ॥

अर्थ–पाढ, तुलसी, अडूसा, मारासखा इनको पीस नाभि, बस्ती और भगमें लेप करे तो स्त्री सुखपूर्वक बालक प्रगट करे ।

रक्षाका मंत्र ।

हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी॥ तस्यानूपुरशब्देनविशल्याभव गर्भिणि ३६

अर्थ–'हिमवत्०' इस मंत्रका यह अर्थ है कि हिमालय पर्वतके दहनी बगलमें एक सुरसा नाम यक्षिणी रहती है उसके नूपुरशब्दसे गर्भवती विशल्या होय ।

दूसरा मंत्र ।

मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्यस्य रश्मयः ॥ मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि माचिर माचिर स्वाहा ॥ ३७ ॥

अर्थ–पाशा छूटकर विपाश हुए और सूर्यकी किरण छूटी, इसी कारण सर्व प्रकारके भयसे गर्भिणीका गर्भ छूटजाय यह देरी न करे ।

तीसरा मंत्र ।

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ॥ उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मंदिरे निविशंतु ते ॥ ३८ ॥

इत्यक्षतान्क्षिपेत् ॥

अर्थ–हे भामिनी ! इस तेरे मंदिरमें अमृत, चंद्र, सूर्य, उच्चैःश्रवा घोडा वास करें इस प्रकार इन तीनों मंत्रोंको पढकर अक्षत मूढगर्भवतीके ऊपर डाले तो तत्काल बालक प्रसूति होय ।

च्यावनमंत्र ।

इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भविमोक्षणाय देवि ॥ तदनलपवनार्कवासवास्ते सहलवणांबुधरैर्दिशंतु शांतिम ॥ ३९ ॥ जलं च्यावनमंत्रेण सप्तवाराभिमंत्रितम् ॥ पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा वा चक्रवर्धनम् ॥ ४० ॥

अर्थ–हे देवी ! यह जलोंमेंसे अमृत निकला हुआ तेरे गर्भके निकालनेके वास्ते है. तथा अग्निदेव, पवन, सूर्य, इन्द्र और समुद्र ये इस तेरे कष्टकी शांति करें यह गर्भच्यावन अर्थात् गर्भको छुडानेवाला मंत्र है. इसको पवित्र जलमें सात बार पढकर वैद्य गर्भवतीको पिलावे तो स्त्रीके बालक सुखपूर्वक होय । अथवा चक्का बूईका यंत्र लिखकर दिखानेसे तत्काल प्रसूति होय ।

तीसका यन्त्र ।

कलापक्षार्कऋतुदिङ्मन्वष्टादशांबुधीन् ॥ विलिखेन्नवकोष्ठेषु त्रिंशाख्यं यंत्रमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

१६	२	१२
६	१०	१४
८	१८	४

अर्थ–कला १६ पक्ष २ अर्क १२ ऋतु ६ दिक् १० मनु १४ अष्ट ८ अष्टादश १८ अंबुधि ४ ये अंक नौ कोठोंमें लिखे तो यह तीसका यंत्र बनजाता है इसको अष्टगंधसे लिखकर गर्भवतीको प्रथम दिखावे फिर जलमें घोरके पिलाय देवे तो तत्काल बालक प्रगट होय ।

मूढगर्भका अन्य यत्न ।

गुंजामूलस्य खंडानि सप्त सप्त दलानि च ॥ खंडितानि कटिस्थानि सुप्रसूतिं प्रकुर्वते ॥ बाणपुंखा जटा वाथ विशल्यां कुरुतेंऽगनाम् ॥ ४२ ॥

इति मूढगर्भचिकित्सा ॥

अर्थ-घूँघचीकी जडके सात टुकडे कर कमरमें बांधे तो सुखपूर्वक बालक प्रगट होय ।

हेमसुन्दर तैल ।

आर्द्रहेमफलं पिष्ट्वा कटुतैलं चतुर्गुणम् ॥ विपचेद्धटिकायुग्मं तत्तैलं हेमसुन्दरम् ॥ दुष्टप्रस्वेदशमनं सूतिकादोषनाशनम् ४३ ॥

अर्थ-कच्चे धतूरेके फलका कल्क कर चौगुने कडवे तेलमें २ घडीपर्यन्त औटावे तो यह हेमसुन्दर तेल बने, लगानेसे दुष्ट पसीने और प्रसूतिरोगको नष्ट करे है ।

कनकसुन्दर तैल ।

रसे कनकसंभवे कटुकतैलमापाचयेद्वचाकनकदुग्धिकारजनिनागरैः कल्कितैः ॥ इदं कनकसुन्दरं भवति दुष्टसंस्वेदजित्समस्तपवनामयप्रणुदनल्पकांतिप्रदम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-धतूरेका रस, वच, धतूरा, दुद्धी, हलदी और सोंठ इनके कल्कको डाल चौगुने कडवे तेलको पचावे । यह कनकसुंदर तेल सिद्ध होय । यह दुष्ट पसीने सब बादीके विकारोंको हरे और अत्यन्त कांतिको बढावे है ।

वज्रकांजिक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुंठी यवानिका ॥ जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्च्चलं तथा ॥ ४५ एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥ आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ ४६ ॥ कांजिकं वज्रकं नाम बलवर्णाग्निदीपनम् ॥ मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्धनम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, चव्य, सौंठ, अजमायन, जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी, विडनिमक, कालानिमक इन औषधोंको मिलाय चूर्ण करे इसे कांजीमें डालके औटावे । यह आमवात और कफको नष्ट करे, वृष्य है, अग्निको दीपन करे, बल वर्णको उज्ज्वल करे, मक्कल्लक शूलको नष्ट करे और स्तनोंमें दूध बढावे । इसे वज्रकांजिक कहते हैं ।

सौभाग्यशुंठी ।

आज्यस्यांजलियुग्ममत्र पयसः कंसं तुलार्धं तथा खंडस्यापि पचेद्विचूर्णितमिदं विश्वौषधं निक्षिपेत् ॥ अस्यार्द्धगुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकं मिस्याःपंचपलं पलं कृमिरिपोः साजाजिजीरं तथा ॥ ४८ ॥ व्योषांभोददलोरगद्वविडिकाभृंगस्य च प्रक्षिपेत्तृट्कासज्वरपांडुरोगशमनं विड्भेदविध्वंसनम् ॥ शूलारोचकनाशनं कृमिहरं मंदाग्निसंदीपनं सूतीनां खलु खंडनागरमिदं सौभाग्यदं सेवितम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-गौका घी आधसेर, गौका दूध ४ सेर, मिश्री २॥ सेर, तुषरहित सौंठ ॥ आधसेर इन सबको एकत्र कर गुडके समान पचावे फिर धनिया १२ तोले, सौंफ २९ तोले, वायविडंग, सपेद जीरा, काला जीरा, त्रिकुटा, नागरमोथा, पत्रज, नागकेशर, बडी इलायची, भांगरा प्रत्येक चार २ तोले ले । यह शुंठीपाक प्यास, खाँसी, ज्वर, पांडुरोग, दस्तोंका होना, शूल, अरुचि, कृमि और प्रसूति रोगका नाश करे, मंदाग्निका दीपन करे और देहमें सुभगताको बढावे । यह नागरखंड कहाता है ।

दशमूलादि ।

दशमूलीशृतं तोयं कवोष्णं पिप्पलीयु-

तम् ॥ पीतं तत्सूतिकारोगमुदग्रमपि कृंतति ॥ ५० ॥

अर्थ-दशमूलकी दश औषधोंके क्काथमें पीपलका चूर्ण डाल गरम २ पीवे तो घोर प्रसूतिका रोग नष्ट होय ।

सहचरादि ।

सहचरकुलत्थपुष्करदारुनिशादारुवेरसक्काथः ॥ पीतः सहिंगुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ ५१ ॥

अर्थ-कटसरैया, कुलथी, पुहकरमूल, देवदारु, दारुहलदी, अदरख इनके क्काथमें हींग और निमक डालके पीवे तो प्रसूतिका शूल और ज्वरको दूर करे ।

निर्गुंडयादि ।

संयोजितो दलितया कणया कवोष्णो निर्गुंडिकालशुननागरजः कषायः ॥ पीतो निहंति कफमारुतपित्तजातं सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तरं च ॥५२॥

अर्थ-निर्गुंडी, लहसन और सोंठ इनके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालके गरम गरम पीवे तो कफ बादी और पित्तविकार तथा प्रसूतके रोग इन सब घोर रोगोंको नष्ट करे ।

देवदार्वादि क्काथ ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ भूनिंबः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यं हरीतकी ॥ ५३ ॥ गजकृष्णा सुदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः ॥ बृहत्यतिविषा छिन्ना पर्पटः कृष्णजीरकम् ॥ ५४ ॥ समभागानि सर्वाणि सिंधुरामठसंयुतम् ॥ पिबेदष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ५५ ॥ सहितानुल्बणस्वेदज्वरशूलशिरोर्तिभिः ॥ निहंति सूतिकारोगान्वातपित्तकफोद्भवान् ॥ ५६ ॥

अर्थ-देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, मोथा, कुटकी, धनिया, हरडकी छाल, गजपीपल, कौंचके बीज, गोखरू, धमासा, भटकटैया, अतीस, गिलोय, पित्तपापडा, कालाजीरा ये सब समान भाग लेवे सबका अष्टावशेष क्काथ कर इसमें सेंधानिमक और भुनीहींग डालके पीवे तो प्रसूत, घोर पसीने, ज्वर, शूल, मस्तकपीडा तथा वातकफके रोगोंको यह दूर करे ।

सौभाग्यशुंठी ।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिः ॥ क्षीराढकेन संयुक्ता खंडस्यार्धतुलां पचेत् ॥ ५७ ॥ शताह्वाजीरकव्योषत्रिसुगंधियवानिकाः ॥ ग्रंथिकं कृष्णजीरं च मधुकं च विडंगकम् ॥ ॥५८॥ लवंगं धान्यकं मांसी तालीशं नागकेसरम् ॥ कारवीमिसिचव्याग्निमुस्तानां च पलं पलम् ॥ ५९ ॥लेहीभूतमिदं सिद्धं धृतभांडे निधापयेत् ॥ तद्यथाग्निबलं खादेत्सूतिका तु विशेषतः ॥ ६० ॥ बल्यं वर्ण्यं तथायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ वयसः स्थापनं हृद्यं मंदाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ६१॥ आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम्॥मक्कल्लशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम् ॥६२॥ इति वाग्भटात् ॥

अर्थ-सोंठ ३२ तोले, गौका घी १ सेर, दूध ४ सेर, मिश्री २०० तोले इन सबको एकत्र कर पचावे और इसमें शतावर, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिसुगंधि, अजमायन,

पीपरामूल, कालाजीरा, मुलहटी, वायविडंग, लौंग, धनिया, जटामांसी, तालीशपत्र, नागकेशर, कलौंजी, सौंफ, चव्य, चित्रक, नागरमोथा, प्रत्येक १ एक एक पल लेवे, इनका चूर्ण कर उस अवलेहमें डाल देय जब तैयार होजाय तब उतार चिकने बासनमें भरके धररक्खे बलाबल विचारके खाय और प्रसूत स्त्रीको तो अवश्य खानी चाहिये, यह बल, वर्ण, आयुको बढावे, वलीपलितको नष्ट करे, अवस्थाको स्थिर करे, हृदयको हितकारी, मंदाग्निका दीपन करे, आमवात नष्ट करे सुभगता बढावे, मक्कलशूलका शमन करे और प्रसूतिके रोगोंको नष्ट करे है। यह अनुभवकरी सौभाग्यशुंठी वाग्भट ग्रंथसे लिखी है।

प्रतापलंकेश्वररसः।

सूताभ्रगन्धोषणलोहशंखवन्यापलाभस्मविषं सुपिष्टम् ॥ एकेंदुचंद्रानलवार्धिकुंभिकलैकभागैः क्रमशो विवृद्धम्। ॥ ६३ ॥ प्रसूतिवातानिलदन्तबंधमार्द्राबुना घोरसुसंनिपाते ॥ निजानुपानैर्निजपथ्ययोगैः सर्वातिसारग्रहणीगदेषु ॥ प्रतापलंकेश्वरनामधेयो रसः प्रयुक्तो गिरिराजपुत्र्या ॥ ६४ ॥

अर्थ-पारा, अभ्रक, गंधक, कालीमिरच, लोहभस्म, शंखभस्म, आरने उपलोंकी भस्म, और शुद्ध विष ये प्रत्येक १, १, १, ३, ४, ४, १६ और १ भाग क्रमसे लेवे, तो यह रस प्रसूत, बादी, दांतोंका मिच जाना दूर-करे. अदरखके रससे घोर संनिपातमें देवै। यह अपने २ अनुपान और पथ्यके योगसे सर्व अतिसार संग्रहणी आदि रोगोंको नष्ट करे। यह प्रतापलंकेश्वर रस पार्वतीने कहा है।

अमृतादिक्काथ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपंचमूलजलदजलम् ॥ शृतशीतं मधुसहितं हरति परं सूतिकाशूलम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां सूतिकाचिकित्सा-नाम पञ्चसप्ततितमस्तरङ्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ-गिलोय, सोंठ, कटसरैया, नागरमोथा, लघु पंचमूलकी पांच औषध, मोथा, सुगंधवाला इनके क्काथमें सहत डालके पीवे तो प्रसूतकी पीडाको नष्ट करे।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां सूतिकाचिकित्सावर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमस्तरंगः।

भगगंधहरण।

संयोजितं पल्लवपंचकेन जातीप्रसूनैर्मधुकान्वितैश्च ॥ सूर्यांशुतप्तं घृतमंगनानामभ्यंगतोहंति वरांगगंधम् ॥ १ ॥

अर्थ-पंचपल्लव (जैसे-पीपर, गूलर, वड, आदि) चमेलीके फूल और मुलहठी इनका चूर्ण कर घीमें मिलाय योनिमें लेप करे तो योनिकी दुर्गंध दूर होय।

मृणालपद्मोत्पलबीजयुक्तं तैलं तथोशीरयुतं विपक्वम् ॥ पैच्छिल्यशैथिल्यविगंधितानां नाशं करोति स्मरमंदिरस्य ॥ २ ॥

अर्थ-कमलकी दंडी, कमल, कमलगट्टा और खस, इनका कल्क डालके तेल सिद्ध करे यह योनिकी लिबालिबाट, शिथिलता (ढीलापना) और दुर्गंधको नष्ट करे।

लोमनाशन ।

हरितालभागपंचकमेको भागः पलाशभस्मभवः ॥ भागश्च यवक्षारः स्याल्लेपाद्योनिलोमहरः ॥ ३ ॥

इति राजमार्त्तंडात् ॥

अर्थ–हरताल ५ तोले, ढाककी भस्म १ तोला, जवाखार १ भाग इनको जलमें पीसकर लेप करे तो योनिके बाल दूर होंय । यह राजमार्त्तंड ग्रंथमें लिखा है ।

दूसरा प्रयोग।

दग्ध्वा शंखं क्षिपेद्रंभारसेन क्षारयोजितम् ॥ तुल्यांशं लेपितं हंति लोम गुह्यगतं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां स्त्रीरोगचिकित्सा-नाम षट्सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७६ ॥

अर्थ–शंखके टुकडोंको आगमें तपायके केलेके पानीमें बुझाय देवे जब भस्म होजाय तब समान भाग जवाखार मिलाय जलमें सानके लेप करे तो योनिके सब बाल दूर हों ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां स्त्रीरोगचिकित्सावर्णनं नाम षट्सप्ततितमस्तरंगः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमस्तरंगः ७७.

बालकरोग ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तनः ॥ स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः ॥ १ ॥

अर्थ–दूध पीनेवाला, दूध अन्न दोनोंका सेवन करता और केवल अन्नका खानेवाला इस प्रकार बालक तीन प्रकारके हैं, तहां दूध और अन्न शुद्ध होनेसे बालक रोगरहित होय और अशुद्ध होनेसे रोगी होता है ।

अवलेह ।

कुष्ठं वचाऽभया भार्ङ्गी कैतकं क्षौद्रसर्पिषा ॥ वर्णायुःकांतिजननो लेहो बालस्य सर्वथा ॥ २ ॥

अर्थ–कूठ, वच, हरडकी छाल, भारंगी केवटी मोथा, सहत और गौका घी यह अवलेह बालकके वर्ण आयु कांतिको करे है ।

स्तन्यके अभावमें प्रयोग ।

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ ३ ॥

अर्थ–जिस बालककी माताके स्तनोंमें दूध न रहा होय उसको बकरी अथवा गौका दूध पिलाना ।

नाभिशोथपर ।

मृत्पिंडेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ॥ स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ५ ॥

अर्थ–जिस बालककी नाभि ऊपरको उठ आई हो उसको मट्टीके गोलेको आगमें तपायके दूधमें बुझाय देवे उसकी बाफ (धूए) से नाभिका स्वेदन करे तो बालकके नाभिकी सूजन शांत होय ।

नाभिपाकपर ।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् ॥ तैलमभ्यंजने शस्तमेभिर्वाप्यथ चूर्णकम् ॥ ५ ॥

अर्थ–बालकी नाभिपाकमें हलदी, लोध फूलप्रियंगु और मुलहटीका क्वाथ करके तेल बनावे । इस तेलकी मालिस करावे, अथवा पूर्वोक्त हलदी आदिका चूर्ण करके बालकको देवे

बालरक्षा ।

वचाकुष्ठशंखाब्जलोहैः शिशूनां शरीरे धृतैर्यांति रक्षांसि नाशम् ॥ कुनटचर्क-दुग्धाज्यविश्वैः सकुष्ठैः प्रलेपोऽथवा नित्यमेषां विधेयः ॥ ६ ॥

अर्थ–वच, कूठ, शंख, कमल और लोहको बालकके शरीरमें धारण करानेसे राक्षसादिक भय निवृत्त होय अथवा मनासिल, आकका दूध, घृत, सोंठ और कूठ इनको जलमें पीस नित्य लेप किया करे तो राक्षसादि दूर हों ।

दांत निकलनेपर ।

प्राचीगतं पांडु रीसिदुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् ॥ करोति दंतोद्भववेदनाया निःसंशयं नाशमकांड एव ॥ ७ ॥

अर्थ–पीले सह्मालूकी जड जो पश्चिमकी तरफ गई होय उसको विधिपूर्वक लायके बालकके गलेमें बाँध देवे तो दांत निकलनेमें जो बालकको दुःख होता है उसको निर्मूल कर देवे ।

अन्य प्रयोग ।

सप्तच्छदार्कच्छदनक्तमालमूलैस्तुरंगारिजटासमेतैः ॥ उत्सादितांगः पशुमूत्रपिष्टैर्ह्रीबेरमुंडीसलिलाभिषिक्तः ॥ दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धिं पतिर्निशानामिव शुक्लपक्षे ॥ ८ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–सतोना, आकके पत्ते, कंजेके पत्ते और कनेरकी जडको गौके मूत्रमें पीस बालककी देहमें मालिस करे और नेत्रवाला, मुंडी इनके काथसे जिस बालकको स्नान करावे तो दिन दिनमें उस बालककी वृद्धि होय । जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी । यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा है ।

बालकके ज्वर अतिसारपर ।

हरिद्राद्वययष्टयाह्वसिंहीशक्रयवैः कृतम् ॥ शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कषायं सर्वरोगजित् ॥ ९ ॥

अर्थ–हलदी, दारुहलदी, मुलहटी, कटेरी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बालकके ज्वरातिसारको तथा सर्व रोगोंको नष्ट करे ।

ग्रहणीकामलापर ।

पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ॥ ग्राहिणी दीपनी हंति मारुतार्तिं सकामलाम् ॥ १० ॥ ज्वरातिसारपांडुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥ ११ ॥

अर्थ–पिठवन, सतावर इन दोनोंके चूर्णको घृत सहतमें मिलाय सेवन करनेसे यह बालककी ग्रहणीको दीपन करे तथा वादीकी पीडा और कामलाको नष्ट करे ।

ज्वरपर उद्वर्त्तन ।

मूर्वानिशासर्षपरामसेनशिवासमंगांबुदकारवीणाम् ॥ छागीपयोभिः सह पेषितानामुद्वर्तनं स्याज्ज्वरहं शिशूनाम् १२॥

अर्थ–मूर्वा, हलदी, सरसों, चिरायता, हरड, मँजीठ, नेत्रवाला और कलौंजी इन सबको बकरीके दूधमें पीस देहमें मालिश करे तो यह बालकका ज्वर दूर करे ।

कासच्छर्दि आदिपर लेह ।

शृंगीं सकृष्णाब्दविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां वातिविषामथैकाम् ॥ १३ ॥

अर्थ–काकडासिंगी, पीपल, नागरमोथा और अतिविषा इनका बारीक चूर्ण कर सहतसे अवलेहक समान करके बालकको चटावे. यह

खाँसी, वमन और ज्वरको नष्ट करे, अथवा एक अतिविषका ही चूर्ण सहतसे चटावे तो खाँसी, ज्वर और वमन दूर होय ।

वात पित्त कफ ज्वरपर लेह ।

द्विवार्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ॥ एकद्वित्राणि घस्राणि वातपित्तकफज्वरे ॥ १४ ॥

अर्थ–छोटी बडी कटेरीके फल और पंचकोल इनके चूर्णका सेवन करनेसे वह एक दिन वातज्वर, दो दिनमें पित्तज्वर और तीन दिनमें कफज्वरको नष्ट करे ।

बालकके अतिसारपर क्वाथ और अवलेह ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं च रोध्रं गजपिप्पली च ॥ क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ १५ ॥

अर्थ–बेलगिरी, धायके फूल, नेत्रवाला, लोध और गजपीपल इनका क्वाथ अथवा अवलेह बनाय उसमें सहत डालके जिस बालकको दस्त होते होयँ उसे देवे ।

अतिसारपर क्वाथ ।

नागरातिविषामुस्तावालकेंद्रयवैः शृतम् ॥ बालकं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १६ ॥

अर्थ–सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्द्रजौ इनके क्वाथको प्रातःकाल बालकको पिलावे तो अतिसार दूर होय ।

वमन तृषा और अतिसार कल्क ।

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तरसांजनैः ॥ क्षौद्रालीढः कुमारस्य च्छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ १७ ॥

अर्थ–फूलप्रियंगु, बेरकी गुठली, नागरमोथा, रसोंत इनके कल्कमें सहत मिलाय बालकको देय तो यह बालककी छर्दि, तृषा और अतिसारको नष्ट करे ।

धूनी ।

यस्ताम्रचूडविहगोभयपार्श्वपक्षपुच्छैर्गवाज्यसहितैः कृतधूपकोग्रे ॥ आरभ्य जन्मदिवसाद्दिनसप्तकं हि बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरेति ॥ १८ ॥ इति राजमार्त्तण्डात् ॥

अर्थ–मुरगेके दोनों बगलके और पूछके पर लेकर गौके घीमें सानके धूप देवे. यह जन्म दिनसे लेकर सातदिन पर्यंत दीनी जाय तो फिर उसको कहीं भी भय नहीं होय । यह राजमार्त्तंड ग्रंथमें लिखा है।

रक्तस्राव प्रवाहिकापर लेह ।

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कतः ॥ बालस्य रुंध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥ १९ ॥

अर्थ–तेल, मिश्री, सहत, तिल और मुलहटी इनका अवलेह कर बालकको पिलावे तो रुधिरका दस्त और प्रवाहिकारोग नष्ट होय ।

तालुकंटकपर कल्क ।

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ॥ पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात् ॥ २० ॥

अर्थ–हरड, वच, कूठ इनके कल्कमें सहत मिलाय बालक माताके दूधसे पीवे तो तालुकंटक रोग नष्ट होय ।

सिध्म, पामा, विचर्चिकापर लेप ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराज्रिकेंद्रयवैःशिशोः ॥

लेपस्तक्रेण हंत्याशु सिध्मपामाविच-र्चिकाः ॥ २१ ॥

अर्थ-घरका धूमसा, हलदी, कूठ, हलदी, इन्दजौ इनको छाछमें पीस लेप करनेसे छीप, खाज और विचर्चिका दूर होय।

हिक्कापर काथ।

पंचमूलीकषायेण सघृतेन पयःशृतम् ॥ सशृंगवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत्२२

अर्थ-लघुपंचमूलके काथ और घीसे दूध परिपक्व करे उसमें अदरख और गुड डालके पीवे तो हिचकीका रोग दूर हो ।

श्वासकासपर चूर्ण।

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा। लीढं श्वासं निहंत्याशु कासं च तमकं तथा ॥ २३ ॥

अर्थ-दाख, धमासा, हरड, पीपल इनके चूर्णको सहत और घीके साथ चाटे तो बालककी श्वास और खांसी तथा तमक श्वास दूर होय ।

वैद्यके प्रति साधारण आज्ञा।

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ॥ कार्यं तदेव बालानां तेषु दाहादिकं विना ॥२४॥ त एव दोषा दूष्यास्ते ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥ अतस्तदेव भैषज्यं किंतु मात्रा कनीयसी ॥ २५ ॥

अर्थ-जो जो ज्वरादि रोगोंकी औषध बडोंके वास्ते कही हैं वही औषध बालकोंकी करनी चाहिये परंतु जो दाहादि करनेवाली औषध है वह नहीं देनी । जो दोष, दूष्य और ज्वरादिक रोग बडे मनुष्योंके होते हैं वेही बालकोंके भी होते हैं अत एव औषध भी जो बडोंके वास्ते लिखी हैं सो देनी चाहिये, किंतु मात्रामें फरक करदेवे अर्थात् बालकको बहुत छोटी मात्रा देवे ।

ज्वरपर लेप ।

अतसीकारवीमुस्तासर्षपैः सपयोधरैः॥ दार्वीभूनिंबमूर्वार्कहरिद्राभिश्च लेपकः॥ ज्वरं निहंति बालस्य महांतमपि वासरैः२६

अर्थ-अलसी, कलौंजी, मोथा, सरसों, नागरमोथा, दारुहलदी, चिरायता, मूर्वा, आक और हलदी इनका लेप बालकके बहुत दिनसे आनेवाले ज्वरको भी नष्ट करे ।

अन्यप्रयोग।

गंधक एको भागो भागद्वितयं च जातिफलम् ॥ जातीपत्रं तावद्भागत्रितयं च खदिरस्य ॥ २७ ॥ वल्कलजातैः काथैः संमिलितः कांचनारस्य ॥ पीतः स्तन्यविमिश्रो नाशयति शिशोर्ज्वरं तं च ॥ २८ ॥ जिह्वापिडिकापाकं गुदपाकं लेपनाच्च पानाच्च ॥ धावनतस्तत्तोयैर्नश्यंति शिशोर्गुदे रोगाः ॥ २९ ॥

अर्थ-गंधक १ तोला, जायफल २ तोले, जावित्री २ तोले, खैरसार ३ तोले और कचनारकी छाल ४ तोले इनका काथ करे. इसमें बालककी माता अपना दूध मिलायके पिलावे तो बालकका ज्वर नष्ट होय, जीभकी फुंसी मुखपाक, गुदापाक ये सब इस काथके लेप और पान करनेसे नष्ट होवें । और इस काथसे गुदा धोवे तो बालककी गुदाके रोग नष्ट हौंय ।

धूनी।

सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः ॥ बिडालविड्जालोम मेषशृंगी वचा

मधु ॥३०॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयं सर्व-ग्रहनिवारणः ॥ ३१ ॥

अर्थ–साँपकी काँचली, लहसन, मूर्वा, सपेद सरसों, नीमके पत्ते, बिलावकी बीट और बकरेके बाल, मेढासिंगी, वच और सहत इनकी धूनी बालकके सर्वज्वर और सर्व बालग्रहोंको दूर करे है ।

ग्रहजुष्टके सामान्य लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणाद्भ्रमति रोदिति॥ नखैर्दंतैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च॥ ॥ ३२ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दंतान्खादेत्कूजति जृंभते ॥भ्रुवौ क्षिपति दंतोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ ३३ ॥ क्षामोऽति निशि जागर्ति शून्यांगो भिन्नविट्स्वरः॥मत्स्यशोणितगंधश्च न चाश्नाति यथा पुरा॥ सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–कभी क्षणमें डरपे, कभी रोवे, कभी उलटी करे, नख और दांतोंसे धाय और अपने देहको विदीर्ण करे, ऊपरकी तरफ देखे, दाँतोंको चबावे, कीक मारे और जँभाई लेवे, भौंह चलावे, दाँतोंसे होठोंको डसे, वारंवार मुखसे झाग गेरे, अत्यंत दुबला होजाय, रात्रिमें जगे, शरीर शून्य पडजावे, दस्त हों, गला बैठजाय, मछलीकीसी और रुधिरकीसी देहमें दुर्गंध आवे, जैसे प्रथम भोजन करता हो ऐसा न करे अर्थात् अल्प भोजन करे यह ग्रहजुष्टोंके सामान्य लक्षण कहेहैं!

अष्टमंगल घृत ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा ॥ ३५ ॥ सारिवा सैंधवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम्॥मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने ॥३६॥ दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधा कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूतानि न मातरः॥ प्रद्रवंति कुमाराणां पिबताम-ष्टमंगलम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–वच, कूठ, ब्राह्मी, सपेद सरसों, सारिवा, सेंधानिमक, पीपल और आठवाँ घृत इनको मिलाय पाक करे घृत मात्र रहनेसे उतार ले. यह पवित्र घृत नित्य पीना चाहिये, यह दृढ स्मरणशक्ति, मेधाको बढावे और बालक इससे बुद्धिमान् हो, पिशाच, राक्षस, भूत, मातृगण, ये सब बालकोंके इस अष्टमंगल घृतके पीनेसे दूर हों ।

अष्टमंगल उद्वर्त्तन ।

शटीकिरातसिद्धार्थमूर्वामुस्तोपकुंचिकाः॥ श्वेतः शिरीष इत्येषां छागीक्षीरेण लेपनम् ॥ ज्वरदाहवमीरेकरक्षस्तृष्णा-शनं शिशोः ॥ ३८ ॥

इति वैद्यालंकारात् ।

अर्थ–कचूर, चिरायता, सपेद सरसों, मूर्वा, नागरमोथा, छोटी इलायची, सपेद सिरस इनको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे. यह ज्वर, दाह, वमन, दस्त, राक्षस और बालककी तृषाको नाश करे ।

अश्वगंधादि घृत ।

पादकल्केऽश्वगंधायाः क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत् ॥ घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्ब-लवर्द्धनम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–१ भाग असगंधके कल्कमें अठगुना घी पचायके बालकको देय तो उसकी पुष्टि करे तथा बलको बढावे ।

लाक्षादि तैल ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ॥ रास्नाचंदनकुष्ठाब्दवाजिगंधानिशायुतैः ॥ ४० ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ॥ बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यंगाद्बलवर्णकृत् ॥ ४१ ॥ इति वृंदात् ॥

अर्थ–लाखका रस १ सेर, तिलीका तेल १ सेर, दहीका जल ४ सेर, रासना, चंदन, कूठ, नागरमोथा, असगंध, हलदी, सतावर, देवदारु, मुलहटी, मूर्वा, कुटकी और रेणुका द्रव्य प्रत्येक चार २ तोले ले इनका कल्क डाल तेल सिद्ध करे. इसकी मालिस करना ज्वर राक्षसोंको नष्ट करे. बल वर्णको बढावे है । यह वृंद ग्रंथमें लिखा है ।

ग्रहजुष्टोंका लक्षण ।

"प्रथमे दिवसे मासे वर्षे नंदा शिशोर्ग्रहः तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं भवति ज्वरः॥ कुथत्यनेकधा रोगाद्विकारं कुरुतेऽपि च ॥ १ ॥ द्वितीये दिवसे मासे वर्षे सुनंदा तद्गृहीतः स्तन्यं न गृह्णाति ॥ ॥ २ ॥ तृतीये दिवसे मासे वर्षे पूतना० ॥३ ॥ चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे मंडितकानाम० ॥ ४॥ पंचमे दिवसे मासे वर्षे पूतादिवा नाम० ॥५॥ षष्ठे दिवसे मासे वर्षे शकुनिर्नाम० ॥ ६ ॥ सप्तमे दिवसे मासे वर्षे शुकरेवती नाम मातृका ॥७॥ अष्टमे दिवसे मासे वर्षे आर्यका नाम ग्रहः ॥ ८ ॥ नवमे दिवसे मासे वर्षे सूतिकानाम्नी ॥ ९ ॥ दशमे दिवसे मासे वर्षे निर्ऋतिर्नाम ॥१० ॥ एकादशे दिवसे मासे वर्षे पिलिपिंडिका नाम० ॥ ११ ॥ द्वादशे दिवसे मासे वर्षे कामुका नाम बालग्रहः ॥ १२ ॥

अर्थ–प्रथम बालग्रहयुक्तके लक्षण कहते हैं। तहाँ प्रथम दिनमें प्रथम मासमें और प्रथम वर्षमें नंदा नामक ग्रह बालकको ग्रहण करता है। उसके ग्रहण करतेही इस बालकके प्रथम ज्वर होता है और अनेक रोगोंसे क्लेशित हो तथा यह अनेक विकारोंको करे है । दूसरे दिन महीने और दूसरे वर्षमें सुनंदानामक ग्रह इस बालकको ग्रहण करे है कि, जिससे यह बालक माताका स्तन नहीं पीवे । तीसरे दिन महीना और तीसरे वर्षमें पूतना नामक ग्रह इस बालकको ग्रहण करे है । चतुर्थ दिन, मास और वर्षमें मंडितकानाम ग्रह बालकको दबाता है, पंचम दिन मास और वर्षमें पूतना नाम ग्रह और छठे दिन मास और वर्षमें शकुनी नामक, सातवें दिन महीना और वर्षमें शुकरेवतीनामक मातृकाग्रह दबाता है । अष्टम दिन महीना और वर्षमें आर्यका नाम ग्रह दबाता है । नवम दिन मास और वर्षमें सूतिकानामक बालग्रह बालकको दबाता है । दशम दिन महीना और वर्षमें निर्ऋतिनामक बालग्रह बालकको दबाता है । ग्यारहवें दिन महीना और वर्षमें पिलिपिंडिका नाम ग्रह दबाता है । तथा बारहवें दिन महीने और वर्षमें कामुका नाम बालग्रह इस बालकको दबाता है अर्थात् पीडा प्रगट करे है ।

ग्रहजुष्टोंकी चिकित्सा ।

नदीतीरद्वयाकृष्टमहादेवीस्वरूपकम् ॥ कृत्वा पूजा च कर्तव्या पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥ १३ ॥ देवीं मूर्त्तौ

समावाह्य संकल्पं कृत्वा अमुकगोत्रोत्पन्नस्यैतस्य बालस्य शरीरस्थितसर्वग्रहशांत्यर्थं सर्वग्रहबलिं करिष्ये । सर्वत्र नामभेदेन पूजां कुर्यात् ॥ ॐ हुं फट् स्वाहाइति मंत्रेण स्नानवस्त्रचन्दनाक्षतधूपदीपनैवेद्यसप्तपताकासप्तदीपादिकं विधाय ॥ततो गुडोदकमत्स्यमांससुरावटकान्नस्विन्नगोधूमादि तदग्रे परिवेष्य ॐ नमो भगवते रुद्राय सत्यसुवसत्यसुवहुंफट्स्वाहा' इति मंत्रं पठित्वा बालकेन मुष्टिमात्रमन्नं संग्राह्य पूर्वपरिवेषितान्ते त्याजयेत् ॥ ततोऽन्यतः मुष्टिमात्रमन्नं मंत्रेण क्षिपेत् ॐ फट् वैनतेयाय नमः ॥ ततोऽन्यमपि ॥ 'ह्रां ह्रांक्षः ' इति त्रिवारं बलिं दत्त्वा बालप्रमाणपुष्पमालां गृहीत्वा बालोपरि त्रिः परिभ्राम्य ॥ ' ॐ कारिणिस्वर्णपक्ष बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा ' इति मंत्रेण तां कंठेऽर्पयेत् ॥ ततस्तत्सर्वं रात्रौ चतुष्पथे स्थापयित्वा पश्चादपश्यन्नेव गृहमागच्छेत् ॥ ततो गृहमागत्य शांत्युदकेन अश्वत्थपत्रेण बालमभिषिंचेत् ॥ शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु तुष्टिरस्तु यच्छ्रेयस्तदस्तु ॥इत्यभिषिंचेत्॥ततो माहेश्वरधूपेन बालं धूपयेत् ॥

अर्थ-अब उन उन ग्रहोंकी चिकित्सा लिखते हैं कि नदीके दोनों किनारोंकी मट्टी लेकर एक बडी भारी देवीकी प्रतिमा बनावे फिर उसका धूप दीप नैवेद्य और पाद्याचमनपूर्वक पूजन करे । प्रथम जिस मातृकाका दोष होय उसका आवाहन करे और इस प्रकार संकल्प करे । "श्रीविष्णुः ३ श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य" (इत्यादि कहकर फिर) "एवं ग्रहगुणविशेषणविशिष्टायाम् अमुकतिथौ अमुकगोत्रोत्पन्नोहम् अमुकशर्माहं ममोत्पन्नस्य बालकस्य शरीरास्थितसर्वग्रहशांत्यर्थं सर्वग्रहबलिं करिष्ये" इस प्रकार कहकर सर्वत्र नामभेदसे पूजा करे 'ॐ हुं फट् स्वाहा' इस मंत्रसे स्नान वस्त्र चन्दन अक्षत धूप दीप नैवेद्य पताका और सात दीपक धरके फिर गुडका सरबत, मछली, मांस, मद्य (दारू) बडा और उबलेहुए गेहूं आदि भोग देवे, फिर "ॐ नमो भगबते रुद्राय सत्य सुव सत्य सुव हुं फट् स्वाहा " इस मंत्रको पढके बालकसे एक मुट्ठी मात्र अन्न उस भोगमेंसे निकलवायके फिर उसके चारोंओर पानी फेरके त्याग करावै. फिर दूसरे घरके अन्नमेंसे बालककी एक मुट्ठी अन्न उस बलिदानमें मंत्र पढकर गिराय देना चाहिये मंत्र यह है" ॐ फट् वैनतेयाय नमः" फिर दूसरा मंत्रभी पढे " ॐ ह्रां ह्रां क्षः " इस प्रकार तीन बार बलि देय । और बालकके प्रमाणकी फूलमाला लेकर बालकके ऊपर उतार फिरायके अर्थात् उतारा करके फिर "ॐ कारिणि स्वर्णपक्ष बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा " इस मंत्रसे उसके कंठमें पहराय देवे. फिर उस प्रतिमासहित सर्व शाकल्यको रात्रिके समय चौराहे में धर आवे और पीछेको न देखे अपने घरको चला आवे और घरमें शांतिके जलसे. पीपलका पत्ता हाथमें लेकर बालकका अभिषेक करै जैसे- "शांतिरस्तु, पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, यच्छ्रेयस्तदस्तु" इस प्रकार अभिषेक कर माहेश्वरधूपसे बालकको धूनी देवे ।

माहेश्वर धूप।

स यथा ॥ कर्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिंडीतकत्वङ्मांसीवृषदंशविण्नखकणाकेशाहिनिर्मोककैः ॥ नागेंद्रद्विजहिंगुश्रृंगमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं कृत्योन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नं परम् ॥ १४ ॥

॥ अथ मंत्रः ॥

ॐ नमो रावणाय हन हन मुंच मुंच स्वाहा ॥ एवं दिनत्रयं कार्य चतुर्थेऽह्नि चतुरो विप्रान्भोजयेत् ॥ सुवर्णदानं शुभं भवति।

अर्थ–बिनोले, मोरकी पांख, कटेरीके फल, शिवनिर्माल्य मैनफल, तज, जटामांसी बिल्लीकी विष्ठा और नखी, पीपल, मनुष्यके बाल, साँपकी कांचली, हाथीदांत, हींग, गौका सींग और काली मिरच ये सब समान भाग ले धूप बनावे, यह कृत्या, उन्माद, पिशाच, राक्षस, देवग्रह इनके आवेशको और बालग्रहको नष्ट करे। धूप देनेका मंत्र–"ॐ नमो रावणाय हन हन मुंच मुंच स्वाहा" इस प्रकार तीन दिन करे। चतुर्थ दिन चार ब्राह्मणोंको भोजन करावे और सुवर्णका दान करे तो शुभ होय।

बालकके स्तन न पकडनेपर कल्क।

बालो योचिरजातः स्तन्यं न गृह्णाति तर्हि वै तस्य ॥ सैंधवधात्रीमधुघृतपथ्याकल्के घर्षयेज्जिह्वाम् ॥ १५ ॥

अर्थ–जो बालक माताके स्तनको न पकडे तो उसकी जीभपर सैंधानिमक, आमले, सहत, घृत और हरडके कल्कको घिसे तो दूध पीने लगे।

ज्वर वांति आदिपर कल्क।

बालानां ज्वरवांतिरेककसनश्वासेषु शृंगीविषाकृष्णाब्दं मधुयुक्तथार्द्रपटुहिंग्वेलाज्यमानाहके ॥ कृच्छ्रे मस्तुयुता त्रुटिर्द्विजगदे दंष्ट्रचा शुनः शस्यते॥ कार्श्ये क्षीरविदारिकाशृतघृतं दाहादिके नीलिका ॥ १६ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां बालरोगचिकित्सा नाम सप्तसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७७ ॥

अर्थ–काकडासिंगी, अतीस, पीपल, नागरमोथा इनके चूर्णको सहतमें मिलायके चटावे तो बालकका ज्वर, वमन होना, खांसी और श्वास दूर हों, यदि बालकके पेटमें अफरा होय तो अदरख, नोन, हींग, इलायची और घृत मिलायके देवे. बालकके मूत्रकृच्छ्रमें छाछमें इलायचीका चूर्ण मिलायके देवे, बालकके दांत निकलनेकी पीडा होय तो कुत्तेकी डाढ ताबीजमें मढाके पहराय देवे, बालक लटगया होय तो दूध और विदारीकंदसे बना घृत देवे, तथा दाह होता होय तो नीलिका आदिका प्रयोग करना चाहिये।"

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां बालरोगचिकित्सावर्णनं नाम सप्तसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमस्तरंगः।

विषरोग।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥ स्थावरं वत्सनाभादि सर्पादीनां तु जंगमम् ॥ १ ॥

अर्थ–विष दो प्रकारका है, स्थावर और जंगम, तहां वत्सनाम आदि स्थावर और सांप आदिके विषको जंगम विष कहते हैं ।

प्रयोग ।

यः पिबति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम् ॥ तत्सन्निधौ न वर्ष वृश्चिकभुजगाः प्रसर्पंति ॥ २ ॥

अर्थ–जिस दिन पुष्य नक्षत्र होय उस दिन सपेद पुनर्नवा (सपेद सांठ) की जडको पीस जलमें छानके पीवे तो १ वर्ष पर्यंत उसके पास बिच्छू और सांप नहीं आवें

प्रयोगांतर ।

मसूरीं निंबपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ ॥ अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्त्तस्य न संशयः ॥ ३ ॥

अर्थ–मसूर और नींबके पत्ते मिलायके जो मेषके सूर्यमें भक्षण करता है उसको १ वर्षपर्यंत साँप या बिच्छूका कदापि भय नहीं होता ।

सर्पविषपर प्रयोग ।

तंडुलीयकमूल तु पीतं तंडुलवारिणा ॥ तक्षकेणापि दष्टं हि निर्विषं कुरुते नरम्॥४॥

अर्थ–चौलाईकी जडको जलसे पीसके चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो सांपका काटा हुआ प्राणी निर्विष होय ।

दूसरा प्रयोग ।

शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम्॥ भावितं सर्पदष्टानां पाननस्यांजने हितम्॥५

अर्थ–सिरसके फूलके स्वरस सफेद मिरचको ७ दिन भावना देवे फिर इनको जलमें घोटके पीवे अथवा घिसके नेत्रोंमें लगावे तो सापका विष दूर होय ।

अन्य यत्न ।

दंशोपरि निबध्नीयात्तत्क्षणाच्चतुरंगुलम् ॥ क्षौमादिभिर्वैणिकया सिद्धैर्मंत्रैश्च मंत्रयेत् ॥ अंबुवत्सेतुबंधेन स्तभ्यते विषमं विषम् ॥ ६ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको सांप काटखाय उसके उसी स्थानसे चार अंगुल हटके बंध बांध देय फिर मंत्र आदिसे विषको उतारना चाहिये । इस बंधके बांधनेसे इस प्रकार विषवेग रुक जाता है जैसे नदीमें पुल बांधनेसे उस जलका वेग रुकता ।

अंजन ।

नक्तमालफलव्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥ सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमंजनम् ॥ ७ ॥

अर्थ–कंजाके फल, सोंठ, मिरच, पीपल, बेलकी जड, हलदी, दारुहलदी, तुलसीकी मंजरी इनका गोमूत्रमें अंजन करनेसे विषसे जो बेहोश हो रहा होय वह जाग उठे ।

नस्य ।

वंध्याककौंटकीमूलं छागमूत्रेण भावितम्॥ नस्यं कांजिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः ॥ ८ ॥

इति सर्पविषम् ॥

अर्थ–बांझककोडाकी जडको बकरीके मूत्रकी भावना देकर कांजीमें पीस नस्य देवे तो विषवेगवाला होशमें आवे ।

बिच्छूके विषपर लेप ।

अजाक्षीरेण संपिष्टा शिरीषफलमिश्रिता॥ उपकुल्या विषं हंति वृश्चिकस्य प्रलेपतः ॥ ९ ॥

अर्थ-पीपर छोटीमें सिरसके फूल मिलाके बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो बिच्छूका विष दूर होय ।

दूसरा प्रयोग ।

कार्प्पासपत्रैः संपिष्टैः साज्यैर्लेपो विषापहः ॥ वृश्चिकस्याथवा वत्सनाभलेपः प्रशस्यते ॥ १० ॥

अर्थ-कपासके पत्ते घृतमें पीसके लेप करे अथवा बच्छनाग विषका लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर होय ।

गुटिका ।

मनःशिलाकुष्ठकरंजबीजशिरीषकाश्मीरभवैः समांशैः ॥ विनिर्मितास्ये विधृतावलिप्ता संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ-मैनसिल, कूठ, कंजेके बीज, सिरसकी छाल और केशर ये समान भाग लेवे. सबकी गोली बनाय लेवे। इसको मुखमें रखनेसे यह बिच्छूके विषको दूर करे है।

सरफोंकाके गुण ।

अवतारयत्यधोनीतमूर्ध्वमारोपितं तु वर्द्धयति ॥ वृश्चिकगरलं विधिवत्सायकपुंखाभवं मूलम् ॥ १२ ॥

अर्थ-सरफोंकेकी जड विधिपूर्वक लायके विषवाले रोगीके पैरोंपर रखनेसे विष उतर जावे और ऊपर रखनेसे बिच्छूका विष बढता है।

छत्रकफलयोग ।

द्विरदपुरीषसमुत्थच्छत्रकबहुवारफलकृता गुटिका ॥ वृश्चिकविषस्य कुरुते संक्रमणमाशु करे विधृता ॥ १३ ॥

अर्थ-हाथीकी लीदमें उत्पन्न हुआ छतोना (जो काठके फूलनेसे वर्षा ऋतुमें प्रगट होजाता है) उसको और निसोडे इनको पीसके गोली बनावे, इसको हाथमें रखनेसे बिच्छूका विष तत्काल दूर होय ।

बिच्छूका मंत्र ।

ॐआदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेनच॥ सुपर्णपक्षपातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥१४॥ॐपक्षयोगिपादाज्ञा श्रीशिवोत्तमप्रभुपादाज्ञा भूम्यां गच्छ महाविष१६॥ इति मंत्रं वृश्चिकविद्धस्य कर्णे जपेत् ॥ एकविंशतिवारं दंशं स्पृष्ट्वैकविंशतिवारं चाभिमंत्रयेन्निर्विषो भवतितराम्॥१६॥ इति वृश्चिकविषम् ॥

अर्थ-इस ऊपरके मंत्रको जिसको बिच्छूने काटा होय उसके कानमें २१ वार जपे और वारंवार डंकका स्पर्श करता जाय तो वह प्राणी बिच्छूके विषसे रहित होय ।

गरदोषका यत्न ।

अंकोलमूलनिष्क्वाथः फाणितं सघृतं लिहेत् ॥ तैलाक्तश्चित्रनानांशगरदोषविषापहः ॥ १७ ॥

अर्थ-अंकोलकी जडके क्वाथमें फाणित (गुडविकार) घृत और तेल मिलायकर पीवे तो अनेक प्रकारके गरदोष निवारण होयँ ।

कृत्रिम विषका यत्न ।

शर्कराचूर्णसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः ॥ लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम्१८

अर्थ-सुवर्णमाक्षिक और सुवर्णके वरक मिश्रीमें मिलायके अवलेह करके चाटे तो अनेक प्रकारके योगवाही विषोंको दूर करे ।

कुत्तेके विषके यत्न ।

काकोदुंबरिकामूलं धत्तूरकफलान्वितम्॥ पीतं तंडुलतोयेन सारमेयविषापहम् १९॥

अर्थ–कठूमरकी जड और धतूरेके फलको पीस चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो कुत्तेका विष दूर हो ।

नखदंतविषका यत्न ।

पिचुमंदशमीवटकल्कयुतं कथितं जलमाशु विलेपनतः ॥ नखदंतविषाणि निहंति नृणां विषमाण्यखिलान्यपि सत्यमिदम् ॥ २० ॥

अर्थ–नीमकी छाल, शमी (छोकर) और बडके कोमलपत्र इनका क्वाथ करे, इस जलके लगानेसे दांत नख और सींगके विष दूर हों ।

मक्षिकाविषपर लेप।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्यपि ॥ रजन्यौ गैरिकं लेपः पिडिकामक्षिकाविषे ॥ २१ ॥

अर्थ–सोमवल्कल, अश्वकर्ण (रालका भेद), गोभी, हलदी, दारुहलदी, गैरिक इनको जलमें पीस लेप करे तो पिडिका और मक्खीका विष दूर होय ।

वरटी (बर्र ततैया) विषपर लेप ।

मरिचं नागरोपेतं सिंधुसौवर्चलान्वितम् ॥ नागवल्लीरसो हन्याल्लेपनाद्वरटीविषम् ॥ २२ ॥

अर्थ–मिरच, सोंठ, संधानिमक, कालानिमक इनका नागवेल (पान) के रसमें पीस लेप करनेसे वरटी (बर्र, ततैया) का विष दूर हो ।

भौंरेके विषपर लेप ।

नागरं गृहकपोतपुरीषं बीजपूरकरसो हरितालम्॥ सैंधवं च विनिहंति विलेपादाशु भृंगजनितं विषमेतत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–सोंठ, घरके कबूतरकी बीट, बिजोरेका रस, हरताल और सेंधानिमक इनका लेप तत्काल भौंरेके विषको दूर करे ।

मूसेके विषपर लेप ।

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ॥ लेपो जयत्याखुविषं कोशातक्यथवा सिता ॥ २४ ॥

अर्थ–घरका धूमसा, मँजीठ, हलदी और सेंधानिमक इनका अथवा तोरई और खांडका लेप मूसेके विषको दूर करे ।

मेंडकके विष पर लेप ।

शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य क्षीरेण पिष्टैः कृतलेपनानाम्॥ विषं विनाशं व्रजति क्षणेन मंडूकदंशप्रभवं नराणाम् ॥ २५ ॥

अर्थ–शिरसके बीज, सेहुडके दूधमें पीस लेप करे तो मेंडकका विष एक क्षणमात्रमें नष्ट होय ।

नारीबद्ध विषपर यत्न ।

शनौ निर्मन्त्र्य यष्टिं च पूर्वपुष्करिणीस्थिताम् ॥ रवौ प्रातस्तत्र गत्वा विद्वान्संयतमानसः ॥ २६ ॥ तडागसंस्थितस्तंभात्काष्ठमानीय खंडशः ॥ पिबेद्बद्धः प्रमुच्येत नार्या बद्धेन्द्रियोऽपि च ॥ २७ ॥

अर्थ–शनिवारके दिन मुलहटीके वृक्षको जो कि अपने गामसे पूर्वकी पुष्करणीमें स्थित हो

निमंत्रण देआवे और रविवारको विधिपूर्वक उखाड लावे, उस तलावमेंसे लाई हुईके टुकडे कर डाले, एक टुकडेको बारीक पीसके पीवे तो जो पुरुष स्त्रीके जादूसे बँध रहा सो छूट जावे ।

श्रृंगीमत्स्यविषपर लेप ।

कृष्णवेत्रस्य निष्क्वाथः कल्को घृतविमिश्रितः ॥ शृंगिमत्स्यविषं हंति बर्हिपक्षेण धूपनम् ॥ २८ ॥

अर्थ–काले बेतके क्काथ वा कल्कमें घी मिलाय पीवे और मोरपांखकी धूनी देय तो शृंगी मत्स्य अर्थात् सींगवाली मच्छीका विष दूर हो ।

पिपीलिका (चेंटी) विषपर यत्न ।

पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा ॥ गोमूत्रेण वरालेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृतः ॥ २९ ॥

अर्थ–जिसको चेंटी, मक्खी और मच्छर काट खांय वह त्रिफलेका गोमूत्रमें क्काथ करके लेप करे, अथवा काली बांबीकी मिट्टीका लेप करे तो चेंटी और मच्छरका विष दूर होय ।

शतपदी विषपर लेप ।

लेपः प्रदीपतैलस्य खर्जूरविषनाशनः ॥ हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिलाः३०

अर्थ–दीयेका तेल लगानेसे खानखजूरेका विष दूर होय, अथवा हलदी, दारुहलदी, गेरू और मनशिल इनका लेप खानखजूरे (कांतर) के विषको दूर करे ।

लूताविषपर लेप ।

कटभ्यर्जुनशैरीषशेलुक्षीरद्रुमत्वचः ॥ कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ ३१ ॥ रजनीद्वयमंजिष्ठापतंगगजकेशरैः ॥ शीतांबुपिष्टैरालेपः सद्यो लूताविषापहः ॥ ३२ ॥ गिरिकर्णीद्वयं सेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे ॥ कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो लूताविषापहः ॥ ३३ ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां विषचिकित्सा नामाष्टसप्ततितमस्तरंगः ॥ ७८ ॥

अर्थ–कटभी, कोह, सिरस, लिसोडा और बड, गूलर आदि क्षीरवाले वृक्ष इनकी छालका कल्क अथवा क्काथ वा चूर्ण सेवन करे तो कीट लूताविष और व्रणोंको अच्छा करे है हलदी, दारुहलदी, मँजीठ, पतंग और गजकेशर इनको शीतल जलसे पीस लेप करे तो तत्काल लूताविष नष्ट होय, अथवा सपेद और काली कोयल, पाढर, पुनर्नवा, सपेद पुनर्नवा, कैथ और सिरसकी छाल इनको जलमें पीस लेप करनेसे लूता विष दूर होय ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां विषचिकित्सावर्णनं नामाष्टसप्ततितमस्तरंगः ॥७८॥

एकोनाशीतितमस्तरंगः ।

रसायनलक्षण और उसका समय ।

यज्जराव्याधिशमनं भेषजं तद्रसायनम्॥ पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥ १ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ॥ न भाति वाससि क्लिष्टे रंगयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

अर्थ–जो वृद्धावस्था और रोगमात्रका हरण करे उस औषधको रसायन कहते हैं उसको प्रथम अवस्था या मध्यावस्थामें वमन विरेचनादिसे शुद्ध होकर प्रारंभ करे । जबतक देह शुद्ध नहीं करा तबतक रसायन विधि उत्तम गुण नहीं करे. जैसे पुराने मैले कपडेपर रंग अपना असर नहीं करे ।

षट् ऋतुमें हरीतकी ।

सिंधूत्थशर्कराशुंठीकणामधुगुडैःक्रमात् ॥ वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ३

अर्थ–वर्षा ऋतुमें सेंधेनिमकसे, शरद् ऋतुमें मिश्रीके साथ, हेमत ऋतुमें सोंठ, शिशिर ऋतुमें पीपल, वसंत ऋतुमें सहत और ग्रीष्म ऋतुमें गुडके साथ हरडका सेवन करना रसायनके गुणोंको करे है ।

प्रयोगांतर ।

मंडूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ॥ रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥ ४ ॥

अर्थ–मंडूकपर्णी (ब्राह्मीका भेद) का स्वरस और दूधके साथ मुलहटीका चूर्ण, गिलोयका रस तथा जड और फूलसहित शंखपुष्पी (शंखाहुली) का कल्क ये सब रसायन हैं, इनमें इच्छा होय उसी प्रयोगका सेवन करे ।

शंखपुष्पीयोग ।

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानि चैतानि रसायनानि सेव्या विशेषेण तु शंखपुष्पी ॥ ५ ॥

अर्थ–आयुकी देनेवाली, रोगनाशिनी, बल, अग्नि, वर्ण और स्वरको बढानेवाली और पवित्र सब रसायन औषधी हैं, परंतु शंखपुष्पी (संखाहुली) विशेष रसायनके गुण करनेवाली है, इस वास्ते इसका सेवन करे ।

कुष्ठचूर्णयोग ।

यः कुष्ठचूर्णं रजनीविरामे मध्वाज्यसम्मिश्रितमत्ति नित्यम् ॥ स मत्तमातंगबलः सुगंधिर्वाग्मी चिरायुश्च भवेन्मनुष्यः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो प्राणी रात्रिके अंतमें कूठके चूर्णको सहत और घीमें मिलायके नित्य सेवन करे वह मतवाले हाथीके समान बली, सुगंधयुक्त, सुंदर वाणीवाला और बडी उम्रका होय ।

अश्वगंधायोगः ।

शिशिरे योऽश्वगंधायाः कंदचूर्णं पलोन्मितम् ॥ मासमत्ति समध्वाज्यं स वृद्धोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–शिशिर (पूसमाहके महीने) में जो प्राणी असगंधके चूर्णमें सहत घी मिलायके १ महीने खाय तो बुड्ढाभी तरुण होय ।

प्रयोगांतर ।

घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः समानि शयनस्थितो मधुयुतानि खादेन्निशि ॥ बलीपलितवर्जितस्तरुणनागतुल्यो बली बृहस्पतिसमः पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥ ८ ॥

इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ–घृत, आमले, मिश्री, तिल और पलाश (ढाक) के बीज इनको बारीक पीस

जब रात्रिके समय सोवे तब सहतमें मिलायके खायलेवे तो वली (देहमें गुजलट पडना) पलित (सपेद बालोंका होना) त्यागकर तरुण हाथीके समान होय और बृहस्पतिके समान बुद्धिवाला होय। यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखाहै।

भृंगराजयोग ।

ये मासमेकं स्वरसं पिबंति दिने दिने भृंगसमुत्थमत्र ॥ क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः समाशतं जीवितमाप्नुवंति॥९॥

अर्थ–जो प्राणी १ महीने भाँगरेके पत्तोंका स्वरस पीवे और केवल दूध पीकर रहे तो बलवर्णयुक्त सौ वर्ष जीवे ।

दूसरा प्रयोग ।

असिततिलविमिश्रान्पल्लवान्भक्षयेद्यः ससुरभिपयसो वै भृंगराजस्य मासम् ॥ भवति च चिरंजीवी व्याधिभिर्निर्विमुक्तो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः॥१०॥

अर्थ–जो प्राणी भाँगरेके पत्तोंमें काले तिल मिलायके भक्षण करे और ऊपरसे गौका दूध पिया करे इस प्रकार १ महीने पर्यंत करनेसे दीर्घ जीनेवाला, रोगरहित, काले बालोंवाला और कामचारी होय ।

असगंधयोग ।

पीताश्वगंधा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ॥ कृशस्य पुष्टिं वपुषो बिभर्ति नरस्य सस्यस्य यथांबुवृष्टिः ११ इति वृंदात् ॥

अर्थ–जो प्राणी असगंधके चूर्णको घृत, तेल अथवा सुखोष्ण जलसे १९ दिनतक पीवे तो कृश मनुष्य पुष्ट होय । जैसे छोटी घासको मेघकी वृष्टि पुष्ट करे है। यह वृंदग्रंथमें लिखा है

प्रयोगांतर ।

सततमरुष्करपिप्पलिवृद्धिर्वपुषिनिरामयतां विदधाति ॥ कनकशिलाजतुगुग्गुलुधात्रीफललशुनत्रिफलामययोगः ॥ १२ ॥

अर्थ–जो प्राणी मिलावा और पीपलको क्रमसे बढायके खाय तो देह पुष्ट होय और रोगरहित होय इसी प्रकार सुवर्णके वरक, शिलाजीत, गुग्गुल, आमले, लहसन और त्रिफलेका योगभी पूर्वोक्त गुण करे हैं ।

घृतदधिमधुरादियोग ।

घृतदधिमधुरपयोदधिमंडैरुषासि कृतः करिकर्णपलाशः ॥ स्थगयति हि स्थिरतां स्थविराणां विदधाति वपुर्बलवत्ताम् ॥ १३ ॥

अर्थ–घृत, दही, मीठा दूध, दहीका मंड, इसमें हस्तिकर्ण (जो ढाकका भेद है उसके) पत्ते डालके सबको एकत्र पीने योग्य करे इसके पीनेसे बुड्ढोंका बुढापा रुकजावे और देहमें बलको बढावे ।

एरंडतैलादियोग ।

एरंडतैलमथ निंबफलास्थितैलमेतद्रसायनमनामयकायकारि ॥ ज्योतिष्मतीफलपलाशफलोद्भवं वा तैलं वलीपलितहारि भिषक्प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

अर्थ–अंडीका तेल अथवा नींबकी निंबोरीका तेल, ये दोनों नैरोग्यकर्त्ता रसायन हैं.

अथवा मालकांगनी या पलाशका तेल वैद्योंने वलीपालित नष्ट करनेवाला कहा है ।

अन्य प्रयोग ।

धात्रीफलानि पयसांपतिवारिणा वा स्विन्नानि यः शिशिरकालसमुद्भवानि ॥ निष्केवलान्यथ तिलैरसितैः समानि खादेदनामयवपुः स पुमाञ्छतायुः १९॥

अर्थ–आँवलेके फल जो पूसमाघमें उत्पन्न हुए हों उनको समुद्रके जलमें औटावे और खाय अथवा इनके साथ काले तिल मिलायके खाय वह प्राणी रोगरहित सौ वर्ष जीवे ।

प्रयोगांतर ।

ससितया वचयामलकैरथ त्रिफलया त्वथवा घृतमिश्रया ॥ कनकलोहरजः सदलं कृतं परमिदं हि रसायनमुच्यते १६ इति कलिकातः ॥

अर्थ–मिश्री, वच, आमले; त्रिफला और गौका घी इनमेंसे किसी एकके साथ सुवर्णभस्म या लोहभस्म खाय तो यह सर्वोत्तम रसायन है। यह कलिकाग्रंथमें लिखा है ।

उषःकालजलपान ।

अंभसां प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत् ॥ वातपित्तकफाञ्जित्वा जीवेद्वर्षशतं दृढम् १७

अर्थ–जो प्राणी सूर्योदयसे पूर्व अर्थात् उषःकालमें आठ पस्से शीतल जल पीवे तो वह वात पित्त कफके रोगोंको जीतकर सौ वर्ष दृढ होकर जीवे ।

प्रातःकालजलनस्य ।

गंव्यवलीपालितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोषघ्नम् ॥ रजनीक्षयेंबुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च ॥ १८ ॥

अर्थ–प्रातःकाल जलकी नस्य लेवे तौ व्यंग, वली, पालित, पीनस, स्वरभंग, खांसी, शोषको नष्ट करे और दृष्टिको बढावे है ।

पारदके योग ।

मलकंचुकपरिमुक्तः पूतः षड्गुणगंधकजारितसूतः ॥ निजसेवकजननूतनकल्पः सुरतविधौ दलितोत्तमतल्पः ॥१९॥

अर्थ–जिस पारदके मल और कंचुकी दूर करके षड्गुण गंधक जारण करी गई यदि इसका सेवन करे तो देहको नवीन करे और कामक्रीडामें स्त्रियोंके मदको जीते ।

रससिंदूर योग ।

सिंदूराख्यः सूतो वरया प्रातर्जग्धो घृतमधुपरया ॥ वितरति तरुणिमरूपमुदारं वृद्धस्यापि विमोहति दारान् ॥ २० ॥

अर्थ–रससिंदूरनामक पारदको त्रिफला; घृत और सहतमें मिलायके सेवन करे तो वृद्धकोभी तरुणिमरूपसे युक्त करे कि जिससे स्त्री मोहित हों ।

गंधक और अभ्रकयोग ।

बलिरेको घृतमरिचान्वियुक्तः पलितवलिघ्नःप्रातर्भुक्तः॥ तद्वन्मारितमाभ्रं सत्त्वं किमपरमस्ति रसायनतत्त्वम् ॥ २१ ॥

इति चर्पटीतः ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां रसायनाधिकारो नाम एकोनाशीतितमस्तरंगः॥७९॥

अर्थ-घृत और मिरचके चूर्णके साथ केवल गंधकही प्रातःकाल सेवन करनेसे बली पलितको नष्ट करे. उसी प्रकार मराहुआ अभ्रकसत्व गुणदायक है । इसपर दूसरा रसायन क्या है? कोईभी नहीं । यह चर्पटी ग्रंथमें लिखा है ।

इति श्रीयोगतरंगिणीभाषाटीकायां रसायनाधिकारो नाम एकोनाशीतितमस्तरंगः ॥ ७९ ॥

अशीतितमस्तरंगः ।

वाजीकरण ।

अतिव्यवायशीलो वा न च वाजीक्रियारतः ॥ ध्वजभंगमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ १ ॥ असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च जायते ॥ साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥ २ ॥

अर्थ-जो प्राणी अत्यंत स्त्रीरमण करा करे परंतु वाजीकरणकर्ता पदार्थोंका सेवन नहीं करे उसके शुक्रक्षयजन्य ध्वजभंग (लिंगमें शिथिलता) होती है । नपुंसकके जितने भेद हैं उनमें सहज क्लीब असाध्य है और मर्म टूट जानेसे हुआ है वहभी असाध्य है, बाकीके नपुंसक साध्य हैं उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

नपुंसकका यत्न ।

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्तांडौ क्षीरसर्पिषा ॥ साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ ३ ॥

अर्थ-प्रथम बकरेके अंडकोश दूध और घीमें परिपक्व कर उनमें पीपल और सेंधानिमक लपेट कर खाय तो सौ स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति होय ।

बस्तांडसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ॥ यः खादेत्स पुमान्गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ ४ ॥

अर्थ-प्रथम दूधमें बकरेके अंड उबालकर फिर इस दूधकी तिलोंमें वारंवार भावना देवे इन तिलोंके खानेसे यह प्राणी सौ स्त्रियोंसे रमण करे ।

पुष्पधन्वारस ।

मृतं नागाभ्रकं तीक्ष्णं समं खल्वे विमर्दयेत् ॥ धत्तूरबीजं विजयाशाल्मलीमधुकेन च ॥ ५ ॥ नागवल्लीद्रवैर्भाव्यं त्रिवारं चार्कशोषितम् ॥ चतुर्गुंजामितं खादेच्छर्कराघृतसंयुतम् ॥ ६ ॥ षंढत्वमग्निमांद्यं च प्रमेहविंशतिं तथा ॥ हरते कुरुते वीर्यं पुष्पधन्वा रसो नृणाम् ॥ ७ ॥

अर्थ-शीशेकी भस्म, अभ्रकभस्म, खेरी लोहकी भस्म ये समान भाग ले सबको खरलमें डालके खरल करे फिर धत्तूरेके बीज, भाँग, शाल्मली, मुलहटी और पानके रसकी तीन तीन भावना देय और प्रत्येक समय धूपमें सुखाय लेवे तो सिद्ध होय । इसमेंसे ४ रत्ती मिश्री और घृतसे खाय तो नपुंसकता, मंदाग्नि, २० प्रमेह इन सबको यह पुष्पधन्वारस दूर करे और वीर्य बढावे ।

विदारीकंदयोग ।

चूर्णं विदार्य्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ॥ शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥ एतेनाशीतिवर्षोपि युवेव परिहृष्यति ॥ ८ ॥

अर्थ-विदारीकंदका चूर्ण बारीक करे फिर इसमें २१ पुट विदारीकंदके रसकी देवे फिर इसमें मिश्री सहत और घृत मिलाके खाय

ऊपरसे दूध पीवे तो इस प्रयोगके प्रभावसे ८० वर्षका बुड्ढा भी जवानके समान मैथुन करे ।

पाठांतर ।

विदारीकंदचूर्णं तु घृतेन पयसा नरः ॥ उदुंबरसमं खादेद्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥९॥

अर्थ–विदारीकंदके चूर्णको घृत और दूधके साथ १ तोला खाय तो बुड्ढा भी तरुणके समान भोग भोगे ।

प्रयोगांतर ।

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरिनागबलातिबला च ॥ चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति १० इति वृंदात् ॥

अर्थ–गोखरू, तालमखाने, सतावर, कौंचके बीज, गँगेरन, अतिबला इनका बारीक चूर्ण कर रात्रिके समय दूधके साथ उस मनुष्यको पीना चाहिये कि जिसके घरमें सौ स्त्री हों। यह वृंदमें लिखा है ।

षड्योग ।

शतावरीनागबलाविदारिकात्रिकंटकैरामलकीफलान्वितैः ॥ विचूर्णितैः पंचभिरेकशः पृथक्प्रकल्पितैर्वा घृतमाक्षिकप्लुतैः ॥ ११ ॥ इति प्रयोगाःषडिमे भिषग्वरैरुदीरिताः शर्करया समन्विताः ॥ नृणामनेकप्रमदोपसर्पिणां प्रधानधातोरतिरेककारणाः ॥ १२ ॥

अर्थ–शतावर, नागबला, विदारीकंद, गोखरू और आमले इनका पृथक् २ चूर्ण करके अथवा सबको एकत्र मिलाके इसको घृत, खांड और सहतमें मिलाके सेवन करे ये छः प्रयोग वैद्योंने प्रधान धातुवीर्यके बढाने और अनेक स्त्रियोंके साथ रमण करनेवालेको कहे हैं ।

दूसरा प्रयोग ।

सघृतमधुबलात्रयस्य चूर्णं समधुसिताघृतमुच्चरोद्भवं वा ॥ समधुकमथ माषमुद्गपर्ण्योरमृतलतामलकत्रिकंटकं वा ॥ ॥ १३ ॥ इति कथितमिदं हि पुष्पिताग्राचरणचतुष्टयवेष्टनेन शिष्टैः ॥ अभिमतमसकृद्व्यवायभाजामिह खलुयोगचतुष्कमाविकल्प्य ॥ १४ ॥

अर्थ–खिरटी, गँगेरन और कंगही इनकी छालका घृत और सहत मिलाके सेवन करे अथवा उटंगनके बीज और सहत मिश्री घृत इनका सेवन करे । माषपर्णी, मुद्गपर्णीके चूर्णको सहतसे वा गिलोय, आँवला, गोखरूको सहतसे खावै । उक्तपुष्पिताग्राके ४ पादोंके ४ औषधोंको खानेवाला मनमाना मैथुन करै ।

प्रयोगांतर ।

पिबति यः पयसा कृतशोधनस्त्रिकंटकं मधुकं बहुपुत्रिकाम् ॥ अतिबलामथ नागबलां बलामिह हि नागबलः स पुमान्भवेत् ॥ १५ ॥ इति चिकित्सातः ॥

अर्थ–जो प्राणी प्रथम वमन विरेचनसे देहशुद्धि करके फिर गोखरू, मुलहटी, सतावर, अतिबला, नागबला और खिरैंटीके चूर्णका दूधके साथ सेवन करे तो हाथीके समान बलवान् होय ।

कामदेववटी ।

कुष्ठं कटूफलसैंधवं त्रिकटुकं मेथीयवानीद्वयं वासा मोचरसं विदारिमुशली जातीफलं चित्रकम् ॥ जीरं चापरजीरकं गजकणा द्राक्षाभया वानरी तालीशं

त्रिसुगंधिकं त्रिलवणं बैभीतकं श्रृंगिका ॥ १६ ॥ रंभा कंदशतावरीद्वयशटी-यष्टीप्रियालामृता जातीपत्रलवंगकेसर-जलं गोक्षूरकं शाल्मली ॥ धात्रीमाष-पुनर्नवाश्च कनकं श्रृंगाटकं मस्तकी मांसी चापि बलात्रयं च नलदं भार्ङ्गी-भकर्णस्तिलाः॥ १७ ॥ कंकोलं करहाटकं च विजया श्रीरुग्रगंधा कुट्टर्मञ्जापझजबीजभेदमखिलं चूर्णीकृतं स्निग्धकम् ॥ एतत्कर्षमितं पृथक्पृथगथो तुर्यांशतुल्यां जयां तस्याद्धांशमितं मृताभ्रकमहिर्वंगं तदर्धं क्षिपेत् ॥१८॥ लोहं मारितमेतदर्धममलं सूतं तदर्धं मृतं सर्वेभ्यो द्विगुणा सिताथ मधुना चाज्येन संमिश्रयेत् ॥ कार्यास्तस्य पलप्रमाणवटिकाः खादेद्यथाग्नि प्रगे नक्तं वेति जरा-विपत्तिशमनीमेकां च दुग्धं पिबेत् ॥ ॥ १९ ॥ एषा सौगतसिंहनामभिषजा लोके प्रकाशीकृता हम्मीराय महीभुजे शतवधूसंभोगभाजे भृशम् ॥ एषां वीर्यकरी महामयहरी क्षुद्बोधतेजस्करी कांतिस्थौल्यमतिप्रकाशजननी चिंतामयध्वंसिनी ॥ २० ॥ तारुण्योद्धतकामिनीजनमहादर्पद्विपानां महासिंही सर्वमनोविनोदनकरी श्रीकामदेवाभिधा२१॥

अर्थ–कुष्ठ, कायफल, सेंधानिमक, त्रिकुटा, मेथी, अजवायन, अजमोद, अडूसा, मोचरस, विदारीकंद, मूसली, जायफल, चित्रक, जीरा, कालाजीरा, गजपीपर, दाख, हरड, कौंचके बीज, तालीशपत्र, त्रिसुगंध, तीनों निमक, बहेडा, काकडासिंगी, केलाकंद, शतावर, बडी सतावर, कचूर, मुलहटी, चिरौंजी, गिलोय, जावित्री, लौंग, केशर, नेत्रवाला, गोखरू, सेमर, आँवले, उडद, पुनर्नवा, धतूरेके बीज, सिंघाडा, मस्तंगी, जटामांसी, खिरेंटी, कँगही, गँगेरन, नरसलकी जड, भारंगी, हाथीकर्ण, तिल कंकोल, अकरकरा, भांग, बेलगिरी, बेरकी मिंगी, कमलगट्टा, पाखानभेद प्रत्येक एक एक तोला लेकर चूर्ण करे और इनका चतुर्थ भाग भांग मिलावे उस भागसे आधे २ भाग अभ्रक और शीशा लेवे और अभ्रक शीशेसे आधी वंगभस्म लेवे और वंगसे आधी लोहभस्म और लोहसे आधी पारदकी भस्म और सब औषधोंसे दूनी मिश्री लेवे. इससे सहत और घृत मिलायके पाक करे. जब सिद्ध होजाय तब चार २ तोलेके लड्डू बनाय लेवे. इसको अपनी जठराग्निका बलाबल विचारके प्रातःकालमें खाय अथवा रात्रिके समय खावे, ऊपरसे दूध पीवे यह वृद्धावस्थाका नाशक सौगतगुटिका नामसे प्रसिद्ध है. यह सौगतसिंह-नामक वैद्यने सौ स्त्रीसे रमण करनेवाले हम्मीर राजाके वास्ते बनाई थी. यह वीर्यकरी, घोररोगोंको हरण करे, चितारूप रोगोंको नष्ट करे, तथा तरुणतासे उद्धत कामिनीजनके महादर्परूप हाथीको महासिंही रूप है. मनको विनोद कर्ता ऐसी कामदेवगुटी कही है ।

महासुगंधितैल ।

कर्पूरागुरुचोचबोलनलिकालाक्षाशटी-धातकीपुष्पैः सप्तदलैलवालुसुरसाशैले

यमांसीप्लवैः ॥ एलाकुंकुमरोचनादमनकश्रीवासजातीफलैः कंकोलक्रमुकाजटामयमुराकौतीलवंगामयैः ॥ २२ ॥ बालोशीरमृणालजातिकुसुमस्थौणेयचंडानखैर्जातीपत्रकुलीरपद्मकयुतैः स्पृक्कान्वितैः पालिकैः ॥ लाक्षायोजनवाह्लिलोध्रसलिलैस्तैलं विपाच्याढकं तेनाभ्यज्य ततुं जरन्नपि भवेत्स्त्रीणां परं वल्लभः ॥ २३ ॥ शुक्राढ्यो द्युतिमाननल्पतनयःषंढोऽपि रत्युत्सुको वंध्या गर्भवती भवेदंपि तथा वृद्धापि सूते सुतम् । कंडूस्वेदविचर्चिकामलहरं दौर्गंध्यकुष्ठापहं दस्राभ्यः परिकीर्तितं बहुगुणं तैलं सुगंधाभिधम् ॥ २४ ॥

अर्थ–कपूर, अगर, तेजपात, बीजाबोल, नलिका (सुगंधद्रव्य) लाख, कचूर, धायके फूल, सतोना, एकवालुक, तुलसी, छडीला, जटामांसी, पाखरकी छाल, इलायची, केशर, वंशलोचन, दौना, मरुआ, श्वेतचन्दन, जायफल, कंकोल, सुपारी, बालछड, कस्तूरी, मुरा, मांसी, रेणुका, लौंग, कूठ, नेत्रवाला, खस, कमलकी नीचेकी डंडी, चमेलीके फूल, थुनेर, चोरनामक गंधद्रव्य, नखी द्रव्य, जावित्री, काकडासिंगी, पद्माख, स्पृक्का (असवरग), लाख, मजीठ, लोध, सुगंधवाला ये सब औषध प्रत्येक ४ तोले लेवे इनके कल्कमें ४ सेर तिलका तेल परिपक्व करे इसकी मालिसके करनेसे बुड्ढा मनुष्य भी स्त्रियोंको अत्यंत प्रिय होय । वीर्ययुक्त कांतिवाला अनेक पुत्रोंवाला और नपुंसक भी रमण करनेकी इच्छावाला होय । वंध्याके गर्भ रहे तथा वृद्धा स्त्री भी पुत्रको प्रगट करे. खुजली पसीने, विचर्चिका, देहका मैल, देहकी दुर्गंधता और कुष्ठ रोगको नष्ट करे । यह अश्विनीकुमारका कहा महान् गुण करनेवाला महासुगंधि तैल है ।

कामदेवचूर्ण ।

पलं गोक्षुरबीजस्य द्विपलं कपिकच्छुकम् ॥ पलं नागबलाबीजं पलमेकं शतावरी ॥ २५ ॥ विदारीकंदचूर्णस्य पलद्वयमथापरम् ॥ द्विपलं त्रपुसीबीजं वाजिगंधापलत्रयम् ॥ २६ ॥ वासा च तालमूली च गुडूची रक्तचंदनम् ॥ त्रिसुगंधकणाधात्रीलवंगं नागकेशरम् । ॥ २७ ॥ एतानि कर्षमात्राणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ बालशाल्मलिमूलं च भावयेदेकविंशतिः ॥ २८ ॥ कुशकाशशिफासप्तशर्करासमयोजितम् ॥ दुष्टं शुक्रं वीर्यहानिं मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥२९॥ मूत्राघातं मूत्रदोषं जयेच्छुक्रविवर्धनम् ॥ शतं गच्छति च स्त्रीणां हयतुल्यपराक्रमः ॥ ३० ॥ वंध्या पुत्रमवाप्नोति भुक्त्वा चूर्णमिदं क्रमात् ॥ कामदेवाभिधं चूर्णं धन्वन्तरिनिरूपितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–गोखरू बडे ४ तोले, कौंछके बीज ८ तोले, नागबलाके बीज ४ तोले, शतावर ४ तोले, विदारीकंदका चूर्ण ८ तोले, खीरेके बीज ८ तोले, असगंध १२ तोले, अडूसा, मूसली, गिलोय, लाल चंदन, त्रिसुगंधि, पीपल,

लौंग, नागकेशर ये सब एक २ तोला लेय सबका बारीक चूर्ण करे, फिर नवीन सेमरके मूसलेके रसकी २१ भावना देय, फिर कुश और काँसकी जडकी सात २ भावना देय, फिर सब चूर्णके बराबर मिश्री मिलावे, यह बिगडा हुआ शुक्र, वीर्यकी क्षीणता, मूत्रकच्छ्र, मूत्राघात, मूत्रदोष इनको नष्ट करे सौ स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति होय, घोडेके तुल्य पराक्रम होय, इस चूर्णका क्रमपूर्वक सेवन करनेसे वंध्याकेभी संतान होय। यह धन्वंतरिका कहा हुआ कामदेव चूर्ण है ।

अश्वगंधापाक ।

अश्वगंधाप्रस्थमेकमजाक्षीरे चतुगुणे ॥ घृतस्य प्रस्थमादाय खंडप्रस्थत्रयं तथा ॥ ३२ ॥ प्रस्थार्द्धांश्च तिलान्माषान्पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ व्योषत्रिजातहपुषाशताह्वाशतमूलिकाः॥ ३३ ॥ दीप्यपौष्करकौ जाती शटी गोक्षुरकं बला॥ यवानी ग्रंथिकं लोहं नागं शुल्वं पलं पलम् ॥ ३४ ॥ दत्त्वा सिद्धेऽत्रविधिवत्मातः खादेद्यथाबलम्॥ सर्ववातामयान्हंति कटिपृष्ठगुदस्थितान् ॥ ३५ ॥ अस्थिभंगं तथा शोफं संधिवातं सुदारुणम् ॥ व्रणहृद्रोगगुल्मार्शःश्वासकासप्रमेहनुत् ॥ अश्विभ्यां विहितो योगो वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥

इति वृन्दात् ॥

अर्थ–असगंधका चूर्ण १ सेर बकरीके ४ सेर दूधमें डालके औटावे और इसीमें १ सेर घी और ३ सेर खांड (मिश्री) तिल और उडद ये आध २ सेर लेवे, मंदाग्निसे परिपक्व करे, फिर त्रिकुटा, त्रिजातक, हाऊबेर, शतावर, बडी सतावर, अजमायन, पुहकरमूल, जावित्री, कचूर, गोखरू, खिरैंटी, अजमोद, पीपरामूल, लोहभस्म, शीशेकी भस्म ये प्रत्येक चार चार तोले लेय । सबका चूर्ण कर तैयार होनेपर मिलाय देवे और उत्तम पात्रमें भरके धर देय । इसमेंसे रोगीका बल विचारके खानेको देय, यह सर्व कमर पीठ और गुदामें स्थित बादीके रोग, हड्डियोंका टूटना, सूजन, संधिवात, व्रण, हृदयरोग, गुल्म, बवासीर, प्यास, खाँसी और प्रमेहके रोगको दूर करे. यह अश्विनीकुमारका कहा हुआ उत्तम वाजीकरणका प्रयोग है यह वृंद ग्रंथमें लिखा है ।

मदनमंजरी गुटिका ।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु निगदितं भागयुग्मं च वंगं भागैकं शंभुबीजं त्रितयमपि मृतं तत्समा सिद्धमूली ॥ चातुर्जातं सजातीफलमरिचकणानागरं देवजातीपत्रं भागद्वितयमथ पृथक् सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥ ३७ ॥ सर्वद्व्यंशासिता स्याद्घृतमधुसहितामोदकीकृत्य चैतत्खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभमभिनवानंदसंवर्द्धनाय ॥ योगो वाजीकराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानंदनाम्ना निःशेषव्याधिहंता दलितबहुवधूद्दामकंदर्पदर्पः ॥ ३८ ॥

अर्थ–अभ्रकके ४ भाग, वंगके २ भाग, मृत पारद १ भाग और इन तीनोंके समान भांग लेवे फिर चातुर्जात, जायफल, मिरच, पीपल, सोंठ, लौंग, जावित्री ये सब दो दो

भाग लेवे, सबका चूर्ण करे और सब औषधोंसे दूनी मिश्री मिलावे तथा घी और सहतमें सानके लड्डू बांध लेवे। जठराग्निका बलाबल विचारके खाय तो आनंद बढावे. यह वाजीकरणका योग भैरवानंद योगीने कहा है, यह संपूर्ण व्याधियोंको दूर करे और स्त्रियोंके अभिमानका खंडन करनेवाला है।

कौंछपाक ।

जातीपत्रात्मगुप्तैला ग्रहा च पटवासकः॥ प्रत्येकं कुडवं त्वेतदश्वगन्धापलाष्टकम् ॥ ३९ ॥ क्षीरपंचाढके पक्त्वा घृतप्रस्थेन पाचयेत् ॥ आत्मगुप्ताप्रस्थमेकमश्वगंधासशीलकम् ॥ ४० ॥ सुशीते शर्कराप्रस्थत्रयमात्रं विनिक्षिपेत् ॥ चातुर्जातं त्रिकटु च जातीपत्री कुबेरकम् ॥ ४१ ॥ जातीफलं लवंगं त्वक्तगरं मुशली मिशिः ॥ आकलपधान्याजीराब्धिनिम्बमांशीपलत्रयम ॥ ४२ ॥ हपुषापुष्करं दीप्यं प्रत्येकं चूर्णितं पलम्॥ तुगालोहाभ्रवंगेभ्यः प्रत्येकं द्विपलं क्षिपेत् ॥ ४३ ॥ पलं पारदताम्रं तु अहिफेनपलं तथा ॥ विजयाष्टपलं शुद्धं पक्त्वा चार्द्धपलं भवेत् ॥ ४४॥ विंशान् मेहान् श्वासकासं पांडुहर्षबलक्षयम् ॥ वातव्याधिमुरुस्तंभं हिक्काशोफकटिग्रहम्॥ शूलहृद्रोगमंदाग्निक्षयपीनसनाशनः॥४५॥

अर्थ-जायपत्री, कौंच, एला, ग्रहा (जायफल) और पटवासक ये प्रत्येक पाव पाव भर लेवे, असगंध आधसेर ले, इसको २० सेर दुधमें डालके खोहा करे, जब गाढा होजाय तब उतार शीतल करे फिर इस खोहेको १ सेर घीमें भूने और कौंचके बीज १ सेर, असगंध १ सेर और तीन सेर खांड ले पाककी विधिसे पाक बनावे और चातुर्जात, त्रिकुटा, जावित्री, सागरगोटा, जायफल, लौंग, दालचीनी, तगर' मूसली, कलौंजी, अकरकरा, धनिया, जीरा, समुद्रसोख, जटामांसी ये प्रत्येक १२ तोले और हाऊबेर, पुहकरमूल, अजमायन प्रत्येक ४ तोले लेय, वंशलोचन, लोह, अभ्रक, वंग इन प्रत्येककी भस्म ८ तोले, चंद्रोदय, ताम्रभस्म प्रत्येक ४ तोले, अफीम ४ तोले, भाँग, ३२ तोले, मोतीचूका २ तोले डालके पाक तयार करे यह २० प्रकारके प्रमेह, श्वास, खाँसी, पांडुरोग, हर्ष, बलक्षय, वातव्याधि, उरुस्तंभ, हिचकी, सूजन, कमरका रहजाना, शूल, हृदयरोग, मंदाग्नि, क्षय, पीनस इन सब रोगोंको नष्ट करे।

कूष्मांडपाक ।

कूष्मांडस्य तुलां विधाय विधिवत्स्विन्नां प्रविष्टां पुनर्युक्तां कर्षमितैः सुचूर्णिततमेव्योंषाम्लजीराग्निभिः ॥ चातुर्जातवराबलात्रयवरीतालीशमेथीत्रिवृद्दंतीवारणपिप्पलीक्षुरतिलाद्राक्षात्रिकंटांबुदैः ॥ ४६ ॥ चव्याश्वाभयचारवानरिशटीयष्टीतुगापिप्पलीमूलाब्जैः सलवंगशाल्मलिजयाकंकोलजातीफलैः ॥ जातीकोशविदारिसिंधुमुशलीशृंगाटकैःसर्पिषः प्रस्थेनाभ्रपलेन वापि सितया सार्द्धं तुलामानया ॥ ४७ ॥ युक्त्या साधु विपाच्य भाजनगतं कृत्वा यथाग्नि प्रगे

कूष्मांडस्य रसायनं सुललितं शुद्धो नरः शीलयेत् ॥ वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं यक्ष्मास्रपित्तापहं पांडुश्वासजितं च पित्तशमनं मेहादिरोगप्रणुत् ॥४८॥ एतेनातिबली वलीविरहितः स्त्रीणां युवेव व्रजेद्वृद्धाद्वृद्धतरो नरोऽतिललितः प्रज्ञासभापूजितः ॥ ४९ ॥

अर्थ-छिला और कतरा हुआ पेठा ४०० तोलेको जलमें औटावे, जब सीज जाय तब ९० तोलेकी चासनी कर इसमें पेठा डाले, और त्रिकुटा, ततडीक, जीरा, चित्रक, चातुर्जात, त्रिफला, खिरेटी, गँगेरन, कंगही, सतावर, तालीसपत्र, मेथी, निसोथ, दंती, गजपीपल, तालमखाने, तिल, दाख, गोखरू, नागरमोथा, चव्य, असगंध, छोटी हरड, चिरोंजी, कौंछके बीज, कचूर, मुलहटी, वंशलोचन, पीपलामूल, कमलगट्टा, लौंग, क्षेमरका मूसरा, भाँग, कंकोल, जायफल, जावित्री, विदारीकंद, सेंधानिमक, मुसली, सिंघाडे प्रत्येक चार २ तोले, घी १ सेर डालके पाक बनावे. अभ्रक ४ तोले मिलावे इस पाकको प्राणीकी जठराग्निका बलाबल विचारके खानेकी मात्रादेय,इसका सेवन करनेवाला प्राणी प्रथम वमन विरेचन आदिसे शुद्ध होकर सेवन करे. यह वृष्य है, बृंहणकर्त्ता, अग्निदीपन करे, राजरोग, रक्तपित्त, पांडु, श्वास, पित्तके रोग, प्रमेह आदि सकल रोगोंको नष्ट करे, इसके सेवनसे अत्यंत बलवान् हो स्त्रियोंमें बुड्ढा भी जवानके समान रमण करे, और परम सुंदर दिव्यरूप होय।

गोखरूपाक।

प्रस्थं गोक्षुरसूक्ष्मचूर्णमुदितं दुग्धाढके पाचितं गायत्रीसलवंगलोहमरिचं कर्पूरमन्दारकम् ॥ अब्धेः शोषमजाजियुग्मरजनीधात्रीकणाकेसरं जातीकोशफले सदीप्यनलदं शुंठी कुबेराक्षकम् ॥ ॥ ९० ॥ तुल्यं शर्करया तदर्द्धविजया प्रस्थार्द्धकं गोघृतं युक्त्या वैद्यवरेणनिर्मितमिदं प्रौढांगनादर्पनुत् ॥ वीर्यस्तंभकरं च पुष्टिजनकं वाजीकरं कामिनां भुक्तो गोक्षुरपाक एष हरिणीनेत्राविलासास्पदम् ॥ ९१ ॥

अर्थ-गोखरू १ सेरका चूर्ण कर ४ सेर दूधमें पचावे, फिर खैरसार, लौंग, लोहभस्म, कालीमिरच, कपूर, मन्दारक, समुद्रसोस, जीरा, दोनों हलदी, आँवले, पीपल, नागकेशर, जावित्री, जायफल, अजमोद, नरसलकी जड, सोंठ, सागरगोटा ये सब चार २ तोले और सबकी बराबर मिश्री, तथा अन्य सब औषधोंसे आधी भांग, गौका घी आधसेर, इसको युक्तिपूर्वक बनावे, यह जवान स्त्रियोंके दर्पको दूर करे, वीर्यस्तंभक है, पुष्टि करे, कामियोंको बाजीकरणकर्त्ता है, यह गोखरूका पाक स्त्रियोंके विलासका स्थान है।

स्तंभनप्रयोग।

कुलत्थबीजानि विचूर्णितानि तनूनपात्पत्रवधूपयोभिः ॥ छायासु सम्यक्शु निशो विभाव्य तैलं ततः पुष्करतो गृहीत्वा ॥ ९२ ॥ तेन मर्दितमिदं शिववीजं गुंजया परिमितं परितोल्य॥

भक्षितं पलितनाशनं भवेद्वीर्यरोधकरमेव सत्यता ॥ ५३ ॥

अर्थ–कुलथीके बीजोंका चूर्ण करे, फिर चितावरके रसमें और पत्रज, तथा दूधकी भावना देय तथा ईखके रसकी भावना देय और हलदीकी भावना देय फिर इसका पातालयंत्र द्वारा तेल निकाल लेय, इसमें पारेको खरल कर १ रत्ती सेवन करे तो पलित (बालोंका सपेद होना) दूर होय और वीर्यका स्तंभन करे ।

पारदयोग ।

सदहिफेनविमर्दितपारदे कनकबीजरसेन विमर्दिते ॥ समसिताविजये यदि भक्षिते न रजनी न दिवा न दिवाकरः ॥ ५४॥

अर्थ–१ तोले पारदको शुद्ध अफीमके रसमें खरल करे फिर धत्तूरके बीजोंके रसमें खरल कर समान भाग मिश्री मिलावे. इसके सेवनसे उस कामी पुरुषको दिन रात्रि सूर्य कुछभी नहीं दीखे, केवल मैथुन करनेकीही इच्छा करे ।

दूसरा प्रयोग ।

जातीफलार्ककरहाटलवंगशुंठीकंकोलकेशरकणाहरिचंदनं च ॥ एतत्समानमहिफेनमचंद्रमभ्रं सर्वैः समं न सहते रतिबिंदुपातम् ॥५५॥ सर्वैः समांशा खलु शर्करा तु देया भिषग्भिरखिलार्थविद्भिः॥ घृतेन साकं मधुना च सार्द्धं कृत्वा वटीं टंकमितां च दद्यात् ॥ ५६ ॥

अर्थ–जायफल, आकको जड, अकरकरा, लौंग, सोंठ, कंकोल, केशर, पीपल और पीला चूर्ण और सबकी बराबर अफीम, तथा अफीमके साथ सब दवाओंकी बराबर अभ्रकभस्म इन सबके बराबर मिश्री मिलावे, इसकी घृत और सहतके साथ चार २ मासेकी गोली बनावे । इस गोलीके सेवन करनेसे वीर्यस्तंभन होय ।

तीसरा प्रयोग ।

लोहं ताम्राभ्रसूतं सुरकुसुमजलं चंद्रसं जातिपत्रं पत्रं जातीफलैलासमरिचकरहाटाजमोदाहिफेनम्॥सामुद्रौ सिंधुशोषावपि घृतमधुनी मर्दयित्वास्य टंकं खादेदन्नेऽतिजीर्णे नियतमिह रतौ स्तंभनं रेतसः स्यात् ॥५७॥ खसफलशुंठीकाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः ॥ कुरुते रते न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥ ५८ ॥

अर्थ–लोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म चंद्रोदय, लौंग, खस, कपूर, जावित्री, पत्रज, जायफल, इलायची, कालीमिरच, अकर करा अजमोद, अफीम, समुद्रफल, समुद्रसोस ये समान भाग ले घी और सहतमें खरल कर चार २ मासेकी गोली बनावे, इसको भोजन पचजानेके पश्चात् सेवन करे तो वीर्यको रोके । पोस्त, सोंठ इनका सोलहवां भाग क्वाथ कर गुड डालके पीवे तो जबतक खटाई नहीं खाय वीर्य स्खलित नहीं हो ।

चतुर्थप्रयोग ।

चटकांडं तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत् ॥ तेन प्रलिप्तपादस्य शुक्रस्तंभः प्रजायते॥ यावन्न स्पृशते भूमिं तावत्स्यान्नात्र संशयः ॥ ५९ ॥

अर्थ–चिडाके अंडोंको सहतमें पीसके पैरके

तलुओंमें लेप करे तो वीर्यका अत्यंत स्तंभन होय। जबतक पृथ्वीमें पैर न धरे तबतक स्खलित नहीं होय।

पंचम प्रयोग।

खसतिलपलमेकं शुंठीकर्ष सितापलद्वंद्वम् ॥ एतच्चूर्णं पयसा पीतं रेतोरयं ध्रुवं धत्ते ॥ ६० ॥

अर्थ–खसखस ४ तोले, तिल ४ तोले, सोंठ १ तोला, मिश्री ८ तोले इस चूर्णको रात्रिके समय दूधके साथ पीवे तो वीर्यका स्तंभन करे।

सौगतगुटिका।

पारदगंधकचंपककेशरसुरकुसुमकरहाटाः ॥ अजमोदांबुधिशोषौ जातीपत्रं च जातिफलम्॥६१॥प्रत्येकं भागैकं भागद्वितयं च शुद्धमहिफेनम् ॥ तन बदरसदृशगुटिकाः कार्या मधुनाथ भक्षयेदेकाम् ॥६२॥ यामेऽतीते ललनां सविधे स्थित्वा जवानिकाकर्षम् ॥ तैलार्द्र भुंजीयादनुपानं चैतदेतस्य ॥ ६३ ॥ लिंगं कठिनतरं स्याद्वीर्यं संस्तंभयेद्यामम् ॥ एषा सौगतगुटिका सत्यं सत्यं च शुक्ररोधकरी ॥ ६४ ॥

अर्थ–पारा, गंधक, चंपाकी केशर, लौंग, अकरकरा, अजमोद, समुद्रसोस, जावित्री, जायफल प्रत्येक एक एक भाग, शुद्ध अफीम २ भाग इनको सहतसे खरल कर छोटे बेरकी बराबर गोली बनावे, १ गोली रात्रिके समय सेवन कर १ प्रहरके बाद अजमायन १ तोलेको तेलमें सानके खाय यह इसका अनुपान है, इसके सेवनसे लिंग कठोर होय, वीर्यका स्तंभन १ प्रहर होय। यह सौगतगुटिका निश्चय वीर्यके रोकनेवाली है।

वीर्यस्तंभन।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु ॥ संमर्द्य लेपयेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च॥६५॥ ततः प्रक्षाल्य रमयेद्वनितानां शतं सुखम् ॥ वीर्यस्तंभकरं पुंसां सम्यङ्नागार्जुनोदितम् ॥ ६६ ॥

इति चक्रदत्तात् ॥

अर्थ–कपूर, सुहागा, पारा ये समान भाग ले अगस्तियाके रसमें और सहतमें खरल कर लिंगपर लेप करे, १ प्रहरके बाद इस लेपको धोकर स्त्रीसंग करे तो सौ स्त्रियोंसे रमण करे। यह नागार्जुनका कहा वीर्यस्तंभनकर्त्ता प्रयोग है। यह चक्रदत्तमें लिखा है।

प्रयोगांतर।

अहिफेनं दुग्धशुद्धं रक्तिकात्रितयोन्मितम्॥ बिंदुवेगं ध्रुवं धत्ते सितया निशि भक्षितम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–दूधमें शुद्ध की हुई अफीमको ३ रत्ती ले मिश्रीमें मिलायके रात्रिमें खाय तो वीर्यका अवश्य स्तंभन करे।

दूसरा प्रयोग।

जातीफलं टंकमितमहिफेनं च टंककम् ॥ अजमोदा चैकटंका चंद्रसं चैकटंककम् ॥ ६८ ॥ सितोपला त्रिटंका स्यात्पंचटंको गुडो मतः॥ बुद्ध्या संमेल्य वटिकाः कार्या द्वादश तुल्यशः ॥ तत्रैकां भक्षयेद्धीमाञ्छुक्रं स्तंभयति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–जायफल ४ मासे, अफीम ४ मासे, अजमोद ४ मासे, चंद्रस ४ मासे, मिश्री २१ मासे और गुड २० मासे, सबको एकत्र कर १२ गोली बनावे, १ गोली रात्रिके समय खाय ऊपरसे दूध पीवे तो वीर्यका स्तंभन होय ।

महायोग ।

टंकं पतंगचूर्णस्य जातीपत्रस्य टंककम् ॥ ७० ॥ अहिफेनस्य टंकं हि दरदं टंकयुग्मकम् ॥ अर्द्धं वाप्यथवा सर्वं चूर्णं खादेद्यथाबलम् ॥ ७१ ॥ पिबेदनु पयः स्वल्पं वीर्यस्तंभं करोति हि ॥ महायोगोऽयमुदितः शुक्रस्तंभकरः परः ॥ ७२ ॥

अर्थ–पतंग औषधका चूर्ण ४ मासे, जावित्री ४ मासे, अफीम ४ मासे, सिंगरफकी डली ८ मासे इसमें आधा औषध अथवा समग्र चूर्ण खाय, ऊपरसे अधोटा थोडा दूध पीवे तो वीर्यका स्तंभन होय. परंतु इसकी मात्रा १ मासेसे अधिक नहीं देनी, कारण यह है. इसमें ४ मासे अफीम विष है, यह स्तंभनके पलटे प्राणहरण करलेगा ।

करवीरयोग ।

करवीरजटालेपं यः करोति नरो मणौ ॥ वीर्यस्तंभं स लभते कार्णाटीसुरतेष्वपि ॥ ७३ ॥

अर्थ–जो प्राणी कनेरकी जडको जलमें पीस लिंगपर लेप करे तो कर्णाटदेशोत्पन्न स्त्रियोंके सुरतोंमें भी उसके वीर्यका स्तंभन होय ।

कामदेवरस ।

सूतो माषामितःस्वदोषरहितस्तत्तुर्यभागो बलिस्तन्मानस्तु भुजंगफेन उदितः क्षुद्राफलस्यांबुना॥ एतद्गोलकमाकलय्य विपचेत्क्षुद्राफले हेमगे॥ लावैरष्टमितैर्भवेदिति रसः श्रीकामदेवाभिधः ॥७४॥ मात्रा सूर्योदये गुंजामेकां यामचतुष्टये॥ गुंजाचतुष्टयं देयं नागवल्लीदलान्वितम्॥ दुग्धौदनमलवणं रात्रा क्षीरं यथेच्छया ॥ ७५ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ मासा, गंधक २ रत्ती, अफीम २ रत्ती इन तीनोंको कटेरीके रससे खरल कर गोला बनाय लेवे, इसको कटेरीके फलके भीतर रखके लावपुटमें फूंक देवे. इस प्रकार आठ पुट देनेसे श्रीकामदेव रस सिद्ध होय. इसमेंसे १ रत्ती रस प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले पानमें रखके देय. इस प्रकार चार प्रहरमें चार गोली देनी. भोजनमें दूध भात देय और निमक न देय तथा रातके समय खूब दूध पीवे तो यह वीर्यको अत्यंत स्तंभन करनेवाला है। इसके समान दूसरा प्रयोग नहीं है ।

रसराजविधि ।

नागाहिफेनफलिनीविषमुष्टिदिग्धे वस्त्रे निबध्य रसगंधकखर्पराणि ॥ गौर्यां पचेत्तदनु लावपुटैः शतेन सौवर्णबीजजठरे विनियोजितानि ॥७६ ॥ निष्पेषयेद्दशदशांतरतश्च तेषां तोयैरपूपमुपकल्प्य विशुष्कमर्के ॥ तत्कर्दमे प्रतिपुटं प्रविधाय दिग्धमेवं पुटेदधिशतं रसराज एषः ॥ ७७ ॥ रेतःस्तंभं विधत्ते वपुषि च घनतामग्निमांद्यं निहन्याद्यक्ष्माणं च क्षणेन क्षपयति सहसा पौरुषं व्यात-

नोति ॥ उच्चैःशूलप्रमेहानिलकफगदहृद्रोगपांडुप्रतिश्याकासश्वासोदराक्षिश्रवणमुखगदानाशु खादत्यवश्यम् ॥७८॥

पाठांतरेण स एव लिख्यते ॥

अर्थ–शीसाके भस्म, अफीम, पोस्त और कुचला इनको पीस कपडेमें लेपकर सुखाय लेवे फिर इसमें पारा, गंधक और खपरियाको बांधके स्वेदन करे, फिर पूर्वोक्त अफीम आदिमें घोटे १०० लावपुटमें अग्नि देय, फिर इस पारदमें सुवर्ण जारण करे, जब दश पुट लगजावे तब पीस लेवे और आकके रसमें घोट ले, फिर गोला बनाय लावपुटमें फूंक देय । इस प्रकार १०० पुट देनेसे रसराजसंज्ञक रस बनकर तैयार होय, यह वीर्यका बंधन करे, देहको पुष्ट करे, मंदाग्निको प्रबल करे, राजयक्ष्माको दूर करे, तत्काल पुरुषार्थको बढावे, तथा शूल, प्रमेह, बादी, कफ, हृदयरोग, पांडुरोग, सरेकमा, श्वास, खांसी, उदर, नेत्र, मुख, कान, इन सब रोगोंको तत्काल नष्ट करे । पाठान्तरसे यही आगे लिखा जायगा ।

चंद्रोदय रस ।

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेंद्रः पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य ॥ शोणैः सुकार्पासभवप्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥ ७९ ॥ तत्काचकुंभे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च ॥ पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययंत्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥ ८० ॥ निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव॥जातीफलं सोषणमिंद्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण एकः ॥ ८१ ॥ चंद्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो भुक्तो हि वल्लीदलमध्यवर्ती ॥ मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकांडे ॥ ८२ ॥ शृतं घनीभूतमजीवदुग्धं मृदूनि मांसानि समंडकानि ॥ माषान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानंददायीन्यपराणि चात्र ॥ ॥ ८३ ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तंभनः समस्तगदखंडनः प्रचुरयोगपंचाननः ॥ ग्रहेषु रसराडयं भवति यस्य चंद्रोदयः स पंचशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥ ८४ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् । रसमंजर्यामस्य मकरध्वज इति नाम ।

अर्थ–सुवर्णके वर्क ४ तोले, पारा शुद्ध ३२ तोले, शुद्धगंधक ६४ तोले ले इनको लाल कपास (नरमा कपास) के फूलोंके रसमें खरल कर फिर घीगुवारके रसमें खरल करे जब कजली सूख जाय तब आतशीकांचकी शीशी में भरे. और ईंटके टुकडेसे उस शीशीका मुख मूंद देवे ऊपरसे उस शीशीपर कपडमिट्टी कर देय और धूपमें सुखाय ले, फिर इसको वालुकायंत्रमें (जो हमारे बनाये हुए रजराजसुंदर ग्रंथमें लिखा है) उसमें रखके ३ दिन रात्रि क्रमसे मंद मध्य और तेज अग्नि देय तो इसकी लालरंगकी नाल उस शीशीमें बैठेगी. इस शीशीको फोडके नालको निकालले ४ तोले यह रस और १६ तोले कपूर, जायफल, काली मिरच, और लौंग लेय तथा ४ मासे कस्तूरी लेवे सबको खरल कर १ मासे नागरबेलपानमें रखके खाय

तो यह चंद्रोदय गर्वभरी सैकडों स्त्रियोंके मान को खंडित करनेवाला है। इसके ऊपर अधोटा दूध, नरममांस, उडदके पदार्थ, मैदाके पदार्थ और जो आनंददायक वस्तु हैं उनका सेवन करे। यह वलीपलितनाशक, अवस्थास्थापक और सर्वरोगनाशक है जिसके घरमें चंद्रोदयरस है वह कामदेवके बाणोंसे दर्पित स्त्रियोंका प्रिय होता है। रसमंजरीमें इसीका मकरध्वज नामांतर है।

दूसरा रसराज ।

नागाहिफेनफलिनीविषमुष्टिविलेपिते ॥ वस्त्रे निबध्यविधिवद्रसगंधकखर्परीः ॥ ८५ ॥ गौर्यां पचेल्लावपुटैः शतेन विनियोजयेत् ॥ ऊर्ध्वाधो हेमबीजानि पेषयेद्दशतः क्रमात् ॥ ८६ ॥ तेषां तोयैः पुनः कृत्वापूपिकामर्कशोषिताम् ॥ तत्कर्द्दमैः प्रतिपुटं दिग्धां कृत्वा पुटेच्छतम् ॥ ८७ ॥ रसराजो भवत्यैष सर्वरोगहरो रसः ॥ जंबुवर्णोऽतिकठिनो रूक्षो जीर्णबलिर्भवेत् ॥ ८८ ॥ जातीफललवंगाभ्यां रतौ वीर्यं निरोधयेत् ॥ पटुदीप्यशिवाविश्वैर्वैश्वानरविवर्द्धनः ॥ ८९ ॥ क्षयग्रस्तुरयाशोंऽग्रस्तक्रकृष्णाभयान्वितः ॥ ग्रहण्यां जातिकोशेन रेके कुटजवारिणा ॥ ९० ॥ प्रमेहे शाल्मलीद्रावैर्वंदर्याक्षिगदे हितः॥ सामे वापि निरामे वा समे वा विषमे ज्वरे ॥ ९१ ॥ देयो नताब्दकटुकावारिविश्वशृतेन वै ॥ रास्नांभसा वातरोगे पित्तरोगे सिता त्रुटिः ॥ ९२ ॥ अक्षत्वचा कफव्याधौ पांडुरोगेऽजमूत्रकैः ॥ अश्मर्य्यामश्मभेदेन कुष्ठे वल्गुजवायसैः ॥ ९३ ॥ भगंदरे गुडेनैव व्रणे पुरुवरायुतः ॥ मेदोरोगेऽबुमधुना प्रदरेऽशोकवारिभिः ॥ ९४ ॥ शूले हिंगुकरंजाभ्यामरुचौ रुचकेन च ॥ छर्द्यां धात्रीरसेनैव क्षैण्ये पर्णेन दापयेत् ॥ ९५ ॥ द्राक्षारसेन शोषे च संज्ञानाशे किरातकैः ॥ मूर्च्छायां चंदनाभोभिर्वृद्धौ वरणांबुना ॥ सर्वेष्वन्येषु रोगेषु तांबुलीपर्णयोगतः ॥ ९६॥

अर्थ–अफीम, फलिनी और कुचला इनको पीस कपडेमें लेपन कर सुखाय लेवे फिर गंधक, पारा और खपरियाको इस कपडेमें बांधके गौरीयंत्र (यह भी रसराजसुंदरके मध्य खंडके यंत्राध्यायमें लिखा है) में रखके लाव पुट १०० देवे फिर इसके दशांश धत्तूरेके बीज पीसके उस गौरियंत्रमें आधे ऊपर और आधे नीचे रखदिया करे फिर धत्तूरेके जलसे इस रसकी टिकिया बनाय धूपमें सुखाय लेवे और धत्तूरेकी लुगदीमें रखकर १०० पुट देवे तो यह सर्व रोगहरण करनेवाला रसराज बने, जब गौरीयंत्रमें गंधक जीर्ण होजाता है तब उसका जामुनके फलके समान रंग होजाता है. और कठोर तथा रूखी होती है।

इसके अनुपान–जायफल और लौंगके चूर्णके साथ देनेसे रतिमें वीर्यको रोके, सेंधानिमक, अजमायन, हरड, सोंठ इनके साथ जठ-

राग्निको बढावे । बाँसेके रससे क्षयको नष्ट करे । छाछ, पीपल और हरडकी छाल इनके साथ बवासीरको नष्ट करे । जायफलके साथ ग्रहणीको नष्ट करे । दस्त होयँ तो कुडाकी छालके जलके साथ देवे । सेमरके रससे देय तो प्रमेह दूर होय । नेत्ररोगमें बेरके क्काथसे देवे । सामज्वर वा निरामज्वर सम हो या विषमज्वर हो उसमें छड, नागरमोथा, कुटकी और सौंठके क्काथसे लेवे । बादीके रोगमें रास्नादि क्काथसे लेवे । पित्तके रोगमें छोटी इलायची और मिश्रीके साथ देना चाहिये । बहेडेके छालके साथ कफके रोगमें देय । बकरेके मूत्रसे पांडुरोगमें देय । पाखानभेदके साथ पथरीमें देवे । और कुष्ठरोगमें बावची और काकजंघाके साथ देय । भगंदरमें गुडके साथ, व्रणरोगमें गूगल और त्रिफलेके साथ, मेदरोगमें जल और सहतके साथ देय । प्रदररोगमें अशोकके रससे देय । शूलरोगमें हींग और कंजेके साथ, अरुचिरोगमें कालानिमकके साथ, वमन रोगमें आँवलेके रससे देय । क्षीणतामें पानके साथ देवे । शोथरोगमें दाखके रसके साथ, संज्ञानाश (वेहोशी) में चिरायतेके साथ, मूर्च्छामें चंदनके जलके साथ विद्रधिरोगमें वरनाके क्काथसे, अन्य जो बाकीके रोग उन सबमें पानमें रखकर खानेको देना चाहिये ।

अन्यस्तंभनकर्त्ता प्रयोग ।

क्काथं पिबेद्वा खसंवल्कलानीसर्पिर्जवानीगुडमिश्रितं यः । लभेत दार्ढ्यं सुरतेषु भूयो भवेद्विरंसुः कलविंकवत्सः॥९७॥

अर्थ–पोस्तके डोडोंके क्काथमें घी अजमायन और गुड डालके पीवे तो मैथुन करनेकी दृढशक्ति होय तथा चिडाके समान वारंवार मैथुन करे ।

द्रावण ।

सकर्पूरो रसः क्षौद्रजातीरसविमर्दितः॥ लिंगलेपात्करोत्येष द्रावणं हरिणीदृशाम् ॥ ९८ ॥

अर्थ–पारा, कपूर, सहत इनको चमेलीके रसमें घोट लिंगपर लेप कर मैथुन करे तो स्त्री द्रवे ।

स्थूलीकरण ।

लिंगनाडीषु कर्पूरं पातयित्वा विमर्दयेत् ॥ महिषीनवनीतेन तद्भवेत्खरलिंगवत् ॥ ९९ ॥

अर्थ–लिंगके मुखमें कपूरको भैंसका घीमें मिलायके रक्खे फिर मर्दन करे तो लिंग स्थूल होय ।

लेपवटी ।

श्वेताश्वमारमूलत्वक्करहाटाजमोदकम् ॥ कृष्णधत्तूरबीजानि सम्यग्जातीफलं तथा ॥ एतेषां वारिपिष्टानां गुटिका मरिचोन्मिता ॥ १०० ॥ एकया मणिलेपो हि नरमूत्रनिघृष्टया ॥ वीर्यं संस्तंभयत्येव सत्यमेतन्न संशयः॥१०१॥

अर्थ–सपेद कनेरकी जडकी छाल, अकरकरा, अजमोद, काले धतूरेके बीज और जाय–फल इनको जलमें घोटकर काली मिरचके समान गोली बनावे, फिर इसको बैलके या मनुष्यके मूत्रमें घिस लेप करे तो यह स्तंभन करे, यह सत्य है ।

प्रकारांतर ।

किरिनव्यवसापूर्णे कूर्मखर्परके धिया॥

रक्तकार्पासिकावर्त्या दीपः शुक्रनिरोधकः ॥ १०२ ॥

अर्थ–सूअरकी चर्बीको कछुवेके मस्तककी हड्डीमें भरके और उसमें लाल कपासके रुईकी बत्ती करके जलावे जबतक दीपक जला करेगा वीर्य स्खलित कदापि नहीं होगा जब दीपक बुझावे तब स्खलित होय ।

ध्वजवृद्धिकरण ।

भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमंतर्विदह्य मतिमान्सह सैंधवेन ॥ एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्टमालेपयेन्महिषविड्विमलीकृतेंऽगे ॥ १०३ ॥ स्थूलं महत्खरतुरंगमतुल्यमाशु शेफं करोत्यभिमतं न हि संशयोऽस्ति ॥ १०४ ॥

अर्थ–भिलायेकी मिंगी, जलसूक, कमलके पत्ते और सेंधानिमक इनको एक हांडीमें भरके मुख बंद कर आग देवे, कि भीतर ही सबका भस्म होजाय, फिर इसमेंसे थोडी खाक ले कटेरीके फलके रसमें पीसे, फिर प्रथम लिंगको भैंसके गोबरसे खूब मसले जब लाल होजाय तब इसका लेप करे तो लिंग खर और घोडेके सदृश स्थूल होय इसमें संदेह नहीं है ।

दूसरा प्रयोग ।

कासीसतुरगगंधासारिवागजपिप्पलीविपक्वेन ॥ तैलेन यांति वृद्धिं स्तनकर्णवरांगलिंगानि ॥ १०५ ॥

अर्थ–कासीस, असगंध, सारिवा, गजपीपल इनके कल्कसे तेल सिद्ध कर लेप करे तो स्तन, कान, भग और लिंग बढे ।

तीसरा प्रयोग ।

शैवालसैन्धवसरोरुहिणीदलानि भल्लातकानि च फलानि च कंटकार्याः ॥ हैयंगवीनमपि माहिषमश्वगंधाकंदं सुधीः प्रणिदधीत दिनानि सप्त ॥ १०६ ॥ तैरुद्धतैस्तदनु यन्महिशीमलेन चोद्वत्य लिंगमुपलेप्य तमादरेण ॥ तस्याग्रतः खरतुरंगमतंगजानां लिंगानि लाघवपदं परमं प्रयांति ॥ १०७ ॥

अर्थ–सिवार (काई), सैंधानिमक, कमलके पत्ते, भिलावे, कटेरी, असगंध और गौका तथा भैंसका घी इनको पीस एक हाँडीमें भरके पृथ्वीमें गाडदेवे, जब सात दिन व्यतीत होजाय तब निकाल ले, लिंगपर प्रथम भैंसके गोबरकी मालिस कर फिर इसका लेप करे तो लिंग अत्यन्त स्थूल होय ।

चतुर्थ प्रयोग ।

उन्मत्तकस्वरसपेषितवाजिगंधाकंदोपगूढमहिषीनवनीतमादौ ॥ धार्यं फले वृषभवाहनवल्लभस्य निःशेषबीजरहिते कतिचिद्दिनानि ॥१०८॥ उद्वर्तितं तदनु यन्महिषीपुरीषैर्धत्तूरकांबुनवनीतविलेपितं च ॥ तत्साधनं निधुवनप्रणयोद्धतानां नारीवरांगदलनक्षमतां दधाति१०९

अर्थ–असगंधको धत्तूरेके रससें पीसे फिर इसमें भैंसका घी डालके घोटे और धत्तूरेके फल भीतरसे खाली कर उसमें इसको भर देवे फिर

थोडे दिनके बाद इसको निकाललेय प्रथम भैंसके गोबरसे लिंगको मलके फिर इस धतूरेसे निकाली हुई दवाको मालिश करे और धत्तूरेका रस तथा मक्खन लगाता रहे तो स्त्रियोंके मानमर्दन करने योग्य लिंग अत्यंत स्थूल होय।

पंचम प्रयोग।

क्षौद्रं क्षुद्रातगरमरिचैः पिप्पलीसैंधवाभ्यांप्रत्युक्पुष्पीयवतिलगुडश्वेतसिद्धार्थमाषैः ॥ श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं वाजिगंधासनाथैः श्रोणीश्रोत्रस्तनयुगशिरःशेफसां वृद्धिकारी ॥ ११० ॥ इति राजमार्तंडात् ॥

अर्थ-सहत, कटेरी, तगर, काली मिरच, पीपल, सेंधानिमक, चिरचिरा, जौ, तिल, गुड, सपेद सरसों, उडद और असगंध इन सबको बारीक पीस इनसे योनि, कान, दोनों स्तन, शिर और लिंगकी वृद्धि होय है। यह राजमार्तंड ग्रंथमें लिखा है।

योनिसंकोचन।

त्पलानि सपद्मानि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ॥ गुटिकां सुकृशां कृत्वा नारीयोनौ प्रवेशयेत् ॥ दशवारप्रसूतापि पुनर्भवति कन्यका ॥ १११ ॥

अर्थ-कमल, नीलकमल इन दोनोंको दूध और घीसे पीसके गुटिका करे. इस गुटिकाको योनिमें रखनेसे जो दशवार भी प्रसूती हुई हो वह भी फिर कन्याके समान होवे।

दूसरा प्रयोग।

भंगापोटलिका दत्ता प्रहरं काममंदिरे ॥ नितंबिन्याः करोत्येषा कुमारीभगवद्गम् ॥ ११२ ॥

अर्थ-भांगकी पोटलीको जो स्त्री १ प्रहर योनिमें रखे तो उसकी कुमारीके समान भग होय।

तीसरा प्रयोग।

जातीफलमहिफेनं दार्वी चेति त्रिभिः समा भंगा ॥ वरटीछत्रसमासौ गुटिकासंकोचनी योनेः ॥ ११३ ॥

अर्थ-जायफल, अफीम, दारुहलदी ये समान भाग लेवे और सबकी बराबर भांग लेय इनको पीस गोली बनावे इसका योनिमें रखे तो योनिसंकोच होय।

निर्लोमीकरण।

शुक्तिशंबकशंखानां दीर्घवृंतात्समुष्ककात् ॥ दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत् ॥ ११४ ॥ क्षाराष्टभागं विपचेत्तैलं सार्षपकं बुधः ॥ इदमंतःपुरे देयं तैलमात्रेयभाषितम् ॥ ११५ ॥ बिंदुरेकः पतेद्यत्र तत्र रोमाभवः पुनः ॥ व्रणार्शःकुष्ठपामासुदद्रूकंडूहरं मतम् ११६

इति श्रीयोगतरंगिण्यां वाजीकरणचिकित्साशुक्रस्तंभयोनिसंकोचनाधिकारो नामाशीतितमस्तरंगः ॥ ८० ॥

अर्थ-सीप, छोटे शंख, बडे शंख इनको सोनापाठा, मुष्कक (मोखावृक्ष) से आगमें जलायके राख करलेय, इसमें गधेका मूत्र डालके छानलेवे इस खारसे आठगुना सरसोंका तेल सिद्ध करे यह आत्रेय महर्षिका कहा तेल रनवासमें देवे, जहां इसकी एक बूंद गिर जावेगी फिर उस जगह कदापि बाल नहीं आनेका, तथा व्रण

बवासीर, कोढ, खुजली, दाद और पामाको हरण करे है ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपुत्र–दत्तरामकृत-
योगतरंगिणीभाषाटीकायामशी-
तितमस्तरंगः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमस्तरंगः ८१

वसंतवर्णन ।

मल्लीवल्लीसमूहे समुदितकुसुमामोदमत्तालिमालामूर्च्छज्झंकारनादाकुलबकुलकुलव्याकुलप्रोषितासु ॥ माकंदास्वादमाद्यन्मधुरपिककुलालापहृष्यन्मनोज्ञः प्रातःकांतो वसंतस्त्रिभुवनविजयी प्राणबंधुः स्मरस्य॥१॥क्षौद्रेणार्द्रं विधाय प्रकृतमभयजं चूर्णमभ्यर्णसिद्ध्यै प्राश्नीयादुष्णरश्मिप्रतपनसहनः पंचकर्मैककर्मा॥ कुर्यादायः शिवाय भ्रमणमनुदिनं तोयपानं तटिन्याः शाल्यन्नं सिद्धमुद्गं कफमलहरणं पथ्यमेतद्वसंते ॥ २ ॥

अर्थ–मालतीको बेलोंके समूहोंके पुष्पोंकी गधमें मग्न हुए भौंरोंकी पंक्ती उनके झंकार नादसे, तथा बकुल (मोलसिरी) की गंधसे व्याकुल हैं परदेशस्थ प्राणियोंकी स्त्री जिसमें,तथा आमके मधुर रसको पीकर अत्यंत शोर करने. वाली कोकिलोंके शब्दसे प्रगट कामदेव जिसमें और कामदेवका प्राणबंधु ऐसा हे प्रिये ! यह त्रिलोकीका दमनकर्त्ता वसंत ऋतु प्राप्त हुआ है। इसमें सहतमें सानके हरडके चूर्णका सेवन करना चाहिये, सूर्यकी तीखी किरणोंको सहता हुआ वमन विरेचनादि पांच कर्मोंको अथवा केवल जुल्लाबसे देहको शुद्ध करे तथा नित्य पर्यटन (डेला) करे और नदीका जलपान करे। पुराने चावलोंका भात, मूंग ये पथ्य हैं । कफको वमनद्वारा निकालना यह वसंतऋतुमें पथ्य है ।

ग्रीष्मऋतुवर्णन ।

ग्रीष्मे गृह्णन्मयूखैरखिलरसमयं चंडधामातिकामान्नित्यंदाहोपशांत्यै प्रभवति च विधुः खिन्नजन्मासुजन्मा ॥ दंपत्योश्चंदनाद्यैरुपचितवपुषोःशीतकल्पे सुतल्पे कर्पूरांभःसुसिक्तव्यजनपरिचयाद्वायुरायुःस्वरूपः ॥ ३ ॥

अर्थ–ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य अपनी किरणोंसे संसारके सब रसोंको शोषण करता है कि जिससे प्राणियोंके देहमें अत्यंत दाह हुआ करता है, उस दाहके शांति करनेको कपूर और चंद्रमा आनंददायक है । अतएव चंदनमें कपूर मिलायके लगावे, शीतल (पुष्पआदिकी) शय्यापर सोवे तथा कपूरके जलमें भीगे हुए पंखेसे पवन करना. क्योंकि पवन जीवनको देनेवाला होता है ।

छः ऋतुओंमें हरडसेवन ।

ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनद्धेऽम्बरे तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे ॥ पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजितां राजन्प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यंतु ते व्याधयः ॥ ४ ॥

अर्थ–ग्रीष्म ऋतुमें हरडका चूर्ण गुडमें मिलायके खाय, वर्षाऋतुमें सेंधे निमकके साथ, शरद् ऋतुमें मिश्रीके साथ, हेमंत ऋतुमें सोंठके साथ खाय, शिशिर ऋतुमें पीपलके चूर्णके साथ और वसंत ऋतुमें हरडके चूर्णको सहतमें मिला-

यके खानेसे हे राजन् ! जैसे उस हरड सेवन करनेवाले प्राणीके रोग नष्ट होते हैं उसी प्रकार तेरे शत्रु नष्ट होवें ।

ग्रीष्मऋतुमें पथ्य ।

ज्येष्ठे श्रेष्ठं गुडाम्लं मसृणमभयजं चूर्णमभ्यर्णसिद्धयै संसिक्तं शीततोयैर्गृहमधिशयनं स्वादुशीतांबुपानम् ॥ न व्यायामो न रौक्ष्यं प्रतपनसहनं नैव पथ्यं कटूष्णं न क्षारो नारनालो न दिननिधुवनं स्वप्नभावः प्रशस्तः ॥ ५ ॥

अर्थ–ज्येष्ठके महीनेमें गुडयुक्त हरडका सेवन उत्तम है और जहां शीतल जलका छिडका हो रहा होय उस घरमें सोना उत्तम है तथा शीतल और स्वादिष्ठ जलको पीना चाहिये, इस ग्रीष्म ऋतुमें दंड कसरत न करे, न कोई रूक्ष पदार्थ खाय, धूपमें न डोले, न अग्निके सन्मुख रहे तथा चरपरे और गरम पदार्थ खाना त्याग देवे, खारके पदार्थ, काँजी, न दिनमें मैथुन करे किंतु दिनमें सोना उत्तम है ।

प्रावृट्ऋतुवर्णन ।

गर्जद्भीमांबुवाहः क्षणरुचिरुचिरालोकचंचद्दिगंतः कामं कूजत्कलापी निशि तरुशिखरद्योतिखद्योतपोतः ॥ धारासंदातजातश्रवणसुखलसद्भेकभेरीनिनादः प्रावृट्कालागमोऽयं कुसुमशरसुहृद्भृंगसंगीतसंगी ॥ ६ ॥

अर्थ–बडे २ घोर काले बद्दलोंकी गर्जन, क्षण २ में बिजलीका दशों दिशाओंमें चमकना मोरोंका बोलना रात्रिके समय वृक्षोंके ऊपर पटबिजनोंका चमकना एक साथ मेघकी धारा गिरानेसे उसका शब्द कानोंको प्रिय लगे और दादुरोंका शब्द सुनाई देता है भौंरा जिसमें गान कर रहे ऐसा कामदेवका सुहृद् यह प्रावृट् कालका आगम है ।

प्रावृट् कालमें पथ्यापथ्य ।

पेयं कूपजलं सुसैंधवयुता भक्ष्याभया प्रावृषि स्थेयं सौधतले सुखोष्णसलिलैः स्नानं मुहुर्मर्दनम् ॥ स्नेहैर्नातिविधीयते निधुवनं भोज्यं च योज्यं जनैः साज्यं सामिषमाषमीनमुचितं साम्लं सदध्यादिकम् ॥ ७ ॥

अर्थ–इस प्रावृट् कालमें कुएका जल पीवे और सेंधानिमक मिला हरडके चूर्णको खाय, छाये मकानमें सोवे, सुहाते २ गरम जलसे स्नान करे और देहमें तेलकी मालिस करा करे, बहुत मैथुन न करे, अपने इष्ट मित्रोंके साथ भोजन करे, घी, मांस, उडद और मछली तथा खट्टे दही आदिका सेवन न करे ।

शरद ऋतुवर्णन ।

संशुष्यत्पंकसंघा रविकिरणरुचा फुल्लराजीवराजी राजत्कह्लारवल्लीकुसुमचयमिलद्वासनावासिताशा । दुग्धांभोधेस्तरंगद्युतिरिव विलसत्काशपुष्पप्रकाशा चंचच्चंद्रांशुशोभा सकलजनमुदे शारदी रीतिरास्ताम् ॥ ८ ॥

अर्थ–जिसमें सूर्यकी किरणोंसे कीचडके समूह सूख जाते हैं और कमल खिल जाते हैं, कल्हार (लालकमल) और फूलोंकी बेल खिल जाती हैं कि जिसके प्रतापसे सर्व दिशा सुगंधित हो जाती हैं तथा दूधके समुद्रके

समान तरंग जिनकी ऐसे कांसके फूल फूलकर सपेदी कर देते हैं और चंचल चंद्रमाकी चांदनी सर्व प्राणियोंको हर्ष देती है, ऐसी यह शरद् ऋतुकी रीति है ।

शरद् ऋतुमें पथ्यापथ्य ।

खादेच्चूर्णं शिवायाः शरदि समसितं रेचनं रक्तमुक्तिस्तोयं पेयं विशुद्धं रविशशिकिरणैरुत्तमं वासरोऽम्बु ॥ ९ ॥ शाल्यन्नं सिद्धमुद्गं सघृतमनु पयः पानकं शर्कराढ्यं पथ्यं तिक्तं कषायं रतिरतिसुहिता सायमिंदुर्हिताय ॥ आलिंग्यालिंग्य गाढं सुखशयनगतान्वल्लभान्भावयंत्यः सोत्कंठं कंठदेशे पुनरपि सुरते शक्तिमुद्भावयंति ॥ १० ॥

अर्थ-इस शरद् ऋतुमें मिश्री मिला हरडका चूर्ण खाना, जुल्लाब लेना, रुधिरका निकलवाना, सूर्य और चंद्रकी किरणोंसे शुद्ध जलपान करना अथवा सरोवरका जल पीवे, पुराने बारीक चावल और मूंगका भोजन करे. घृत मिले पदार्थ मिश्री मिला दूध और पने पीने चाहिये । कडवे कषैले रस पथ्य हैं, स्त्रीसंग करना और सायंकालमें चंद्रमाकी चांदनीमें बैठना हितकारी है, सुखशय्यापर प्राप्त हो, अपनी प्रियाका वारंवार आलिंगन कर आनंद भोग करे, फिर उत्कंठित अपनी प्रियाके कंठमें बाहुपाश डालकर मैथुनानंदके सुखका अनुभव करना चाहिये ।

हेमंतऋतुका वर्णन ।

हेमंते शीतभीतिव्यथिततनुरिति व्याजमुत्पाद्य सद्यः प्रारब्धाकालवृष्टिध्वनितिमिरवहद्धातविद्युत्पयोदे ॥ पथ्यायाः सूक्ष्मचूर्णं समगुणतुलितं नागरेणात्र भक्ष्यं शाल्यन्नं भुक्तमुष्णं बहुविधरचितं माषमम्लार्द्रयोगैः ॥ ११ ॥ सर्पिर्मांसं समीनं दधिलवणयुतं दुग्धमुष्णं च पथ्यं वातश्लेष्मानुसारे हिमवति सततं सेवयेदग्निभानू ॥ १२ ॥

अर्थ-हेमंत ऋतुमें शरदीका अत्यंत भय रहता है इसवास्ते (गरम वस्त्र धारण करे) और इस ऋतुमें अकालवृष्टि होनेका प्रारंभ होता है इसवास्ते बद्दल गर्जना करते हैं अंधकार होजाताहै, शीतल पवन चलता है, बद्दलोंमें बिजली चमके है ।

पथ्यापथ्य-इस ऋतुमें हरडका चूर्ण बराबरकी सोंठ मिलायके सेवन करे, बारीक पुराने चावलका गरमागरम भात (घी मिला हो) तथा अनेक प्रकारके उडद खटाई और अदरखके, योगसे बनी दाल, कचौरी आदिका सेवन करे, घी, मांस, मछली, दही, निमक मिले ये सब पदार्थ और गरम २ दूध पीवे. तथा वातकफनाशक पथ्य करे. जब अधिक शीत पडे तो अग्नि और सूर्यकी किरणोंका सेवन करे ।

शिशिर ऋतु ।

मंदंमंदं दिनांते ज्वलति हुतवहे पृष्ठतो वाग्रतो वा धन्यो लोकस्तरुण्याः स्तनजघनपरीरंभसंभोगसंगी ॥ उच्चैस्तूलीविधानं सुललितशयनं क्वापि तैलं सुगंधं तांबूलं तप्ततोयं भजति सुखवहं वासरे शैशिरेऽस्मिन् ॥ १३ ॥ हेमंते यद्यदुक्तं हितमिह भिषजा वासरे शैशिरेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं हिताय प्रभवति कर-

णात्प्राणिनां प्रातभूतम्॥किंचाप्यन्यत्स-तूलीशयनमभिनवाप्राणरामाभिरामा श्रेयस्याः श्लक्ष्णचूर्णं सुचिरमगधजायुक्तमुक्तानुपानम् ॥ १४ ॥

इति षड्तुचिकित्सा सारसंग्रहात् ॥

अर्थ-शिशिर ऋतुमे रात्रिके समय मंद २ आगे पीछे अग्निसे तपे वे लोग धन्य हैं, जो तरुणियोंके स्तन जघनका आलिंगन कर संभोग करते हैं, ऊंचे २ रुईके गद्दे सोड तोसक जिन पर पडे ऐसी शय्यापर सोना, कहीं सुगंधित तेलकी देहमें मालिश करना, पानका चवाना, गरमजल सेवन ये सब पदार्थ शिशिर ऋतुमें सुखकारी होते हैं । तथा जो जो वस्तु हेमंत ऋतुमें सुखकारी है वही इस शिशिर ऋतुमें सेवन करना कहा है । इतनी वस्तु नवीन करनी कि नये रुईकी गद्दीपर सोना । नवीन१६वर्षकी स्त्रीसे रमण और हरडका चूर्ण पीपरके साथ खाना कल्याणकारी है और भी युक्तिसे अनुपान कल्पना करे । यह सारसंग्रह ग्रंथमें लिखा है । इति षड्तुचिकित्सा ।

निषिद्ध वैद्य ।

कर्कशः कश्मलः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ॥ पंच वैद्या न पूज्यंते धन्वंतरिसमा यदि ॥ १९ ॥

अर्थ-कर्कश (कठोर) कश्मल (दुष्ट) (क्रोधी) खोटे गामका रहनेवाला और जो स्वयं चलके रोगीके घर आया हो ये पांच वैद्य धन्वंतरिके भी समान प्रतिष्ठित क्यों न हों परंतु पूजाके योग्य नहीं हैं ।

आतुरस्य पिता वैद्यः स्वस्थीभूतस्य बांधवः ॥ अतिस्वस्थतरे जाते न पिता न च बांधवः ॥ १६ ॥

अर्थ-आतुर (रोगी) का वैद्यही पिता है और जब कुछ अच्छा होने लगा तब वैद्य भाई बंधु ऐसा माने हैं, और सब सर्वथा रोगमुक्त होगया तब यह किसीका गुण नहीं माने किंतु हम तो अपने प्रारब्धसे अच्छे होगये ऐसा यह कृतघ्नी प्राणी कहने लगे है ।

सद्वैद्यके लक्षण ।

सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभंते चिकित्सितुम् ॥ कुवैद्ये जीविनां सिद्धिः स्याद्घुणाक्षरवत्क्वचित् ॥ १७ ॥

सद्वैद्य वेही हैं जो असाध्यकी चिकित्सा नहीं करते । और जो असाध्यकी चिकित्सा करते हैं वे कुवैद्य (खोटेवैद्य) हैं उन कुवद्योंसे जो कोई एक आधा रोगी अच्छा होगया वह घुणाक्षर न्यायसे जानना ।

आयुर्वेदके लक्षण ।

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥ विद्यते यत्र धीमाद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ १८ ॥

अर्थ-आयुका हित अहित और व्याधिका निदान और शमन (शांति) जिससे जाने जाते हों उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले आयुर्वेद कहते हैं ।

ग्रंथांतरमें आशीर्वाद ।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेंद्रभूचंद्रार्कानिलानलाः॥ ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघास्तु पांतु नः ॥ १९ ॥

अर्थ-ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र एकादश, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, पवन, अग्नि

ऋषीश्वर समस्त औषध और भूतोंके समूह ये सब हमारी रक्षा करें ।

ग्रंथकी समाप्ति ।

स्वार्थं चापि परार्थमादरतया दृष्ट्वा चतुः- पंचषान् ग्रन्थान्वैद्यकृतान्प्रसिद्धपथगा- न्भट्टैस्त्रिमल्लाभिधैः ॥ एषा योगतरंगि- णीसमभिधा साध्वी कृता संहिता संक्षिप्ता सरसा सुखेन सुचिरं जीयाद- नेकाः समाः ॥ २० ॥

इति श्रीयोगतरंगिण्यां त्रिमल्लभट्टग्रथि- तायां वैद्यप्रशंसाग्रंथांतमंगलं नाम एकाशीतितमस्तरंगः ॥ ८१ ॥

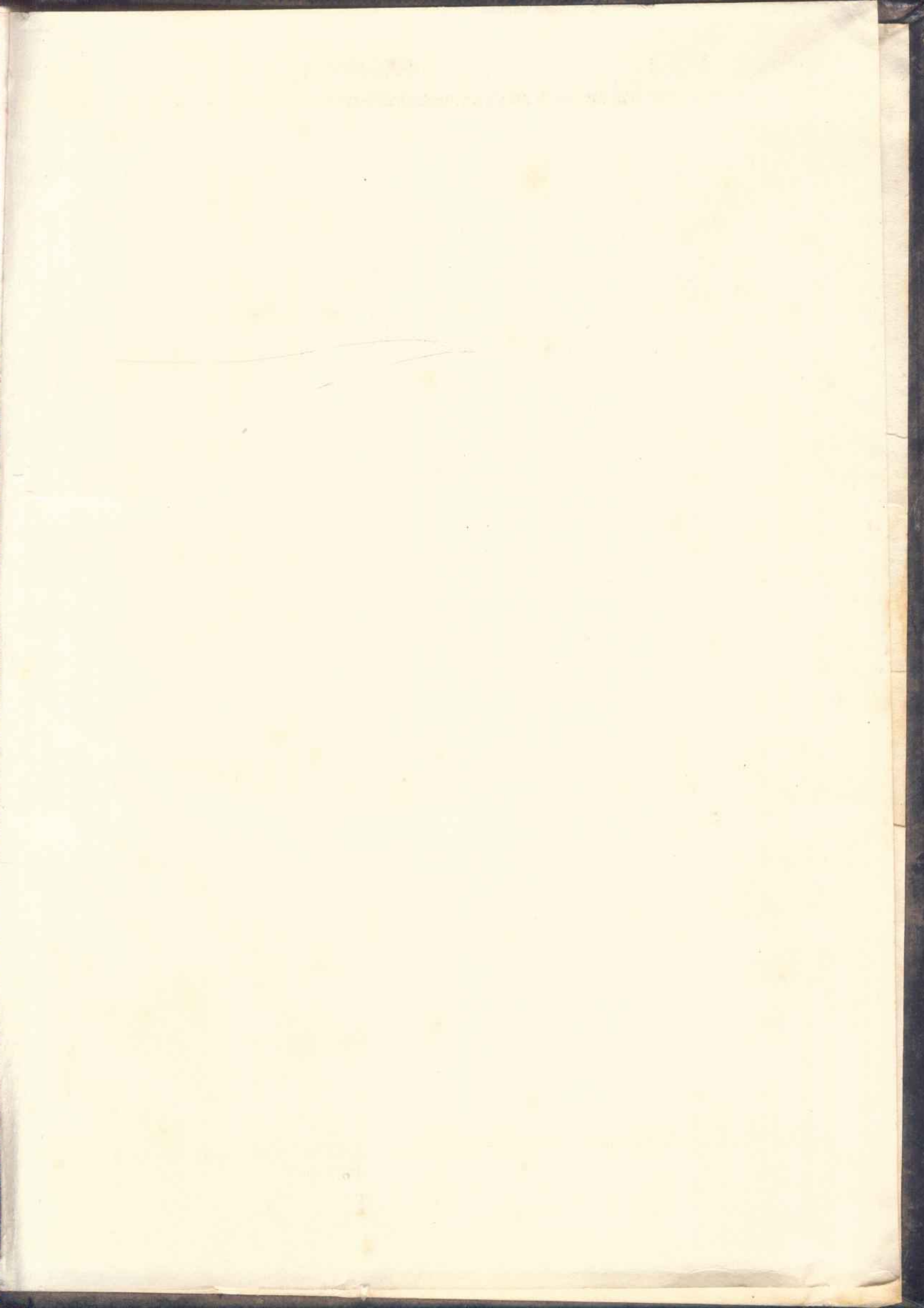
अर्थ–त्रिमल्लभट्ट अपने स्वार्थ तथा परार्थकी इच्छा करके चार पाँच प्राचीन वैद्यकके प्रसिद्ध ग्रंथोंको देखकर इस योगतरंगिणी रूप उत्तम संहिताको निर्माण करते हुए । यह संक्षेपयुक्त सरस है इसवास्ते सुखपूर्वक अनेक वर्षोंतक यह जीवनको प्राप्त होवे ।

इति श्रीमथुरानिवासिमाथुरकन्हैयालालपाठ- कात्मज–दत्तराममाथुररचितयोगतरंगि- णीभाषानुवादे एकाशीतित- मस्तरंगः ॥ ८१ ॥

छंद ।

राम बाण नंद चन्द्र विक्रमशाको ।
आश्विन तिथिपांच वार सूरज भाषो ॥
योगकी तरंगिणिपर भाषाटीका ।
कीनी दत्तराम सोच करके नीका ॥

इति श्रीभाषाटीकासमेता योगतरंगिणी समाप्ता ।





खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४.



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४.